संवर्ग-1 : सल्तनत काल–I

इकाई-1 : मध्यकालीन भारतीय इतिहास की जानकारी के स्रोत

संरचना

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 चचनामा
1.3 तारिख–उल–हिन्द
1.4 ताजुल–मासिर
1.5 तबकात–ए–नासिरी
1.6 अमीर खुसरो के ग्रन्थ
1.7 जियाउद्दीन बरनी के ग्रन्थ
1.8 तारिख–ए–फीरोजशाही
1.9 फुतुहात–ए–फीरोजशाही
1.10 किताब–उल–रहला
1.11 तुजुक–ए–बाबरी
1.12 हुमायुनामा
1.13 तबकात–ए–अकबरी
1.14 तारिख–ए–शेरशाही
1.15 अकबरनामा
1.16 आईन–अकबरी
1.17 मुन्तखाब–उत–तवारीख
1.18 तुजुक–ए–जहागीरी
1.19 नुश्खा–ए–दिलकुशा
1.20 सारांश
1.21 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में मध्यकालीन इतिहास को जानने के महत्त्वपूर्ण साहित्यिक स्रोतों का वर्णन किया जायेगा। इन साहित्यों में तत्कालीन इतिहास की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक नीति की विशद् जानकारी मिलती है। इन साहित्यिक स्रोतों को दो भागों में सल्तनतकालीन साहित्य एवं मुगलकालीन साहित्य में विभाजित किया गया है।

1.1 प्रस्तावना :

प्राचीनकाल के बारे में हमें पूरी तरह ऐतिहासिक जानकारी नहीं मिलती है। इस युग के विद्वान तथा इतिहासकार इस लोक की अपेक्षा परलोक पर अधिक ध्यान देते थे। अतः इस काल में ऐतिहासिक ग्रंथों की तुलना में दार्शनिक व धार्मिक ग्रंथ अधिक रचे गये। अतः हमें प्राचीनकाल के बारे में अधिक ज्ञान नहीं मिल सका है। फिर भी सिक्कों, स्मारकों, अनैतिहासिक ग्रंथों एवं विदेशी यात्रियों के विवरण के द्वारा प्राचीन भारत के प्रामाणिक इतिहास का प्रकाशन हो चुका है। इसके बाद भी इसमें अनेक ऐसे स्थल आते हैं, जिनके बारे में इतिहासकारों का निश्चित मत नहीं है और उनके बारे में गहरा विवाद बना हुआ है।

मध्ययुग में अनेक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे गये, जिनसे हमें इस युग की राजनीतिक घटनाओं के बारे में जानकारी मिलती है। मुसलमानों के सम्पर्क में आने के बाद भारतीय भी इस लोक की तरफ आकर्षित हुए। इस काल के ग्रंथों में सभ्यता एवं संस्कृति का उल्लेख बहुत कम हुआ है। प्रो.यू.एन. डे के अनुसार, "सल्तनतकालीन लेखकों के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे अपने स्वामी का यशगान करने और इस्लाम की विजयों के प्रति धार्मिक उत्साह के कारण सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं की ओर ध्यान नहीं देते थे।"

सल्तनतकालीन ऐतिहासिक ग्रंथों से राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थिति के बारे में जानकारी मिलती है। ये ग्रंथ अरबी तथा फारसी भाषा में लिखे गये थे। कुछ सुल्तानों ने अपने जीवन का वर्णन अपने द्वारा रचित ग्रंथों में किया है। ये ग्रंथ ऐतिहासिक जानकारी के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। सल्तनतकालीन ग्रंथ निम्नलिखित हैं–

1.2 चचनामा :

यह अरबी भाषा में लिपिबद्ध है। इससे मुहम्मद–बिन–कासिम से पहले तथा बाद के सिन्ध के इतिहास का ज्ञान होता है। इसका फारसी भाषा में भी अनुवाद किया गया है।

1.3 तारीख–उल–हिन्द :

इस ग्रंथ का रचयिता अलबरूनी था। वह अरबी तथा फारसी भाषाओं का विद्वान था। यह ग्रंथ फारसी भाषा में लिपिबद्ध है। अलबरूनी विदेशी था तथा भारत में उसने महमूद गजनवी के यहां नौकरी कर ली। वह चिकित्साशास्त्र, धर्म, दर्शन तथा गणित में रूचि रखता था। वह हिन्दू धर्म तथा दर्शन का भी अच्छा ज्ञाता था।

अलबरूनी ने अपने सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'तारीख–उल–हिन्द' में महमूद के भारत आक्रमण तथा उनके प्रभावों का वर्णन किया है। उसने हिन्दी धर्म, साहित्य तथा विज्ञान का भी सुन्दर वर्णन किया है। इस प्रकार इस ग्रंथ से महमूद के आक्रमणों तथा तत्कालीन सामाजिक स्थिति के बारे में जानकारी मिलती है। सचाऊ ने इस ग्रंथ को अंग्रेजी में अनुवादित किया है।

1.4 ताजुल–मासिर :

यह ग्रंथ हसन निजामी ने लिखा था। वह गौरी के साथ भारत आया था। इस ग्रंथ से 1192 ई. से 1218 ई. तक के इतिहास के बारे में जानकारी मिलती है। इसमें विभिन्न स्थानों, मेलों व मनोरंजन का भी वर्णन है तथा सल्तनतकालीन सामाजिक व्यवस्था के बारे में जानकारी मिलती है, जो अस्पष्ट है। यू.एन. डे के अनुसार, "यद्यपि पुस्तक की शैली अत्यधिक कलात्मक और अलंकृत है, पर इसमें वर्णित सामान्य तथ्य साधारणतः सत्य है।"

1.5 तबकात–ए–नासिरी :

इस ग्रंथ का रचयिता मिनहाज–उस–सिराज है। इसमें गोरी के आक्रमणों से लेकर 1260 ई. तक की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं का वर्णन है। लेखक का वर्णन पक्षपातपूर्ण रहा है। उसने गोरी एवं इल्तुमिश के वंशों का निष्पक्ष वर्णन नहीं किया है तथा बलबन की आंख मूंदकर प्रशंसा की गयी है। इसके बाद भी यह ऐतिहासिक दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें घटनाएं क्रमबद्ध रूप से वर्णित की गयी है तथा इन्की तिथियां सत्य हैं। यह गुलाम वंश का इतिहास जानने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। फरिश्ता ने इसे 'एक अति उच्चकोटि का ग्रंथ' माना है। एलफिस्टन, स्टेवार्ट तथा मार्ले ने भी इसकी काफी प्रशंसा की है। रेवर्टी ने इसे अंग्रेजी में अनुवादित किया है।

1.6 अमीर खुसरों के ग्रंथ :

अमीर खुसरो मध्यकालीन भारत का बहुत बड़ा विद्वान था। उसका पूरा नाम अबुल हसन यामिन उद्–दीन खुसरो था। वह छह सुल्तानों के दरबार में रहा था। उसने बलबन से लेकर मुहम्मद तुगलक तक का इतिहास लिखा है। उसने युद्ध में भी भाग लिया था। उसके ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से अमूल्य हैं, जो इस प्रकार हैं–

1.6.1 किरानुस्सादेन – अमीर खुसरो ने 1289 ई. में लिखी। इस पुस्तक में कैकुबाद तथा बुगरा खां की भेंट का वर्णन किया है। इससे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। इससे दिल्ली नगर की स्थिति, मुख्य भवन, दरबार का ऐश्वर्य, मद्यपान गोष्ठियों, संगीत तथा नृत्य के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है तथा कैकुबाद व बुगरा खां के चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है।

1.6.2 मिफता–उल–फुतूह – 1291 ई. में रचित यह पुस्तक अमीर खुसरो के तीसरे दीवान 'गुर्रतुल कमाल' का भाग है। यह साधारण शैली में लिखी गयी है। इसमें जलालुद्दीन की आरंभिक सफलताओं का वर्णन है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.6.3 आशिका – इस ग्रंथ में खुसरो ने अलाउद्दीन के पुत्र खिज्र खां तथा गुजरात नरेश कर्ण की पुत्री देवल रानी की प्रेमकथा तथा विवाह का वर्णन किया है। इसमें खिज्र खां की हत्या, अलाउद्दीन की बीमारी एवं मलिक काफूर के अत्याचारों का भी वर्णन है। इसमें खुसरो ने यह भी बताया है कि वह मंगोलों द्वारा किस प्रकार बंदी बनाया गया।

1.6.4 खजाइनुल फुतूह अथवा तारीख–ए–अलाई – खुसरो ने यह ग्रंथ 1311 ई. में लिखा। ''तारीख–ए–अलाई एक गद्यात्मक रचना है, जिसे 'खजाइनुल फुतूह' भी कहा जाता है। इस ग्रंथ में कृत्रिमता काफी है, लेकिन जो ठोस जानकारी उपलब्ध है, उसे देखते हुए हम कृत्रिमता को क्षमा कर सकते हैं।''

इस ग्रंथ में खुसरो ने अलाउद्दीन की 15 वर्ष की विजयों एवं आर्थिक सुधारों का वर्णन किया है। लेखक के वर्णन में पक्षपात की भावना दिखाई देती है। उसने अलाउद्दीन के सिर्फ गुणों पर प्रकाश डाला है, दोषों पर नहीं। उसने अलाउद्दीन के राज्यारोहण का वर्णन किया है, किन्तु जलालुद्दीन के वध का कोई उल्लेख नहीं किया है। इसके बाद भी यह महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ है तथा तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशा की जानकारी का महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

1.6.5 तुगलकनामा – यह खुसरो की अंतिम ऐतिहासिक कविता है। इसमें खुसरो खां के शासनकाल एवं पतन का तथा तुगलक वंश की स्थापना का वर्णन है।

1.7 जियाउद्दीन बरनी के ग्रंथ :

जियाउद्दीन बरनी के प्रमुख ऐतिहासिक ग्रंथ निम्न हैं–

1.7.1 तारीख–ए–फीरोजशाही – बरनी ने इस ग्रंथ में खिलजी तथा तुगलक वंश का आंखों देखा वर्णन लिखा है। इस ग्रंथ के बारे में उसने लिखा है, ''यह एक ठोस रचना है, जिसमें अनेक गुण सम्मिलित हैं। जो इसे इतिहास समझकर पढ़ेगा, उसे राजाओं और मालिकों का वास्तविक वर्णन मिलेगा।'' उसने राजनीतिक घटनाओं के अलावा सामाजिक, आर्थिक एवं न्यायिक सुधारों का भी वर्णन किया है। इसमें कवियों, दार्शनिकों तथा संतों की लम्बी सूची दी गयी है। बरनी ने जलालुद्दीन तथा अलाउद्दीन के पतन के कारणों का भी वर्णन किया है। बरनी इतिहास की विकृत करने के विरूद्ध था। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, ''मध्यकालीन इतिहासकारों में बरनी ही अकेला ऐसा व्यक्ति है, जो सत्य पर जोर देता है और चाटुकारिता तथा मिथ्या वर्णन से घृणा करता है।'' इसके बाद भी इस ग्रंथ में तिथि सम्बन्धी दोष तथा धार्मिक पक्षपात देखने को मिलता है, किन्तु यह अमूल्य ऐतिहासिक कृति है। यू.एन. डे के अनुसार, ''अपने दोषों के बाद भी यह पुस्तक तत्कालीन संस्थाओं के अध्ययन का मुख्य स्रोत है।''

1.7.2 फतवा–ए–जहांदारी – बरनी ने उच्च वर्ग का मार्गदर्शन करने हेतु एवं फीरोज के समक्ष आदर्श उपस्थित करने हेतु इस ग्रंथ की रचना की। इस पुस्तक में शरीयत के अनुसार सरकार के कानूनी पक्ष का वर्णन है। इसमें मुस्लिम शासकों के लिए आदर्श राजनीतिक संहिता का वर्णन है। बरनी ने महमूद गजनवी को आदर्श मुस्लिम शासक माना है तथा मुसलमान सुल्तानों को उसका अनुकरण करने के लिए कहा है। बरनी कट्टर मुसलमान था, अतः उसने काफिरों का विनाश करने वाले को आदर्श मुस्लिम शासक माना है। उसने आदर्श शासन के लिए कुशल शासन प्रबंध भी आवश्यक बताया है। यदि बरनी के आदर्श शासक सम्बन्धी विचारों में से उसकी धर्नान्धता को निकाल दिया जाये, तो यह शासन प्रबंध में आदर्श सिद्ध हो सकते हैं।

वस्तुतः बरनी की कृतियां ऐतिहासिक दृष्टि से अमूल्य हैं तथा ये बाद के इतिहासकारों के लिए प्रेरक रही हैं। इलियट एवं डाउसन ने 'भारत का इतिहास' (तृतीय खण्ड) में बरनी के कई उद्धरण दिये हैं तथा डॉ. रिजवी ने उसकी कृति 'तारीख–ए–फीरोजशाही' का हिन्दी अनुवाद किया है।

1.8 तारीख–ए–फीरोजशाही :

इस ग्रंथ का रचयिता शम्स–ए–सिराज अफीफ था। वह दीवाने वजारत में कार्यरत था। वह सुल्तान के काफी नजदीक था। जहां बरनी की तारीख–ए–फीरोजशाही समाप्त होती है, वहीं अफीफ की तारीख–ए– फीरोजशाही शुरू होती है। इसमें उसे फीरोज तुगलक का 1357 ई. से 1388 ई. तक का इतिहास लिखा है। यह ग्रंथ 90 इकाईं में बंटा हुआ है। इसमें फीरोज के चरित्र, अभियान, शासन प्रबन्ध, धार्मिक नीति तथा उसके दरबारियों का विस्तृत वर्णन है। यह ग्रंथ पक्षपातपूर्ण है, क्योंकि उसने फीरोज की अत्यधिक प्रशंसा की है। इसके बावजूद यह हमारी जानकारी का मुख्य स्रोत है। अफीफ के इस ग्रंथ से राजनीतिक घटनाओं के अलावा सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति के बारे में भी जानकारी मिलती है। यह कृति बाद

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के इतिहासकारों के लिये प्रेरक रही है। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, "अफीस में बरनी जैसी न तो बौद्धिक उपलब्धि है और न ही इतिहासकारों की योग्यता, सूझबूझ तथा पैनी दृष्टि ही। अफीफ एक घटना को तिथिक्रम से लिखने वाला सामान्य इतिहासकार है, जिसने प्रशंसात्मक दृष्टि से अपने विचार व्यक्त किये हैं। वह अत्यन्त अतिश्योक्तिपूर्ण शैली में सुल्तान की प्रशंसा करता है। उसमें इतनी अतिश्योक्ति है कि फीरोज के सत्कार्यों के वर्णन को पढ़कर सर हेनरी इलियट ने उसकी तुलना अकबर से कर डाली है।"

1.9 फुतुहात–ए–फीरोजशाही :

इस ग्रंथ का रचयिता फीरोज तुगलक स्वयं था। इससे उसके शासन प्रबन्ध तथा धार्मिक नीति की जानकारी मिलती है।

1.10 किताब–उल–रेहला :

यह ग्रंथ मोरक्को के यात्री इब्नबतूता ने लिखा है। यह उसका यात्रा–वृत्तांत है, जो अरबी भाषा में रचित है। इस ग्रंथ में उसने मुहम्मद तुगलक के दरबार, उसके नियम, रीति–रिवाजों, परम्पराओं, दास प्रथा एवं स्त्रियों की दशा का सुन्दर वर्णन किया है। उसका वर्णन पक्षपात की भावना से मुक्त है।

मुगलकालीन ऐतिहासिक स्रोतों में राजकीय पत्र, डायरियां, फरमान, ऐतिहासिक ग्रंथ एवं विदेशी यात्रियों के विवरण प्रमुख हैं। मुगलकालीन फारसी साहित्य के मुख्य ग्रंथ इस तरह हैं–

1.11 तुजुक–ए–बाबरी :

बाबर की आत्मकथा तुजुक–ए–बाबरी अथवा बाबरनामा अथवा बाबर के संस्मरण आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। बाबर ने इसे चगताई तुर्की भाषा में लिखा। इस ग्रंथ से बाबर के शासनकाल तथा उसके जीवन के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। बाबरनामा का फारसी भाषा में अनुवाद 1589 ई. में अब्दुर्रहीम खानखाना ने अकबर के आदेश पर किया था। श्रीमती बैवरिज ने इसका सुन्दर अंग्रेजी अनुवाद किया है। डॉ. मथुरालाल शर्मा ने इसका हिन्दी में संक्षिप्त अनुवाद किया है।

संसार में बहुत कम ग्रंथों को बाबरनामा के समान प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। बाबर दिन–भर थका देने वाली यात्राओं के बाद भी इसे लिखता था। यह अमूल्य ऐतिहासिक ग्रंथ है। लेनपूल के अनुसार, "तुजुक–ए–बाबरी ही केवल एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें दी गयी सामग्री की पुष्टि के लिए अन्य प्रमाणों की विशेष आवश्यकता नहीं है।" बाबरनामा से बाबर की विजयों, चरित्र, कार्यों एवं सफलताओं के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है।

इस ग्रंथ में भारत की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति के बारे में सुन्दर वर्णन मिलता है। प्रकृति–प्रेमी होने के कारण बाबर ने इसमें तत्कालीन फल–फूल, भोजन, रहन–सहन का स्तर, नदी–नालों आदि के सम्बन्ध में भी विस्तृत वर्णन किया है। इस ग्रंथ से भारत तथा मध्य एशिया के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

1.12 हुमायूंनामा :

इसे बाबर की पुत्री तथा हुमायूं की बहन गुलबदन बेगम ने दो भागों में लिखा है। प्रथम भाग में बाबर की दशा द्वितीय में हुमायूं का इतिहास है। इस ग्रंथ से हुमायूं के शासनकाल के इतिहास की प्रामाणिक जानकारी मिलती है। मिसेज बैवरीज ने इस ग्रंथ का अंग्रेजी अनुवाद किया है। बैवरिज के अनुसार, "हिन्दुस्तान के मुगलकाल का जिन लोगों ने इतिहास लिखा है, उन्हें साधारणतः इस बात का ज्ञान नहीं कि गुलबदन बेगम ने भी किसी ग्रंथ की रचना की। इसका ज्ञान मिस्टर अर्सकिन को भी न रहा होगा, अन्यथा वह बाबर एवं हुमायूं के वंश का इतिहास अधिक शुद्ध रूप से लिखते।" रशब्रुक विलियम के अनुसार, "यह ग्रंथ पक्षपात से भरा हुआ है फिर भी, लेखिका ने इसमें अपने पिता की कुछ निजी स्मृतियां दी है।" इस ग्रंथ की एक प्रति ब्रिटिश म्युजियम में सुरक्षित है।

1.13 तबकात–ए–अकबरी :

यह ग्रंथ अकबरशाही अथवा तारीखे निजामी भी कहलाता है। निजामुद्दीन अहमद ने अकबर के समय के 27 ग्रंथों को आधार बनाकर इसे लिखा था। यह ग्रंथ नौ भागों में विभक्त है। इसके दूसरे भाग में बाबर, हुमायूं व अकबर का इतिहास है, जबकि तीसरे भाग में प्रान्तीय राज्यों का इतिहास है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.14 तारीख–ए–शेरशाही :

यह ग्रंथ अब्बास खां शेरवानी ने अकबर की आज्ञा से लिखा था। उसने इसका नाम 'तोहफत–ए–अकबरशाही' रखा था, किन्तु कुछ वर्षों बाद अहमद यादगार ने 'तारीख–ए–सलातीन–ए–अफगान' नामक ग्रंथ लिखा, उसने इस पुस्तक को 'तारीख–ए–शेरशाही' के नाम से संबोधित किया तथा वह इसी नाम से प्रसिद्ध है।

इतिहासकारों ने तारीख–ए–शेरशाही को आधार बनाकर ही शेरशाह का इतिहास लिखा है। डॉ. निगम के अनुसार, ''अब्बास खां ने अनेक घटनाओं से सम्बन्धित अपने सूचना स्रोतों का भी उल्लेख किया है। अतः इस पुस्तक के तथ्यों में कोई संदेह नहीं है। बड़ी–बड़ी घटनाओं की पुष्टि हुमायूं से सम्बन्धित अन्य इतिहासों से भी होती है। शेरशाह का सम्पूर्ण विवरण जितना विस्तारपूर्वक इस ग्रंथ में मिलता है, उतना किसी अन्य में नहीं।'' अब्बास खां ने इस ग्रंथ को बड़ी बुद्धिमत्ता तथा सावधानी से लिखा है। उसने लिखा है कि, ''जो कुछ इन विश्वसनीय पठानों के मुख से, जो साहित्य तथा इतिहास में निपुण थे और उनके राज्य के प्रारम्भ से अंत तक उनके साथ थे तथा विशेष सेवा के कारण विभूषित एवं सम्मानित थे, सुना था। अन्य मनुष्यों से जो कुछ छानबीन कर प्राप्त किया था, उसको मैंने लिखा। जो कुछ उनके विरूद्ध सुना था और जांच की कसौटी पर नहीं उतरा था, उसे त्याग दिया।''

इस ग्रंथ से शेरशाह के शासनकाल का विस्तृत इतिहास पता चलता है। इस ग्रंथ से शेरशाह के शासन–सुधारों, फरीद के जागीर–प्रबंध की बाबर से मुलाकात, हुमायूं से संघर्ष एवं हुमायूं की असफलता के कारणों का वर्णन है। अब्बास खां ने शेरशाह की राजस्व–प्रणाली, सैन्य–संगठन तथा न्याय–प्रबंध पर अच्छा प्रकाश डाला है तथा उसे जन हितैषी शासक बताया है।

इस ग्रंथ की बड़ी त्रुटि यह है कि इसमें घटनाओं की तिथियां नहीं दी गई हैं। इसके बाद भी यह अमूल्य ऐतिहासिक ग्रंथ है। इलियट तथा डाउसन ने उसके विवरण को भारत का इतिहास (चतुर्थ भाग) में व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया है।

1.15 अकबरनामा :

यह ग्रंथ अकबर के वजीर अबुल फजल ने लिखा था। वह 1575 ई. के लगभग अकबर के सम्पर्क में आया एवं उसका विश्वासपात्र बन गया। 1602 ई. में सलीम ने वीरसिंह बुन्देला द्वारा उसकी हत्या करवा दी। अबुल फजल बहुत बड़ा विद्वान था। अबुल फजल का 'अकबरनामा' तीन जिल्दों में है। प्रथम जिल्द में अकबर के पूर्वजों, उसके आरंभिक जीवन एवं उसके शासनकाल के 17 वर्ष तक का वर्णन है। द्वितीय जिल्द में 17 से 46वें वर्ष तक का इतिहास है। तीसरी जिल्द आइने–अकबरी है, जो पृथक ग्रंथ माना जाता है।

अबुल फजल ने अकबर की अत्यधिक प्रशंसा की है। उसके ग्रंथ से तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं के साथ सांस्कृतिक दशा का भी पता चलता है। उसने प्रत्येक महत्त्वपूर्ण घटना से पहले उसकी प्रस्तावना लिखी है। उसके विवरण से तत्कालीन धार्मिक स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है। वह अकबर की धार्मिक उदारता से अत्यधिक प्रभावित था। अतः उसने अकबर को 'इंसाने–कामिल' एवं 'देवी प्रकाश' की संज्ञा दी है। उसने अकबर की अत्यधिक प्रशंसा की है। अतः यह ग्रंथ निष्पक्ष नहीं कहा जा सकता। इस ग्रंथ की भाषा जटिल, आडम्बरपूर्ण एवं अलंकारिक है, किन्तु फिर भी यह अमूल्य ऐतिहासिक ग्रंथ है। एच. बैवरिज ने इस ग्रंथ का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी तथा डॉ. मथुरालाल शर्मा ने भी इसका अनुवाद दिया है। इलियट तथा डाउसन ने भारत का इतिहास (छठा भाग) में इसका अनुवाद दिया है।

1.16 आईने–अकबरी :

यद्यपि यह अकबरनामा का तृतीय भाग है, तथापि इसे पृथक् ग्रंथ माना जाता है। इसमें अकबर के शासनकाल से सम्बन्धित आंकड़े तथा शासन–व्यवस्था सम्बन्धी अन्य नियमों का विस्तृत वर्णन है। अबुल फजल के इस ग्रंथ का ब्लोचमेन तथा गैरेट ने अंग्रेजी अनुवाद किया है। इससे तत्कालीन समय की राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा आर्थिक स्थिति के बारे में विश्वसनीय जानकारी मिलती है।

आईने–अकबरी के बारे में डॉ. अवधबिहारी पाण्डेय ने लिखा है, ''एशिया अथवा यूरोप में कहीं भी ऐसी पुस्तक की रचना नहीं हुई है।'' जे.एन. सरकार के अनुसार, ''भारत में यह अपनी कोटि का प्रथम ग्रंथ है और इसकी रचना उस समय हुई थी, जिस समय नवनिर्मित मुगल शासन अर्द्ध–तरलावस्था में था।'' के.एम. अशरफ ने लिखा है, ''आईने अकबरी सामाजिक इतिहास का प्रतीक है।'' ब्लोचमेन के अनुसार, ''यह भिन्न–भिन्न प्रकार के अध्ययन का खजाना है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.17 मुन्तखाब–उत–तवारीख :

इस ग्रंथ का लेखक अब्दुल कादिर बदायूंनी था। वह अकबर के दरबार में इमाम था। बदायूंनी अरबी, फारसी एवं संस्कृत भाषा का पूर्ण ज्ञाता था। बदायूंनी एक कट्टर मुसलमान था, अतः उसने अकबर की उदार धार्मिक नीति की आलोचना की। उसने सम्राट के प्रशंसक अबुल फजल को चापलूस की संज्ञा दी। बदायूंनी ने अकबर की अतिश्योतिक्तपूर्ण आलोचना की। मुन्तखाब–उत–तवारीख तीन भागों में विभक्त है। पहले भाग में सुबुक्तगीन से हुमायूं तक का इतिहास है। दूसरे भाग में अकबर के शासनकाल की 1595–96 ई. तक की घटनाओं का वर्णन है। तीसरे भाग में तत्कालीन सूफियों, विद्वानों, हकीमों एवं कवियों की जीवनियां हैं। यह ग्रंथ 'तारीखे–मुबारकशाही' तथा 'तबकाते अकबरी' को आधार बनाकर लिखा गया है। इसका महत्त्व इसलिए है, क्योंकि इससे अकबर के शासनकाल के दूसरे पहलू का ज्ञान होता है।

1.18 तुजुक–ए–जहांगीरी :

इसका रचयिता स्वयं जहांगीर था। इसे 'इकबालनामा', 'तारीख–ए–सलीमशाही' अथवा 'जहांगीरनामा' भी कहा जाता है। इसमें जहांगीर के आरंभिक 17 वर्षों के शासन की घटनाओं का वर्णन है। उसकी बीमारी के कारण मोतमिद खां ने इसे पूरा किया। इस ग्रंथ में हमें राजनीतिक घटनाओं के साथ–साथ तत्कालीन संगीत, साहित्य, चित्रकला तथा ललितकला के सम्बन्ध में भी जानकारी मिलती है। यह ग्रंथ जहांगीर के शासनकाल के इतिहास की जनकारी का मूल्यवान तथा विश्वसनीय स्रोत है।

1.19 नुश्खा–ए–दिलकुशा :

इस ग्रंथ की रचना कायस्थ जाति के भीमसेन ने फारसी भाषा में की। वह औरंगजेब की सेना में क्लर्क था। उसने उसकी सेना के साथ कई युद्धों में भाग लिया था। मुगल सेना द्वारा पनहाला का दुर्ग घेरे जाने पर उसने सैनिक सेवा छोड़ दी तथा इस ग्रंथ की रचना शुरू की। इस ग्रंथ में वर्णित घटनाएं सत्य हैं। लेखक ने ऐतिहासिक व्यक्तियों के चरित्र का यथार्थता में चित्रण किया है। इस ग्रंथ में चापलूसी देखने को नहीं मिलती। अतः जे.एन. सरकार ने उसे महान् संस्मरण लेखक माना है।

1.20 सारांश :

इस प्रकार इन साहित्यिक स्रोतों के माध्यम से मध्यकालीन इतिहास की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि पक्षों की महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। यद्यपि कुछ ग्रन्थों में कालक्रम सही नहीं है लेकिन फिर अन्य जानकारियों के कारण ये ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है।

1.21 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 – खिज्र खाँ तथा गुजरात नरेश कर्ण की पुत्री देवल रानी की प्रेम कथा किस ग्रन्थ में वर्णित है?

(अ) तारिख–ए–फीरोजशाही (ब) तुजुक–ए–बाबरी

(स) अकबरनामा (द) आशिका

उत्तर – ....

प्रश्न 2 – 'तबकात–ए–नासिरी पर टिप्पणी लिखिए? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 – मध्यकालीन भारत का इतिहास जानने के प्रमुख साहित्यिक स्रोतों का वर्णन करिए?

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 2
भारत में तुर्की राज्य की स्थापना – कुतुबुद्दीन ऐबक

संरचना

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 दिल्ली सल्तनत
2.3 कुतुबुद्दीन ऐबक
2.4 कुतुबुद्दीन ऐबक के कार्य
    2.4.1 मुहम्मद गौरी के प्रतिनिधि के रूप में
    2.4.2 स्वतन्त्र शासक के रूप में
2.5 कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु
2.6 कुतुबुद्दीन ऐबक के उत्तराधिकारी और सारांश
2.7 अभ्यास प्रश्नावली

2.0 उद्देश्य :

इस इकाई में मुहम्मद गौरी द्वारा भारत में आक्रमण तथा कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझाया जायेगा –

–कुतुबुद्दीन ऐबक के प्रमुख कार्य
–मुहम्मद गौरी के प्रतिनिधि के रूप में
–स्वतन्त्र शासक के रूप में कुतुबुद्दीन ऐबक के कार्य

2.1 प्रस्तावना :

मोहम्मद गौरी पहला मुस्लिम आक्रमणकारी था जिसने भारत में साम्राज्य स्थापित करने का सक्रिय प्रयास किया। 1206 ई. में दमयक नामक स्थान में हिन्दू खोक्खरों ने गोरी की हत्या कर दी। चूंकी गोरी का कोई पुत्र नहीं था अतः गजनी में अल्लाउद्दीन तथा भारत में कुतुबुद्दीन ऐबक उसके साम्राज्य का उत्तराधिकारी बन बैठे। भारत में तुर्की साम्राज्य का संस्थापक कुतुबुद्दीन अपने प्रारम्भिक काल में दास था सम्भवतः उसी कारण से ऐबक द्वारा स्थापित साम्राज्य को दास वंश की संज्ञा प्रदान की जाती है। 12.6 ई. से 1290 ई. तक दिल्ली के सिंहासन पर एक नहीं बल्कि तीन वंशों ने शासन किया और इन वंशों के संस्थापक एक ही पूर्वज की संतान नहीं थे। कुतुबुद्दीन को छोड़कर सबने गद्दी बैठने से पूर्व ही अपनी दासता से मुक्ति प्राप्त कर ली थी। दिल्ली सल्तनत के सम्पूर्ण काल में केवल लोदी वंश ही पठान था। शेष सब तुर्क–जाति से सम्बन्धित थे, अतः दिल्ली सल्तनत को पठान काल नहीं कहा जा सकता। कुतुबुद्दीन द्वारा स्थापित वंश को 'ममूलक वंश' कहा जाता है।

2.2 दिल्ली सल्तनत :

सुल्तान मुइजुद्धीन मुहम्मद बिनखाम (मोहम्मद गौरी) के कोई पुत्र नहीं था अतः उसके प्रान्तीय प्रतिनिधियों ने शीघ्र ही अपने अपने अधिकार क्षेत्रों में अपनी स्वतन्त्रता सत्ता स्थापित कर ली। गजनी की गद्दी पर किरमान का शासक ताजुद्धीन यल्दौज गद्दी पर बैठा। भारत में कुतुबुद्दीन ऐबक गौरी के साम्राज्य का स्वामी बन बैठा और उसी ने गुलाम वंश की नींव डाली। दिल्ली सल्तनत काल में दिल्ली पर कुल पांच राजवंशों का शासन रहा जो इस प्रकार हैं –

वंश	संस्थापक	समय
1. गुलाम वंश	कुतुबुद्दीन ऐबक	1206–1289 ई.
2. खिलजी वंश	जलालुद्दीन फिरोज खिलजी	1290–1320 ई.
3. तुगलक वंश	ग्यासुद्दीन तुगलक	1320–1414 ई.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. सैयद वंश	खिज्र खां	1414–1451 ई.
5. लोदी वंश	बहलोल लोदी	1451–1526 ई.

दिल्ली सल्तनत पर प्रथम गुलाम वंश ने शासन किया। गुलाम वंश ने 80 वर्ष तक शासन किया लेकिन इन 80 वर्षों में तीन राजवंशों ने शासन किया जिनके संस्थापक कुतुबुद्दीन ऐबक (गुलाम वंश), इल्तुतमिश (प्रथम इल्बरी तुर्क वंश), ग्यासुद्दीन बलबन (द्वितीय इलबरी वंश) थे।

ऐबक वंश में कुतुबुद्दीन ऐबक (1206–10 ई.) की मृत्यु के बाद आरामशाह (1210–11 ई.) सुल्तान बना। तत्पश्चात् कुतुबुद्दीन ऐबक का दामाद इल्तुतमिश (1211–36 ई.), रूकनुद्दीन फीरोज (1242), रजिया (1236–40 ई), बहरामशाह (1240–42 ई.), मसूदशाह (1242–46 ई.), नासिरूद्दीन महमूद (1246–66 ई.) दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठे इनके पश्चात् ग्यासुद्दीन बलबन 1266 ई में दिल्ली पर तुर्कों का अधिकार रहा और बाद में खिलजी वंश ने दिल्ली की गद्दी पर अधिकार कर लिया।

खिलजीवंश में जलालुद्दीन फिरोज खिलजी (1290–96 ई.) के बाद सबसे विख्यात अल्लाउद्दीन खिलजी (1296–1316 ई.) हुआ। 1316 ई. में अल्लाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के बाद उसके अयोग्य उत्तराधिकारी विशाल खिलजी साम्राज्य की रक्षा नहीं कर सके और 1320 ई. में ग्यासुद्दीन तुगलक ने दिल्ली साम्राज्य की गद्दी प्राप्त की और तुगलक वंश में ग्यासुद्दीन तुगलक (1320–25 ई.), महत्त्वपूर्ण शासक हुये।

तुगलकों के बाद में सैयद वंश में खिज्रखां (1414–21 ई.), मुबारकशाह (1421–34 ई.), मुहम्मदशाह (1434–45ई.) एवं अल्लाउद्दीन आलमशाह (1445–1451 ई.) ने शासन किया और अन्त में लोदी वंश के बहलोल लोदी (1451–89 ई.), सिकन्दर लोदी (1489–1518 ई.) एवं इब्राहीम लोदी (1518–26 ई.) गद्दी पर बैठे। 1526 ई. में पानीपत के युद्ध में बाबर (मुगल) ने इब्राहीम लोदी को हरा कर मुगलवंश की नींव रखी। इस प्रकार 1206 ई. से लेकर 1526 तक अर्थात् 320 वर्ष के राज्यकाल के अन्तर्गत दिल्ली सल्तनत समाप्त हो गया।

2.3 कुतुबुद्दीन ऐबक (1206–1210) :

फरवे मुदब्बिर के अनुसार मुइज्जुद्दीन मुहम्मद गोरी 1205–06 ई. में खोखरों को हराकर गजनी वापिस लौट रहा था। तो उसने औपचारिक रूप से ऐबक को अपने भारतीय ठिकानों का प्रतिनिधि नियुक्त किया। उसे 'मलिक' का पद प्रदान किया गया था और उसे 'वली–अहद' या उत्तराधिकारी घोषित किया गया। क्योंकि मुइज्जुद्दीन गोरी की आकस्मिक मृत्यु के कारण अपने उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में सम्भवतः निश्चित निर्णय नहीं ले पाया था। उसके कोई बेटा नहीं था और अपने कुटुम्ब के किसी व्यक्ति या गोर के किसी जनजातीय सरदार पर वह विश्वास नहीं करता था। उसे अपने शासन की एकता बनाए रखने के लिए और शासन–व्यवस्था स्थापित करने के लिए भी समय नहीं मिला था। ऐसी स्थिति में अपनी सल्तनत की रक्षा के लिए वह केवल अपने दासों पर विश्वास करता था। मिनहाज उस–सिराज के अनुसार उसने एक बार कहा था कि "अन्य सुल्तानों के एक बेटा हो सकता है या दो, मेरे अनेक हजार बेटे हैं, अर्थात् मेरे तुर्की गुलाम, जो मेरे राज्यों के उत्तराधिकारी होंगे, और जो मेरे बाद उन राज्यों के खुत्बे में मेरा नाम सुरक्षित रखेंगे।"

कुतुबुद्दीन ऐबक के जन्म और माता–पिता के विषय में यद्यपि विशेष जानकारी तो नहीं मिलती है फिर भी पता चलता है कि वह बचपन में ही अपने माता–पिता से अलग हो गया और एक हाथ से दूसरे हाथ बिकते हुये मुहम्मद गौरी का गुलाम बन गया। यहीं से उसके जीवन में एक नया इकाई शुरू हुआ जिसने उसे अन्ततः दिल्ली का राज–सिंहासन प्रदान कर दिया। अपनी योग्यता और सैनिक गुणों के बल पर वह गोरी का योग्यतम सेनापति बन गया। तराइन के द्वितीय युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद गोरी ने उसे अपने भारतीय प्रदेशों का शासक (गवर्नर) नियुक्त किया। गजनी लौटते समय गौरी की मृत्यु हो गई और तब ऐबक ने स्वयं को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया।

2.4 कुतुबुद्दीन ऐबक के कार्य :

कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1206 ई में स्वयं को सुल्तान घोषित किया और 1210 ई. तक उसने दिल्ली की गद्दी सम्भाली। इस दौरान उसने अपनी स्थिति को न केवल सुदृढ़ किया बल्कि अनेक समस्याओं का भी निवारण किया। कुतुबुद्दीन ऐबक के कार्यों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. मुहम्मद गौरी के प्रतिनिधि के रूप में एवं
2. स्वतंत्र शासक के रूप में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.4.1 मुहम्मद गौरी के प्रतिनिधि के रूप में – मुहम्मद गौरी के प्रतिनिधि के रूप में कुतुबुद्दीन ऐबक के कार्य यद्यपि कुतुबुद्दीन ऐबक 1206 ई. में भारत में सुल्तान बना और दिल्ली सल्तनत की नींव रखी लेकिन वह भारत में 1206 ई. से भी पहले आ चुका था मुहम्मद गौरी के साथ और मौहम्मद गोरी ने वापिस जाने से पूर्व उसे अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। इस काल में उसने विलक्षण सैनिक सफलताओं द्वारा गोरी के भारतीय साम्राज्य को विस्तृत और सुदृढ़ बनाया। गौरी के प्रतिनिधि के रूप में ऐबक ने महत्त्वपूर्ण कार्य किए –

1. अपने स्वामी की अनुपस्थिति में ऐबक ने 1192 ई. में अजमेर और मेरठ में विद्रोहों का दमन किया। उसके पश्चात् उसने दिल्ली पर अधिकार कर लिया जो आगे चलकर भारत के तुर्की साम्राज्य की राजधानी बनी। ऐबक की इन विजयों से अजमेर से दिल्ली का प्रदेश सीधे मुसलमान राज्य के अधिकर में आ गया। 1194 ई. में उसने अजमेर के दूसरे विद्रोह का दमन किया और फिर कन्नोज के जयचन्द को पराजित किया। 1195 ई. ऐबक ने कोइल पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् उसने अजमेर में होने वाले एक अन्य विद्रोह का दमन किया और साथ ही रणथम्भौर के प्रसिद्ध किले को जीत लिया। ऐबक ने हाँसी के किले को भी, जो एक तुर्क सरदार के अधीन था, जाटों के घेरे से बचाने में सफलता पाई। वहां से लौटते समय उसने मेरठ के प्राचीन किले पर चढ़ाई की और वहां के हिन्दू राजा को मारकर किले पर अधिकार कर लिया।
2. 1196 ई. में मेदों ने ऐबक को घेर लिया किन्तु वह इस भंयकर परिस्थिति से निकलने में सफल हुआ। उसके पश्चात् शीघ्र ही उसने अन्हिलवाड़ की ओर कूच किया और उसे लूटा तथा नष्ट–भ्रष्ट किया।
3. 1197–98 ई. में ऐबक ने बदायुं, चन्दवार और कन्नोज पर अधिकार कर लिया।
4. इसके पश्चात् 1202–03 ई. में ऐबक ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया और चन्देल राजा परमर्दी देव को हराकर कालिंजर, महोबा और खजुराहो पर अधिकार कर लिया। उसके सहायक सेनानायक इख्तियारुद्दीन मुहम्मद बिन बख्तियार खलजी ने बिहार तथा बंगाल के कुछ भागों को जीत लिया।

इस प्रकार कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपने स्वामी की मृत्यु से पहले तथा स्वयं सिंहासन पर बैठने से पूर्व ही लगभग सारे उत्तरी भारत का स्वामी बन बैठा था। ऐबक ने इस सभी अभियानों में भंयकर लूटमार मचाई और मुस्लिम परम्परानुसार मंदिरों का विनाश किया तथा यथा सम्भव हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया और अपने स्वामी के सहायक सेनापति और प्रतिनिधि की हैसियत से इस देश में कार्य किया।

2.4.2 स्वतन्त्र शासक के रूप में – कुतुबुद्दीन ऐबक ने चार वर्ष शासन किया। इस काल में उसने कोई नयी विजय नहीं प्राप्त की। ना ही अपने शासन को सुदृढ़ करने का उसे समय मिला। उसका शासन–प्रबन्ध पूर्णतया सैनिक था और सेना की सहायता पर निर्भर था। राजधानी में एक शक्तिशाली सैना के अतिरिक्त उसने हिन्दूस्तान के सभी भागों में महत्त्वपूर्ण नगरों में रक्षा–सेनाएं नियुक्त की। स्थानीय शासन उसने भारतीय पदाधिकारियों के हाथों में छोड़ रखा था और राजस्व सम्बन्धी पुराने नियमादि भी पूर्ववत् बने रहे। राजधानी तथा प्रान्तीय नगरों में शासन चलाने के लिये मुसलमान पदाधिकारी नियुक्त किये गये।

स्वतंत्र शासक के रूप में सर्वप्रथम उसने मुख्य प्रतिद्वन्द्वी ताजुद्दीन एल्दौज तथा नासिरूद्दीन कुबाचा से निबटना पड़ा जो शक्तिशाली राज्यों के शासक थे और अपने को सुल्तान क समानपदी समझते थे। दूसरे वे हिन्दू सामन्त जिनका मुहम्मद गौरी के समय में दमन किया गया था।, उसकी मृत्यु का लाभ उठाकर पुनः अपनी खोयी हुई स्वाधीनता प्राप्त करने के इच्छुक थे। 1206 ई. में चन्देल राजपूतों ने अपनी राजधानी कालिंजर को पुनः जीत लिया था, हरिश्चन्द्र के नेतृत्त्व में गहड़वासे ने फर्रूखाबाद तथा बदायूं के प्रदेशों में अपनी खोयी हुई शक्ति को बहुत कुछ पुनः प्राप्त कर लिया था और प्रतिहारों ने पुनः ग्वालियर पर अधिकार कर लिया था। उधर इख्तियारुद्दीन की मृत्यु के बाद बिहार और बंगाल में भी विद्रोह की ज्वाला भड़कने लगी थी। इख्तियारुद्दीन के पश्चात् अलीमर्दान खां बंगाल का स्वतन्त्र शासक बन बैठा। इसी बीच कुछ स्थानीय खिलजी सरदारों ने उसे पकड़कर अपदस्थ कर मुहम्मद शेरा को गद्दी पर बैठा दिया। इसी समय अलीमर्दान कैद से भागने तथा कुतुबुद्दीन ऐबक को बंगाल के मामले में हस्तक्षेप करने को राजी कर लिया। कुतुबुद्दीन ऐबक के प्रतिनिधि कैमाज रूमी के प्रयत्नों के कारण बड़ी कठिनाई के बाद खलजियों ने कुतुबुद्दीन ऐबक का प्रभुत्त्व स्वीकार कर लिया। अब अलीमर्दान को बंगाल का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया तथा उसने सुल्तान को वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया लेकिन दिल्ली के नये तुर्की राज्य के लिये सबसे बड़ा संकट मध्य एशिया की ओर से था। ख्वारिज्म के शाह की गजनी तथा दिल्ली पर दृष्टि थी। इसलिये

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कुतुबुद्दीन ऐबक का यह महत्त्वपूर्ण कार्य था कि वह ख्वारिज्म के शाह को दिल्ली और गजनी पर अधिकार करने से रोके। इसके लिए उसने दिल्ली के स्थान पर लाहौर को अपना निवास स्थान बनाया और अपना शेष जीवन वहीं व्यतीत किया। इसी समय ताजुद्दीन यल्दौज ने गजनी पर अधिकर कर लिया था और अब वह पंजाब की तरफ बढ़ा ऐबक ने न केवल यल्दौज को 1208 ई. में पराजित किया बल्कि सम्पूर्ण गजनी पर चालीस दिन के लिये अधिकार कर लिया परन्तु प्रजा के असन्तोष के कारण उसे गजनी छोड़ना पड़ा इस प्रकार कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली को मध्य एशिया की राजनीति में उलझने से बचा लिया।

2.5 कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु :

उत्तर पश्चिमी प्रदेश तथा बंगाल की राजनीति में कुतुबुद्दीन ऐबक इतना उलझा रहा कि उसे राजपूतों के विरूद्ध आक्रमणकारी नीति जारी रखने का अवसर नहीं मिला। 1210 में पोलों खेलते समय घोड़े से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई ओर लाहौर में उसे दफना दिया गया। उसकी कब्र पर एक साधारण मगर भारत में प्रथम तुर्की सुल्तान की याद में एक स्मारक स्थापित किया गया।

कुतुबुद्दीन ऐबक मोहम्मद गौरी के प्रतिनिधि एवं स्वतान्त्र शासक के रूप में जो कार्य किया उससे स्पष्ट होता है कि वह वीर सेनानायक था। योग्य सेनानायक होने के साथ–साथ वह साहित्य प्रेमी भी था। हसन निजामी तथा फख्रेमुदीर जैसे विद्धान उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे। स्थापत्य कला के क्षेत्र में उसने हिन्दू मन्दिरों को तोड़कर उनकी सामग्री से दो मस्जिदे बनवायी थी – एक दिल्ली में कुव्वत–उल–इस्लाम तथा दूसरी अजमेर में ढाई दिन का झोपड़ा।

मुस्लिम लेखकों ने इसक उदारता एवं दानशीलता की प्रशंसा की है तथा दानशीलता के कारण उसे 'लाखबख्श' की उपाधि से विभूषित किया है।

2.6 कुतुबुद्दीन ऐबक के उत्तराधिकारी और सारांश :

अरामशाह (1210–1211 ई.) – कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु भारत से उसके अनुयायियों में भारी घबराहट फैली। लाहौर में उसके अफसरों ने उसके पुत्र आरामशाह को गद्दी पर बिठा दिया, किन्तु दिल्ली के नागरिकों ने उसका समर्थन नहीं किया क्योंकि वह दुर्बल तथा अयोग्य नवयुक था। इसलिए प्रमुख काजी की सलाह से जनता कुतुबुद्दीन के दामाद बदायूं के शासक इल्तुतमिश को राजमुकुट धारण करने के लिए आमन्त्रित किया। किन्तु आरामशाह अपनी इच्छा से सिहांसन छोड़ने के लिए उद्यत नहीं था, अतएव वह इल्तुतमिश के विरूद्ध युद्ध के लिए तैयार हो गया। नासिरूद्दीन कुबाचा ने जो कुतुबुद्दीन के समय में उच का शासक था, इल्तुतमिश और आरामशाह के इस पारस्परिक द्वन्द्व का लाभ उठाना चाहा। वह मुल्तान की ओर बढ़ा और उस अधिकार कर लिया। बंगाल के शासक अलीमर्दान ने भी दिल्ली के प्रभुत्व को मानने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार आरामशाह के शासन में दिल्ली का नव–स्थापित तुर्की साम्राज्य चार स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हो गया। लाहौर के लोगों ने आरामशाह का साथ दिया। उनकी सहायता से उसने इल्तुतमिश के विरूद्ध कूच किया जिसने दिल्ली में अपने को सुल्तान घोषित कर दिया था। किन्तु इस युद्ध में आरामशाह पराजित हुआ और सम्भवतः मार डाला गया। आरामशाह का अपयशपूर्ण शासन केवल आठ महीने चला।

2.7 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 सुल्तान बनने के पश्चात् कुतुबुद्दीन ने कालिंजर पर पुनः कब अधिकार किया–

अ. 1206 ई. ब. 1207 ई.

स. 1208 ई. द. 1209 ई.

उत्तर – ....

प्रश्न 2 मुहम्मद गौरी के प्रतिनिधि के रूप में कुतुबुद्दीन ऐबक के कार्य बताइये।

उत्तर – ....

प्रश्न 3 कुतुबुद्दीन ऐबक की उपलब्धियों का विवेचन कीजिए।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई 3
इल्तुतमिश

संरचना

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रारम्भिक जीवन
3.2 प्रारम्भिक कठिनाइयाँ
3.3 मंगोल नीति
3.4 दोआब के विद्रोह का दमन
3.5 इल्तुतमिश की शासन व्यवस्था
3.6 इल्तुतमिश की मृत्यु
3.7 इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी
3.8 इल्तुतमिश का चरित्र तथा मूल्यांकन
3.9 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.0 उद्देश्य :

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य इल्तुतमिश द्वारा दिल्ली सल्तनत के वास्तविक संस्थापक के रूप में किये गये कार्यों का, साम्राज्य विस्तार का विस्तृत वर्णन करना है।

3.1 प्रारम्भिक जीवन :

इल्तुतमिश का पूरा नाम शम्स–उद–दीन इल्तुतमिश था। वह मध्य एशिया के इल्बारी कबीले के तुर्क माता–पिता से उत्पन्न हुआ था और बाल्यकाल में ही उसके ईर्ष्यालु भाइयों ने उसे दास बनाकर बेच दिया था। जमालुद्दीन नामक एक व्यापारी उसे खरीदकर गजनी ले गया। तदुपरान्त वह दिल्ली लाया गया और दुबारा कुतुबुद्दीन के हाथों बेच दिया गया। वह एक के बाद एक प्रतिपद प्राप्त करता गया और अन्त में 'अमीरे शिकार' बन गया। ग्वालियर की विजय के बाद ग्वालियर का किला उसे सौंप दिया गया और और तदुपरान्त वह बरन (बुलन्दशहर) का शासक नियुक्त हुआ। कुतुबुद्दीन ने अपनी पुत्री का विवाह भी उसके साथ कर दिया। उसे बदायूं का सूबेदार नियुक्त किया और 1211 ई. में वह सुल्तान के पद पहुंच गया। सुल्तान बनने से पूर्व वह बदायूँ का गवर्नर था, ऐबक के काल में वह 'अमीरे आखूर' ग्वालियर और बरन का प्रशासक रह चुका था। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि इल्तुतमिश ने अनियमित रूप से गद्दी हड़प ली थी परन्तु ऐसा समझना सत्य से काफी दूर है। इस्लामी कानून के अनुसार योग्यतम व्यक्ति को राज सत्ता का अधिकारी माना जाता है, और इस रूप में वह निश्चित ही आरामशाह से अधिक योग्य था। जहाँ तक दासत्व का सवाल है, खोखंरों के विरूद्ध गोरी के आक्रमण के समय ही उसकी सेवा से प्रसन्न होकर सुल्तान ने उसे दासत्व से मुक्त कर दिया था तथा उसे अमीर–उल–उमरा की उपाधि से नवाजा था।

3.2 प्रारम्भिक कठिनाईयाँ :

आरामशाह और इल्तुतमिश के पारस्परिक झगड़े का लाभ उठाकर उसने लाहौर पर भी अधिकार कर लिया था। बंगाल और बिहार भी दिल्ली से पृथक हो गये थे और लखनौती का अलीमर्दान स्वतन्त्र शासक बन बैठा था। जालौर तथा रणथम्भौर स्वतन्त्र हो गए। अजमेर, ग्वालियर और दोआब ने भी तुर्की–साम्राज्य का जुआ उतार फेंका। ताजुद्दीन एल्दौज ने पुनः समस्त हिन्दुस्तान पर अपने प्रभुत्व का दावा किया। दिल्ली में भी कुचक्र चल रहे थे। वहाँ के कुछ शाही रक्षकों ने आरामशाह से मिलकर विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस समय इल्तुतमिश गद्दी पर बैठा, दिल्ली सल्तनत की दशा अत्यन्त ही शोचनीय थी। उसने एल्दौज की प्रभुत्व स्वीकार करने का बहाना किया और उसने भेजे हुए छत्र, दण्ड आदि राजचिन्ह स्वीकार कर लिए। चतुर कूटनीति द्वारा उसने दिल्ली में आरामशाह के दल का दमन कर दिया और शाही

रक्षकों को भी अपने नियन्त्रण में कर लिया। आन्तरिक कठिनाइयों से मुक्ति पाने पर उसने एल्दौज की ओर ध्यान दिया जिसने कुबाचा को लाहौर से निकालकर पंजाब के अधिकांश भाग पर आधिपत्य जमा लिया था। 1215 ई. में ख्वारिज्म के शाह द्वारा पराजित होकर एल्दौज ने गजनी से भागकर लाहौर में शरण ली तो इल्तुतमिश ने तुरन्त ही उसके विरूद्ध कूच किया और तराइन के युद्धक्षेत्र में उसे हराया। एल्दौज स्वयं बन्दी बनाकर बदायूं भेज दिया गया जहाँ शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गयी।

3.3 मंगोल नीति :

इल्तुतमिश के शासन–काल में ही सर्वप्रथम मंगोल नेता तिमुचीन उर्फ चंगेज खां 1221 में सिंधु तट पर उपस्थित हुआ। मंगोलों ने ख्वारिज्म साम्राज्य को पूर्णतः मटियामेट कर दिया, ख्वारिज्म का शाह कैस्पियन सागर की ओर भाग या और उसका युवराज जलालुद्दीन मांगवर्नी भागकर पंजाब आ गया। खोक्खरों की सहायता से उसने सिंध, मुल्तान तथा उत्तरी–पश्चिमी पंजाब पर अधिकार कर लिया तथा इल्तुतमिश से राजनीतिक स्तर पर शरण मांगी। इल्तुतमिश मंगोल जैसे शक्तिशाली आक्रमण से टकराना नहीं चाहता था, वस्तुतः वह नव निर्मित तुर्की साम्राज्य को मध्य एशिया की राजनीति में फंसने नहीं देना चाहता था। मंगवर्नी को शरण देने से इंकार कर उसने दूरदर्शिता का परिचय दिया और इस प्रकार उसने तुर्की साम्राज्य को बचा लिया। मंगोल नेता एक तटस्थ राजा की सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहता था। इसलिए वह जरूरी ही अफगानिस्तान लौट गया।

3.4 कुबाचा की पराजय तथा मृत्य :

मंगोल अफगानिस्तान से ही वाप लौट गये थे इसलिए मॉगबर्नी भी तीन वर्ष भारत में रहकर 1224 ई. में वापस लौट गया और उसके पंजाब में इतने समय तक ठहरने का मुख्य परिणाम यह हुआ कि कुबाचा की शक्ति नष्ट हो गयी। मगबर्नी के लौट जाने के बाद केवल मुल्तान और सिन्ध कुबाचा के हाथ में रह गये थे, अतः ख्वारिज्म की सेनाओं की गतिविधि के कारण कुबाचा की शक्ति पर जो प्रभाव पड़ा था उसका इल्तुतमिश पूरा लाभ उठाना चाहता था। इसलिए उसने उसके राज्य पर दो दिशाओं से आक्रमण करने की योजना बनायी। तदुपरान्त उसने 1228 ई. में दो सेनाएं भेजीं, एक लाहौर से मुल्तान पर और दूसरी दिल्ली से उच पर आक्रमण करने के लिए। कुबाच्या घबरा गया और निचले सिन्ध में स्थित भक्कर के किले में जाकर शरण ली। तीन महीने के घेरे के बाद उच का पतन हो गया। इल्तुतमिश ने उससे बिना शर्त के हथियार डालने को कहा, किन्तु इसके लिए वह तैयार नहीं हुआ। तब दिल्ली की सेनाओं ने भक्कर पर भयंकर प्रहार किया जिससे कुबाचा इतना आतंकित हुआ कि निराश होकर वह सिन्धु में कूद पड़ा और डूबकर मर गया। मुल्तान और उच को जीतकर दिल्ली राज्य में मिला लिया गया।

बंगाल में अलीमर्दान ने अपनी सत्ता स्थापित की थी, पर उसकी हत्या कर दी गई। 1211 ई. में हिसामुद्दीन एवज खलजी को उस पद पर बिठाया गया। वह एक स्वतंत्र शासक बन गया और उसने सुल्तान गयासुद्दीन का खिताब धारण किया। उसने बिहार में अपनी शक्ति का प्रसार किया और जाजनगर, तिरहुत, बंग और कामरूप के राज्यों से खिराज वसूल किया। जब 1225 ई. में इल्तुतमिश ने बंगाल की ओर कूच किया तो उसने दिल्ली की अधीनता स्वीकार कर ली और भारी हर्जाना दिया। किन्तु इल्तुतमिश के वापस लौटते ही उसने मालिक जानी को पराजित कर दिया जिसे इल्तुतमिश ने बंगाल का मुक्ता नियुक्त किया था। वह फिर एक स्वतंत्र शासक बन गया। इल्तुतमिश के पुत्र नासिरूद्दीन महमूद ने उसे पराजित किया और वह मारा गया। बाद में नासिरूद्दीन महमूद को लखनौती का मुक्ता नियुक्त किया गया। 1226 ई. में उसने सेना लेकर राजस्थान के मध्य में प्रवेश किया और रणथम्भौर को घेर लिया तथा उस पर अधिकार करके रक्षा के लिए अपने सैनिक नियुक्त कर दिये। तदुपरान्त उसने परमारों की राजधानी मन्दौर पर आक्रमण किया और उसे भी जीतकर अपनी सेना वहाँ रख दी। 1228–29 ई. में उसने जालौर का घेरा डाला। चौहान राजा उदयसिंह ने प्रबल प्रतिरोध किया, किन्तु अन्त में उसे हथियार डालने पड़े। उसने सुल्तान को वार्षिक कर देने का वचन दिया और इस शर्त पर जालौर का राज्य उसे लौटा दिया गया। इसके बाद बयाना और थंगीर पर अधिकार कर लिया गया। फिर अजमेर की बारी आयी। यहाँ भी इल्तुतमिश को प्रतिरोध ा का सामना करना पड़ा, किन्तु अन्त में अजमेर, साँभर तथा उसके निकटवर्ती जिलों पर उसका अधिकार हो गया। जोधपुर में स्थित नागौर जो गजनवी सुल्तान बहराम के समय से ही तुर्कों के हाथों में था, कुतुबुद्दीन की मृत्यु के उपरान्त स्वतन्त्र हो गया था। इल्तुतमिश ने उस पर पुनः अधिकार कर लिया। 1231 ई. में ग्वालियर का घेरा डाला गया। प्रतिहार राजा मलयवर्मन देव ने पूरे एक वर्ष तक वीरतापूर्वक युद्ध किया, किन्तु अन्त में उसे भी पराजय स्वीकार करनी पड़ी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.5 दोआब के विद्रोह का दमन :

दिल्ली में अपनी सत्ता सुदृढ करने के उपरान्त इल्तुतमिश ने दो आब के हिन्दू विद्रोही सरदारों के विरूद्ध सैनिक कार्यवाही प्रारंभ कर दी। एक–एक करके बदायूँ, कन्नोज तथा बनारस जीत लिये गये। कतेहर तथा उसकी राजधानी अहिछत्र पर भी सुल्तान का अधिकार हो गया। अवध में सुल्तान के पुत्र महमूद को स्थानीय जातियों के विरूद्ध कड़े संघर्ष का सामना करना पड़ा। अवध में लडाकू लोगों का नेता पिर्थू की मृत्यु के उपरांत ही पूर्णतः शान्ति स्थापित हो सकी।

18 फरवरी, 1229 को बगदाद के खलीफा के राजदूत दिल्ली आए और उन्होने इल्तुतमिश के सम्मान मे अभिषेक–पत्र प्रदान किया। यह मात्र एक औपचारिकता थी जिसके द्वारा खलीफा ने दिल्ली सल्तनत की स्वतंत्र स्थिति को मान्यता प्रदान की। इस वैधानिक स्वीकृति से इल्तुतमिश की प्रतिष्ठा अधिक ऊँची हो गई और उसकी एक दीर्घकालीन अभिलाषा भी पूरी हुई। अपनी योग्यता और क्षमता के आधार पर ही इल्तुतमिश दिल्ली के सुल्तान के पद पर पहुंचा था। मिनहाज उल–सिराज के अनुसार ''उसकी सुंदरता, बुद्धिमत्ता और कुलीनता का मुकाबला नहीं था।

1. इल्तुतमिश पहला तुर्क सुल्तान था जिसने शुद्ध अरबी सिक्के जारी किये, उसके चाँदी के टंका का वजन 175 ग्रेन था।

2. ऐबक का अधिकांश समय युद्धों में ही बीता था, उसने अल्प शासन–काल में वह प्रशासनिक व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दे सका। इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम प्रशासनिक व्यवस्थ की नींव डाली जिसको बलवान तथा अलाउद्दीन जैसे शासकों ने मजबूती प्रदान की। इस्तेदारी तथा वह लगानी का संगठन प्रशासनिक व्यवस्था की ही एक कड़ी थी। जिसके प्रारंभ का श्रेय इल्तुतमिश को प्राप्त है।

3. वह दिल्ली सल्तनत पर प्रथम सुल्तान था जिसने वंशानुगत उत्तराधिकार की परंपरा को स्थापित करने का प्रयास किया, और अपने जीवन काल में ही अपने पुत्रों के रहते अपनी पुत्री रजिया को उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

4. दिल्ली की प्रसिद्ध कुतुबमीनार को सुल्तान ने 1231–32 ई. में पूरा करवाया। इस मीनार का नाम दिल्ली के प्रथम तुर्की सुल्तान के नाम पर नहीं था जैसा कि कुछ लेखकों का विचार है बल्कि यह बगदाद के नजदीक 'ङश' नामक स्थान के सूफी संत ख्वाजा कुतबुद्दीन बख्तियार काकी के नाम पर है। सुल्तान की आज्ञा से दिल्ली में एक शानदार मस्जिद भी बनी। कुछ तात्कालिक अभिलेखों में उसे 'ईश्वर' की भूमि का संरक्षक'' ईश्वर के सेवकों का सहायक' आदि कहा गया है। निश्चित तौर पर इल्तुतमिश तुर्की साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था।

3.5 इल्तुतमिश की शासन व्यवस्था

इल्तुतमिश पहला मुस्लिम शासक था जिसने आंशिक रूप से ही, दिल्ली सल्तनत की शासन–व्यवस्था की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया। कुतुबुद्दीन अथवा आरामशाह ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया था, अतः इसमें अनेक बुराइयाँ आ गई थीं। शासन का स्वरूप प्रधानतः सैनिक था, अतः भारतीयों के बीच इसकी लोकप्रियता संदिग्ध थी। अभी भी परम्परागत हिन्दू व्यवस्था किसी–न–किसी रूप में बनी हुई थी। इसे इस्लामिक स्वरूप प्रदान करना अनिवार्य था। इसके अतिरिक्त अभी तक शासन–सम्बन्धी सुधार तथा मुद्रा–सुधार की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया था। प्रशासनिक संस्थानों का भी विकास नहीं हो पाया था और प्रशासकों में लोक कल्याण की भावना की नितान्त कमी थी। सुल्तान ने इस ओर भी ध्यान दिया। वस्तुतः इल्तुतमिश केवल एक विजेता ही नहीं वरन् एक योग्य शासक भी था। उसने अपने विजित साम्राज्य को सुव्यवस्थित बनाने के लिए अनेक कार्य किये और शासन–व्यवस्था में सुधार लाने का प्रयास किया।

चालीस गुलामों के दल (चरगान) का संगठन : सर्वप्रथम उसने विरोधी अमीरों की शक्ति को नष्ट कर चाली गुलामों के दल (चरगान) का संगठन किया जो प्रत्येक कार्य में सुल्तान के सहायक होते थे। ये वास्तव में शक्तिशाली अमीर थे। जो सुल्तान के प्रति निष्ठावान और उसका विश्वासपात्र थे। ये अत्यन्त योग्य थे अतः सुल्तान ने इन्हें न सिर्फ अपना प्रमुख सलाहकार बनाया बल्कि सेना और प्रशासन के महत्वपूर्ण पदों पर भी इन्हें प्रतिष्ठित किया। अतः ये स्वामी भक्ति के द्वारा हमेशा सुल्तान को प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे। इल्तुतमिश की सफलता में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

न्याय शासन की व्यवस्था : न्याय शासन–व्यवस्था के क्षेत्र में इल्तुतमिश की देन महत्वपूर्ण मानी जाती है। वह एक न्याय–प्रिय शासक था। जनता को समुचित न्याय प्राप्त हो सके इसके लिए उसने राजधानी के अतिरिक्त सुल्तान के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सभी बड़े शहरों में काजी और अमीर दाद नियुक्त किए। इनके फैसले के विरूद्ध लोग प्रधान काजी की अदालत में अपने मुकदमें पेश करते थे। अंतिम फैसला स्वयं सुल्तान करता था। इस प्रकार की न्याय–शासन में सुल्तान की सर्वोच्चता थी।

मुद्रा में सुधार : इल्तुतमिश पहला तुर्क शासक था जिसने शुद्ध अरबी सिक्के चलाए। इस सिक्के को 'टंक' कहा जाता था। इसका वजन 175 ग्रेन होता था। टंक चांदी और सोना दोनों के ही होते थे। इल्तुतमिश के मुद्रा–सुधार से कुछ खास लाभ सिद्ध हुए। सर्वप्रथम जनसाधारण को सुल्तान के स्थायित्व में अधिक विश्वास हो गया और दूसरा चूंकि टंक पर खलीफा का नाम भी अंकित रहता था अतः मुसलमानों की निष्ठा सुल्तान में अपेक्षाकृत अधिक हो गई। वैसे पहली बार मध यकाल में अरबी सिक्का का प्रयोग कर सुल्तान ने एक ऐतिहासिक कार्य भी सम्पन्न किया।

इल्तुतमिश के राज्य की शक्ति का आधार सेना और प्रशासन था। प्रशासक दो वर्ग के थे–तुर्क दास अधिकारी और ताजीक अर्थात कुलीन वंशों के गैर–तुर्क विदेशी मुसलमान। जहां तक इल्तुतमिश जीवित रहा उसने इन दोनों पर आवश्यक नियंत्रण रखा, किन्तु उसके उत्तराधिकारियों के शासन काल में दोनों वर्गों के बीच वैमनस्य काफी बढ़ गया। इन विरोधी तत्वों को एक प्रशासनिक प्रणाली में संगठित करके इल्तुतमिश ने अपनी महान् राजनीतिक प्रतिभा और चातुर्य का परिचय दिया। गोर और गजनी से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेदित करके उसने एक ऐसे राज्य की स्थापना की जो पूर्णरूपेण भारतीय था। खलीफा के द्वारा मान्यता प्राप्त किये जाने के बाद दिल्ली सल्तनत को वैधानिक आधार भी मिल गया।

इक्ता–प्रणाली की स्थापना : इल्तुतमिश द्वारा निर्मित शासन व्यवस्था में 'इक्ता–प्रणाली' बड़े ही महत्व की थी। इक्ता का शाब्दिक अर्थ होता है भू–भाग। परन्तु व्यावहारिक रूप से वह भूमि अथवा राजस्व या जो किसी व्यक्ति को शासक द्वारा प्रदान किया जाता था। राज्य के प्रति सेवा के पुरस्कार स्वरूप इक्ता का अस्तित्व इस्लाम के प्रारम्भिक काल से ही था। दिल्ली के सुल्तानों में इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम भारतीय सामंतशाही का नाश करने तथा साम्राज्य के सुदूरस्थ प्रदेशों को केन्द्र के साथ जोड़ने के उद्देश्य से इक्ता–प्रणाली का सहारा लिया। इससे यातायात और परिवहन सम्बन्धी कठिनाइयां सुलझायी गयीं। नवीन अधिकृत प्रदेशों में भूमिकर वसूल करने की व्यवस्था की गयी और साम्राज्य के समस्त प्रदेशों में शान्ति और व्यवस्था करना संभव हो सका। इसके अतिरिक्त अन्य स्थानीय समस्याओं तथा समकालीन मांगों की भी पूर्ति इसके द्वारा की गयी। इक्ताओं के अनुदान दो प्रकार के होते थे–छोटे तथा बड़े। छोटे इक्तादारों को सैनिक सेवाओं के बदले भूमि के कुछ भाग का केवल कर वसूलने का अधिकार होता था। परन्तु बड़ी इक्ताओं अथवा प्रान्तों के स्वामियों को प्रशासनिक दायित्व भी निभाना पड़ता थ। ऐसे इक्तादार अपने प्रान्त में शान्ति–सुव्यवस्था स्थापित रखते थे और आवश्यकता पड़ने पर केन्द्रीय सरकार की अपनी सेना से मदद पहुंचाते थे। परन्तु इस प्रणाली में स्वयं ऐसे तत्व थे जिनसे सामंती व्यवस्थाएं विकसित हो सकती थीं। इल्तुतमिश ने इसे यथासंभव रोककर रखा। इक्तेदारों की तबादला कर उसने इक्ता–प्रणाली की नौकरशाही विशेषता पर बल दिया।

सैन्य–संगठन : सैन्य संगठन की दिशा में इल्तुतमिश की उपलब्धियों की जानकारी हमें प्राप्त साधनों से नहीं मिलती है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि उसने ही सर्वप्रथम शाही सेना का संगठन किया। ऐसे सैनिकों की भर्ती, वेतन भुगतान तथा प्रशासन केन्द्रीय सरकार करती थी।

शिक्षा–साहित्य तथा विभिन्न कलाओं का संरक्षण : यद्यपि इल्तुतमिश का जीवन अधिकतर युद्धों में ही व्यतीत हुआ, फिर भी शिक्षा, साहित्य और विभिन्न कलाओं में उसने अपनी गहरी अभिरुचि का प्रदर्शन किया। सुल्तान स्वयं प्रकांड विद्वान नहीं था, पर वह विद्वानों के गुणों की सराहना करता था और उन्हें राज्याश्रय प्रदान करता था। उसके शासन काल से मध्य एशिया में अशांत वातावरण से क्षुब्ध होकर अनेक लेखक तथा विद्वान भागकर दिल्ली के दरबार में आ गये थे। सुल्तान ने उन्हें संरक्षण प्रदान किया था। इस प्रकार उसके शासन काल में दिल्ली का दरबार इस्लामी शिक्षा, साहित्य एवं ज्ञान–विज्ञान का महत्वपूर्ण केन्द्र हो गया।

इल्तुतमिश विभिन्न कलाओं में और विशेष रूप से स्थापत्य कला में गहरी अभिरूचि रखता था। यद्यपि कुतुबमीनार का निर्माण–कार्य का प्रारम्भ कुतुबुद्दीन ऐबक के द्वारा किया गया थ, किन्तु इसका समापन इल्तुतमिश के काल में हुआ। इसके अलावा सुल्तान ने अनेक मीनारों, मस्जिदों, मदरसे, खानकाह तथा तालाब भी बनवाए। दिल्ली का वास्तविक निर्माता वही था। उसने उसे वह सांस्कृतिक वातावरण प्रदान किया जिससे दिल्ली उस युग में इस्लामी सभ्यता संस्कृति का एक महान् केन्द्र बन गया। मिनहाज ने लिखा है, ''उसने दिल्ली में संसार के विभिन्न प्रदेशों से लोग एकत्रित किए। ... यह नगर इस पवित्र शासक द्वारा प्रदत्त बहुसंख्यक अनुदानों और असीम कृपाओं से संसार के विभिन्न भागों के ज्ञानियों, चरित्रवानों और विशेषज्ञों के लिए शरण का स्थान बन गया ... ।'' यह बात ध्यान देने योग्य है कि दिल्ली सल्तनत के साहित्य में दिल्ली को केवल

उसके नाम से ही स्मरण नहीं किया जाता था बल्कि या तो उसका 'हजराते दिल्ली' (प्रतिभाशाली दिल्ली) या 'नगर' नाम ही उल्लेख होता है।

इल्तुतमिश की धर्मिक नीति : इल्तुतमिश कट्टर सुन्नी था और उसने अपने युग के अन्य मुस्लिम शासकों की तरह अनुदार एवं संकीर्ण धार्मिक नीति का अनुसरण किया। वह नियमपूर्वक प्रतिदिन पांच बार नमाज पढ़ता तथा धार्मिक कृत्य किया करता था। एक कद्दर सुन्नी होने के नाते शिया सम्प्रदाय के प्रति भी वह अत्यन्त अनुदार बना रहा। उसकी इस नीति से चिढ़कर ही एक बार शियाओं ने उसकी हत्या का भी प्रयास किया। हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार अच्छा नहीं था। उसने हिन्दुओं के अनेक मंदिरों और मूर्तियों को नष्ट–भ्रष्ट किया था। उसके ऊपर मुल्ला, मौलवी तथ उलेमा वर्ग के लोगों का गहरा प्रभाव था। उसकी अनुदार धार्मिक नीति के परिणाम अच्छे नहीं हुए। शियाओं के विद्रोह की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। उसकी नीति से असंतुष्ट होकर हिन्दुओं ने भी अनेकों बार विद्रोह किये। इससे भी बुरी बात तो यह हुई कि शासन और राजनीति में उलेमा वर्ग का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया जिसके दुष्परिणाम बाद में सल्तनत के लिए विध्वंसकारी साबित हुए।

3.6 इल्तुतमिश की मृत्यु :

जब इल्तुतमिश बनियान पर आक्रमण करने के लिए जा रहा था, तभी मार्ग मे वह बीमार पड़ गया। उसने अपना कार्यक्रम स्थगित कर दिया और रूग्णावस्था में ही दिल्ली वापस लौट गया। हकीम लोग उसके रोग को अच्छा नहीं कर सके और अप्रैल 1236 में उसकी मृत्यु हों गयी।

3.7 इल्तुतमिश के उत्तराधिकारी : रूकनुद्दीन फीरोजशाह (1236 ई.)

इल्तुमिश के कई पुत्र थे, किन्तु सब अयोग्य थे। अतः उसने अपने मरने से पूर्व अपनी लड़की रजिया को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और इस सम्बन्ध मे अपने तुर्की अमीरों का सम्बन्ध में अपने तुर्की अमीरों का समर्थन भी प्राप्त कर लिया, परन्तु इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद मुस्लिम सरदारों ने एक स्त्री को अपनी शासिका बनाना उचित न समझकर इल्तुमिश के बड़े मुत्र रूकनुद्दीन फीरोजशाह को सिंहासन पर बैठा दिया।

रूकनुदीन एक अयोग्य एंव विलासी व्यक्ति था। उसने राजकीय कोष का अपार धन व्यर्थ में गंवा दिया। इतिहासकार मिनहाज लिखता है कि,'' वह (रूकनुद्दीन) भोग–विलास में डूब गया और अनुचित स्थानों पर राज्य के धन को नष्ट करने लगा।'' लेनपूल उसका चरित्र–चित्रण इस प्रकार करता है, "फिरोजशाह प्रथम सुन्दर, दयालु, उदार–हृदय, ऐय्याशी, मूर्ख नौजवान था, जो अपना धन गवैयों, मसखरों और बुरी आदतों में उड़ाता था। शराब के नशे में चूर होकर वह अपने हाथी पर झूमता हुआ प्रशंसकों की भीड़ पर चमचमाती सोने की मुहरें फैंकता हुआ चलता था।''

रूकनुद्दीन शासन प्रबन्ध के प्रति उदासीन था। अतः राज्य की सम्पूर्ण शक्ति उसकी माता शाह तूर्कान के हाथ में केन्द्रित हो गई। शाह तुर्कान बड़ी महत्वाकांक्षी और निर्दयी स्त्री थी। उसने अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने के लिए सैनिकों तथा उनके पुत्रों पर अत्याचार करने शुरू कर दिये। उसने कई अमीरों का वध करवा दिया और इल्तुतमिश के युवापुत्र कुतुबुद्दीन को अन्धा बनवाकर मरवा डाला। इससे सरदार सुल्तान के विरूद्ध हो गये। राज्य की सुरक्षा संकट में पड़ गई तथा राज्य में अराजकता फैल गई। परिणास्वरूप दिल्ली के तुर्क सरदारों ने शाह तुर्कान और रूकद्दीन को बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया और रजिया को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा दिया गया। इसके बाद नवम्बर, 1236 ई. में शाह तुर्कीन और रूकनुद्दीन को मौत के घाट उतार दिया गया। इस प्रकार कुछ ही महीनों में रूकनुद्दीन के शासन का अन्त हो गया।

3.8 इल्तुतमिश का चरित्र तथा मूल्यांकन :

इल्तुतमिश वीर किन्तु सावधान सैनिक था। उसमें सहस, बुद्धिमत्ता, संयम तथा दूरदर्शिता आदि महत्त्वपूर्ण गुण थे। वह योग्य तथा कुशल शासक भी था। जो व्यक्ति प्रारम्भ में गुलाम का गुलाम रह चुका था, उसके लिए दिल्ली की गद्दी प्राप्त कर लेना और उस पर 25 वर्ष तक शासन करना कोई साधारण बात नहीं थी। अपने स्वामी तथा पूर्वाधिकारी कुतुबुद्दीन की भाँति उसे एक विशाल साम्राज्य की नैतिक तथा भौतिक सहायता प्राप्त नहीं थी। उसकी सम्पूर्ण सफलताओं का श्रेय स्वयं उसी को था। उसने अपना जीवन अत्यन्त हीनावस्था से प्रारम्भ किया था परन्तु उसने कुतुबुद्दीन के अधूरे कार्य को पूरा किया और उत्तरी भारत में शक्तिशाली तुर्की–साम्राज्य की स्थापना की। उसने मुहम्मद गोरी द्वारा विजित प्रदेशों को पुनः जीता और राजपूताना तथा आधुनिक उत्तर प्रदेश के अधिकांश भाग को जीतकर अपने राज्य में सम्मिलित किया। मुल्तान और सिन्ध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कुतुबुद्दीन के हाथ से निकल चुके थे। इल्तुतमिश ने उन्हें पुनः जीतकर दिल्ली सल्तनत का अंग बनाया। उसने तुर्की सल्तनत की विजयों को नैतिक प्रतिष्ठा प्रदान की। उसने उसकी मंगोलों के आक्रमणों से उस समय रक्षा की जबकि मध्य एशिया के बड़े–बड़े राज्य उनके प्रहारों से चकनाचूर होकर धराशायी हो गये थे। इसके अतिरिक्त उसने अपने तुर्की प्रतिद्वन्द्वियों का दमन किया और उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उसने एक सैनिक राजतंत्र की नींव डाली जो आगे चलकर खलजियों के नेतृत्व में निरकुंशता का पराकाष्ठा को पहुँच गया। एवबी. एम हबीतुल्ला के अनुसार ''ऐबक ने दिल्ली सल्तनत की सीमाओं और उसकी संप्रभुता की रूपरेखा बनाई। इल्तुतमिश, निस्संदेह उसका पहला सुल्तान था।'' अपने अथक परिश्रम व सावधानी से उसने गोरी द्वारा अधिकृत प्रदेश की दुर्बलता को समाप्त करते हुए एक सुसंगठित सल्तनत का निर्माण किया। उसमें रचनात्मक योग्यता थी जिसके आधार पर छब्बीस वर्ष की निरन्तर राजनयिक और सैनिक गतिविधियों के बाद उसने दिल्ली की सल्तनत की रूपरेखा बनाई। के.ए. निजामी के शब्दों में ऐबक ने दिल्ली सल्तनत की रूपरेखा के बारे में सिर्फ दिमागी खाका बनाया था, इल्तुतमिश ने उसे एक व्यक्तित्व, एक पद, एक प्रेरणा–शक्ति, एक दिशा, एक शासनव्यवस्था और एक शासक वर्ग प्रदान किया।'' राज्यारोहण के समय उसे अस्त–व्यस्त राजनीतिक वातावरण और अनिश्चित परिस्थितियों के संकट से गुजरना पड़ा। उसके पथ–प्रदर्शन के लिए कोई परम्परा नहीं थी और उसने अपना मार्ग अपने आप चुना। अपने परिश्रम और दूरदर्शिता से वह अपने राज्य को संगठित कर सका। उसे मध्यकालीन भारत क एक श्रेष्ठ शासक माना जाता है। आर.पी. त्रिपाठी कहते हैं, ''भारतवर्ष में मुस्लिम प्रभुसत्ता क़ा वास्तविक श्रीगणेश उसी से होता है।''

3.9 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 किस अभियान के दौरान इल्तुनिश की मृत्यु हुई–

अ. बयाना ब. बनियान

स. गुजरात द. सिन्ध

उत्तर – ....

प्रश्न 2 इल्तुमिश की जीवनी बताइये। (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 इल्तुतमिश की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई 4
सुल्ताना रजिया

संरचना :

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 प्रारम्भिक जीवन
4.3 रजिया का उत्कर्ष
4.4 रजिया का राज्यारोहण
4.5 प्रारम्भिक कार्य : अमीरो के विद्रोह का दमन
4.6 नवीन नियुक्तियाँ
4.7 शासन की मुख्य घटनाएँ
    4.7.1 करमत तथा मुजाहिदो का विद्रोह
    4.7.2 रणथम्भौर का पतन
    4.7.3 ग्वालियर के दुर्ग रक्षक की समस्या
    4.7.4 सीमान्त समस्या
4.8 रजिया की नीति और उसके मर्दाने रवैये से असन्तोष
4.9 अमीरो का विद्रोह और रजिया का पतन
4.10 रजिया का मूल्यांकन
4.11 अभ्यास प्रश्नावली

4.0 उद्देश्य :

रजिया दिल्ली सल्तनत की प्रथम महिला सुल्ताना थी इस इकाई रजिया के महत्त्वपूर्ण कार्यों को विस्तारपूर्वक समझाया जायेगा तथा रजिया के पतन के कारणों को भी विवेचित किया जायेगा।

4.1 प्रस्तावना :

रजिया योग्य पिता की योग्य पुत्री थी। इतिहासकार मिनहाज के शब्दों में, ''वह एक महान् शासक, बुद्धिमती, न्यायप्रिय, उदार, विद्वानों की आश्रयदाता, प्रजा शुभ चिन्तक, सैनिक गुणसम्पन्न तथा उन सभी श्लाघनीय गुणों से पूर्ण थी। जो एक शासक के लिए आवश्यक है।'' भारत के मुस्लिम इतिहास में वह पहली स्त्री थी जो दिल्ली के सिंहासन पर बैठी और जिसने ''सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राजतंत्र के सिद्धांत'' को अपनाया। सुल्तान इल्तुतमिश ने प्रारम्भ से ही उसे राजकुमारों की भांति शिक्षा दी। जब इल्तुतमिश ग्वालियर पर अभियान के लिए दिल्ली से चला तो शासन की देखभाल का कार्य वह रजिया को सौंप गया था। जिसे उसने कुशलता के साथ पूरा किया। बाद में सुल्तान ने उसे अपना उत्तराधिकारी भी घोषित कर दिया। पर इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद तुर्क सरदारों और अमीरों ने एक औरत को अपना सरताज मन्जूर नहीं किया और रूकनुद्दीन फीरोज को सुलतान पद पर बैठा दिया। रूकनुद्दीन अयोग्य साबित हुआ, उसके विरूद्ध बगावत हुई और जब वह विद्रोह को दबाने के लिए दिल्ली से बाहर था, तभी दिल्ली में रजिया के भाग्य को सहारा दिया। शुक्रवार की नमाज के समय रजिया लाल वस्त्र धारण कर जनता के सामने उपस्थित हुई, उसने जनता को मृत सुलतान इल्तुतमिश की इच्छा की याद दिलाई, क्रूर शाह तुर्कान के विरूद्ध सहायता मांगी और सम्भवतः वह वायदा भी किया कि यदि वह शासक के रूप में अयोग्य सिद्ध हो तो उसका सिर काट दिया जाए। दिल्ली की जनता ने जोश में आकर उसका साथ दिया और उन सैनिक पदाधिकारियों ने भी, जो फीरोज को छोड़ चुके थे, रजिया का समर्थन किया इस प्रकार राजधानी में फीरोज के लौटने से पहले ही रजिया को सिंहासन पर बैठा दिया गया, शाह तुर्कान को कारागार में रख दिया गया और रूकनुद्दीन फीरोज को भी बन्दी बनाकर कारागार में रख दिया गया जहां कुछ समय बाद बन्दी के रूप में ही उसकी मृत्यु हो गई अथवा उसे कत्ल कर दिया गया।

4.2 प्रारम्भिक जीवन :

रजिया इल्तुतमिश की बड़ी लड़की थी। उसकी माता साम्राज्य की मुख्य मलिका थी। रजिया ने बचपन से अपने पिता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

को प्रभावित कियाथा। अतः इल्तुतमिश ने उसे अन्य राजकुमारों के समान ही शिक्षा–दीक्षा दी। विद्योपार्जन के अतिरिक्त रजिया को घोड़े की सवारी करना, तीसर–तलवार चलाना, भाले का उपयोग करना, युद्ध की कला, सैन्य संचालन आदि विभिन्न प्रकार के सैनिक प्रशिक्षण भी मिले। रजिया ने अपनी सैनिक तथा प्रशासनिक प्रतिभा का परिचय अनेक अवसरों पर अपने पिता को दिया था। रजिया के गुणों की प्रशंसाकरते हुए मिनहाज–उस–सिराज ने कहा "रजिया योग्य और अयोग्य दोनों थी, उसमें राज्योचित सभी गुण विद्यमान थे परन्तु वह पुरुष योनि में उत्पन्न नहीं हुई थी। इसलिए पुरुषों की दृष्टि में उसके ये गुण निरर्थक थे।" किन्तु इल्तुतमिश रजिया के गुणों से पूर्णतः परिचित था। जब उसके बड़े लड़के की मृत्यु हो गयी तो उसने अनुभव किया कि उसके अन्य पुत्र अयोग्य, दुर्बल और विलासी हैं। अतः वह रजिया की ओर आकृष्ट हुआ।

4.3 रजिया का उत्कर्ष :

इल्तुतमिश को अपने लड़कों की अपेक्षा रजिया की योग्यता पर अधिक विश्वास था। सुल्तान ने उके मुखमण्डल पर वीरता की चिह्न देखे। अतः 1231–32 ई. जब वह ग्वालियर विजय के लिए गया, उसने राजधानी की देख–भाल की जिम्वारी रजिया को सौंप दी थी। सुल्तान की अनुपस्थिति में रजिया ने पूरी दक्षता और योग्यता के साथ प्रशासनित कार्यों को सम्पन्न किया। सुल्तान को इससे अपार खुशी हुई। रजिया की वीरता, योग्यता, कार्य–पटुता, बुद्धिमानी और दुरदर्शिता से प्रभावित होकर इल्तुतमिश ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय कर लिया। उसने अपने इस निर्णय को अपने मंत्रियों तथा अमीरों के सामने भी रखा। उसने अपने मंत्री को आदेश दिया कि वह उसके पश्चात् रजिया का नाम ही दिल्ली के सिंहासन के लिए उत्तराधिकारी के रूप में लिख दें।

अनेक अमीरों ने सुल्तान के इस निर्णय के विरूद्ध आवाज उठायी। अनेक वयस्त राजकुमारों के होते हुए रजिया के अधिकारों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। इसके अतिरिक्त उनका स्वाभिमान भी इसके आड़े आया है। ये एक स्त्री की अधीनता को कैसे स्वीकार कर सकते थे। अतः उन्होंने इल्तुतमिश के विचारों का विरोध किया। सुल्तान ने विरोधी सरदारों से कहा "मेरे पुत्र जीवन में विलासमय आनन्द में मग्न रहते हैं। उनमें राज्य कार्य संभलने की योग्यता नहीं है। मेरी मृत्यु के बाद यह स्पष्ट हो जाएगा कि इनमें से कोई भी मेरी पुत्री के समान योग्य नहीं है।" अंत में इल्तुतमिश के प्रभाव और व्यक्तित्व के कारण अमीरों को सुल्तान के निर्णय को स्वीकार करना पड़ा। मिनहाज–उस–सिराज लिखता है, "बाद में सर्वसम्मति से यह स्वीकार कर लिया गया कि सुल्तान की निर्णय बुद्धिमत्तापूर्ण और समयानुकूल था।" सामान्यरूप से देखा जाये तो सुल्तान का यह निर्णय समयोचित एवं उत्तम था।" किन्तु इल्तुतमिश का यह स्वप्न तत्काल पूरा न हो सका। दरबार के अमीरों ने रजिया को गद्दी पर नहीं बैठने दिया। उसके स्थान पर उन्होंने रुकुनुद्दीन फिरोज शाह को सिंहासनरूढ़ किया। किन्तु जल्द ही फिरोज साम्राज्य में चारों ओर अराजकता फैल गई। इन परिस्थितियों का रजिया ने फायदा उठाया औश्र अमीरों को अपने पक्ष में कर लिया। 1236 ई. में फिरोज साम्राज्य में चारों ओर अराजकता फैल गई। इन परिस्थितियों का रजिया ने फायदा उठाया और अमीरों को अपने पक्ष में कर लिया। 1236 ई. में फिरोज की हत्या कर दी गई।

4.4 रजिया का राज्यारोहण :

रुकुनुद्दीन फिरोज शाह की हत्या के पश्चात् 6 नवम्बर, 1236 ई. को रजिया दिल्ली की गद्दी पर आरुढ़ हुई। रजिया का राज्योरोहण एक अपूर्व घटना कही जा सकती है। पूर्व मध्यकालीन भारत में मुस्लिम राज्यों में रजिया एक मात्र स्त्री थी जिसे सुल्तान बनने का गौरव प्राप्त हुआ था।

4.5 प्रारम्भिक कार्य : अमीरों के विद्रोह का दमन

रजिया को गद्दी पर बैठते ही प्रान्तीय सूबेदारों के विरोध का सामना करना पड़ा। बदायूं, मुल्तान, हांसी और लाहौर के सूबेदारों ने मिलकर भूतपूर्व शासक इल्तुतमिश के वजीर मुहम्मद जुनैदी के नेतृत्व में दिल्ली पर चढ़ाई कर दी, जिससे रजिया के लिए एक संकट उत्पन्न हो गया। रजिया के लिए सैनिक–शक्ति के बल पर इस गुट को छिन्न–भिन्न करना सर्वथा असम्भव था। अतः उसने कूटनीति और साहस का परियच देते हुए अपने विरोधियों में फूट डलवा दी। कहा जाता है कि रजिया गुप्त रूप से आक्रमणकारियों की सेना में पहुंच कर उनमें फूट डालने लगे कि वे आपस में ही लड़ने लगे। परिणाम स्वरूप उनकी शक्ति क्षीण हो गई। ऐसे समय में रजिया ने उन पर एकाएक आक्रमण कर दिया और दो एक को पकड़कर मौत के घाट उतार दिया। मुहम्मद जुनैदी जान बचाकर उत्तर की ओर सिरमौर की पहाड़ियों में भाग गया, जहां उसकी मृत्यु हो गई। इस विद्रोह का दमन करने के पश्चात् रजिया की शक्ति की धाक् जम गई और सबने उसे सुल्तान मान लिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.6 नवीन नियुक्तियां :

अमीरों के विद्रोह को कुचलने के बाद रजिया ने प्रशासनिक पदों पर नवीन नियुक्तियाँ करने का निश्चय किया। उसका मुख्य ध्येय शासन–व्यवस्था को तुर्क अधिकारियों के एकाधिकार से मुक्त करना तथा उनकी शक्ति को नियंत्रित करने की दृष्टि से गैर–तुर्कों को प्रशासन के महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करना था। तदनुसार ख्वाजा मुहाजबुद्दीन को वजीर, मलिक सेफूद्दीन ऐबक बहुत को सेना का अध्यक्ष, मलिक इज्जुद्दीन कबरी खाँ, ऐयाज को लाहौर का सूबेदार, इख्तयारूद्दीन याकूत को अमीर–ए–आखूर पद पर नियुक्त किया गया। कुछ दिनों बाद जब सेनाध्यक्ष की मृत्यु हो गई तो उसके स्थान पर मलिक कुतुबुद्दीन हसनगोरी को ''नायब –ए–लश्कर'' पद पर नियुक्त किया गया।

4.7 शासन की मुख्य घटनाएं :

4.7.1. करमत तथा मुजाहिदों का विद्रोह – सुल्तान बनने के कुछ महिनों बाद ही रजिया को करमत तथा मुजाहिदों के विद्रोह का सामना करना पड़ा। नूरूद्दीन नामक एक तुर्क के उकसाने पर गुजरात, सिन्ध, दिल्ली के पड़ौस और गंगा–यमुना दोआब में बसे इन सम्प्रदायों के अनुयायी भारी संख्या में दिल्ली के आसपास एकत्रित होने लगे। अपने नेता की प्रेरणा से उन लोगों ने दिल्ली सिंहासन को इस्लाम के कट्टरपंथियों से छीनने का निश्चय किया। शुक्रवार, तारीख 6 रजब, 634 हिजरी (मार्च, 1237 ई.) के दिन करमाती लोगों ने शास्त्रों से सज्जित होकर दो अलग दिशाओं से दिल्ली की जामा मस्जिद पर आक्रमण कर दिया। उनका विश्वास था कि सुल्ताना रजिया भी वहां होगी। करमातियों ने मस्जिद में उपस्थित मुसलमानों को मौत के घाट उतारना शुरू कर दिया जिससे भारी कोलाहल मच गया। रजिया ने तत्काल सेना की सहायता से विद्रोह को कुचल दिया। सैकड़ो करमातियों को मौत के घाट उतार दिया और बाकी बचे करमातियों को सख्त सजा दी गई। मिनहाज ने लिखा है कि ईश्वर की कृपा से उसे यश मिला। इससे रजिया की स्थिति और भी सुदृढ़ हो गई।

4.7.2. रणथम्भौर का पतन – इल्तुतमिश की मृत्यु और रूक्नुद्दीन की अकर्मण्यता से उत्पन्न अव्यवस्था का लाभ उठाकर चौहान राजपूतों ने रणथम्भौर के दुर्ग को घेर लिया। तुर्क सेना दुर्ग में घिर गई। सुल्ताना ने रणथम्भौर में फंसी तुर्क सेना की सहायता के लिए एक सेना भेज दी परन्तु इस सेना को यह सुझाव भी दिया गया कि यदि स्थिति बिगड़ जाय तो दुर्ग को खाली कर दिया जाये और सैनिकों को सुरक्षित लौटा लिया जाये। तदनुसार तुर्कों ने रणथम्भौर दुर्ग खाली कर दिया और चौहानों ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। रजिया की इस कार्यवाही से बहुत से तुर्क अमीर असन्तुष्ट हो गये।

4.7.3. ग्वालियर के दुर्ग रक्षक की समस्या – ग्वालियर का दुर्ग रक्षक जियाउद्दीन अली सल्तनत के भूतपूर्व वजीर जुनैदी का रिश्तेदार था। रजिया को जब यह जानकारी मिली कि वह अब भी सुल्ताना के विरूद्ध जोड़–तोड़ करने में लगा हुआ है तो उसने बरन के सूबेदार को उसके विरूद्ध अभियान करने का आदेश दिया। बरन के सूबेदार ने उसको बन्दी बनाकर दिल्ली भिजवा दिया परन्तु दिल्ली पहुँचने के पूर्व ही वह लापता हो गया। रजिया के विरोधी अमीरों को यह विश्वास हो गया कि सुल्ताना के संकेत पर उसकी हत्या कर दी गई है और सुल्ताना अपने विरोधियों को सफाया करने वाली है। इसी समय नरवर के शासक यजवपाल ने ग्वालियर पर आक्रमण कर दिया। दुर्ग रक्षक तुर्क सेना अधिक दिनों तक आक्रमण का सामना न कर सकी। रजिया ने सहायता भेजने के स्थान पर ग्वालियर दुर्ग को खाली करा दिया। इससे तुर्क अमीर और भी असन्तुष्ट हो गये और उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि सल्तनत छिन्न–भिन्न हो जायेगी।

4.7.4. सीमान्त समस्या – सल्तनत के पश्चिमी सीमान्त पर मंगोलों के निरन्तर आक्रमण शुरू हो गये थे। इस क्षेत्र पर अभी भी जलालुद्दीन मंगबरनी के प्रतिनिधि हसन करलुग का अधिकार था। मंगोलों के विरूद्ध उसने रजिया से सहायता की अपील की। इल्तुतमिश की नीति का पालन करते हुए रजिया ने सहायता देने से अस्वीकार कर दिया। परन्तु तुर्क अमीरों ने इसे सुल्ताना की सैनिक निर्बलता का प्रतीक माना।

4.8 रजिया की नीति और उसके मर्दाने रवैये से असन्तोष :

रजिया के कार्यों से कुछ समय तक तो शान्ति रही, लेकिन फिर विद्रोह के लक्षण उभरने लगे। वास्तव में जो कुछ शांति थी वह भी ऊँपरी ही थी, अन्यथा सरदारों और अमीरों का एक शक्तिशाली वर्ग रजिया के पराभव के लिए बेकरार था। रजिया बहुत ही साहसी और गुणवती स्त्री थी तथा अपने सिक्कों पर वह अपने लिए 'उमदत–उल–निर्स्वा' (स्त्रियों में उदाहरणीय) उपाधि का उपयोग करती थी, न्यायपरायण और विद्वानों को संरक्षण देने वाली शासिका थी और उसमें युद्धोचित गुण भी प्रभूत मात्रा में थे तथापि ''पुरुष न होने के कारण ये सब अद्भुत योग्यताएं उसके किसी काम की न थीं।'' रजिया ने जो नीति अपनाई और राजपद अथवा ताज की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए जो कार्य किए उनके फलस्वरूप उसके विरूद्ध अंसतोष बढ़ता गया। कुल मिलाकर विरोध और असन्तोष के कारण निम्नलिखित थे –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. रजिया ने सरदारों और अमीरों की मनमानी नहीं चलने दी, अतः वे उसे गद्दी से उतारने पर तुल गए।

2. रजिया ने यथा सम्भव तुर्कों के स्थान पर अन्य मुसलमानों को भी ऊँचे पद देना शुरू कया जो तुर्क सरदारों और अमीरों को अच्छा नहीं लगा। रजिया चाहती थी कि तुर्कों का अहंकार और एकाधिकार नष्ट हो जाए ताकि वह सुलताना के रूप में अपनी स्थिति आधिक दृढ़ कर सके। अतः जहां उसने नायब वजीर मुहज्जबुद्दीन को वजीर पद दिया और कबीर खाँ तथा सालारी की जागीरों में वृद्धि की वहां जमालुद्दीन याकूत नाम हब्शी को अश्वशाला का अध्यक्ष (अमीर आखूर) नियुक्त किया और मलिक हसन गोरी को अपना प्रधान सेनापति नियुक्त किया। रजिया की यह नीति तुर्क अमीरों को भड़काने वाली सिद्ध हुई।

3. रजिया का मर्दाना रवैया तुर्क सरदारों और अमीरों को नागवार लगा। उसने पर्दा करना छोड़ दिया और दरबार में बैठने लगी, उसने पुरुषों जैसे शिरोवस्त्र धारण किए। वह लोगों की फरियाद सुनने लगी और खुले दरबार में राजकार्य निरीक्षण करने लगी। सनातनी मुसलमानों को रजिया के इस रवैये से बड़ी अप्रसन्नता हुई। उनके लिए यह एक कलंकपूर्ण बात थी कि औरत होकर रजिया जनता के सामने घोड़े पर सवार हो, सैन्य–संचालन करे, युद्ध में भाग ले और हर तरह से स्वयं को 'पुरुष' सिद्ध करे।

4. रजिया का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह था कि वह एक स्त्री थी और जैसा कि एलफिस्टन ने लिखा है कि उसकी सम्पूर्ण योग्यताएं इस एकमात्र दोष (नारीत्व) से उसकी रक्षा न कर सकी। बूढ़े तुर्की योद्धा एक औरत के नेतृत्व में रहना और युद्ध लड़ना अपनी शान के खिलाफ समझते थे।

5. रजिया का हब्शी जमालुद्दीन याकूब पर विशष अनुराग था और एक अबीसीनियावासी हब्शी के प्रति सुलताना के प्रेमपूर्ण व्यवहार से स्वतन्त्र खान, जिन पर अब तक (चालीसिया के नाम से) विख्यात तुर्की मामूलकों की प्रधानता स्थापित हो चुकी थी, बहुत क्रुद हो उठे। 'तबकात–ए–अकबरी' के अनुसार जब रजिया सवार होती थी तो याकूत उसकी बाहों में हाथ डालकर उसे घोड़े पर बैठाता था। सत्य जो भी हो, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस इबीसीनियायी के प्रति भारी स्नेह दिखाकर रजिया ने अक्षम्य भूल की। ''रजिया ने उच्चवर्गीय महिला योग्य व्यवहार का अतिक्रमण किया और यह उल्लंघन उसके अविवाहित होने के कारण और भी निन्दनीय बन गया।'' तुर्की सरदारों को यह पसन्द नहीं आया कि एक सुलताना अपने दरबार के एक हब्शी सेवक के प्रति स्नेह प्रदर्शित करे।

4.9. राजनीतिक घटनाएं :

सुल्तान बनने के बाद रजिया ने कुछ राजनीतिक घटनाओं के प्रति जिस प्रकार की नीति अपनाई वह भी उसके पतन का एक कारण बन गई। रणथम्भौर और ग्वालियर के दुर्ग को खाली कराना उसकी सैनिक कमजोरी मानी गई। रणथम्भौर और ग्वालियर के दुर्ग को खाली कराना उसकी सैनिक कमजोरी मानी गई। मंगोलों के विरुद्ध सैफूद्दीन करलूग को सहायता न देना भी कमजोरी मानी गई। कबीर खाँ ऐयाज से लाहौर का सूबा छीन लेना और भूतपूर्व वजीर जुनैदी के रिश्तेदार ग्वालियर के दुर्गरक्षक का अचानक लापता हो जाना – ये सब घटनाएं ऐसी थी जिससे तुर्क सरदार यह सोचने लगे कि रजिया उन सभी को एक–एक करके समाप्त करने पर तुली है। अतः उन्होंने संगठित होकर रजिया को हटाने का फैसला किया ताकि उनके स्वार्थों की रक्षा की जा सके। उसके पतन का वास्तविक कारण यही था कि तुर्क अमीर शासन सत्ता अपने हाथ में लेना चाहते थे जबकि रजिया इसके लिए तैयार न थी।

4.10. अमीरों का विद्रोह और रजिया का पतन :

सुल्ताना बनने के तीन वर्ष बाद ही उसे अपने अमीरों के विद्रोह का सामना करना पड़ा। रजिया की नीतियों से यह स्पष्ट होने लगा था कि वह शासन सत्ता अपने हाथ में केन्द्रित रखने के लिए प्रयत्नशील है और प्रशासन के विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों पर गैर–तुर्क सरदारों को नियुक्त करके तुर्कों के विरूद्ध एक नया दल तैयार कर रही है। अतः तुर्क सरदारों ने अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए रजिया को पदच्युत करने के लिए ठोस षड़यन्त्र रचा। सर्वप्रथम, लाहौर के सूबेदार कबीर खाँ ऐयाज ने विद्रोह किया परन्तु रजिया ने उसके विद्रोह को कुचल दिया। उसने सुल्ताना से क्षमा मांग ली। रजिया ने उसको क्षमा तो कर दिया परन्तु लाहौर का सूबा उससे छीन लिया गया और केवल मुल्तान का सूबा उसके पास रहने दिया। इस घटना के थोड़े दिन बाद सैफूद्दीन ने मुल्तान पर आक्रमण करके ऐयाज को खदेड़ दिया। रजिया नेऐयाज की सहायता नहीं की। इससे भयभीत होकर तुर्क सरदारों ने संगठित होकर दुबारा षड़यन्त्र की योजना बनाई।

इस नई योजना के प्रमुख सदस्य थे – भटिण्डा का सूबेदार इख्तियारूद्दीन अल्तूनिया, लाहौर का सूबेदार कबीर खाँ ऐयाज और अमीर–ए–हाजिब ऐतिगीन। योजना के अनुसार रजिया को दिल्ली से बाहर ले जाकर समाप्त करना था क्योंकि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

षड़यन्त्रकारियों का विश्वास था दिल्ली की जनता सुल्ताना की समर्थक है और सुल्ताना भी काफी सतर्क थी। अतः अल्तूनिया को विद्रोह करने के लिए कहा गया। योजनानुसार अल्तूनिया ने विद्रोह कर दिया। रजिया विद्रोह का दमन करने के लिए दिल्ली से चल पड़ी। मार्ग में षड़यन्त्रकारियों ने उसके कृपापात्र अधिकारी याकूत की हत्या कर दी और भटिण्डा के निकट स्वयं सुल्ताना रजिया को भी बन्दी बना लिया गया और उसे अल्तूनिया की देखरेख में भटिण्डा दुर्ग में रखा गया। इसके तुरन्त बाद विद्रोही अमीरों ने इल्तुतमिश के तीसरे लड़के बहराम को सिंहासन पर बैठा दिया।

बहरामशाह सुल्तान तो बन गया परन्तु शासन–सत्ता पर विद्रोहियों के नेता ऐतिगीन ने कब्जा कर लिया। उसे ''नाइब–ए–मामलिकान'' जेसे महत्त्वपूर्ण पद पर नियुक्त किया गया। धीरे–धीरे उसकी महत्त्वाकांक्षाएं विकसित होने लगी। उसने सुल्तान की एक बहिन के साथ विवाह कर लिया और अपने महल पर हाथी तथा नौबत जैसे सारी सम्मान के चिह्नों का उपयोग करने लगा। उसकी निरंकुशता से तंग आकर बहरामशाह ने उसकी हत्या करवा दी। ऐतिगीन की मृत्यु से उसका साथी अल्तूनिया निराश हो गया क्योंकि अब उसे किसी महत्त्वपूर्ण पद मिलने की आशा नहीं रही। अतः उसने रजिया को रिहा करके उसके साथ विवाह कर लिया परन्तु मिनहाज के मतानुसार रजिया ने अल्तूनिया पर अपना माया जाल बिछाकर उससे विवाह कर हारी हुई बाजी को जीतने का प्रयास किया था। परिस्थिति जैसी भी रही हो, दोनों ने सेना सहित दिल्ली की तरफ कूच किया। मलिक इज्जुद्दीन सालारी और मलिक कराकश जैसे कुछ अमीर ने भी रजिया पर आक्रमण किया। युद्ध में रजिया और अल्तूनिया की हार हुई और वे दोनों भाग निकले। परन्तु कैथल के निकट कुछ हिन्दू लुटेरों ने उनकी हत्या कर दी। इस प्रकार सुल्ताना रजिया का दुःखद अन्त हुआ।

4.11. रजिया का मूल्यांकन :

रजिया एक योग्य तथा साहसी शासिका थी। उसने कूटनीति द्वारा अमीरों का दमन कर दिया था। **डॉ. श्री वास्तव** के अनुसार, ''इल्तुतमिश के वंश में रजिया प्रथम तथा अन्तिम सुल्ताना थी, जिसने अपनी योगयता और चारित्रिक बल से दिल्ली सल्तनत की राजनीति पर अधिकार रखा।'' मिनहाज–ए–सिराज के अनुसार, ''वह एक महान् साम्राज्ञी, प्रजान्यायी, प्रजा–उपकारी, राजनीति–विशारद, प्रजा–रक्षक और सेनानेत्री थी।'' दुर्भाग्यवश स्त्री होने के कारण वह मुस्लिम सरदारों का सहयोग न प्राप्त कर सकी। एलफिन्स्टन ने लिखा है, ''यदि रजिया स्त्री ने होती, तो आज उसका नाम भारत के महान् मुस्लिम शासकों में गिना जाता।'' उस समय के अमीर तथा सरदार भी रजिया सुल्ताना को अपने हाथ की कठपुतली बनाना चाहते थे। डॉ. श्रीवास्तव ने लिखा है ''किन्तु उसके पतन का मुख्य कारण तुर्क अमीर सैनिकों की बलवती महत्त्वाकांक्षा भी थी। चालीस गुलाम सुल्तान को अपने ही हाथों की कठपुतली बनाकर राज्य की शक्ति पर अपना अधिकार कायम रखना चाहते थे।'' प्रो. हबीब एवं निजामी ने लिखा है, ''इस तथ्य से कदापि इन्कार नहीं किया जा सकता कि इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों में वह योग्यतम थी।'' प्रसिद्ध इतिहासकार मिनहाज–ए–सिराज ने लिखा है, ''वह एक महान शासिका, बुद्धिमती, न्यायी, उदार, विद्वानों को आश्रय देने वाली, प्रजा की शुभचिन्तक, सैनिक गुणों से सम्पन्न तथा उन सभी प्रशंसनीय गुणों तथा योग्यताओं से परिपूर्ण थी, जो एक सफल शासक के लिए आवश्यक थे, किन्तु दुर्भाग्य से वह एक स्त्री थी।''

रजिया के पश्चात् 1265 ई. तक तीन शासकों ने शासन किया। प्रथम, मुईजुद्दीन बहरामशाह जिसने 1240 ई. से 1242 ई. तक शासन किया। दूसरा, अलाउद्दीन मसूदशाह (1242 ई. 1246 ई.) तथा तीसरा, नासिरूद्दीन महमूद जिसने 1246 ई. से 1266 ई. तक शासन किया। ये तीनों ही कमजोर शासक थे। उनके पश्चात् पुनः दिल्ली में एक शक्तिशाली शासक का आविर्भाव हुआ।

4.12 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 रजिया के शासनकाल में रजिया ने ''अमीर–ए–आखूर'' पद पर किसे नियुक्त किया–

अ. रज्जुद्दीन कबीर खां ब. ऐयाज खां

स. मलिक सेफूद्दीन द. इख्तियारूद्दीन याकूत

उत्तर – ....

प्रश्न 2 रजिया के शासनकाल की प्रमुख राजनैतिक घटनाओं का उल्लेख करिये। (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 रजिया दिल्ली सल्तनत की प्रमुख सुल्ताना थी। बताइये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई 5
बलबन

संरचना

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 प्रारम्भिक जीवन
5.3 बलबन का राज्यारोहण
5.4 बलबन प्रधानमन्त्री के रूप में
5.4.1 पश्मिोत्तर सीमा की सुरक्षा
5.4.2 दोआब और कटेहर
5.4.3 मेवात
5.4.4 राजपूताना
5.4.5 बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड और मालवा
5.4.6 बलबन द्वारा अन्य विद्रोहियों का दमन
5.5 बलबन शासक के रूप में
5.5.1 राज्याभिषेक
5.6 बलबन की कठिनाइया
5.6.1 रिक्त राजकोष
5.6.2 चालीस गुट का विरोधी रूख
5.6.3 मेवातियों, राजपूतों एवं भूमिपतियों की लूटमार
5.6.4 राजपूत शक्ति का पुनरूत्थान
5.6.5 मंगोलों के खतरे से राज्य की रक्षा
5.7 बलबन की सफलताए
5.7.1 बलबन का राजत्व सिद्धान्त
5.7.2 विद्रोहियों का दमन
5.7.3 मंगोल संकट और सीमान्त नीति
5.7.4 चालीस मण्डल का दमन
5.7.5 उलेमा वर्ग की उपेक्षा
5.7.6 सुदृढ़ केन्द्रीय शासन
5.7.7 हिन्दुओं के प्रति नीति
5.7.8 शक्तिशाली सेना
5.7.9 गुप्तचर व्यवस्था
5.7.10 न्याय व्यवस्था
5.8 बलबन की मृत्यु
5.9 बलबन का मूल्यांकन
5.10 अभ्यास प्रश्नावली

5.0 उद्देश्य :

इस इकाई में बनबन के महत्त्वपूर्ण कार्य – विद्रोहियों का दमन, राजत्व सिद्धान्त, मंगोल नीति, चालिस गुलाम दल का दमन आदि बिन्दुओं से पाठकों को अवगत करया जयेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.1 प्रस्तावना :

बलबन इलबकी कबीले का एक तुर्क था। युवावस्था में ही मंगोलों ने उसे अपना गुलाम बना लिया तथा बसरा के ख्वाजा जमालुद्दीन को बेच दिया। जमालुद्दीन ने उसे सुशिक्षित कर सुल्तान इल्तुतमिश के हाथों 1232 ई. में बेच दिया। सुल्तान इल्तुतमिश ने उसकी स्वामीभक्ति व योग्यता से प्रभावित होकर उसे 'चालीस अमीरों के दल' में सम्मिलित कर दिया तथा 'खास–दरबार' के पद पर नियुक्त किया। सुल्ताना रजिया के शासनकाल में उसे 'अमीर–ए–शिकार' का पद मिला। रजिया के पतन के समय वह बहराम से मिल गया तथा रेवाड़ी की जागीर प्राप्त करके वहां अति उत्तम शासन–प्रबन्ध की स्थापना की। इसी समय उसने मुगलों के आक्रमण का भी सामना किया। 1246 ई. में इल्तुतमिश के छोटे पुत्र नासिरुद्दीन ने सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् बलबन से कहा, "मैंने शासनतन्त्र तुम्हारे हाथों में सौंप दिया है। कोई ऐसा कार्य करना जिससे मुझे और तुम्हें खुदा के सम्मुख लज्जित होना पड़े।" 1249 ई. में बलबन का अमीरों का प्रधान बना दिया गया तथा उसे 'उलुगखां' की उपाधि से अलंकृत किया गया। धीरे–धीरे बलबन की शक्ति बढ़ती गयी। सुल्तान नासिरुद्दीन जो बलबन का दामाद भी था, के पुत्र न होने के कारण 1265 ई. में नासिरुदीन की मृत्यु होने पर बलबन दिल्ली का सुल्तान बन गया। अमीर उसका विरोध न कर सके क्योंकि नासिरुदीन के 20 वर्ष के शासनकाल में साम्राज्य की वास्तविक सत्ता बलबन के हाथों में ही रही थी।

5.2 प्रारम्भिक जीवन :

गुलाम वंश के शासकों में बलबन सर्वाधिक प्रसिद्ध समझा जाता है। बलबन का वास्तविक नाम बहाउद्दीन था। इल्तुतमिश ने अपने नये गुलाम बहाउद्दीन को प्रारम्भ में अपने भिश्तियों में नौकर रख लिया। किन्तु उसकी प्रतिभा और योग्यता को देखते हुए जल्द ही उसे अपने प्रसिद्ध 'चालीस गुलामों के गुट' (चरगान) में शामिल कर लिया। रजिया के शासनकाल में बलबन ने ने काफी उन्नति की और सम्मान प्राप्त किया। रजिया ने उसे 'अमीर ए शिकार' का पद प्रदान किया। किन्तु बलबन एक अत्यन्त महत्वाकांक्षी और अवसरवादी व्यक्ति था। जब उसने देखा कि रजिया की लोकप्रियता घट रही है तो वह रजिया के विरोधी गुट में शामिल हो गया। बहराम ने बलबन की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे उच्च शासकीय पद देकर 'अमीर–ए–आखूर' के पद पर प्रतिष्ठित किया तथा उसे रेवाड़ी और हाँसी की जागीर भी दी। मसूदशाह के शासनकाल में बलबन को 'अमीर–ए–हाजिब' के पद पर प्रतिष्ठित किया गया। नासिरुद्दीन के शासन काल में बलबन की काफी उन्नति हुई। नासिरुद्दीन ने बलबन के सहयोग से खुश होकर पुरस्कार स्वरूप उसे 'उलुग खाँ' का खिताब प्रदान किया और उसने बलबन को न सिर्फ अपना प्रमुख परामर्शदाता वरन् 'नायब–ए–मुमलिकात' के पद पर भी आसीन किया। इस प्रकार नासिरुद्दीन के शासन काल में बलबन की शक्ति और प्रतिष्ठा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी। इतिहासकार मिन्हाज–उल–सिराज लिखता है कि,ख "उलुग खाँ सुल्तान के वंश का आश्रयदाता, सेना का स्तम्भ तथा राजा की शक्ति था।" नासिरुद्दीन का प्रधानमंत्री बनकर बलबन ने बीस वर्ष तक शासन के समस्त सूत्र अपने हाथ में कर लिया। ऐसा कहा जाता है कि सिंहासन पर बैठते ही नासिरुद्दीन महमूद ने शासन का सब कार्य उसी को सौंप दिया।

5.3. बलबन का राज्यारोहण :

1265 ई. में नासिरुद्दीन रोगग्रस्त हुआ और 1266 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी। इस समय इल्तुतमिश के वंश को कोई उत्ताराधिकारी जीवित नहीं था, अतः सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् अमीरों के समर्थन से बलबन, गयासुद्दीन बलबन के नाम से दिल्ली की गद्दी पर आरुढ़ हुआ। थॉमस के अनुसार बलबन का शाही तख्त पर बैठना मुस्लिम भारत के राजनीतिक इतिहास में नवयुग के आगमन का सूचक था। लेनपूल ने कहा कि बलबन ने विद्रोहियों और षड्यंत्रों के युग में बीस वर्षों तक सुल्तान की अकथनीय सेवा की थी और, अब स्वयं भारत का सुल्तान था। सुल्तान के रूप में बलबन ने बीस वर्ष तक शासन किया। इस प्रकार उसने सल्तनत को चालीस वर्षों तक संभाले रखा। इस अवधि में बलबन को अपनी प्रशासकीय प्रतिभा एवं सैनिक योग्यता को प्रदर्शित करने का पूरा अवसर मिला और उसने मध्यकालीन भारतीय इतिहास में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया।

5.4 बलबन प्रधानमंत्री के रूप में :

नासिरूद्दीन महमूद ने 1246 ई. से 1266 ई. तक राज्य किया और इस सम्पूर्ण अवधि में केवल 1253 ई. से फरवरी, 1254 ई. तक के समय को छोड़कर बलबन ने ही प्रधानमंत्री के रूप में शासन का कार्य चलाया। प्रधानमंत्री की हैसियत से बलबन ने निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कार्य किए –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.4.1. पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा – इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद पश्चिमोत्तर सीमा की स्थिति उत्तरोत्तर बिगड़ती गई। लाहौर, मुल्तान और उच्छ पर दिल्ली के सुल्तान का स्थायी अधिकार नहीं रह सका। बलबन ने पश्चिमोत्तर सीमा को सुरक्षित करने के लिए शक्तिशाली सैनिक अभियान किए। 1246 ई. में उसने खोखरों पर आक्रमण करके उनके विद्रोह का दमन किया। साथ ही अन्य लूटमार करने वाली जातियों को भी दबाया। फिर उसने सिन्धु नदी के तट पर प्रयाण करके आसपास के इलाके को नष्ट–भ्रष्ट कर डाला और तब वापस दिल्ली लौट आया। बलबन ने लाहौर, मुल्तान और कच्छ पर फिर अधिकार जमा लिया।

5.4.2. दोआब और कटेहर – बलबन ने 1247 ई. में दोआब के उपद्रवी हिन्दू राजाओं के विरूद्ध सफल अभियान किया और लम्बे युद्ध के बाद कन्नौज के विख्यात दुर्ग सलसन्दा पर अधिकार कर लिया। दो वर्ष बाद ही 1250 ई. में दोआब में फिर विद्रोह हुआ और बलबन ने पुनः विद्रोहियों का दमन किया।

5.4.3. मेवात – मेवात में जादों भट्टी, जिन्हें मुस्लिम इतिहासकारों ने मेवाती कहा है, सल्तनत के लिए सिरदर्द बन गए। मेवातियों ने छापामार–नीति अपनाते हुए हाँसी, रेवाड़ी, और राजधानी दिल्ली पर धावे किए। बलबन ने 1249 ई. में मेवात पर हमला करके भारी विनाश किया, लेकिन कुछ ही समय बाद मेवाती फिर उठ खड़े हुए। जब वे दिल्ली तक लूटमार करने लगे तो 1206 ई. में बलबन ने भयानक आक्रमण किया। जिन जंगलों में मेवाती छिप जाते थे उन्हें कटवा दिया गया। भारी संख्या में मेवातियों का संहार हुआ और प्रमुख नेता बन्दी बना लिए गए जिनमें मलका का नाम उल्लेखनीय है।

5.4.4. राजपूताना – राजपूताने में शक्तिशाली चौहानों और उनके सामन्तों ने दिल्ली पर धावे मार कर सल्तनत की प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचाया। राजपूताना क्षेत्र में अलाउद्दीन खिलजी से पूर्व के सुल्तानों को कोई विशेष सफलता नहीं मिली। 1258 ई. में रणथम्भौर पर आक्रमण किए और बूंदी तथा चित्तौड़ तक धावा मारा, परन्तु इनका कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा और राजपूत पूर्ववत् स्वतन्त्र बने रहे।

5.4.5. बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड और मालवा – चन्देलों की शक्ति बुन्देलखण्ड में फिर से बहुत बढ़ गई थी। बलबन ने 1248 ई. में बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया पर सफलता इतनी ही मिली कि चन्देल राजा का उत्तर की ओर बढ़ाव रूक गया। मालवा क्षेत्र में राजा चाहरदेव ने ग्वालियर को जीत लिया। बलबन ने 1250–51 ई. में ग्वालियर पर हमला किया, किन्तु चाहरदेव की स्वतन्त्रता को कुचला नहीं जा सका। वैसे मिनहाज के अनुसार बलबन ने ग्वालियर, चन्देरी, मालवा और वरवर पर अभियान करके इन सब पर अधिकार कर लिया और बेशुमार धन लूटा।

5.4.6. बलबन द्वारा अन्य विद्रोहियों का दमन – मार्च, 1253 ई. में बलबन के विरूद्ध एक षड्यन्त्र सफल हुआ और सुल्तान नासिरूद्दीन ने उसे पदच्युत कर दिया। षड्यन्त्रकारियों के नेता इमादुद्दीन प्रधानमंत्री की तरह कार्य करने लगा, उसे राजधानी में 'वकील–ए–दर' के पद पर प्रतिष्ठित किया गया। सुल्तान नासिरूद्दीन ने फरवरी, 1254 ई. में बलबन को पुनः नायब (प्रधानमंत्री) बना दिया। अब उसने विभिन्न विद्रोहों का बलपूर्वक दमन शुरू कर दिया। बलबन चाहता था कि पिछले षड्यंत्रकारियों को दिल्ली से दूर कर दिया जाए ताकि वे पुनः षड्यन्त्र न कर सकें। इसलिए रिहान को बदायूँ से बहाराइच, कुतलुग खाँ को अवध भेज दिया गया। किशलू खाँ के असन्तोष का मुख्य कारण उसे मुल्तान और उच्छ से हटाया जाना था, अतः बलबन ने अब उसे वहां का शासक नियुक्त कर दिया। रिहान ने विद्रोह किया किन्तु उसके विरूद्ध सेना भेज दी गई। वह परास्त हुआ, बन्दी बना लिया गया और 1256 ई. में उसका बहराइच में ही वध कर दिया गया। कुतलुग खाँ ने भी विद्रोह करके अवध पर कब्जा कर लिया और कड़ा–मानिकपुर पर धावा बोला। वह पराजित हुआ और सिरमोर की पहाड़ियों में राजा रणपाल की शरण में चला गया। बलबन ने रणपाल के राजा को रौंद डाला लेकिन शरणागत को हवाले नहीं किया। इसके बाद ही सुल्तान और उच्छ के शासक किशलू खाँ की सेना से जा मिला। इन दोनों अमीरों की सेना दिल्ली की ओर बढ़ चली। किशलू खाँ की सेना से जा मिला। इन दोनों अमीरों की सेना दिल्ली की ओर बढ़ चली। किशलू खाँ ने मंगोलों से सहायता मांगकर मुल्तान और उच्छ पर अधिकार बनाए रखा, लेकिन कुछ वर्ष बाद बलबन ने मुल्तान पर कब्जा कर लिया और इस बार किशलू खाँ मंगोलों की सहायता लेने में सफल नहीं हुआ।

इस प्रकार अपने प्रधानमन्त्रित्वकाल में बलबन ने सभी संकटों से राज्य की रक्षा की। विद्रोही और उपद्रवी तत्त्वों को शक्ति से दबाते हुए सीमान्त प्रदेशों में भी पर्याप्त सेना रखी। उसने सेना को अच्छे ढंग से सुशिक्षित और प्रशिक्षित किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.5. बलबन शासक के रूप में :

5.5.1. राज्यभिषेक — नासिरूद्दीन ने अपनी मृत्यु से पूर्व बलबन को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था, क्योंकि वह संतानहीन था। इब्नबतूता एवं इसामी के अनुसार नासिरूद्दीन को बलबन ने मार दिया था। फरिश्ता के अनुसार , "बलबन ने इल्तुतमिश के वंश के दूर–पास के सभी संबंधियों को समाप्त करवा दिया।" आधुनिक इतिहासकार इसे असत्य मानते हैं। कुछ भी हो, बलबन 1266 ई. में 'गयासुद्दीन' की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठा।

5.6. बलबन की कठिनाईयां :

बलबन को राजगद्दी तो आसानी से मिल गई, परन्तु उसे सुरक्षित रखना बड़ा कठिन था। देश में चारों ओर विद्रोह का वातावरण फैला हुआ था और ताज की प्रतिष्ठा काफी गिर चुकी थी। यद्यपि सुल्तान नासिरूद्दीन के काल में 20 वर्षों तक वास्तविक शक्ति उसके हाथों में निहित थी, फिर भी वह प्रत्येक काम मनमाने रूप से नहीं कर पाया था। सुल्तान का कुछ–न–कुछ अंकुश बना रहा। इसलिए बलबन स्वतन्त्र शासक की भांति कार्य न कर सका था। यही कारण था कि सुल्तान बनते ही उसे अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसकी कठिनाइयां निम्नलिखित थीं–

5.6.1. रिक्त राजकोष — सल्तनत की आर्थिक स्थिति खराब थी। इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद बार–बार होने वाले विद्रोहों तथा उपद्रवों के कारण राजकोष का एक बड़ा भाग सेना पर व्यय हो रहा था। मंगोलों के हमले से भी सुरक्षा व्यवस्था पर काफी धन व्यय होता जा रहा था। वहीं प्रान्तीय हाजियों ने स्वेच्छा से वार्षिक राजस्व भेजना बन्द कर दिया था। इल्तुतमिश के अधिकांश उत्तराधिकारियों ने भोग–विलास पर काफी धन व्यय कर दिया था। बरनी ने लिखा है, "राजकोष खाली हो गया था, शाही दरबार में धन तथा घोड़ों का अभाव हो गया।" इस प्रकार बलबन की पहली गम्भीर समस्या थी – रिक्त राजकोष को भरना।

5.6.2. चालीस गुट का विरोधी रूख — बलबन की दूसरी समस्या शाही गुट की शक्ति का अन्त करना था, क्योंकि वह गुट विघटनकारी शक्तियों का नेतृत्व करने लगा था। इस दल ने दिल्ली की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद यह राजाओं को बनाता और बिगाड़ता रहा था। बलबन स्वयं भी इस दल का सदस्य और नेता रह चुका था, अतः वह दल की शक्ति और महत्त्वाकांक्षा से परिचित था। इसलिए बलबन जब नायब के पद पर नियुक्त था, तो उसने दल के अनेक सदस्यों का सफाया कर दिया था और कुछ स्वाभाविक रूप से ईश्वर को प्यारे हो गये थे, परन्तु कई सदस्य अभी जीवित थे ओर वे किसी भी समय सिंहासन पर अधिकार जमाने का षड्यंत्र रच सकते थे।

5.6.3. मेवातियों, राजपूतों एवं भूमिपतियों की लूटमार — दोआब के विद्रोहियों एवं मेवातियों के कारण चारों तरफ आतंक फैल चुका था। परिणामस्वरूप शाम होते ही प्रायः दिल्ली के दरवाजे बन्दकर दिए जाते थे। इतिहाराकार बरनी ने लिखा है – "दोपहर की नमाज से पहले भी वे (मेव) उन पानी भरने वालों और दासियों को लूटते थे, जो तालाब से पानी लेने जाती थीं। वे उनके कपड़े उतारकर ले जाते थे और उनको नग्न छोड़ देते थे।" डॉ. अवधबिहारी पाण्डेय के शब्दों में, "साम्राज्य केन्द्रीय भाग में स्थिति राजपूत सरदार एवं भूमिपति सुल्तान के कर्मचारियों को सताने और उसे खजाने अथवा रसद के सामान को लूटने से ही सन्तुष्ट नहीं होते थे, वरन् उनमें से कुछ इतने साहसी एवं बलवान हो गये थे कि वे दिनदिहाड़े राजधानी में घुसकर लूटमार करते और मुस्लिम स्त्रियों के न केवल आभूषण, वरन् वस्त्र भी उतरवाकर सुल्तान की शक्ति और प्रतिष्ठा को बराबर चुनौती देते रहते थे। मुस्लिम इतिहासकारों ने उनको डाकुओं अथवा लुटेरों की संज्ञा दी है, परन्तु मालूम होता है कि वे राजपूत प्रत्याक्रमण और प्रतिशोध के अग्रगामी दस्ते थे, इनका शीघ्र–से–शीघ्र दमन न कर सकने पर साम्राजय की सुरक्षा भीषण संकट में पड़ सकती थी।

5.6.4. राजपूत शक्ति का पुनरूत्थान — राजपूताना, बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड आदि में राजपूतों की बढ़ती हुई शक्ति तुर्कों के लिए गम्भीर चुनौती थी। सल्तनत की रक्षा के लिए राजपूत शासकों की शक्ति को नष्ट करना बलबन के लिए जरूरी हो गया था।

5.6.5. मंगोलों के खतरे से राज्य की रक्षा — मंगोलों के निरन्तर आक्रमणों से पश्चिमोत्तर सीमा को सुरक्षित बनाना जरूरी था। मंगोल हमलावर सिन्धु तथा पश्चिमी पंजाब में अपना प्रभाव जमा चुके थे और दिल्ली सल्तनत पर उनकी आंखे लगी हुई थीं। इतना ही नहीं, सल्तनत के कई अधिकारियों और प्रान्तीय अधिकारियों से मंगोलों की सांठगांठ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

थी। अतः बलबन को सबसे बड़ा भय इन्हीं विदेशी आक्रमणकारियों से था। इस प्रकार बलबन चारों ओर से विकट परिस्थितियों तथा संकटों से घिरा हुआ था, लेकिन उसने 'रक्त व लहू' की नीति के आधार पर अपनी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की। सम्भवतः इसी कारण वह रचनात्मक कार्यों की ओर अधिक ध्यान दे सकता।

5.7. बलबन की सफलताएं :

5.7.1. बलबन का राजस्व सिद्धान्त – बलबन के शासक बनते समय जनता में सुल्तान का कोई प्रभाव तथा भय नहीं था। बरनी के अनुसार, "सरकार का भय, जो सुशासन का आधार और राज्य के यश तथा वैभव का स्रोत है, लोगों के हृदय से जाता रहा था और देश में अव्यवस्था का बोलबाल था।" तुर्क सरदार वास्तविक शासक बन गए थे। अतः उसने सुल्तान पद की पुनः प्रतिष्ठा के लिए निम्न कदम उठाए –

1. राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त पर बल दिया।
2. शाही वंशज होने का दावा किया।
3. राजदरबार को भव्य तथा अनुशासित बनाया।
4. अपने निजी जीवन को उच्च एवं स्वच्छ बनाया।
5. तुर्क सरदारों का दमन किया।
6. रक्त और लौह की नीति अपनाई।
7. सेना का पुनर्गठन व गुप्तचर विभाग को संगठित किया।
8. निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था की।
9. उच्च वंशीय लोगों को ही उच्च पदों पर नियुक्त किया।
10. राजनीति को धर्म से पृथक् रखा।

दैवी अधिकार का समर्थन : बलबन ने राजा को ईश्वर का प्रतिनिध तथा पूजनीय बताया तथा उसके आदेश को ईश्वर का आदेश बताया। उसने 'जिल्ले अल्लाह' (ईश्वर की छाया) की उपाधि धारण की।

शाही वंशज : बलबन ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए स्वयं को ईरान के शाही वंश आफ्रेसियाव वंशज का बताया।

व्यक्तिगत जीवन में परिवर्तन : बलबन ने अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन को उच्च बनाया। उसने शराब पीना तथा रंगरेलियां मनाना बन्द कर दिया। वह सदा गम्भीर रहता था तथा जनता और अमीरों से नहीं मिलता था। वह कीमती वस्त्रों में जनता के सामने जाता था। वह अपना अवकाश का समय शिकार खेलने अथवा सूफियों की संगति में व्यतीत करता था।

निम्नकुल से घृणा : बलबन निम्नकुल के लोगों से घृणा करता था। अतः उसने उच्च पदों पर सिर्फ उच्च कुल के लोगों को ही नियुक्त किया।

भव्य तथा अनुशासित दरबार : बलबन ने जनता में सम्मान तथा भय की भावना उत्पन्न करने के लिए दरबार को भव्य तथा अनुशासित बनाया। दरबारियों की वेशभूषा निश्चित कर दी गई। दरबार में सिजदा और पाबोस प्रथा को प्रारम्भ कर दिया। दरबारी दरबार मे आते एवं जाते समय उसे झुककर सलाम करते थे एवं पांव चूमते थे। दरबार में हंसी–मजाक पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सिर्फ महामंत्री सुल्तान से सीधी बातचीत कर सकता था। बलबन के दरबार में कड़ा अनुशासन था।

5.7.2. विद्रोहियों का दमन – ग्यासुद्दीन बलबन ने देश में फैली अव्यवस्था को दूर करने के लिए राज्य विरोधी तत्त्वों का दमन करने का पूर्ण प्रयत्न किया। इस कार्य में वह अपने जीवन के अन्तिम समय तक दृढ़ता से जुटा रहा।

1. दिल्ली तथा दोआब के डाकुओं का दमन : बलबन के सिंहासनारूढ़ होते समय दोआब के प्रदेश में डाकुओं की भरमार थी। उनकी लूटमार–हत्या आदि के कारण दिल्ली से बंगाल जाने वाला मार्ग पूर्णतया असुरक्षित हो गया था। दोआब के मेवाती विशेषत इतने उद्दण्ड हो गए थे कि दिल्ली के आस–पास के क्षेत्रों में दिन–दहाड़े लूटमार तथा उपद्रव मचाने लगे। इन डाकुओं के भय से राजधानी के पश्चिमी द्वार को दोपहर ढलते ही बन्द कर दिया जाता था।

बलबन ने शासक बनते ही इन उपद्रवी डाकुओं का दमन करने का निश्चय किया। उसने दिल्ली के आस–पास के जंगलों को साफ करवा दिया, जहां वे डाकू विशेषकर मेवाती छिपे रहते थे। फिर उन पर आक्रमण करके उन्हें गहरे आघात

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पहुंचाये। इतना ही नहीं, उसने राजधानी के चारों ओर सैनिक चौकियां स्थापित कर दीं और उनमें साहसी अफगानों को नियुक्त किया गया, उन्होंने भी हजारों मेवातियों को मौत के घाट उतार दिया।

राजधानी को सुरक्षित करने के बाद बलबन ने दोआब के लुटेरों की तरफ ध्यान किया। कम्पिल, पटियाली, भोजपुर, जलाली आदि लुटेरों के प्रमुख केन्द्र बने हुए थे। बलबन ने इन केन्द्रों पर विनाशकारी हमले किये। तुर्कों ने हजारों डाकुओं को मौत के घाट उतार दिया और सैंकड़ों ने भागकर जान बचाई। इसके बाद सुल्तान ने उस स्थान पर दुर्गों का निर्माण करवाया और उनमें शाही सैनिक को रखने की व्यवस्था की। उसने यहां भी जंगलों को साफ करवाया और सड़के बनवाई। बलबन की इन सैनिक कार्यवाहियों के फलस्वरूप दोआब में अराजकता का अन्त हो गया और दिल्ली से बंगाल जाने वाला मार्ग डाकुओं से मुक्त हो गया।

2. कटेहर के हिन्दू विद्रोहियों का दमन : दोआब की सैनिक कार्यवाहियां समाप्त होने से पूर्व ही कटेहर (रूहेलखण्ड) के हिन्दुओं ने विद्रोह कर दिया। बदायूं तथा अमरोहा के मुसलमान शासकों ने उन्हें कुचलने का प्रयत्न किया, परन्तु वे असफल रहे। इस पर बलबन ने एक विशाल सेना लेकर विद्रोहियों पर इतने विनाशकारी हमले किये कि खून की नदियां बहने लगीं। विद्रोहियों को हाथी के पांवों के नीचे कुचलवा दिया गया और लगभग 100 व्यक्तियों की जिन्दा खाल खींचकर उनमें भूसा भरवा दिया गया और उन्हें दिल्ली के दरवाजे पर लटका दिया गया। बरनी ने लिखा है कि – ''सुल्तान बलबन ने कटेहर को जलाने तथा नष्ट करने के आदेश दिये। बलबन ने आदेश दिया कि किसी को क्षमा न किया जाए। वह कुछ समय तक कटेहर रहा तथा आमहत्या किये जाने का आदेश देता रहा। विद्रोहियों के खून की नदियां बह गयी तथा प्रत्येक गांव व जंगल के समीप लाशों का ढेर देखा जा सकता था।'' बलबन ने इस प्रदेशों के जंगलों को साफ करवा दिया, सड़कें बनवाई, सैनिक चौकियां स्थापित कीं। इस प्रकार, उसने यहां पर शांति व्यवस्था स्थापित की।

3. बंगाल में तुगरिल खां के विद्रोह का दमन : बलबन ने विश्वसनीय गुलाम तुगरिल खां को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया था। 1279 ई. में उसने अनुकूल परिस्थितियां देखकर अपने आपको स्वतंत्र शासक घोषित किया और ग्यासुद्दीन की उपाधि धारण की। सुल्तान ने उसका दमन करने के लिए अवध के सूबेदार अमीर खां के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजी, किन्तु अमीर खां पराजित होकर लौट आया। इस पराजय से सुल्तान बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने अमीर खां को फांसी पर लटकवा दिया।

इसके बाद बलबन ने दूसरी सेना विद्रोह को दबाने के लिए भेजी, किन्तु वह भी पराजित होकर लौटी। अन्त में विवश होकर स्वयं बलबन ने एक विशाल सेना सहित बंगाल की ओर कूच किया। तुगरिल खां राजधानी लखनौती छोड़कर भाग गया, परन्तु शाही सैनिकों ने उसे खोज निकाला और उसका सिर काटकर सुल्तान के सम्मुख पेश किया। बलबन ने तुगरिल के सम्बन्धियों को निर्दयतापूर्वक लखनौती के बाजार में मौत के घाट उतार दिया। इतिहासकार बरनी ने लिखा है कि बलबन ने लखनौती के मुख्य बाजार में दोनों ओर दो मील लम्बी सड़क पर सूलियां गड़वा दी और उन पर तुगरिल के साथियों एवं समर्थकों को ठोका गया। अनेक लोग इस वीभत्स दृश्य को देखकर मूर्छित हो गये। दो–तीन दिन तक इस प्रकार का क्रूर दण्ड देने के पश्चात् बलबन ने अपने लड़के बुगरा खां को बंगाल का शासक नियुक्त किया, परन्तु यह चेतावनी भी दे दी कि, ''यदि आपने कभी विद्रोह का मार्ग अपनाया, तो आपकी भी तुगरिल की भांति दुर्दशा की जायेगी।'' इसके बाद बलबन दिल्ली लौट गया।

5.7.3. मंगोल संकट और सीमान्त नीति – इल्तुतमिश के समय से ही भारत पर मंगोलों के आक्रमण होते आ रहे थे और बलबन के समय उनके आक्रमणों का खतरा अधिक बढ़ गया था। मंगोल आक्रमणों से अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए बलबन ने कुछ निशचित कदम उठाये जो इस प्रकार थे –

1. जिन मार्गों से मंगोल आक्रमणकारी आते थे, उन पर नये दुर्ग बनवाये तथा शक्तिशाली सैनिक चौकियां कायम की गई। भटिण्डा, सिरसा, अबोहर, भटेर आदि दुर्गों का निर्माण इसीलिए करवाया गया।
2. सीमान्त सुरक्षा का दायित्व योग्य एवं विश्वस्त व्यक्तियों को सौंपा गया। प्रारम्भ में उसने अपने चचेरे भाई शेर खां को यह दायित्व सौंपा। उसकी शूरवीरता से मंगोलों में आतंक पैदा हो गया था। 1270 ई. में उसने यह दायित्व अपने दोनों पुत्रों मुहम्मद खाँ तथा बुगरा खां को सौंपा।
3. सीमा प्रान्त के पुराने दुर्गों की मरम्मत करवा कर वहां भी योग्य सैनिकों को रखा गया।
4. मंगोलों के अचानक आक्रमण का सामना करने की दृष्टि से बलबन ने साम्राज्य विस्तार की नीति को त्याग दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बलबन के इन प्रयत्नों के फलस्वरूप कुछ वर्षों तक तो सीमान्त क्षेत्र में शान्ति बनी रही परन्तु 1279 ई. में मंगोलों ने पुनः आक्रमण शुरू कर दिये। इस बार वे इतनी बुरी तरह से परास्त हुए कि आगामी पांच वर्ष तक आक्रमण करने का साहस नहीं किया। 1285 ई. में तैमूर खां के नेतृत्व में मंगोलों ने पुनः आक्रमण किया। युवराज मुहम्मद ने उन्हें परास्त करके खदेड़ दिया परन्तु वह स्वयं भी मारा गया। इससे बलवन को गहरा सदमा पहुंचा फिर भी उसने सीमान्त की सुरक्षा में कमी नहीं आने दी और मृत युवराज के पुत्र खुसरों को उसे पिता के स्थान पर नियुक्त किया गया।

5.7.4. चालीस मण्डल का दमन – इल्तुतमिश ने प्रशासनिक क्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से 40 गुलामों को संगठित करक`'चालीस मण्डल' को बनाया था। ये अत्यन्त राजभक्त थे तथा तन–मन से सुल्तान व राज्य की सेवा करते थे। इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात् इनकी महत्त्वाकांक्षाएं, बढ़ने लगीं तथा इल्तमिश के निर्बल उत्तराधिकारियों के समय में ये अत्यन्त शक्तिशाली हो गये। सुल्तानों को बनाने व हटाने में भी वे भूमिका निभाने लगे। ये सदस्य अत्यन्त स्वार्थी तथा अभिमानी हो गये थे तथा राजा को कठपुतली समझते थे। अतः बलबन इनका विनाश करने का निश्चय किया। बलबन ने इनका दमन करने व उन्हें प्रजा की दृष्टि में गिराने के लिए साधारण अपराधों के लिए भी कठोर दण्ड दिये। कुछ का कूटनीति के द्वारा तथा शेष को विष देकर सफाया कराया गया। इस प्रकार बलबन ने कठोर एवं बर्बर तरीके से 'चालीस मण्डल' का दमन किया।

5.7.5. उलेमा वर्ग की उपेक्षा – तुर्की राज–संस्था धर्म–प्रधान थी, जिसमें उलेमा का विशेष स्थान था। उलेमा का दिल्ली की राजनीति पर गहरा प्रभाव था, किन्तु उलेमाओं के अनेक सदस्य भ्रष्ट हो चुके थे तथा राजनीति को कलुषित कर रहे थे। बलबन ने ऐसे चरित्रभ्रष्ट धर्म–नेताओं को राजनीति से पृथक कर दिया। बलबन उलेमा का सम्मान करता था तथा उनसे परामर्श लेता था, परन्तु केवल धार्मिक मामलों में। राजनीति में उलेमा के हस्तक्षेप करने के अधिकार को छिन लिया था।

5.7.6. सुदृढ़ केन्द्रीय शासन – केन्द्रीय शासन को सुदृढ़ बनाना बलबन आवश्यक समझता था क्योंकि तब ही प्रान्तीय राज्यों पर भी अंकुश लगाया जा सकता था। यद्यपि बलबन केन्द्रीय शासन के विभिन्न विभागों के विषय में निश्चित जानकारी नहीं प्राप्त होती, किन्तु पहले के समान आरिज–ए–मुमालिक, दीवान–ए–इंशा, दीवान–ए–रसालत व वजीर के पद थे, नीति के निर्धारण का कार्य बलबन स्वयं ही करता था। बलबन ने इस बात का विशेष ध्यान रखा कि किसी निम्नवंशीय व अयोग्य व्यक्ति को उच्च पद पर नियुक्त न किया जाये।

प्रान्तीय शासन की ओर बलबन विशेष ध्यान न दे सका। इसी कारण उसे अपने शासनकाल में अनेक बार प्रान्तीय शासकों के विद्रोह का सामना करना पड़ा। अतः बलबन ने प्रान्तीय सूबेदारों को कुछ वर्षों बाद एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में स्थानान्तरिक करने की नीति अपनायी, ताकि कोई भी प्रान्तीय शासक इतना शक्तिशाली न हो सके जो उसके विरुद्ध विद्रोह कर सके।

5.7.7. हिन्दुओं के प्रति नीति – यद्यपि बलबन ने उलेमा को राजनीति से अलग कर दिया था, किन्तु इससे हिन्दू जनता की स्थिति पर कोई विशेष फर्क नहीं पड़ा। हिन्दुओं की स्थिति सल्तनतकाल में कभी भी अच्छी नहीं रही थी। हिन्दुओं की स्थिति बलबन के शासनकाल में भी अच्छी नहीं थी। बलबन के हिन्दुओं के प्रति विचारों पर प्रकाश डालते हुए बरनी ने लिखा है, ''बलबन ब्राह्मणों का बड़ा शत्रु था और उनको समूल नष्ट करना चाहता था, क्योंकि वह उन्हें कुफ्र की जड़ समझता था।''

5.7.8. शक्तिशाली सेना – बलबन अत्यन्त योग्य शासक था। वह इस तथ्य से परिचित था कि उसके साम्राज्य की सुरक्षा एवं विस्तार तभी सम्भव था जबकि उसके अधीन अत्यधिक शक्तिशाली सेना हो। अतः उसने शक्तिशाली सैन्य–संगठन की ओर विशेष ध्यान दिया। सेना का सर्वोच्च अधिकारी इमाद–उल–मुल्क को बनाया गया। नवीन प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों को तैयार करवाया गया तथा सेना में भर्ती के कठोर नियम बनाये गये। इसके अतिरिक्त उसने पुराने दुर्गों की मरम्मत करवाई तथा अनेक नवीन दुर्गों का निर्माण करवाया, ताकि दुश्मनों का कुशलतापूर्वक सामना किया जा सके। ऐसे दुर्गों में कम्पिल, पटियाली, आदि के दुर्ग थे। दुर्गों की सुरक्षा के लिए चुने हुए योग्य सैनिक नियुक्त किये गये तथा दुर्गों में पर्याप्त मात्रा में रसद का भी इन्तजाम किया गया।

उसने सेना में योग्य सैनिकों को भर्ती किया तथा पदोन्नति योग्यता के आधार पर की जाने लगी। उसने सैन्य अधिकारियों तथा सैनिकों का वेतन बढ़ा दिया। उसने इमादुलमुल्क को अपना युद्ध मंत्री बनाया, जो योग्य, अनुभवी, निष्ठावान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तथा ईमानदार था। उसने सेना को अनुशासित बनाया तथा सैनिकों को उत्साही बनाया। बलबन सैनिक टुकड़ियों को चुस्त रखने के लिए उन्हें शिकार पर प्रायः अपने साथ ले जाता था। इस बात का ध्यान रखा जाता था कि सेना के कूच से असहायों तथा वृद्धों को नुकसान न हो। बलबन ने अपने सैन्य संगठन द्वारा विद्रोहों का दमन किया तथा अपने राज्य की बाह्य आक्रमणों से रक्षा की।

इसके अतिरिक्त बलबन ने एक अन्य प्रमुख कार्य भी किया। कुतुबुद्दीन व इल्तुतमिश ने अपने शासनकालों के दौरान अनेक योद्धाओं को जागीरें दी थीं ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता प्राप्त की जाती थी। बलबन ने इस प्रथा को बन्द कर दिया तथा ऐसे जागीरदारों से जागीरें छीन लीं। इस नीति का उद्देश्य जागरी प्रथा के स्थान पर नकद वेतन देकर सैनिकों की भर्ती करना तथा सेना की शक्ति में वृद्धि करना था।

5.7.9. गुप्तचर व्यवस्था – विशाल साम्राज्य पर निरंकुशतापूर्वक शासन करने के लिए सक्षम गुप्तचर व्यवस्था का होना अत्यन्त आवश्यक है। अतः बलबन ने कुशल गुप्तचर व्यवस्था की स्थापना की। गुप्तचर व्यवस्था को कुशल बनाने में बलबन ने अपार धन खर्च किया। सरकारी गुप्तचर देश के विभिन्न भागों में नियुक्त थे तथा वहां होने वाली प्रमुख घटनाओं की सूचना सुल्तान को भेजते थे। गुप्तचरों को आकर्षक वेतन दिया जाता था तथा उन्हें अन्य पदाधिकारियों एवं सेनानायकों के आधिपत्य से मुक्त रखा जाता था। किसी गुप्तचर द्वारा ठीक काम न किये जाने पर उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने बलबन की गुप्तचर व्यवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है, ''इस व्यवस्था से अपराध कम हुए तथा अधिकार प्राप्त लोगों के अत्याचारों से निर्दोष व्यक्तियों की रक्षा हुई।'' बलबन के समय में गुप्तचरों को 'वारिद' कहा जाता था। डॉ. एल. श्रीवास्तव ने भी बलबन के गुप्तचर विभाग के विषय में लिखा है, बलबन की शासन–व्यवस्था सुचारू रूप से चल सकी, इसका मुख्य श्रेय उसके गुप्तचर विभाग को था। इस प्रकार सुसंगठित गुप्तचर व्यवस्था बलबन के निरंकुश शासन का आधार बन गयी।''

5.7.10. न्याय व्यवस्था – बलबन अत्यन्त न्यायप्रिय शासक था। इसीलिए उसने निष्पक्ष न्याय–व्यवस्था की स्थापना की। न्याय करते समय वह अमीर–गरीब, रिश्ते–नाते, आदि ध्यान नहीं रखता था। अपराध करने पर वह बड़े–से–बड़े अधिकारी को दण्डित करता था। उसका शासन शक्ति एवं न्याय के सद्‌गुणों पर आधारित था। बदायूं का मलिक एक शक्तिशाली अमीर था, किन्तु जब उसने अपने एक गुलाम को कोड़ों से पिटवाकर मरवा डाला तो बलबन ने उसके साथ भी वैसा ही व्यवहार करवाया। बरनी ने उसकी न्याय–प्रणाली की प्रशंसा करते हुए लिखा है, ''न्याय के सम्बन्ध में वह बहुत कठोर था। इसमें वह अपने सम्बन्धियों, सहयोगियों तथा नौकरों तक के साथ कोई पक्षपात नहीं कर सकता था। यदि इनमें से कोई किसी के प्रति अन्याय या अपराध करता तो वह सताये हुए व्यक्ति को सन्तुष्ट करने का प्रयास करता था। कोई भी व्यक्ति अपने दास–दासियों आदि पर आवश्यकता पर जरूरत से ज्यादा कठोर व्यवहार का साहस कर सकता था।''

5.8. बलबन की मृत्यु :

1285 ई. में बलबन का ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद मंगोलों से युद्ध करता हुआ मारा गया। मुहम्मद की मृत्यु से बलबन को बहुत दुःख हुआ। विशेषतः इसलिए कि वह योग्य राजकुमार था और बलबन ने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। उसकी अकाल मृत्यु ने बलबन को मृतप्रायः बना दिया। बरनी लिखता है ''बलबन रात्रि के समय फूट–फूटकर रोया करता था।'' इस प्रकार बलबन अपने पुत्र वियोग को सहन नहीं कर सका और 80 वर्ष की आयु में 1287 ई. में वह भी परलोक सिधार गया।

5.9. बलबन का मूल्यांकन :

बलबन मध्ययुगीन भारत का दैदीप्यमान नक्षत्र था। बलबन के सिंहासन पर बैठते समय साम्राज्य अस्त–व्यस्त था। बलबन ने साहस से काम लेते हुए जनता में सुल्तान के प्रति आदर तथा भय पैदा किया, विद्रोह का दमन किया, साम्राज्य को विघटित होने से बचाया तथा कुशल शासन–प्रबन्ध स्थापित किया। उसने इल्तुमिश द्वारा स्थापित साम्राज्य को नष्ट होने से बचाया। वह निश्चय ही एक महान् शासक था। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, ''गयासुद्दीन बलबन, जिसने अपनी वीरता तथा दूरदर्शिता से मुल्लिम राज्य को विपत्तिकाल में नष्ट होने से बचाया, मध्ययुगीन भारतीय इतिहास में सदैव एक महान् व्यक्ति रहेगा।'' डॉ. ईश्वरीप्रसाद उसे अलाउद्दीन का अग्रगामी मानते हैं। प्रो. हबीबुल्ला के अनुसार, ''बलबन ने बड़ी सीमा तक खिलजी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राज्य व्यवस्था की पृष्ठभूमि निर्माण किया।'' इतिहासकार बरनी ने बलबनकी मृत्यु के बारे में लिखा है, ''बलबन की मृत्यु से दु:खी हुए मलिकों (अमीरों) ने अपने वस्त्र फाड़ डाले और सुल्तान के शव को नंगे पैरों दारूल अमन के कब्रिस्तान को ले जाते हुए उन्होंने अपने सिरों पर धूल फेंकी। उन्होंने चालीस दिन तक उसकी मृत्यु का शोक मनाया और नंगी भूमि पर सोए।'' इससे स्पष्ट होता है कि बलबन अपनी कठोरता के बावजूद अपने सरदारों में बहुत प्रिय था।

बलबन एक योग्य शासक था। वह शासक के रूप में जितना कठोर था, व्यक्तिगत जीवन में उतना ही दयालु भी। उसे अपने पुत्रों से बहुत प्रेम था। उसके दिल में गरीबों के प्रति विशेष दया थी। वह कट्टर मुसलमान था। वह प्रतिदिन नमाज पढ़ता था। वह शासन–संचालन में इस्लाम के नियमों का पालन करता था। वह उच्चजीवन व्यतीत करता था तथा सूफियों की संगति में काफी समय बिताता था। उसने खलीफा का नाम अपने सिक्कों पर अंकित करवाया। वह साहित्य का संरक्षक था। अमीर खुसरों, हसन निजामी आदि विद्वान उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे।

बलबन कुशल सेनानायक भी था। उसने अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों में विद्रोहों का दमन किया तथा चालीस तुर्की दल का सफाया कर दिया। डॉ. निजामी उसे सफल सेनापति नहीं मानते, क्योंकि उसने साम्राज्य–विस्तार नहीं किया और वह राजपूतों की बढ़ती हुई शक्ति को नहीं कुचल सका। वह कुशल शासक–प्रबन्ध भी था। उसने कुशल सीमान्त नीति अपनाई तथा सेना का पुनर्गठन किया। उसने निष्पक्ष न्याय–व्यवस्था स्थापित की तथा साम्राज्य में सुव्यवस्था की स्थापना की। डॉ. सरन लिखते हैं, ''बलबन में रचनात्मक प्रतिभा का अभाव था, किन्तु वास्तविकता यह थी वह षड्यंत्रों, विद्रोहों तथा बाहरी आक्रमणों में इतना व्यस्त रहा कि उसे रचनात्मक कार्य का समय ही नहीं मिला।''

5.10 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 चालीस गुलाम दल का दमन किसने किया?

अ. बलबन ब. इल्तुतमिश

स. रजिया द. कुतुबुद्दीन ऐबक

उत्तर – ....

प्रश्न बलबन के राजत्व सिद्धान्त पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर – ....

प्रश्न 3 ''बलबन गुलाम वंश का सबसे योग्यतम सुल्तान था'' बताइये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई 6
अलाउद्दीन खिलजी

संरचना

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 प्रारम्भिक जीवन
6.3 अल्लाउद्दीन खिलजी की प्रारम्भिक समस्याएँ
    6.3.1 दिल्ली पर अधिकार
    6.3.2 विद्रोहियों का दमन
    6.3.3 अमीरों को दण्ड
6.4 अल्लाउद्दीन खिलजी तथा मंगोल
6.5 अल्लाउद्दीन खिलजी का राज्य विस्तार
    6.5.1 उत्तरी भारत की विजये
    6.5.2 दक्षिण भारत की विजये
6.6 अल्लाउद्दीन खिलजी का राजत्त्व सिद्धान्त
6.7 अल्लाउद्दीन खिलजी द्वारा प्रशासन में सुधार
6.8 हिन्दुओं के प्रति नीति
6.9 अल्लाउद्दीन खिलजी का राजस्व सुधार
6.10 अल्लाउद्दीन खिलजी के आर्थिक सुधार या बाजार नियन्त्रण प्रणाली
    6.10.1 सुधारों का उद्देश्य
    6.10.2 सुधारों की विशेषताएँ
    6.10.3 वस्तुओं की प्राप्ति का उचित प्रबन्ध
    6.10.4 मण्डियों की स्थापना और उन पर सरकारी नियन्त्रण
    6.10.5 राशन प्रणाली
    6.10.6 कठोर दण्ड
    6.10.7 आर्थिक सुधार का मूल्यांकन
6.11 अल्लाउद्दीन खिलजी की मृत्यु
6.12 अल्लाउद्दीन खिलजी का मूल्यांकन
6.13 अभ्यास प्रश्नावली

6.0 उद्देश्य :

इस इकाई में निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से अल्लाउद्दीन खिलजी के कार्यों को विस्तारपूर्वक समझाया जायेगा –

–अल्लाउद्दीन खिलजी और मंगोल नीति

–अल्लाउद्दीन खिलजी का साम्राज्य विस्तार

–अल्लाउद्दीन खिलजी का राजस्व व राजत्व सिद्धान्त

–बाजार नियन्त्रण प्रणाली

6.1. प्रस्तावना :

1290 ई. में गुलाम–वंशीय अन्तिम शासक कैकुबाद की उसके ही एक अमीर जलालुद्दीन खिलजी ने हत्या कर दी तथा दिल्ली सल्तनत पर अधिकारी कर लिया। इस प्रकार 1206 ई. से 1290 ई. तक चलने वाले गुलाम–शासन की समाप्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हुई व दिल्ली में खिलजी–वंश के शासन की स्थापना हुई। जलालुद्दीन खिलजी इस वंश के शासन का संस्थापक था। उक्त खिलजी कौन थे ? इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि खिलजी अफगानी थे तथा 'खल्ज' नामक ग्राम के निवासी थे। इन इतिहासकारों का मानना है कि बलबन के समय में अमीरों के दो दल थे। एक दल तुर्की अमीरों का तथा दूसरा खिलजी मलिकों का था। तुर्की अमीर खिलजी अमीरों को पसन्द नहीं करते थे क्योकि वे खिलजियों को अफगान समझते थे। खिलजियों का चरित्र, वेश–भूषा तथा रहन–सहन भी तुर्कों से अलग था। इसके विपरित, तूल्जले हेग तथा डॉ. के.ए.लाल, आदि अनेक विद्वान खिलजियों को तुर्क ही मानते हैं। इनविद्वानों का मानना है कि खिलजी मूलतः तुर्क थे, किन्तु लम्बे समय तक अफगानिस्तान में रहने के कारण उन्होंने अफगानिस्तान के रहन–सहनव रीति–रिवाजों को अपना लिया था। इसीलिए दिल्ली के तुर्क इन्हें अलग समझते हुए नापसन्द करते थे।

6.2. प्रारम्भिक जीवन :

अलाउद्दीन खिलजी सुल्तान जलालुद्दीन का भतीजा था। अलाउद्दीन खिलजी का जन्म 1266 ई. में हुआ था। अलाउद्दीन शिक्षित न था, किन्तु सैनिक गुण से वह परिपूर्ण था। सुल्तान जलालुद्दीन ने अपनी पुत्री का विवाह भी अलाउद्दीन से किया था। 1290 ई. में अलाउद्दीन के शासक बनने के पश्चात् अलाउद्दीन को 'अमीर–ए–तुजक' पद प्राप्त हो गया। बाद में कड़ा–मानिकपुर के सूबेदार मलिक छज्जू द्वारा विद्रोह किये जाने पर सुल्तान ने अलाउद्दीन को कड़ा–मनिकपुर का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

अलाउद्दीन अत्यन्त पराक्रमी एवं महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। अतः कड़ा–मानिकपुर का सूबेदार बनने पश्चात् उसने अपनी शक्ति को बढ़ाने का प्रयास किया, किन्तु इसके लिए धन की आवश्यकता थी। अतः अलाउद्दीन ने 1292 ई. में मालवा पर आक्रमण किया तथा भिलसा के दुर्ग को जीतकर अपार धन–सम्पत्ति प्राप्त की। सुल्तान जलालुद्दीन को प्रसन्न करने के लिए उसने भिलसा की लूटी हुई सम्पत्ति का कुछ भाग सुल्तान की सेवा में भेंट कर दिया। भिलसा पर विजय से अलाउद्दीन की महत्त्वाकांक्षाएं और बढ़ गयी तथा वह सुल्तान बनने का स्वप्न देखने लगा, किन्तु इस स्वप्न को पूरा करने के लिए उसे अभी और अधिक धन चाहए था, अतः उसने सुल्तान की आज्ञा लिए बिना ही, 1294 ई. में देवगिरि पर आक्रमण किया। देवगिरि के राजा रामचन्द्र देव ने साहसपूर्वक अलाउद्दीन का सामना किया, किन्तु अलाउद्दीन ने सन्धि करने के लिए अन्ततः उसे विवश होना पड़ा। देवगिरि पर विजय से अलाउद्दीन को अपार धन–सम्पत्ति प्राप्त हुई। इस विजय की एक उल्लेखनीय बात यह थी कि दक्षिण भारत में यह प्रथम तुर्क आक्रमण था। डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव ने लिखा है, "इस आक्रमण की सफल्ता ने सिद्ध कर दिया कि अलाउद्दीन एक उच्चकोटि का प्रतिभाशाली सैनिक ही नहीं था, अपितु उसमें अद्‌भुत साहस, संगठन–शक्ति तथा साधन सम्पन्नता भी थी।"

इस विजय से अलाउद्दीन की महत्त्वाकांक्षाएं और प्रबल हो गयीं तथा वह शीघ्रातिशीघ्र सुल्तान बनने का प्रयत्न करने लगा। पारिवारिक परिस्थितियों ने भी उसे इसी स्वप्न को पूरा करने में मदद की। अलाउद्दीन के सम्बन्ध अपनी पत्नी (सुल्तान जलालुद्दीन की पुत्री) से मधुर न थे तथा उसकी पत्नि व सास उसके विरूद्ध षडयन्त्र करते रहते थे। अतः अलाउद्दीन ने सुल्तान की हत्या कर सम्पूर्ण सल्तनत पर ही अधिकार कर लेने की योजना बनायी। इसी उद्देश्य से उसने सुल्तान को कड़ा–मानिकपुर में आमन्त्रित किया व छल से उसकी हत्या करके जुलाई, 1296 ई. में स्वयं सुल्तान बन गया।

6.3. अलाउद्दीन की प्रारम्भिक समस्याएं :

अलाउद्दीन ने सिंहासन जलालुद्दीन के रक्त से अपनी तलवार को अनुरंजित करने के पश्चात् छल से प्राप्त किया था। अलाउद्दीन एक अपहर्ता ही नहीं, वरन् सुल्तान का हत्यारा भी था, अतः जनसाधारण व कुछ अमीर उससे घृणा करते थे। जलालुद्दीन के अनेक विश्वासपात्र सामन्त व अमीर भी अलाउद्दीन विरोधी थे। इसके अतिरिक्त सुल्तान की विधवा पत्नी मालिका–ए–जहां ने अपने पुत्र कद्रखां को रूकुनुद्दीन के नाम से दिल्ली के सिंहसन पर आसीन कर दिया था। सुल्तान का ज्येष्ठ पुत्र अर्कली खां तथा 'नये मुसलमानों' का नेता उलुग खां भी जीवित थे व उसका विरोध कर रहे थे। अतः अलाउद्दीन की सर्वप्रथम समस्या अपने प्रतिद्वन्द्वियों का दमन करना था तथा दिल्ली पर अधिकार करके वास्तविक अर्थों में सुल्तान बनना था। अनेक बाह्य समस्याएं भी अलाउद्दीन के समक्ष उत्पन्न हो रही थी। हिन्दू शासकों की शक्ति बढ़ती जा रही थी तथा वे सल्तनत के विरुद्ध विद्रोह करने लगे थे। उत्तरी–पश्चिमी सीमा प्रान्त पर भी मंगोल आक्रमण का संकट छाया हुआ था।

इस प्रकार अनेक समस्याओं का सामना अलाउद्दीन को करना था जिनमें प्रमुख निम्नवत् थी –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.3.1. दिल्ली पर अधिकार – अपने समक्ष इतनी समस्याओं को देखकर अलाउद्दीन विचलित नहीं हुआ। उसने अत्यन्त धैर्य, कूटनीति एवं शक्ति से इन समस्याओं का समाधान करने का प्रयत्न किया। अलाउद्दीन के लिए सर्वाधिक जरूरी दिल्ली पर अधिकार करना था जहां मलिक–ए–जहां ने रूकुनुद्दीन को सुल्तान घोषित कर दिया था। अलाउद्दीन के सौभाग्य से जलालुद्दीन के पुत्रों में फूट पड़ गयी। अर्कली खां, जो मुल्तान का सूबेदान था, स्वयं सुल्तान बनना चाहता था। अतः रूकुनुद्दीन का सुल्तान बनना उसे पसन्द नहीं आया तथा वह रूकुनुद्दीन की सहायतार्थ दिल्ली नहीं आया। अलाउद्दीन ने इस अवसर से लाभ उठाया तथा तुरन्त दिल्ली पर अधिकार करने के उद्देश्य से अग्रसर हो गया। रूकुनुद्दीन ने बदायूं के निकट उसका सामना किया, किन्तु रूकुनुद्दीन के अधिकांश सैनिकों को अलाउद्दीन ने अपनी ओर मिला लिया। विवश होकर बिना युद्ध लड़े ही रूकुनुद्दीन को भागना पड़ा। तत्पश्चात् अलाउद्दीन दिल्ली पहुंचा व 3 अक्टूबर, 1296 ई. को दिल्ली सल्तनत का विधिवत् सुल्तान बन गया।

सुल्तान बनने के पश्चात् जनता को प्रसन्न करने के लिए उसने देवगिरि से प्राप्त धन को जनता में बितरित किया। बरनी ने लिखा है, "जिस विश्वासघात और कृतघ्नता के द्वारा उसने सिंहासन प्राप्त किया, उसका दूसरा उदाहरण पूर्वात्य देशों के इतिहास में मिलना दुर्लभ है, इसलिए उसने दक्षिण (देवगिरि) की लूट में उपलब्ध सोने को अपव्ययतापूर्ण ढंग से बिखेरकर जनता को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। शीघ्र ही लोग उसके विश्वासघात को भूल गये तथा उसकी उदारता की प्रशंसा करने लगे।

6.3.2. विद्रोहियों का दमन – दिल्ली का सुल्तान बनने के पश्चात् अलाउद्दीन ने जलालुद्दीन के समान अपने विरोधियों के प्रति उदार नीति का पालन नहीं किया। सुल्तान बनते ही सर्वप्रथम उसने एक शक्तिशाली सेना उलुग खां व हिजाबुद्दीन के नेतृत्व में मुल्तान भेजी ताकि रूकुनुद्दीन, अर्कली खां व अन्य प्रतिद्वद्वियों का सफाया किया जा सके। शीघ्र ही इस सेना को सफलता मिली तथा अर्कली खां, रुकुनुद्दीन, अहमद चंप, आदि को बन्दी बनाया गया व उन्हें अन्धा करके कारागार में डाल दिया गया। बाद में अर्कली खां, रूकुनुद्दीन व उसके पुत्रों की हत्या कर दी गयी। मलिक–ए–जहां को बन्दीगृह में ही रहने दिया गया।

6.3.3. अमीरों को दण्ड – इस प्रकार अपने प्रतिद्वन्द्वियों की हत्या करने के पश्चात् अलाउद्दीन ने उन अमीरों की ओर ध्यान दिया। जिन्होंने जलालुद्दीन से विश्वासघात करके उसका साथ दिया था। अलाउद्दीन का विचार था कि जो व्यक्ति पहले सुल्तान के लिए गद्दारी कर सकता था वह दूसरे के लिए भी गद्दारी कर सकता है। अलाउद्दीन के इन विचारों पर टिप्पणी करते हुए बूल्जले हेग ने लिखा है, "अलाउद्दीन की नीति की यह विशेषता थी कि वह पहले विश्वासघातकों की सेवाओं से लाभ उठाता और फिर उसी विश्वासघात के अपराध में, जिनसे वह अपने काम बनाता, उन्हें मृत्युदण्ड देता था।" अतः अलाउद्दीन ने ऐसे अमीरों में से कुछ की हत्या करवा दी तथा शेष को कारागार में डाल दिया। उनकी सम्पत्ति पर भी अलाउद्दीन ने अधिकार कर लिया। इस प्रकार राजकोष को उसने समृद्ध किया। इस प्रकार अपनी समस्याओं पर विजय प्राप्त कर अलाउद्दीन ने अपने सिंहासन को सुरक्षित कर लिया। बरनी ने लिखा है, "अब अलाउद्दीन का सिंहासन पर दृढ़ अधिकार हो गया था और नगर दण्डपालक तथा प्रमुख लोग उससे मिलने आये और इस प्रकार एक नवीन व्यवस्था स्थापित हो गयी। उसकी सम्पत्ति अतुल तथा शक्ति महान् थी। इसलिए लोगों ने उसके प्रति दिखायी अथवा नहीं इसका कोई महत्त्व नहीं रहा था, उसके नाम से खुतवा पढ़ा गया और नये सिक्के चलाये गये।

6.4. अलाउद्दीन तथा मंगोल :

अलाउद्दीन के शासनकाल में मंगोलों ने निम्न आक्रमण किये –

कादर का आक्रमण : 1297 ई. में मंगोलों ने पंजाब पर आक्रमण कर लूटमार शुरू कर दी। अलाउद्दीन के उलूग खां तथा जफर खां नामक सेनापतियों ने उन्हें जालंधर के निकट बुरी तरह परास्त किया तथा कई मंगोलों को मौत के घाट उतार दिया।

सल्दी का आक्रमण : 1299 ई. में मंगोलों ने सल्दी के नेतृत्व में सिन्ध पर आक्रमण किया और कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इस बार भी जफर खां ने उन्हें बुरी तरह परास्त किया, इससे उसकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गई। डॉ. लाल ने लिखा है, "इस सफलता के बाद सुल्तान तथा अन्य दरबारी उसके प्रति ईर्ष्यालु बन गये।

कुतलुग ख्वाजा का आक्रमण : 1299 ई. में ही मंगोलों ने कुतलुग ख्वाजा के नेतृत्व में दिल्ली पर आक्रमण किया। अलाउद्दीन ने नुसरत खां, जफर खां तथा उलूग खां आदि सेनापतियों के साथ मंगोलों का सामना किया। जफर खां ने फिर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अपने रणकौशल का परिचय देते हुए मंगोलों को मार भगाया, किन्तु इस बार वह भी वीरगति को प्राप्त हो गया। डॉ. के.एस. लाल ने लिखा है, "अलाउद्दीन के लिए यह दोहरी विजय थी। एक शक्तिशाली मंगोलों पर व दूसरी शक्तिशाली एवं महत्त्वाकांक्षी जफर खां की मृत्यु से।

अन्य सरदारों के आक्रमण : चौदहवीं सदी में मंगोलों ने तागी, अलीबेग तथा इकबालमन्द के नेतृत्व में भारत पर आक्रमण किये, किन्तु परास्त हुए। 1306 ई. के पश्चात् मंगोल इतने कमजोर हो गये कि शाही सेनाओं ने उनके राज्य में लूटमार की।

मंगोलों के आक्रमण के दिल्ली साम्राज्य पर निम्न प्रभाव पड़े –

1. अलाउद्दीन ने विशाल सेना रखी। उसने सीमान्त राज्यों में नये दुर्ग बनवाये तथा पुराने दुर्गों का पुनर्निनिर्माण करवाया।

2. अपनी विशाल सेना हेतु अलाउद्दीन ने कई आर्थिक सुधार किये।

3. उसने सीमा प्रान्तों में योग्य सेनापति नियुक्त किये तथा युद्ध सामग्री एवं रसद की पर्याप्त व्यवस्था की।

अलाउद्दीन की विजय के कारण : अलाउद्दीन की मंगोलों के विरूद्ध सफलता के निम्न कारण थे –

1. मंगोल आक्रमणकारियों में आपसी फूट थी, जबकि अलाउद्दीन की सेना संगठित थी।

2. मंगोल शासक देव के बाद मंगोलों को योग्य नेतृत्व प्राप्त नहीं हुआ।

3. जफर खां, नुसरत खां, गाजी मलिक आदि योग्य सेनानायकों के कारण अलाउद्दीन की विजय हुई थी।

6.5. अलाउद्दीन खिलजी का राज्य विस्तार :

अलाउद्दीन खिलजी सिकन्दर महान् की भांति ही संसार विजय के स्वप्न देखता था। इसीलिए उसने 'सिकन्दर–ए–सानी' की उपाधि धारण की और सिक्कों पर भी यह उपाधि अंकित कराई। लेकिन काजी अली उलमुल्क ने अलाउद्दीन को समझाया कि आपको पहले भारत के स्वतन्त्र हिन्दू राज्यों को जीतना चाहिए और तब अन्य विजयों के बारे में सोचना चाहिए। वृद्ध काजी के परामर्श को याद करते हुए अलाउद्दीन खिलजी ने भारत विजय का अपना महान् कार्य आरम्भ किया।

6.5.1. उत्तरी भारत की विजयें — अलाउद्दीन ने सबसे पहले उत्तरी भारत के निम्नांकित स्वतन्त्र राज्यों को जीतकर अपने को सम्पूर्ण उत्तरी भारत का एक छत्र सम्राट बनाया –

गुजरात की विजय, 1299 : अलाउद्दीन ने 1299 ई. में गुजरात के उपजाऊ, धनी और समृद्ध देश को जीतने के लिए उलूग खां और नुसरतखां के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजी। गुजरात के राजा कर्ण ने अपनी पुत्री देवलदेवी सहित भागकर देवगिरि के राजा रामचन्द्र के पास शरण ली किन्तु राजा कर्ण की पत्नी कमला देवी मुसलमानों के हाथ पड़ गई जिसकों दिल्ली भेज दिया गया। वहां उसे अलाउद्दीन के हरम में दाखिल कर लिया गया।

मुस्लिम सेनाओं ने गुजरात की राजधानी अन्हिलवाड़ा और सोमनाथ के मंदिर को जी भर कर लूटा व नष्ट–भ्रष्ट किया। खम्भात को भी कब्जे में ले लिया गया। लूट के दौरान सेनापति नुसरतखां को मलिक काफूर नाम एक हिन्दूयुवक हाथ लगा जो आगे चलकर अलाउद्दीन का विख्यात सेनापति बन गया।

रणथम्भौर की विजय, 1301 : सन् 1301 ई में अलाउद्दीन ने उलूग खां और नुसरत खां को रणथम्भौर की विजय के लिए भेजा। रणथम्भौर का दुर्ग सैनिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का था। हम्मीर देव ने शत्रु के छक्के छुड़ा दिए और नुसरत खां को मौत के घाट उतार दिया तब अलाउद्दीन स्वयं एक विशाल सेना सहित रण क्षेत्र में आ पहुंचा। लगभग 11 महीने तक रणथम्भौर का दुर्ग अवजित रहा। अन्त में हम्मीर के दो मन्त्रियों रणमल और रत्नपाल के विश्वासघात के कारण रणथम्भौर का पतन हो गया। हम्मीरदेव युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुआ। अलाउद्दीन ने रणमल और रत्नपाल को तथा उनके साथियों को मौत के घाट उतार दिया क्योंकि वह विश्वासघातियों से स्वामिभक्त होने की आशा नहीं करता था।

चित्तौड़ (मेवाड़) की विजय, 1303 : अब अलाउद्दीन ने चित्तौड़ को विजय करने की सोची। कुछ इतिहासकारों के अनुसार उसका उद्देश्य मेवाड़ के राणा रत्नसिंह की अत्यन्त सुन्दर रानी पद्मिनी को प्राप्त करना था। किन्तु डॉ. गौरीशंकर ओझा और डॉ. के.एस. लाल का मत है कि सुल्तान सम्पूर्ण उत्तरी भारत का शासक बनना चाहता था और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मेवाड़ जैसे शक्तिशाली राज्य पर अधिकार करना जरूरी समझता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सुल्तान का उद्देश्य चाहे कुछ भी रहा हो, उसने मेवाड़ पर हमला करके चित्तौड़ को घेर लिया। लगभग 7 महीने तक युद्ध चलता रहा। राणा के दो प्रसिद्ध सेनापतियों 'गोरा तथा बादल' ने अद्भूत वीरता का प्रदर्शन किया, पर युद्ध आखिर कब तक चलता। राजपूतों की संख्या प्रतिदिन घटती जा रही थी। और मुसलमानों के पास नई सेना दिल्ली से आ रही थी। अन्त में निराश होकर राजपूत केसरिया वस्त्र पहनकर और तलवार हाथ में लेकर मौत की तरह मुस्लिम सेना पर टूट पड़े और उध्ार रानी पद्मिनी ने सैंकड़ों राजपूत स्त्रियों के साथ जौहर की आग में अपने को भस्म करके अपने सतीत्व की रक्षा की। लड़ते–लड़ते सभी राजपूत मारे गए और तब कहीं दुर्ग अलाउद्दीन के हाथ लगा। क्रुद्ध और हताश अलाउद्दीन ने कत्ले आम मचवाया और लगभग 30 हजार निरपराध हिन्दुओं का वध करवा दिया। अलाउद्दीन अपने पुत्र खिज्र खां को चित्तौड़ का शासन सौंपकर खुद दिल्ली लौट आया। खिज्र खां इस दुर्ग को अधिक समय तक अपने अधिकार में न रख सका। कुछ ही वर्षों बाद 1318 ई. में राजपूतों ने चित्तौड़ पर अपना अधिकार कर लिया।

मालवा, जालौर आदि की विजय, 1305 : इसके बाद 1305 में अलाउद्दीन ने मुल्तान के सूबेदार ऐन–उल–मुल्क को मालवा पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। मालवा नरेश महालकदेव पराजित हुआ और धार, उज्जैन, चन्देरी तथा मांडू पर शाही सेना का अधिकार हो गया। लगभग 6 वर्ष बाद जालौर के चौहान शासक ने भी अलाउद्दीन की अधीनता स्वीकार कर ली। जलौर के शासक कान्हडदेव को भी अपनी अधीनता स्वीकार करने पर मजबूर कर दिया इसी प्रकार सिवाना के शीतलदेव नेभी अपनी हार मान ली व अधीनता स्वीकार कर ली।

इस प्रकार लगभग सारा उत्तरी भारत अलाउद्दीन के कब्जे में आ गया।

6.5.2. दक्षिण भारत की विजयें – उत्तरी भारत पर अधिकारी करने के पश्चात् सुल्तान ने दक्षिण भारत को विजय करने का निश्चय किया। अपने योग्य सेनापति मलिक काफूर की सहायता से उसने दक्षिण के सुदूर राज्यों पर भी अपना प्रभुत्व जमा लिया। अलाउद्दीन खिलजी पहला शासक था, जिसने दक्षिण के अपरिचित देश में विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया था।

देवगिरि की विजय 1306 : 1306 ई. में मलिक काफूर के नेतृत्व में विशाल मुस्लिम सेना ने देवगिरि पर आक्रमण किया, क्योंकि वहां के शासक राजा रामचन्द्र ने पिछले तीन वर्षों से कर नहीं दिया था। इसके अतिरिक्त गुजरात के राजा कर्ण और उसकी पुत्री देवलदेवी ने उसके यहा शरण ले रखी थी।

इस अभियान में सर्वप्रथम मलिक काफूर ने कर्ण को पराजित किया। देवलदेवी मुसलमानों के हाथ पड़ गई। उसे दिल्ली भेज दिया गया, जहां उसका विवाह सुल्तान के बड़े पुत्र खिज्र खां के साथ कर दिया गया। इसके बाद रामचन्द्र ने बिना युद्ध किये हार मान ली। वह बन्दी के रूप में बहुत से उपहार लेकर दिल्ली पहुंचा। सुल्तान ने उसका स्वागत किया और उसे 'राय–रायन' की उपाधि प्रदान की। सुल्तान ने अपनी कूटनीति से देवगिरि के राजा रामचन्द्र को अपना एक विश्वस्त मित्र बना लिया। डॉ. राय ने लिखा है कि, "निःसन्देह देवगिरि दक्षिण और सुदूर दक्षिण में खिलजी सैनिक अभियानों का आधार बन गई।"

वारंगल पर आक्रमण (1309) : देवगिरी के बाद मलिक काफूर ने तैलंगाना की राजधानी वारंगल पर आक्रमण कर दिया। वहां के शासक प्रताप रूद्रदेव ने काफी समय तक शत्रु का सामना किया, परन्तु अन्त में विवश होकर आत्मसमर्पण करना पड़ा। उसने युद्ध क्षतिपूर्ति के रूप मं अपार धन–सम्पत्ति मलिक काफूर को दी और वार्षिक कर देना भी स्वीकार किया। मलिक काफूर यह धन–सम्पत्ति लेकर दिल्ली लौट आया।

द्वार समुद्र की विजय 1310 : 1310 ई. में मलिक काफूर ने देवगिरि और वारंगल के शासक की सहायता से द्वार समुद्र पर आक्रमण कर दिया। वहां के राजा वीर बल्लाल तृतीय ने वीरतापूर्वक सामना किया, किन्तु पराजित हुआ। उसने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली ओर अतुल धन सम्पत्ति मलिक काफूर को दी। इसके अतिरिक्त उसने वार्षिक कर देने का वचन भी दिया।

माबर की विजय 1311: द्वार समुद्र की विजय के बाद मलिक काफूर ने मागर के पाण्डेय राज्य पर आक्रमण कर दिया। उस समय सुन्दर पाण्डेय और वीर पाण्डेय में सिंहासन के लिये युद्ध चल रहा था। फिर भी उन्होंने शत्रु का सामना किया। अन्त में वीर पाण्डेय को विवश होकर वनों की ओर भागना पड़ा। इसके बाद मुसलमानों ने राजधानी को जी भर कर लूटा। इस लूट में काफूर को 512 हाथी, 5,000 घोड़े और 500 मन हीरे–जवाहरात हाथ लगे। लेनपूल ने लिखा है कि – "इससे पहले दिल्ली में लूट का इतना धन कभी नहीं लाया गया था। देवगिरि में प्राप्त धन भी द्वार समुद्र तथा मदुरा की लूट की तुलना में कुछ नहीं था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

माबर से काफूर ने रामेश्वरम् की ओर प्रस्थान किया और वहां पर उसने अपनी विजय की स्मृति में एक सुन्दर मस्जिद बनवाई।

देवगिरि पर दूसरा आक्रमण 1313 ई. : राजा रामचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र शंकरदेव शासक बना। उसने अपने को स्वतंत्र शासक घोषित करते हुए वार्षिक कर देना बन्द कर दिया। इस पर मलिक काफूर ने सुल्तान की आज्ञा से देवगिरि पर फिर आक्रमण किया। शंकरदेव युद्ध में लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। इसके बाद काफूर ने अगले दो वर्ष दक्षिण के अन्य राज्यों पर अभियान करने में बिताये। 1315 ई. में जब सुल्तान सख्त बीमार हो गया, तो उसने काफूर को दिल्ली बुला लिया।

6.6 अलाउद्दीन खिलजी का राजत्व सिद्धान्त :

अलाउद्दीन खिलजी ने राजस्व सिद्धान्त के सम्बन्ध में भी मौलिकता और दूरदर्शिता प्रदर्शित की। वह एक निरंकुश शासक था। के.एस. लाल ने उसकी निरंकुशता के सम्बन्ध में लिखा है कि, ''एक शब्द में, फ्रान्स के राजा लूई चौदहवें की भांति अलाउद्दीन अपने को राज्य में सर्वोपरि मानता था।'' अलाउद्दीन कहा करता था, ''राजा का कोई सम्बन्धी नहीं होता तथा राज्य में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति उसका सेवक है, जिसका कर्त्तव्य है कि अपने शासक की प्रत्येक आज्ञा का पालन कर अनुशासन बनाये रखे।

अलाउद्दीन ने राजनीति के क्षेत्र में धर्म का हस्तक्षेप अनुचित एवं अवांछित माना। उसने काजियों, मुल्लाओं एवं धर्माधिकारियों से कह दिया कि, ''यह आवश्यक नहीं है कि मैं पैगम्बर द्वारा बताये गये (कुरान के) सिद्धान्तों के अनुसार या उलेमाओं की सलाह से सरकारी काम–काज चलाऊ। मैं राज्य की भलाई के लिये जो कार्य उचित समझूंगा, करूंगा।

अलाउद्दीन ने काजी मुगासुद्दीन को अपनी नीति इन शब्दों में समझायी –

''विद्रोहों से, जिसमें सहस्त्रों मनुष्यों का रक्त बहता है, बचने के लिए मैं ऐसी आज्ञा देता हूं कि बादशाह और प्रजा दोनों का भला हो। मैं नहीं जानता कि यह इस्लाम के धार्मिक कानून की दृष्टि से उचित है या अनुचित। जब मनुष्य विचारहीन और अश्रद्धालु होकर मेरी आज्ञाओं का उल्लंघन करते हैं,, तो मैं उन्हें राजभक्ति की ओर मोड़ने के लिये मजबूर हो जाता हूं। जो कुछ भी राज्य की भलाई के लिए मैं उचित समझता हूं, कर लेता हूं। मैं नहीं जानता कि कयामत के दिन मेरा क्या हो?'' प्रो. अशरफ ने अलाउद्दीन की निरंकुशता के विषय में लिखा है कि – ''दिल्ली का सुल्तान सिद्धान्ततः घोर निरंकुश था, जो किसी कानून अथवा किसी अन्य प्रतिरोधक शक्ति से बंधा नहीं था। वह स्वेच्छा से ही शासन करता था।'' वस्तुतः अलाउद्दीन राजनीति और शासन में मुल्लाओं के हस्तक्षेप को पसन्द नहीं करता था। डॉ. श्रीवास्तव के शब्दों में, ''अलाउद्दीन दिल्ली का पहला शासक था, जिसने धर्म पर नियंत्रण स्थापित किया और ऐसे तत्त्वों को जन्म दिया, जिसमें कम–से–कम सैद्धान्तिक राज्य असाम्प्रदायिक आधार पर खड़ा हो सकता है।''

6.7. अलाउद्दीन खिलजी द्वारा प्रशासन में सुधार :

निरन्तर हो रहे इन विद्रोहों ने अलाउद्दीन को यह विचार करने पर विवश किया कि उसकी प्रशासनिक व्यवस्था में कुछ दोष थे, जिनका निराकरण किया जाना आवश्यक था। अतः उसने अपने मित्रों से परामर्श किया व इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उसकी प्रशासनिक व्यवस्था में निम्नलिखित प्रमुख दोष थे –

1. कुछ लोगों के पास अत्यधिक धन–संग्रह।
2. मद्यपान का अत्यधिक प्रयोग, जिससे षड़यन्त्र करने की प्रेरणा मिलती थी।
3. अमीरों का पारस्परिक मेल–मिलाप व आपसी विवाह–सम्बन्ध।
4. गुप्तचर विभाग की अयोग्यता।

उपर्युक्त दोषों को दूर करने के उद्देश्य से अलाउद्दीन ने चार अध्यादेश जारी किये, जिनके द्वारा निम्नलिखित कार्य किये गये –

1. धन–सम्पत्ति पर अधिकार : अलाउद्दीन का विचार था कि उसके राज्य में हो रहे विद्रोह का प्रमुख कारण अमीरों के पास विशाल जागीरें तथा धन–सम्पत्ति का होना था। अतः उसने अमीरों से धन–सम्पत्ति छीनने का प्रयास किया। अलाउद्दीन ने सबसे पहले माफी की भूमि पर कर लगाया। जो किसान अथवा जमींदार माफी की भूमि पर खेती करते थे तथा किसी प्रकार राजस्व राज्य को नहीं देते थे, उन कर लगाया गया। कर वसूल करने वाले अधिकारियों को आदेश दिया गया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कि अधिक–से–अधिक कर वसूलें। अमीरों की सम्पत्ति पर भी राज्य का अधिकार घोषित किया गया। अतः ऐसा वर्ग, जो बिना मेहनत किये खाता था। समाप्त हो गया। बरनी ने लिखा है, "बड़े–बड़े अमीरों, उच्च पदाधिकारियों एवं व्यापारियों को छोड़कर अन्य लोगों के घरों में सोना देखने को भी नहीं मिलता था।" अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका अर्जित करने के अतिरिक्त अन्य बातों के लिए समय ही नहीं था।

2. मदिरापान पर प्रतिबन्ध : सुल्तान अलाउद्दीन ने मादक द्रव्यों के प्रयोग पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया क्योंकि उसके विचार से इनका सेवन करने से व्यक्ति उत्तेजित होता था तथा विद्रोह की बात सोचता था। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि सुल्तान ने स्वयं भी मदिरा का सेवन करना छोड़ दिया। शराब पीने अथवा बेचने वालों को कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की गयी। सुल्तान अलाउद्दीन ने शराब के बर्तनों को भी तुड़वा दिया, किन्तु फिर भी अलाउद्दीन पूर्णतः मद्य–निषेध न कर सका। लोग चोरी–छिपे पीते रहे। अन्ततः सुल्तान ने नियमों को थोड़ा संशोधित किया तथा घरों में निजी रूप से शराब बनाने व पीने की छूट दे दी गयी।

3. सामाजिक समारोहों पर प्रतिबन्ध : अलाउद्दीन ने अमीरों के परस्पर मिलने, दावत देने व वैवाहिक–सम्बन्धों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। अमीर अपने परिवार में किसी भी समारोह का आयोजन अथवा किसी अन्य अमीर के यहां विवाह–सम्बन्ध तब तक स्थापित नहीं कर सकते थे जब तक कि सुल्तान उन्हें अनुमति न दे दे। अतः सामाजिक मेल–मिलाप बन्द हो गया। डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, "इन शाही अध्यादेशों के कारण सामाजिक जीवन नीरस हो गया और एक बोझ प्रतीत होने लगा।

अलाउद्दीन की सेना में भी पहले की तरह घुड़सवार, पैदल और हाथी थे। अब भी अश्वारोहियों के ऊपर ही सेना की सफलता निर्भर करती थी। इसलिए अलाउद्दीन ने सेना के इस विभाग को अधिकाधिक उत्तम कोटि का बनाने की चेष्टा की। उसने अच्छी नस्ल के घोड़े बाहर से मंगवायें, मंगोलों से युद्धों के समय भी उसने अनेक अच्छे घोड़े लूट में पाये। दक्षिण भारत की विजय के समय भी अलाउद्दीन लूट का सामान एकत्रित करते समय संबंधित राजाओं के सर्वोत्तम घोड़े तथा हाथी लेने की विशेष चिन्ता रखता था। साथ ही उसने देश के भीतर भी नस्लों की सुधार द्वारा अच्छे घोड़े पैदा करने की चेष्टा की। सैनिक हमेशा अच्छे घोड़े नहीं रखते थे। इसलिए उसने घोड़ों को दगवा दिया जिससे उनको बदलकर खराब घोड़े न लाये जा सकें। जो सैनिक अपने पास से घोड़े लाते थे उनको अधिक वेतन दिया जाता था और जो दो घोड़े रखते थे उसके घोड़े ठीक दशा में है या नहीं इसकी जांच करने के लिए वह समय–समय पर सेना का निरीक्षण करता था। सेना को पूर्णतया अपने वश में करने के लिए उसने राज्य की सम्पूर्ण सैनिक शक्ति पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया। वही सब सैनिकों की भर्ती करता था तथा राजकोष से सभी सैनिकों को नगद वेतन दिया जाता था। सेना में वे ही लोग भर्ती किये जाते थे जिनको अस्त्र–शस्त्र का उपयोग, घोड़े पर चढ़ना, युद्ध करना आदि पहले से ही मालूम होता था।

सामान्य सैनिक के ऊपर कौन–कौन पदाधिकारी होते थे, यह ठीक मालूम नहीं है। साधारणतः सेना का प्रधान पदाधिकारी होता था आरिज–ए–मुमालिक। परन्तु वारंगल–विजय के समय आरिज को काफूर की अधीनता में युद्ध करने भेजा गया था। जब सम्राट स्वयं युद्ध स्थल में रहता था तब वही प्रधान सेनापति होता था।

इसी भांति सैनिकों के वेतन के विषय में विद्वानों में मतभेद होने के कारण प्रत्येक कोटि के सैनिक का वेतन ठीक–ठीक नहीं बताया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक पैदल सिपाही को 78 टंका प्रति वर्ष वेतन मिलता था। जिन अश्वारोहियों को सरकार की ओर से घोड़ा दिया जाता था और जिस घोड़े का व्यय सामान्यतः सरकार को ही उठाना पड़ता था उसे 156 टंक वेतन मिलता था तथा जो अश्वारोही अपना घोड़ा लाता था और स्वयं उसकी देख–रेख का भार उसे 312 टंक वेतन मिलता था।

6.8. हिन्दुओं के प्रति नीति :

अलाउद्दीन की हिन्दुओं के प्रति नीति बहुत कठोर थी। उनसे भूमिकर उपज का 1/2 भाग लिया जाता था। इसके अलावा चरागाहों तथा पशुओं पर भी कर लगाया गया था। जजिया एवं अन्य कर कठोरता से एकत्रित किये जाते थे। डॉ. लाल के अनुसार, "जजिया के भुगतान के समय जिम्मी (हिन्दू) का गला पकड़ा जाता और जोरों से हिलाया तथा झकझोरा जाता था, जिससे जिम्मी को अपनी स्थिति का ज्ञान हो सके। अलाउद्दीन की नीति से हिन्दुओं की दशा शोचनीय हो गई।" वूल्जले हेग ने लिखा है, "सम्पूर्ण राज्य में हिन्दू दुःख और दरिद्रता में डूब गये।" बरनी ने लिखा है, "चौधरी, खुत और मुकद्दम इस योग्य न रह गये थे कि घोड़े पर चढ़ सकते, हथियार बांध सकते, अच्छे वस्त्र पहन सकते अथवा पान का शौक कर सकते।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बरनी के अनुसार ''कोई हिन्दू सिर ऊँचा करके नहीं चल सकता था। उनके घरों में सोना, चांदी तथा धन आदि भी नहीं दिखता था। निर्धनता के कारण अच्छे परिवारों की स्त्रियां भी मुसलमानों के घर में नौकरी करने लगी।'' सुल्तान ने एक बार गर्व से कहा था, ''मेरे आदेश पर हिन्दू चूहों की तरह बिलों में घुस जाने को भी तैयार है।'' अलाउद्दीन ने धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दुओं से कठोर व्यवहार किया। डॉ. आर.सी. मजूमदार ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए लिखा है, ''इस बात के अनेक प्रमाण है कि हिन्दुओं के प्रति अलाउद्दीन की नीति साम्प्रदायिकता की भावना से प्रेरित थी।''

6.9 अलाउद्दीन खिलजी का राजस्व सुधार :

अलाउद्दीन खिलजी भारत का पहला मुसलमान बादशाह था, जिसने राज्य के भूमि प्रबन्ध में विशेष रूचि ली और इस क्षेत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण सुधार भी किए। उसने सर्वप्रथम अमीरों को शक्तिहीन बनाने एवं राज्य की आय में वृद्धि करने हेतु अमीरों की जागीरें छीन ली। इसके अतिरिक्त सुल्तान ने भूमि लगान बढ़ाकर उपज का आधा भाग कर दिया और इसको एकत्रित करने के लिए कठोर नियम बनाये। अलाउद्दीन प्रथम मुस्लिम सुल्तान था, जिसने भूमि की पैमाइश के आधार पर लगान निश्चित किया।

राजस्व विभाग की कार्य कुशलता के लिए अनेक छोटे–बड़े अधिकारी नियुक्त किये गये। पटवारियों तथा अन्य कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर दी गई, ताकि वे घूंस न ले। घूंस लेने वाले कर्मचारी को कठोर दण्ड दिया जाता था। यह व्यवस्था की गई कि किसान भूमि कर की अदायगी अनाज या नकद रूपयों में इच्छानुसार कर सके। रिश्वत लेने कर्मचारी और पदाधिकारी को कठोर दण्ड दिया जाता था। डॉ. के.एस. लाल ने लिखा है कि, ''इन कठोर दण्डों के कारण ही इस विभाग के कर्मचारी बहुत अप्रसन्न थे और अपनी नौकरियों को प्लेग से भी बुरा समझते थे।'' डॉ. ताराचन्द ने लिखा है कि, ''यह नीति आध्यात्मिक थी, क्योंकि उसने सोने के अण्डे देने वली मुर्गी को मार दिया।'' बरनी लिखता है कि ''राजस्व विभाग के कर्मचारी बड़े अप्रिय थे और कोई व्यक्ति इस विभाग के राज्याधिकारियों से अपनी लड़की का विवाह करने को तैयार न था, क्योंकि उनके जीवन का अधिकतर समय जेलों में व्यतीत हो जाता था, जहां उन्हें कई प्रकार के कष्ट दिये जाते थे।''

सुल्तान के इन भूमि सम्बन्धी सुधारों से किसानों की दशा पहले से अधिक दयनीय हो गई। इन सुधारों से राज्य को अवश्य लाभ पहुंचा। अमीरों, सरदारों और हिन्दू मुकदमों व खुतों की शक्ति क्षीण हो गई, जिससे सुल्तान को विद्रोहों तथा षड्यन्त्र का भय नहीं रहा। इसके अतिरिक्त आय में वृद्धि होने से सुल्तान एक विशाल सेना रखने में सफल रहा। एक लाभ यह भी हुआ कि जनता में निर्धनता फैल गई, जिससे उसके विद्रोह करने की शक्ति क्षीण हो गई।

अलाउद्दीन ने साम्राज्य को सुश्रृंखल रखने के लिए उचित न्याय–व्यवस्था का भी प्रबंध किया। अलाउद्दीन के पूर्व राजनियम धर्म–ग्रंथों पर आधारित रहते थे।परन्तु अलाउद्दीन ने धर्म की अवहेलना न करते हुए भी यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि परिस्थिति एवं लोक–हित की दृष्टि से जो नियम उपयुक्त हो वे ही राजनियम होने चाहिए। इस भांति उसने न्यायाधीशों द्वारा व्यपहृत नियमों को साम्प्रदायिकता के संकुचित क्षेत्र से निकालकर अखिल देशीय राजनियमों का रूप दे दिया। दूसरे, उसने न्यायाधीशों की संख्या बढ़ा दी तथा यद्यपि उसके कुछ न्यायाधीश अपने पदों के उपयुक्त नहीं थे परन्तु अधिकांश न्यायाधीश विद्वान् सच्चरित्र एवं कार्यकुशल थे। न्यायाधीशों की सहायता के लिए उसने पुलिस का प्रबंध किया। प्रत्येक नगर में एक कोतवाल रहता था जो पुलिस का प्रधान होता था। इनके अतिरिक्त गुप्तचर होते थे। वे भी अपराधियों का पता लगाने में सहायता करते थे। अलाउद्दीन के गुप्तचर इतने प्रवीण थे के उनसे कुछ भी छिपा नहीं रहता था। बड़े–बड़े अमीर और सरदार भी अपने घरों में स्वतंत्रता पूर्वक बातचीत करने में भय खाते थे। अलाउद्दीन का दण्ड विधान कठोर था। एक के अपराध करने पर अनेक को दण्ड देना, अपराधी के साथियों और सबंधियों को केवल संदेह पर मृत्युदण्ड तक दे देना, आंखे निकलवा लेना, अंग–भंग करा देना, यातनायें देकर अपराध स्वीकार करना ओर ऐसे बंदीगृहों में रखना जहां से जीवित वापस आ सकना प्रायः असंभव हो, बलबन के कठोर दण्ड–विधान से भी एक पद आगे जाने का परिचय देते हैं।

6.10. अलाउद्दीन खिलजी के आर्थिक सुधार या बाजार नियंत्रण प्रणाली :

अलाउद्दीन एक महान् आर्थिक सुधारक भी था, जिसके आधार पर लेनपूल ने अलाउद्दीन को 'एक महान राजनीतिक अर्थशास्त्री होने का श्रेय दिया है।

6.10.1. सुधारों का उद्देश्य – डॉ. बी.पी. सक्सेना के अनुसार अलाउद्दीन ने आर्थिक सुधार जनकल्याण के लिए किये थे। डॉ. पी.सरन तथा डॉ. के.एस. लाल के अनुसार अलाउद्दीन ने आर्थिक सुधार राजकोष पर अतिरिक्त बोझ डाले बिना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशाल सेना रखने के लिए किये थे। अलाउद्दीन के आर्थिक सुधारों का मुख्य उद्देश्य मूल्यों में कमी करके उसी अनुपात में सैनिकों के तेतन में कमी करना था, ताकि सैनिक कम वेतन में भी अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। इस प्रकार अलाउद्दीन एक विशाल सेना को संगठित करना चाहता था। डॉ. लाल इन सुधारों का क्षेत्र सिर्फ दिल्ली मानते है, जबकि बरनी ने इन सुधारों का क्षेत्र दिल्ली तथा आस–पास के प्रदेश माने हैं।

6.10.2. सुधारों की विशेषताएं – अलाउद्दीन के आर्थिक सुधारों का मूल उद्देश्य विशाल सेना की व्यवस्था करना था। उसने विशाल सेना रखने हेतु सैनिकों के वेतन कम कर दिये, साथ ही बाजार में दैनिक उपयोग की वस्तुओं के मूल्य भी कम कर दिये, ताकि वे जीवन निर्वाह कर सकें। अलाउद्दीन के आर्थिक सुधारों की प्रमुख विशेषताएं निम्न थीं –

वस्तुओं के भाव निश्चित करना – अलाउद्दीन ने दैनिक उपयोग की वस्तुओं जैसे – कपड़े, खाद्य वस्तुएं, सब्जियों, फलों, जूतों, कंघियों, घोड़ी, प्यालों, रेवाड़ियों बरतनों, सौदागिरी का सामान आदि के भाव निश्चित कर दिये तथा इनकी सूचियां भी बनवायी। तत्कालीन ग्रन्थों से वस्तुओं की बिक्री दर के बारे में निम्नलिखित जानकारी मिलती है –

वस्तु	तोल	मूल्य
गेंहू	एक मन	7 1/2 जीतल
जौ	एक मन	4 जीतल
चना	एक मन	5 जीतल
चावल	एक मन	5 जीतल
मांस	एक मन	5 जीतल
खांड	एक सेर	1 1/2 जीतल
मक्खन	अढ़ाई सेर	1 जीतल
उड़द	एक मन	1 जीतल
नमक	एक मन	2 जीतल

गुलामों, वेश्याओं, नौकरों और लौंडियों के दाम भी नियत थे। उदाहरणस्वरूप, एक लौंडी का मोल 5 से 12 टांके तक और एक दास का मोल 10 टांके से 15 टांके तक था। उन दिनों एक मन आधुनिक 13 या 14 सेर का होता था। टांके का मूल्य आजकल के एक रुपये से कुछ अधिक था। जीतल एक आधान्ने या 2 पैसे का होता था। बरनी ने लिखा है – "जब तक शासन किया, तब तक वस्तुओं के मूल्य न बढ़े और न घ्टे, बल्कि सर्वदा निश्चित रहे।" डॉ. के.एस. लाल ने लिखा है – अलाउद्दीन खिलजी के शासन का वास्तविक महत्त्व वस्तुओं के मूल्यों को कम करने में नहीं है, बल्कि बाजार की कीमतों को निश्चित रखने में है, जो अपने युग का एक महान आश्चर्य समझा गया था।

6.10.3. वस्तुओं की प्राप्ति का उचित प्रबन्ध – सुल्तान ने चोर बाजारी को रोकने के लिये वस्तुओं की प्राप्ति और उन्हें दिल्ली में पहुंचाने का उचित प्रबन्ध किया। राजधानी में बड़े–बड़े अन्न गोदाम बनवाये गये। मुल्तानी सौदागरों और बनजारों की दिल्ली के समिप गांवों में बसाया गया। यह व्यवस्था की गई कि ये सौदागर दिल्ली के चारों ओर 100–100 कोस की दूरी पर बसने वाले किसान से नियम दरों पर गल्ला खरीदकर राजधानी की गल्ला मण्डी अथवा सरकारी गोदामों में ला फेंकते थे। इन पर गल्ला मण्डी के अध्यक्ष का नियन्त्रण रखा गया था। किसानों के लिए आदेश निकाले गये कि वे अपनी आवश्यकता से अधिक अनाज अपने पास न रखें और अपना फालतू अनाज नियत दरों पर बेच दें। अलाउद्दीन की इस व्यवस्था के फलस्वरूप राजधानी में अनाज का अभाव नहीं रहा।

6.10.4. मंडियों की स्थापना और उन पर सरकारी नियन्त्रण (शाहना–ए–मण्डी, दीवाने रियासत) – अलाउद्दीन ने अनाज बेचने तथा खरीदने के लिये राजधानी में बहुत बड़ी गल्ला मण्डी की व्यवस्था की। इसके अतिरिक्त घोड़ों, सब्जियों, लौंडियों तथा अन्य वस्तुओं के लिये भी अलग–अलग मण्डियां बनाई गई। प्रत्येक मण्डी पर सरकार का कुशल नियन्त्रण था। प्रत्येक मण्डी का प्रमुख अधिकरी शाहना–ए–मण्डी' नाम का एक अफसर होता था। इस विभाग का सबसे बड़ा पदाधिकारी दीवाने रियासत था, जिसका प्रमुख कार्य राजधानी की सब मण्डियों का निरीक्षण करना तथा उनके प्रमुख अफसरों (शाहना–ए–मण्डी) को नियुक्त करना था। शाहना–ए–मण्डी यह देखता था कि व्यापारियों के नाम रजिस्टर किये जाएं और सारा माल ठीक भावों पर बेचा जाए। उसका कार्य बड़ा कठिन था, क्योंकि साधरण सी भूल हो जाने पर भी सुल्तान उसे कठोर दण्ड दे देता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.10.5. राशन प्रणाली – अलाउद्दीन खिलजी ने राशन प्रणाली की भी व्यवस्था की थी। जब भी देश के किसी भी स्थान पर अकाल के कारण अनाज की कमी हो जाती थी, तो वहां निश्चित मात्रा से अधिक गेंहू किसी भी व्यक्ति को नहीं दिया जाता था। अनाज सरकारी गोदामों से अनाज ले जाते थे और प्रत्येक परिवार को 6–7 सेर गेहूं प्रतिदिन के हिसाब से दिया जाता था। कई बार कपड़े और अन्य मूल्यवान वस्तुओं का भी राशन कर दिया जाता था तथा अमीरों को इन वस्तुओं को खरीदने के लिए सरकारी कार्ड या आज्ञा पत्र बनवाने पड़ते थे।''

6.10.6. कठोर दण्ड – वस्तुओं को खरीदने तथा बेचने के सम्बन्ध में सुल्तान के नियम बहुत कठोर थे और उनका पालन भी बड़ी कठोरता से किया जाता था। यदि कोई व्यापारी किसी वस्तु को कम बोलता था, तो अपराधी सिद्ध होने पर उतना ही मांस उसके शरीर से काट लिया जाता था। इसी प्रकार वस्तुओं को नियत दरों से अधिक भाव पर बेचने वाले व्यक्तियों को कोड़े लगवाये जाते थे। बरनी के अनुसार, ''सुल्तान के कठारे दण्ड के भय के कारण दुकानदारों ने धीरे कम तोलना छोड़ दिया, बल्कि कई दुकानदार ग्राहकों को अधिक तौल कर देने लगे।''

6.10.7. आर्थिक सुधार का मूल्यांकन – अलाउद्दीन बाजार नियन्त्रण के उद्देश्य प्राप्ति में सफल रहा। मूल्यों को नियन्त्रित करके वह एक विशाल सेना रखने में सफल रहा। इस प्रकार उसकी बाजार–नियन्त्रण नीति या आर्थिक सुधार सफल रहे। बरनी ने लिखा है, नियमों को कठोरतापूर्वक लागू किये जाने, सुल्तान के भय से, कर्मचारियों व अधिकारियों की ईमानदारी से, सुल्तान की यह नीति सफल हुई।''

गुण :

1. सुल्तान अपने आर्थिक सुधारों की सहायता से, बिना राजकोष पर विशेष भार डाले एक विशाल सेना रखने में सफल हो गया।

2. दिल्ली और आसपास में रहने वाले लोगों को वस्तुएं सस्ते दामों पर प्राप्त होने लगी।

3. बड़े–बड़े पदाधिकारियों को जिनके वेतन कम नहीं किये गये थे, वस्तुओं के सस्ता होने से काफी सुविधा हो गई। डॉ. के.एस. लाल ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ खिल्जीज' में अलाउद्दीन के आर्थिक सुधारों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि – ''प्रबन्धक के रूप में अलाउद्दीन के आर्थिक सुधारों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि – ''प्रबन्धक के रूप में अलाउद्दीन अपने पूर्ववर्ती शासकों से अवश्य ही श्रेष्ठ था और प्रशासनिक क्षेत्र में उसकी सफलताएं उसके रणभूमि के कार्यों से कही अधिक महान् हैं।''

अवगुण :

1. आर्थिक सुधारों का जन–साधारण पर अच्छा प्रभाव न पड़ा। किसानों, दस्तकारों, कारीगरों, हलवाइयों तथा व्यापारियों को सरकार के हाथ अपना माल बहुत कम भावों पर बेचना प्ड़ता था, जिससे उनकी आर्थिक दशा बहुत खराब हो गई।

2. आर्थिक सुधार मुख्यत: सैनिकों के लिए किए गऐ थे, परन्तु उनको विशेष लाभ नहीं हुआ क्योंकि सैनिकों के वेतन घटा दिए गए थे, उतनी ही मात्रा में वस्तुओं के भाव भी कम हुए थे।

3. इन आर्थिक सुधारों से व्यापारी वर्ग असन्तुष्ट था क्योंकि शासक द्वारा नियत मूल्यों पर वस्तुएं बेचनी पडती थी, जिसमें मुनाफा कम मिलता था। इसके अतिरिक्त उन्हें अपना नाम सरकारी अधिकारियों के पास रजिस्टर कराना पड़ता था। उन्हें छोटे–छोटे अपराधों पर कठोर दण्ड दिये जाते थे। इन विषम परिस्थितियों में उन्हें अपने काम के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं रही, जिससे राजधानी के व्यापार को काफी हानि पहुंची।

4. आर्थिक सुधारों से कृषकों की अवस्था बहुत दयनीय हो गई थी। उन्हें उपज का आधा भाग सरकार को भूमि कर के रूप में देना पड़ता था और शेष अनाज में से अपने जीवन निर्वाह के लिए अनाज रखकर, बाकी सब नियत दरों पर बेचना पड़ता था। फलस्वरूप किसानों का जीवन अत्यन्त दु:खमय हो गया था।

5. सरकारी कर्मचारी भी बहुत दु:खी थे, क्योंकि छोटे–से अपराध के लिए भी उन्हें कठोर दण्ड दिया जाता था। वे जनता में इतने अप्रिय हो गये थे कि लोग उन्हें प्लेग से अधिक खतरनाक समझते थे।

अलाउद्दीन की मृत्यु के साथ ही उसके आर्थिक सुधार भी समाप्त हो गए और लोगों ने सुख की सांस ली। डॉ. के. एस. लाल के अनुसार, ''वे नियम, वह जांच व कठोरता, जिससे आदेशों का पालन कराया जाता था और बाजार के लोगों को दिए जाने वाले दण्ड, अलाउद्दीन की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गये.........''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.11. अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु :

अलाउद्दीन के शासन के अन्तिम काल में उसके साम्राज्य में विद्रोह प्रारम्भ हो गया। उसका पारिवारिक जीवन भी दुःखमय होता गया। साथ ही बीमारी ने भी उसे आ घेरा। आखिर 2 जनवरी, 1316 ई. को इस महान् खिलजी सम्राट की मृत्यु हो गई।

6.12. अलाउद्दीन खिलजी का मूल्यांकन :

सर वूल्जले हेग ने लिखा है, ''अलाउद्दीन के शासनकाल से ही वास्तविक अर्थों में सुल्तान का श्रेष्ठ युग प्रारम्भ हुआ।'' अलाउद्दीन अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी तथा दृढसंकल्प वाला व्यक्ति था अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उचित अनुचित का विचार नहीं करता था। उसका कहना था, ''मैं नहीं जानता क्या कानूनी है और क्या गैर–कानूनी है। मैं राज्य के हित में जो उचित होता है, उसी के आदेश देता हूँ।'' इसी दृष्टिकोण से उसने अमीरों का दमन किया। एलफिंस्टन ने लिखा है कि यद्यपि उसने अनेक मूर्खतापूर्ण तथा क्रूर नियम लागू किये, किन्तु फिर भी वह एक सफल शासक था। डॉ. स्मिथ व लेनपूल उसे अत्याचारी एवं निर्दयी शासक मानते थे, किन्तु उसकी योग्यता को भी स्वीकार करते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अलाउद्दीन एक क्रूर व निरंकुश शासक था, जिसके शासनकाल में जनसाधारण को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। कृषक, व्यापारी, अमीर सभी अलाउद्दीन की नीतियों से दुःखी थे। हिन्दुओं पर उसने अत्यधिक अत्याचार किये तथा उन्हें दरिद्रता की चरम सीमा तक पहुंचा दिया। यह उसकी धार्मिक असहिष्णु का द्योतक है। उसकी निरंकुशता की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि उसने स्त्रियों व बच्चों तक को नहीं बख्शा, बल्कि स्त्रियों व बच्चों की भी हत्या करवा दी। दिल्ली सल्तनत का वह पहला शासक था जो इतना क्रूर था। अलाउद्दीन के शासनकाल के विषय पर प्रकाश डालते हुए प्रो. एस.आर. शर्मा ने लिखा है, ''विश्वासघात आतंक तथा लूट, ये तीन शब्द अलाउद्दीन खिलजी के बीस वर्ष के शासनकाल की विशेषताओं का सारांश व्यक्त करते हैं। विश्वासघात से उनका शासन आरम्भ हुआ, लूट की सम्पत्ति से फूला–फला ओर आतंक में उसका अन्त हुआ।''

यद्यपि उपर्युक्त दोष अलाउद्दीन में थे किन्तु उसकी अनेक योग्यताओं से इन्कार नहीं किया जा सकता। लेनपूल ने लिखा है, ''यद्यपि अलाउद्दीन उल्टे दिमाग का व्यक्ति था तथा कानून की उपेक्षा करता था तथापि वह बुद्धिमान एवं दृढ निश्चय वाला व्यक्ति था। स्थिति को पहचानकर उसी के अनुकूल अपनी योजनाओं को वह कार्यान्वित करवाता था।'' अलाउद्दीन अत्यन्त योग्य सेनापति था। उसने स्थायी सेना की नींव डाली तथा इस प्रकार दिल्ली की सुरक्षा का प्रबन्ध किया। अपनी विजयों के द्वारा लगभग सम्पूर्ण भारत पर विजय प्राप्त करके उसने राजनीतिक एकता की स्थापना की। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वह एक कुशल प्रशासक, विजेता व राजनीतिक सूझ–बूझ वाला सुल्तान था। इसी कारण उसे प्रमुख मध्यकालीन सुल्तानों में से एक माना गया है।

उल्लेखनीय है कि अलाउद्दीन बिल्कुल शिक्षित न था, परन्तु विद्वानों का आश्रयदाता था। अमीर खुसरो व हसन उसके समय के प्रमुख साहित्यकार थे उसने अनेक दुर्गों व मस्जिदों का भी निर्माण कराया। डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, ''उसमें एक कुशल प्रशासक तथा सेनापति के गुण जन्म से ही निहित थे, जो कि मध्यकालीन भारत में एक भी व्यक्ति में मिलने दुर्लभ थे।

6.13. अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 अल्लाउद्दीन खिलजी ने रणथम्भौर विजय कब की?

अ. 1299 ई. ब. 1301 ई.

स. 1303 ई. द. 1305 ई.

उत्तर – ....

प्रश्न 2 अल्लाउद्दीन के प्रशासनिक सुधारों को संक्षिप्त में बताइये। (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 अल्लाउद्दीन खिलजी के विजय अभियानों का विस्तारपूर्वक वर्णन करिये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग – 2 : सल्तनत काल–II

इकाई–7

मुहम्मद बिन तुगलक

संरचना

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 मुहम्मद तुगलग का प्रारम्भिक जीवन एवं सिंहासनारोहण
7.3 मुहम्मद तुगलक की योजनाएं –
7.3.1 गृहनीति
7.3.2 राजधानी परिवर्तन
7.3.3 सांकेतिक मुद्रा चलाना
7.3.4 कृषि विभाग का निर्माण
7.3.5 खुरासान विजय की योजना
7.3.6 धार्मिक नीति
7.4 मुहम्मद तुगलक की असफलताओं के कारण
7.5 मुहम्मद तुगलक की मृत्यु
7.6 मुहम्मद तुगलक का चरित्र
7.7 मुहम्मद तुगलक के चारित्रिक गुण
7.7.1 उच्च जीवन
7.7.2 परिवार प्रेमी
7.7.3 धर्म परायण
7.7.4 दानी
7.7.5 विद्वान
7.7.6 योग्य सेनापति
7.7.7 सफल विजेता
7.7.8 न्यायप्रिय
7.7.9 कुशल प्रबन्धक
7.8 मुहम्मद तुगलक के चारित्रिक दोष
7.9 क्या सुल्तान पागल था ?
7.10 सारांश
7.11 अभ्यास प्रश्नावली

7.0 उद्देश्य :

इस पाठ का मुख्य उद्देश्य मुहम्मद तुगलक की योजनाओं से पाठकों को अवगत कराना है तथा इन्ही योजनाओं के कारण ही सुल्तान की असफलता को भी बताना है। ये योजनाएं हैं –

–गृहनीति
–राजधानी परिवर्तन
–दो आब में कर वृद्धि
–सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

–कृषि विभाग की स्थापना

–खुरासान विजय की योजना

7.1 प्रस्तावना :

खुसरो कां का वध करने के पश्चात् गाजी मलिक ग्यासुद्दीन तुगलक के नाम से शासक बना। इस प्रकार उसने तुगलक वंश की नींव डाली। तुगलक वंश के शासकों ने 1320 ई. से 1414 ई. तक शासन किया। इस वंश के महत्त्वपूर्ण शासक निम्नलिखित हुए –

1. ग्यासुद्दीन तुगलक (1320–1325 ई.)
2. मुहम्मद तुगलक (1325–1351 ई.)
3. फीरोज तुगलक (1351–1388 ई.)
4. फीरोज के उत्तराधिकारी (1388–1414 ई.)

मुहम्मद बिन तुगलक, तुगलक वंश का प्रख्यात सुल्तान था इसे नये–नये आविष्कार करने का शौक था। इसने अपने शासन काल में अनेक सुधार एवं योजनाएँ की जैसे राजधानी परिवर्तन, मुद्रा सुधार, कृषि विभाग की स्थापना, दो आब में कर वृद्धि आदि लेकिन ये सभी योजनाएँ असफल रही क्योंकि इन योजनाओं को बनाने में तथा लागू करने में उसने सूझबूझ का साथ नहीं दिया और ना ही समय इन योजनाओं के अनुकूल था। फिर सुल्तान के भाग्य ने भी साथ नहीं दिया। परिणामस्वरूप ये सभी असफल हुए।

7.2 प्रारम्भिक जीवन एवं सिंहासनारोहण :

पितृघाती राजकुमार जूना 1325 ई. में दिल्ली में सिंहासन पर बैठा। उसने 'मुहम्मद तुगलकशाह' की उपाधि धारण की और अगले छब्बीस वर्षों तक वह शासन करता रहा। वह एक सीमान्त शासक का पुत्र था। उसका पालन–पोषण एक सैनिक की भांति हुआ था। वह बड़ा महत्वाकांक्षी युवक था तथा दिल्ली के सिंहासन को प्राप्त करना चाहता था। 1320 ई. में जब उसका पिता गयासुद्दीन सुल्तान बना तो उसने स्वयं को युवराज घोषित करके 'उलुगखां' की उपाधि धारण की 1321 ई. में वारंगल की चढ़ाई में उसे कटु विफलता का अनुभव हुआ लेकिन दो वर्ष पश्चात् ही उसने वारंगल के राजा को पराजित करने में सफलता हासिल कर ली। 1325 ई. में उसने अपने पिता का वध करवा दिया क्योंकि वह अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता था। पिता के वध बाद चालीस दिन तक वह तुगलकाबाद में ही रहा, तदुपरान्त बड़े ठाट–बाट से उसने दिल्ली में प्रवेश किया और सिंहासन पर बैठा। उसके स्वागत के लिए राजधानी को भली–भांती सजाया गया। अतः मुहम्मद ने सुल्तान के रूप में अपना जीवन अत्यन्त अनुकूल परिस्थितियों में प्रारम्भ किया। राज्य प्राप्त करने हेतु निन्दनीय प्रयत्न करने के बाद भी सिंहासनारोहण के समय परिस्थितियां बिल्कुल उसके पक्ष में रही। एस.आर.शर्मा के शब्दों में, "वह अपने युग की सामरिक विजयों में पारंगत होने के अतिरिक्त फारसी कला का प्रखर छात्र, लेखन शैली का आचार्य, वाग्विलास के युग का एक प्रखर प्रवक्ता, एक दार्शनिक तर्कशास्त्री, यूनानी हेतु विद्या आध्यात्म–विज्ञान में निपुण, जिससे तर्क करने में बड़े–बडे विद्वान भी डरते थे, गणित तथा विज्ञान में रूचि रखता था। समसामयिक लेखकों ने उसके निबन्ध चातुर्य तथा सुलेखन की प्रशंसा की है। अतः उसके व्यक्तित्व की छाप उसकी सामूहिक योजनाओं पर भी पडी तथा उसकी भयंकर विफलता के कारण उसे इस्लामी जगत का सबसे अधिक विद्वान मुर्ख की संदिग्ध उपाधि मिली।

7.3 मुहम्मद तुगलक की योजनाएं :

मुहम्मद तुगलक अपनी योजनाओं के लिये प्रसिद्ध है। उसे योजनाएं बनाने का बड़ा शौक था। उसके जनकल्याण हेतु कई योजनाएं बनायीं, किन्तु दुर्भाग्य से वे सभी असफल रहीं तथा साम्राज्य को आघात पहुंचा। उसकी प्रमुख योजनाएं इस प्रकार थी –

7.3.1 गृह–नीति – राजस्व सुधार (1326–1327 ई.) : मुहम्मद तुगलक अत्यधिक परिश्रमी शासक था। सिंहासनारोहण के उपरान्त शीघ्र ही उसने राजस्व–व्यवस्था में सुधार करने के लिए अनेक अध्यादेश जारी किये। पहले के अनुसार प्रान्तों की आय तथा व्यय का लेखा तैयार करने की आज्ञा दी। उसने प्रान्तीय सूबेदारों को लेखा तैयार करने के लिए आवश्यक अभिलेख तथा अन्य समग्री भेजने सूबेदारों को लेखा तैयार करने के लिए आवश्यक अभिलेख तथा अन्य सामग्री भेजने का आदेश दिया। दक्षिण, बंगाल, गुजरात आदि राज्य के दूरस्थ प्रान्तों से आय–व्यय सम्बन्धी संक्षिप्त लेखे दिल्ली भेजे गये और काम बिना किसी झंझट के चलता गया। सुल्तान ने यह परिश्रम इसलिए किया कि वह समस्त राज्य में एकसी राजस्व–व्यवस्था कायम करना चाहता था। यह देखना चाहता था कि कोई गांव भूमि–कर से न बच सके। चूंकि प्रान्तों में दूरियां थी अतः समय पर यह योजना नहीं हो सकी और असफल हो गई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.3.2 राजधानी परिवर्तन (1327 ई.) — 1327 ई. में मुहम्मद तुगलक ने अपनी राजधानी दिल्ली से हटाकर दक्षिण के देवगिरि नगर को बनाने का निश्चय किया। देवगिरि का नाम बदलकर दौलताबाद रख दिया गया।

कारण :राजधानी परिवर्तन के कारणों के सम्बन्ध में इतिहासकारों ने भिन्न–भिन्न मत प्रकट किए हैं —

1. बरनी के अनुसार दिल्ली की अपेक्षा देवगिरि साम्राज्य का अधिक केन्द्रीय स्थान था। अतः सुल्तान ने सुगमतापूर्वक शासन संचालन करने हेतु देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया।

2. कुछ इतिहासकारों के अनुसार राजधानी को मंगोलों के आक्रमण से सुरक्षित रखने की दृष्टि से यह कदम उठाया गया था।

3. इब्नबतूता के अनुसार दिल्ली के लोग सुल्तान को गाली–गलौच से भरे पत्र डाला करते थे। अतः सुल्तान ने दिल्ली के लोगों को दण्ड देने के उद्देश्य से यह कार्य किया था।

4. ख्वाजा मैंहदी हुसैन के अनुसार दक्षिण में मुस्लिम संस्कृति को फैलाने के लिए सुल्तान ने यह प्रशासनिक कदम उठाया था।

5. मुहम्मद तुगलक के सुदूर भागों में विद्रोहों से निपटने के लिए दक्षिण में एक प्रभावशाली शासकी केन्द्र बनाना आवश्यक समझा और देवगिरि को दूसरी राजधानी बनाया।

दिल्ली से देवगिरि : वास्तविक कारण जो भी रहे हों, पर यह निश्चित है कि दिल्ली के स्थान पर देवगिरि को राजध ाानी बनाने का आदेश जारी कर दिया गया। शाही परिवार के सदस्य, महत्त्वपूर्ण उच्च श्रेणी के सरदार तथा सरकारी कर्मचारी मय सामान के दौलताबाद (देवगिरि) पहुंच गए। सुल्तान ने दिल्ली से देवगिरि तक एक अच्छी सड़क बनवाई और उसके दोनों ओर छायादार वृक्ष लगवाये। उसके सड़कों पर धर्मशालाएं बनवाई।

सुल्तान ने सब लोगों को दिल्ली छोड़ने का आदेश दिया। बरनी के अनुसार "दिल्ली में एक भी आदमी को नहीं रहने दिया गया। अन्धे व लंगड़े को घसीटकर दौलतावाबद ले जाया गया....दिल्ली उजड़ गई। आदमी तो क्या वहां बिल्ली अथवा कुत्ते भी नहीं दिखाई देते थे।" इब्नबतूता ने लिखा है कि — "सुल्तान के आदेश पर खोज करने पर उसके गुलामों को एक लंगड़ा और एक अन्धा व्यक्ति मिले। लंगड़े को मार दिया गया और अंधे को घसीटकर दौलताबाद ले जाया गया, जहां उसकी केवल एक टांग ही पहुंच सकी।" यद्यपि सुल्तान ने 800 मील लम्बे मार्ग पर लोगों को हर प्रकार की सुविधाएं दी, तथापि थकावट, व विभिन्न कष्टों के कारण हजारों व्यक्ति मृत्यु का ग्रास हो गए। जो लोग सौभाग्य से बचकर दिवगिरि पहुंचे, वे अपने आपको निर्वासित समझते थे।

देवगिरि से पुनः दिल्ली लौटना : दिल्ली के लोगों को देवगिरि की जलवायु पसन्द न आई। सुल्तान को अपनी गलती का अहसास होने पर उसने सबको पुनः दिल्ली जाने की आज्ञा दे दी। लोगों को पुनः अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। राजकोष का धन व्यर्थ में बरबाद हुआ और सुल्तान की योजना पूरी तरह असफल रही।

आलोचना : मुहम्मद तुगलक की राजधानी परिवर्तन से साम्राज्य को जन तथा धन की अपार हुई और सुल्तान के सम्मान को भी भारी क्षति पहुंची। दिल्ली की इतनी दुर्दशा हुई कि वह अपने प्राचीन वैभव को पुनः प्राप्त न कर सकी। यद्यपि मुहम्मद तुगलक की योजना असफल रही, तथापि यह योजना निराधार नहीं थी। शासन प्रबन्ध को दृढ बनाने की दृष्टि से सुल्तान ने देवगिरि को अपनी दूसरी राजधानी बनाया और स्थानान्तरण के समय उसने प्रजा को यथासम्भव सुविधाएं भी प्रदान की। इतना ही नहीं, योजना साम्राज्य के हित में न समझने पर उसने दिल्ली को पुनः राजधानी बनाना स्वीकार कर लिया। राजधानी परिवर्तन कोई नई बात नहीं थीं इल्तुतमिश ने लाहौर के स्थान पर दिल्ली को राजधानी बनाया था। अकबर ने कुछ समय के लिए फतेहपुर सीकरी को राजधानी होने का सम्मान दिया था। संक्षेप में, योजना तो अच्छी थी, परन्तु सुल्तान ने इसे क्रियान्वित करने में बहुत गलती की। बरनी के अनुसार, "बिना किसी परामर्श के और अपनी इस योजना के लाभ और हानियों पर पूरी तरह विचार किए बिना वह दिल्ली पर तबाही लाया।"

दोआब में कर वृद्धि (1330 ई.) : 1330 ई. में मुहम्मद तुगलक ने दोआब में भूमि कर बढ़ा दिया। बरनी के अनुसार भूमि कर 10 या 20 गुना, फरिश्ता के अनुसार तीन या चार गुना तथा डॉ. मेंहदी हुसैन के अनुसार दो गुना बढ़ा दिया गया।

कारण : बरनी के अनुसार सुल्तान ने दोआब की जनता को दण्ड देने तथा राजकोष में वृद्धि करने के लिए यह कदम उठाया था। बदायूंनी के अनुसार, "यह कर दोआब की विद्रोही हिन्दू प्रजा को दण्ड देने तथा उस पर नियन्त्रण रखने के लिए लगाया गया था।" आधुनिक इतिहासकारों का मानना है कि सुल्तान ने अपनी सैन्य शक्ति तथा शासन प्रबन्ध सुदृढ करने हेतु भूमिकर बढ़ाया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कर वृद्धि तथा अकाल से किसानों की शोचनीय दशा : कर वृद्धि के वर्ष में दुभाग्य से दोआब में अकाल पड़ गया, किन्तु सरकारी कर्मचारियों ने कठोरता से कर वसूल किया, इससे किसानों की दशा दयनीय हो गई और वे खेती छोड़कर वनों में भाग गए। डॉ. ईश्वरीप्रसाद लिखते हैं, ''दुर्भाग्य से यह योजना उस समय कार्यान्वित की गई जब दोआब में भयंकर अकाल पड़ रहा था और उसके प्रभावों के कारण जनता के क्रष्ट और भी अधिक बढ़ गए थे, किन्तु इससे सुल्तान सर्वथा दोषमुक्त नहीं हो जाता क्योंकि उसके पदाधिकारी बढ़ी हुई दर से अत्यन्त कठोरतापूर्वक कर वूसल करते रहे ओर अकाल की उन्होंने कोई परवाह न की...उपचार किया गया, किन्तु बहुत देर से।'' बरनी का मानना है, ''सुल्तान ने किसानों का जंगली पशुओं के समान शिकार किया।'' इस अतिश्योक्तिपूर्ण कथन के बावजूद यह स्वीकार करना पड़ेगा कि किसानों को कठोर दण्ड दिया गया। अतः दोआब में अराजकता फैल गई। वास्तविक स्थिति का ज्ञान होने पर सुल्तान ने कर वापस ले लिए। उसने ऋण, निःशुल्क भोजन, चारा देकर तथा सिंचाई हेतु कुओं, तालाबों एवं नहरों को बनवाकर किसानों को राहत पहुंचाने का पूरा प्रयास किया, किन्तु कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, क्योंकि तब तक काफी देर हो चुकी थी। डॉ. श्रीवास्तव के अनुसार, ''परन्तु उनसे कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि ये सहायता कार्य काफी देर से किए गए थे तथा सहायता का प्रयोग किसानों ने क्षुधापूर्ति के लिए किया।'' दोआब उजड़ गया था और पुनः पहले जैसी समृद्धि प्राप्त न कर सका तथा जनता इस घटना को नहीं भूल सकी।

डॉ. ईश्वरीप्रसाद इस कदम को सही मानते हैं। प्रो. गार्डनर ब्राउन भी लिखते हैं, ''दोआब साम्राज्य का सबसे अधिक धनी तथा समृद्धिशाली भाग था। अतएव इस भाग से अधिक कर वसूल किया जा सकता था।'' सुल्तान की कर वृद्धि की योजना उचित थी, किन्तु इसे सहीं ढंग से कार्यान्वित न करने के कारण यह असफल रही तथा किसानों व साम्राज्य को नुकसान पहुंचा।

7.3.3 सांकेतिक मुद्रा चलाना — मुहम्मद तुगलक को नई—नई योजनाएं बनाने का शौक था अतः उसने मुद्रा नीति में भी परिवर्तन किये। मुहम्मद तुगलक ने अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में सोने और चांदी के अनेक सुन्दर सिक्के चलाएं। उसने मुद्रा प्रणाली में सुधार किए तथा बहुमूल्य धातुओं के अपेक्षित मूल्य निश्चित किए। मुहम्मद तुगलक के सिक्कों में से अनेक अपनी बनावट और कलापूर्ण डिजाइनों के लिए प्रसिद्ध थे।

सन् 1330 ई. में मुहम्मद तुगलक ने अपने राज्य में पीतल तथा तांबे की सांकेतिक मुद्रा जारी करने का महत्त्वपूर्ण प्रयोग किया। इस योजना के मूल में निम्नांकित कारण थे —

1. बरनी आदि इतिहासकारों के अनुसार सुल्तान ने रजकोष की हानि को पूरा करने और व्यापार को पुनः व्यवस्थित तथा उन्नत करने के लिए पीतल और तांबे की सांकेतिक मुद्रा चलाई।

2. बहुत से आधुनिक इतिहासकारों का कहना है कि मुहम्मद तुगलक एक महत्त्वाकांक्षी शासक था जो नए—नए प्रदेश जीतना और शासन—व्यवस्था को कुशल बनाना चाहता था। इस इच्छा की पूर्ति के लिए उसने सांकेतिक मुद्रा चलाई।

3. कुछ इतिहासकारों के मतानुसार मुहम्मद तुगलक को नए—नए प्रयोग करने का बहुत शौक था और भारतीय मुद्रा के इतिहास में एक नया इकाई प्रारम्भ करने की लालसा से ही उसने तांबे के सिक्के चलाए।

4. एक यह भी मत है कि मुहम्मद तुगलक को चीनी व ईरानी शासकों से प्रेरणा मिली थी जिन्होंने तेरहवीं शताब्दी में अनेक देशों में सांकेतिक मुद्रा प्रचलित की थी। नवीनता के प्रेमी सुल्तान के मन में भी ऐसा ही प्रयोग करने की इच्छा उत्पन्न हो गई।

उपर्युक्त कारणों से मुहम्मद तुगलक ने एक ओदश जारी करके तांबे के सिक्कों को कानूनी मुद्रा घोषित कर दिया और मूल्य की दृष्टि से उन्हें सोने व चांदी के सिक्कों के बराबर रख दिया। लोगों से कहा गया कि वे इन सिक्कों का सोने व चांदी के सिक्कों की भांति प्रयोग करें। पर सुल्तान ने यह जबर्दस्त भूल कर दी कि सिक्कों के निर्माण पर राज्य का एकाधिकार स्थापित नहीं किया, अर्थात आज की भांति टकसाल पर राज्य का नियन्त्रण नहीं रखा। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही समय में घर—घर में नकली सिक्के बनना शुरू हो गया। उन दिनों राजकीय टकसाल में ढाले हुए सिक्कों की बनावट, डिजाइन आदि की दृष्टि से ऐसे नहीं होते थे कि लोग खुद उन्हें सरलतापूर्वक ढाल सकें। सुल्तान की इस भूल से राजकोष को भारी हानि पहुंची क्योंकि लोग अपना लगान और सूबेदार अपना वार्षिक कर नकली सिक्कों से चुकाने लगे। सोने और चांदी के सिक्के छिपाकर रखने लगे और तांबे के नए सिक्के ही प्रयोग में लाने की प्रवृत्ति फलती—फूलती गई। विदेशी व्यापारी भारतीय वस्तुओं को खरीदते समय तो सांकेतिक मुद्रा का प्रयोग करने लगे, लेकिन अपना माल बेचते समय उन्होंने तांबे के सिक्के लेने से इन्कार कर दिया। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि देश का व्यापार चौपट हो गया ओर चारों ओर भंयकर अव्यवस्था फैल गई। केवल तीन—चार वर्षों में ही इस योजना से साम्राज्य को इतनी भारी हानि पहुंची कि सुल्तान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

घबरा गया। वह सांकेतिक मुद्रा को वापस लेने को बाध्य हो गया। उसने आदेश निकाला कि लोग राजकोष से पीतल व तांबे के सिक्कों के बदले सोने व चादी के सिक्के ले जाएं। इस आदेश का परिणाम यह हुआ कि लोगों ने राज्य को ठगा ओर राजकोष को भारी हानि पहुंचा कर अन्धा–धुन्ध धन कमा लिया। कहा जाता है कि तांबे के इतने सिक्के इक्ट्ठे हो गए कि उनके बड़े–बड़े ढेर वर्षों तक शाही खजाने के सामने पड़े रहे।

मुहम्मद तुगलक की यह योजना पूरी तरह असफल हो गई, तथापि इसे सैद्धान्तिक रूप से निराधार कहना ठीक नहीं होगा। डॉ. मेहंदी हुसैन के अनुसार – ''सुल्तान का प्रयोग सामूहिक रूप से अच्छा था और राजनीतिज्ञतापूर्ण था, परन्तु उसने इसे कार्य रूप देने में बहुत गलती की।'' तांबे के सिक्के चलाने से पूर्व टकसाल पर राज्य का एकाधिकार स्थापित करना चाहिए था ओर प्रचलित तांबे के सिक्कों को राजकोष में जमा कर लेना चाहिए था। पर सुल्तान ने ऐसा नहीं किया।

7.3.4 कृषि विभाग का निर्माण – मुहम्मद तुगलक ने कृषि की उन्नति के लिए कृषि विभाग की स्थापना की। उसका नाम 'दीवाने कोही' रखा गया। राज्य की ओर से आर्थिक सहायता देकर कृषि के योग्य भूमि का विस्तार करना इस विभाग का उद्देश्य था। इस कार्य के लिए साठ वर्ग मील का एक भू–भाग चुनकर उसमें बारी–बारी से विभिनन फसलें बोयीं गयीं। इस योजना के अन्तर्गत सरकार ने दो वर्ष में लगभग सत्तर लाख रूपया व्यय किया। इस भू–भाग की देख–रेख के लिए बड़ी संख्या में रक्षक तथा पदाधिकारी नियुक्त किये गये। किन्तु अनेक कारणों से यह प्रयोग असफल रहा। पहला कारण असफलता का यह था कि प्रयोग के लिए चुना गया यह भू–क्षेत्र उपजाऊ नहीं था। दूसरा कारण यह था कि प्रयोग नितान्त नया था और इस सम्बन्ध में कोई पूर्व उदाहरण विद्यमान नहीं था। तीसरा तीन वर्ष का समय कम था और उसमें ठोस परिणाम की आशा करना व्यर्थ था। इतने अल्प समय में किसी भी ठोस परिणाम की आशा नहीं हो सकती थी। चौथा कारण यह था कि योजना के लिए निर्धारित किया गया धन सही अर्थ में प्रयोग नहीं किया गया क्योंकि उसमें से कुछ तो भ्रष्ट पदाधिकारी हड़प गये तथा खुद किसानों ने अपनी निजी आवश्यकताओं पर व्यय कर दिया। इस प्रकार मुहम्मद तुगलक का यह प्रयोग भी असफल रहा और उसे इस योजना को त्यागना पड़ी।

7.3.5 खुरासान–विजय की योजना – मुहम्मद तुगलक भी अलाउद्दीन की भांति भारत की सीमाओं के वाहर के देशों को जीतने की महत्त्वाकांक्षा रखता था। अपने शासनकाल के प्रारम्भ में ही उसने खुरासान, इराक तथा ट्रान्स–आक्सियाना को जीतने की योजना बनायी। इस योजना का कारण यह था कि कुछ खुरासानी अमीर सुल्तान की अपव्ययतापूर्ण उदारता से आकृष्ट होकर उसके दरबार में आ गये थे, उन्होंने उसे खुरासान की विजय के लिए उत्तेजित किया। तीन लाख सत्तर हजार की एक विशाल सेना एकत्र की गयी और एक वर्ष का वेतन अग्रिम रूप में उसे राजकोष से दिया गया। किन्तु योजना कार्यान्वित न की जा सकी और सेना बरखास्त करनी पड़ी क्योंकि सुल्तान ने अनुभव किया कि राज्य के आर्थिक साधनों पर अत्यधिक बोझ डाले बिना इतनी बड़ी सेना का रखना असम्भव है। खुरासान तथा भारत के बीच स्थित बर्फ से ढके हुए विशाल पर्वतों को पार करना तथा मार्ग के प्रदेशों की शत्रुतापूर्ण जनता से युद्ध करना सरल कार्य न था। इसके अतिरिक्त अब खुरासान की राजनीतिक स्थिति भी पहले से सुधर गयी थी, इसलिए योजना त्यागनी पड़ी।

7.3.6 धार्मिक नीति – अपने पूर्व शासकों की अपेक्षा मुहम्मद तुगलक की धार्मिक नीति अधिक उदार थी। उसने शरीयत की उपेक्षा की और बुद्धि को राजनीतिक, आचरण का आधार बनाने का प्रयत्न किया। उसने निश्चय किया कि राजनीतिक तथा शासन–सम्बन्धी विषयों में लौकिक विचारों की ही प्रधानता होनी चाहिए। उसने उलेमाओं को राजनीति में अलग रखा, किन्तु वास्तव में सुल्तान शरा को चुनौती नहीं देना चाहता था। वह सभी महत्त्वपूर्ण विषयों में उलेमाओं से परामर्श किया करता था, यद्यपि वह उनकी सलाह को स्वीकार तभी करता था जब वे तर्कसंगत एवं समयानुकूल होती थी। न्याय–शासन में उलेमाओं के एकाधिकार को सुल्तान ने समाप्त कर दिया। यदि उलेमा के विरूद्ध बगावत, राजविद्रोह अथवा धार्मिक संस्थाओं के धन को गबन करने का अपराध सिद्ध हो जाता था तो वह उन्हें कठोर दण्ड देता था, अतः अलाउद्दीन खिलजी की भांति वह भी शासन–कार्य में उलेमाओं के हस्तक्षेप का विरोधी था। सर्वोच्च न्यायाधीश वह स्वयं था। बलबन की भांति उसका भी विश्वास था कि ''सुल्तान ईश्वर की छाया'' है। उसके सिक्कों पर 'अल सुल्तान जिल्ली अल्लाह' (ईश्वर की छाया, सुल्तान) खुदा रहता था। उसके कुछ सिक्कों पर इस प्रकार के छन्द मिलते हैं, ''प्रभुत्व का अधिकारी प्रत्येक व्यक्ति नहीं होता, वह चुने हुए व्यक्ति को प्रदान की जाती है'', सुल्तान ईश्वर की छाया है'', ''ईश्वर सुल्तान का समर्थक है'', आदि। अतः अपने सिक्कों के द्वारा उसने जनता को सुल्तान के महत्व को समझाने का प्रयास किया तथा हर प्रकार से खलीफा के नाम का उल्लेख करना बन्द करवा दिया। उसने हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं का भी ध्यान रखा। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, ''उसमें धार्मिक कट्टरता एवं असहिष्णुता नहीं थीं सुसंस्कृति के कारण उसका दृष्टिकोण विस्तृत हो गया था। तर्कशास्त्रियों एवं दार्शनिकों से बातचीत करते–करते उसमें वह सहिष्णुता उत्पन्न हो गयी थी, जिसके लिए अकबर की इतनी प्रशंसा की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जाती है। अपनी न्यायप्रियता, उदारता तथा व्यक्तिगत योग्यता के बावजूद सुल्तान दिन–प्रतिदिन जनता में अप्रिय होता गया। उसका विचार था कि शायद शरा की उपेक्षा के कारण जनता में असन्तोष है, अतः उसने अपने शासन के अन्तिम दिनों में खिलाफत के प्रति अपनी नीति बदल दी। उसने मिस्र के खलीफा से अपने पद के लिए मान्यता प्राप्त करने हेतु प्रार्थना की। उसने सिक्कों में से अपना नाम हटवाकर खलीफा का नाम खुदवाया। समस्त राजाज्ञाएं अब सुल्तान के नाम पर नहीं, बल्कि खलीफा के नाम से जारी की। 1340 ई. में उसने मिस्र के खलीफा के वंशज गयासुद्दीन को आमन्त्रित किया, जिसकी स्थिति एक भिखारी की सी थी। सुल्तान ने उसके प्रति अत्यन्त नम्रता एवं सम्मानपूर्ण व्यवहार किया तथा बहुमूल्य वस्तुएं भेंद स्वरूप अर्पित कीं, किन्तु इतना करने पर भी मुहम्मद तुगलक अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त नहीं कर सका।

7.4 मुहम्मद तुगलक की असफलताओं के कारण :

मुहम्मद तुगलक के आदर्श बहुत उच्च थे। उसने राज्य–कार्य में अत्यधिक रूचि ली नई–नई योजनाएं तैयार कर प्रजा के हित ओर समृद्धि की आकांक्षा की। उसने एक विशाल साम्राज्य का स्वामी होने के अनुरूप महत्त्वाकांक्षी सैनिक योजनाएं भी बनाई, लेकिन दुर्भाग्यवश वह एक असफल सुल्तान रहा जिसकी मृत्यु पर प्रजा को सन्तोष मिला और सम्भवतः प्रजा से सुल्तान की आत्मा को भी। मुहम्मद की विफलता के मूल में मुख्यतः निम्नलिखित चारित्रिक, प्रशासनिक, धार्मिक और राजनीतिक कारण निहित थे –

1. मुहम्मद तुगलक के चरित्र में विराधी तत्त्वों का इतना विचित्र सम्मिश्रण था कि जनता उसे कभी नहीं समझ सकी। स्वयं उसकी भी यह गलती रही कि उसने प्रजा को अपने वास्तविक विचारों से परिचित कराने का प्रयत्न नहीं किया। उसके विलक्षण चरित्र ने एक ओर तो मुस्लिम और धार्मिक वर्ग को नाराज कर दिया तथा दूसरी ओर बहुसंख्यक गैर–मुस्लिम प्रजा भी उससे सन्तुष्ट नहीं रह सकी।

2. मुहम्मद तुगलक ने जो भी प्रशासकीय योजनाएं तैयार की, वे अधिकतर असफल सिद्ध हुई। राजधानी–परिवर्तन, सांकेतिक मुद्रा का चलन, दोआब में करारोपण आदि कार्यों की असफलता के कारण साम्राज्य को जन–धन की अपार क्षति हुई। लगभग प्रत्येक शाही कदम जनता के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ, अतः लोग उसके विरोधी बन गए।

3. मुहम्मद तुगलक के स्वतन्त्र, उदार और सहिष्णुतापूर्ण विचार तत्कालीन युग के अनुरूप नहीं थे। वास्तव में सुल्तान अपने समय से आगे था और अपने प्रगतिशील विचारों के कारण रूढ़िवादी मुस्लिम सरदारों तथा मुस्लिम जनता में अप्रिय हो गया। उलेमा–वर्ग, जिसका मुस्लिम प्रजा पर बहुत प्रभाव था, सुल्तान से असन्तुष्ट रहा।

4. सुलतान ने अपनी दानशीलता, प्रीतिभोज–प्रियता और उपहार देने की आदत के कारण राजकोष को जबरदस्त आर्थिक हानि पहुंचाई। प्रजा की समृद्धि भी नहीं हो सकी, अतः साम्राज्य पतन और विघटन की और अग्रसर हुआ।

5. मुहम्मद तुगलक यद्यपि उदार और कोमल–हृदय था, लेकिन क्रोध आने पर वह राक्षस जैसा व्यवहार करता था। अपने निर्दयतापूर्ण और अमानुषिक दण्डों के कारण उसने चारों ओर आतंक पैदा कर दिया। लोग उसे हत्यारा समझने लगे ओर स्थिति यह बन गई कि साधारण से अपराध पर भी लोगों को सनकी सुल्तान द्वारा प्राण दण्ड या अन्य कठोर दण्ड का भय सताने लगा ओर सुल्तान के सामने उपस्थित होने के बजाय उन्होंने बगावत का झण्डा खड़ा करना उपयुक्त समझा। सुल्तान के विरूद्ध जो अनेक विद्रोह हुए उनमें कुछ तो केवल सुल्तान द्वारा दण्डित किए जाने के भय के कारण हुए।

6. प्रजा में सुल्तान की मौलिक और उपयोगी सुधार–योजनाओं को समझने की क्षमता नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि सुल्तान ओर प्रजा के बीच पारस्परिक विश्वास की भावना पैदा नहीं हो सकी। सुलतान को प्रजा का सहायोग नहीं मिला और उसकी प्रत्येक योजना असफल हुई।

7. मुहम्मद तुगलक को वैसे योग्य ओर विश्वसनीय सलाहकार तथा सेनापति नहीं मिल सके जैसे अलाउद्दीन खिलजी को उपलब्ध थे। उसका कोई ऐसा हितैषी नहीं था जो उसे ठीक उसी तरह उसकी योजनाओं के दोष बताता जिस तरह अलाउल्मुल्क अलाउद्दीन को बताया करता था। मुहम्मद तुगलक के पास ऐसे शासन तन्त्र का अभाव भी रहा जो प्रजा के विचारों से उसे परिचित कराता। इस तरह न तो प्रजा सुल्तान को समझ सकी ओर न सुल्तान प्रजा की नब्ज पहचान सका।

8. प्रतिकूल परिस्थितियों ने भी सुलतान की आशाओं और योजनाओं पर पानी फेर दिया। प्राकृतिक प्रकोपों, दुर्भिक्ष, महामारी आदि ने प्रजा को अनेक कष्ट पहुंचाए और कई सैन्कि अभियानों को असफल बना दिया। इनसे साम्राज्य के कोष को भारी क्षति हुई।

9. मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण–नीति में विवेक का परिचय नहीं दिया। अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण पर आक्रमण तो किया था, लेकिन वहां के सुदूर प्रदेशों को साम्राज्य में मिलाने की कोशिश नहीं की थी। मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण को साम्राज्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

का अंग बनाने की गलत नीति अपनाई जो असफल हुई।

10. मुहम्मद तुगलक का यह भी दुर्भाग्य था कि उसके विश्वसनीय सुबेदारों और पदाधिकारियों ने ही उसके विरूद्ध विद्रोह कर साम्राज्य की सैनिक शक्ति और स्थिरता को भारी हानि पहुंचाई। अवध का सूबेदार ऐनुल्मुल्क मुल्तानी सुल्तान का मित्र और चोटी का अनुभवी अमीर था, पर उसने इस आदेश मात्र पर विद्रोह कर दिया कि उसे दक्षिण की शासन–व्यवस्था सम्भलने को कहा गया और इस आदेश के पीछे सुल्तान का कोई बुरा मंतव्य नहीं था। जिन विदेशी अमीरों पर सुल्तान ने भरोसा किया उनमें से अधिकांश ने सुल्तान के साथ धोखा किया।

11. सुल्तान की असफलता का एक बड़ा कारण यह भी था कि उसने अपनी कठिनाइयों तथा सल्तनत के प्रति विद्रोहों आदि पर कभी शान्ति के साथ विचार–विमर्श नहीं किया और कठिनाइयों का ठोस मूल्यांकन कर उनके निवारण के लिए उचित कदम नहीं उठाया। मुहम्मद तुगलक का रवैया यह रहा कि इधर समस्या उठी ओर उधर निदान किया। इस बात पर विचार नहीं किया कि भविष्य में वैसी समस्या फिर न उठने पाए। इस प्रकार सुलतान की नीतियों में स्थायित्व और सही मूल्यंकन की कमी रही। संक्षेप में, इन्हीं सब कारणों से सुल्तान मुहम्मद–बिन तुगलक एक असफल शासक सिद्ध हुआ।

7.5 मुहम्मद तुगलक की मृत्यु :

जब मुहम्मद तुगलक तांगी का पीछा कर रहा था, तो मार्ग में वह बीमार पड़ गया ओर 20 मार्च, 1351 ई. को उसकी मृत्यु हो गयी। बदायूंनी के अनुसार, "सुल्तान को उसकी प्रजा से तथा प्रजा को उसके सुल्तान से मुक्ति मिल गई।"

7.6 मुहम्मद तुगलक का चरित्र :

मुहम्मद तुगलक अपनी ही किस्म का सुल्तान था तथा अन्य सुल्तानों से अलग था। उसका चरित्र विचित्र था। जहां बरनी तथा इसामी एवं कुछ आधुनिक इतिहासकार उसे रक्त पिपासु तथा निर्दयी मानते हैं, वहीं एलफिन्स्टन ने उसे पागल ठहराया है। कुछ भारतीय इतिहासकार उसके चरित्र को उज्जवल बताते हैं। इमें मुहम्मद तुगलक के चरित्र को समझने के लिए उसके चरित्र के दोनों पहलुओं का अध्ययन करना पड़ेगा।

7.7 मुहम्मद तुगलक के चारित्रिक गुण :

7.7.7. उच्च जीवन – मुहम्मद तुगलक का व्यक्तिगत जीवन निर्मल, पवित्र तथा उच्च था। वह विलासी नहीं था। वह न तो स्वयं मद्यपान करता था और न ही प्रजा को उसने इसकी आज्ञा दी। वह औरंगजेब की तरह कट्टर सुधारवादी भी नहीं था। वह नृत्य एवं संगीत का आनन्द लेता था।

7.7.2. परिवार प्रेमी – मुहम्मद तुगलक को अपने परिजनों तथा मित्रों से बहुत प्रेम था। उसके मन में अपने पिता गयासुद्दीन के प्रति श्रद्धा थी, अतः उसने उसका नाम अपने सिक्कों पर अंकित करवाया। वह अपने गुरुजनों तथा स्त्रियों का सम्मान करता था। अपनी माता, मित्रों तथा अपने चचेरे भाई फीरोज से उसे अथाह प्रेम था।

7.7.3. धर्मपरायण – मुहम्मद तुगलक प्रतिदिन पांच बार नमाज पढ़ता था। उसका ईश्वर, हजरत मुहम्मद तथा खलीफा में पूरा विश्वास था। वह एक धर्मसहिष्णु शासक था। उसने हिन्दुओं के प्रति उदारता का व्यवहार किया। उन्हें उच्च पदों पर भी नियुक्त किया एवं सती–प्रथा के निषेध का प्रयत्न किया।

7.7.4. दानी–मुहम्मद तुगलक एक दानी सुल्तान था वह दिल खोलकर दान देता था। उसका कट्टर आलोचक बरनी भी उसकी दानशीलता से बहुत प्रभावित हुआ। वह दान देते समय कोई भेदभाव नहीं करता था। इब्नबतूता ने लिखा है, "सुल्तान इतना दानी था कि एक भिखारी को सारा राजकोष दे देने पर भी अपनी दानशीलता पर गर्व नहीं करता था। उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उसकी दानशीलता और दयालुता थी।" यदि हम इस क्षेत्र में उसकी तुलना हर्ष से करें, तो अनुचित न होगा।

7.7.5. विद्वान – मुहम्मद तुगलक बहुत बड़ा विद्वान भी था। वह गणित, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, चिकित्साशास्त्र आदि का बहुत बड़ा विद्वान था। वह शरीयत (मुस्लिम धार्मिक कामों में) का भी ज्ञाता था। वह अरबी तथा फारसी भाषा का प्रकाण्ड पण्डित था। बरनी लिखता है, "वह इतना विद्वान् था कि आसफ और अरस्तु भी उसकी योग्यता को देखकर चकित हो जाते।" मुहम्मद तुगलक एक अच्छा कवि भी था। उसकी लेखन शैली आश्चर्यजनक थीं वह एक कुशल वक्ता भी था। उसे संगीत से भी बड़ा प्रेम था। वह विद्वानों का बहुत बड़ा संरक्षक भी था।मुहम्मद तुगलक विद्वत्ता के क्षेत्र में हर्ष से भी दो कदम आगे था। वह अपने समय का महान् विद्वान् था। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, "भारत की मुस्लिम विजय के बाद जितने भी बादशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठे, मुहम्मद तुगलक निःसंदेह उनमें सबसे अधिक विद्वान् था।" वून्जले हेग ने लिखा है – "मुहम्मद तुगलक दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाले असाधारण शासकों में से एक था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.7.6. योग्य सेनापति — मुहम्मद तुगलक योग्य सेनापति था। उसने गुर्सस्प के विद्रोह को दबाया तथा कम्पीदेव तथा बलाल तृतीय को भी परास्त कियां उसने मुल्तान, लाहौर, बंगाल, अवध आदि के विद्रोह का दमन कर दिया। वह राजनीतिक परिस्थितियों के कारण ही दक्षिण के विद्रोह का दमन न कर सका। वह अन्त तक विद्रोह को कुचलने का प्रयत्न करता रहा।

7.7.7. सफल विजेता — मुहम्मद तुगलक एक महत्त्वाकांक्षी शासक था। उसने कई राज्यों पर विजय प्राप्त की। कश्मीर और राजस्थान को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर उसका अधिकार था। उसके साम्राज्य में 23 प्रान्त थे। उसके शासनकाल के अन्तिम दिनों में उसके साम्राज्य का विघटन होने लगा। डा़. पी.सरन के अनुसार, ''मुहम्मद तुगलक के समय में ही दिल्ली साम्राज्य का विघटन आरम्भ हो गया ओर समस्त दक्षिण, गुजरात, सिन्ध, बंगाल आदि स्वाधीन हो गये, परन्तु साम्राज्य के इस प्रकार असंगठित होने के लिए केवल मुहम्मद तुगलक ही उत्तरदायी नहीं था।

7.7.8. न्यायप्रिय — मुहम्मद तुगलक एक न्यायप्रिय सुल्तान था। वह न्याय करते समय हिन्दू–मुसलमान, शिया–सुन्नी, सूफी–सैय्यद, अमीर–गरीब आदि में किसी प्रकार का कोई भेद–भाव नहीं करता था। वह स्वयं भी अपराधी होने पर काजी के समक्ष उपस्थित होता था। एक बार एक व्यक्ति द्वारा उसके विरूद्ध मुकदमा करने पर सुल्तान ने दण्ड के तौर पर 21 कोड़े खाये थे। उसने काजियों, मुफ्तियों एंव अमीरों के मुकदमों के निर्णय हेतु विशेष प्रकार की अदालतें स्थापित की।

7.7.9. कुशल प्रबन्धक — मुहम्मद तुगलक एक कुशल प्रबंधक भी था। उसने मुस्लिम उलेमा वर्ग को शासन में हस्तक्षेप नहीं करने दिया। उसने कृषि तथा न्याय के क्षेत्र में कुछ सुधार किए। उसने राज्य की आय तथा व्यय का हिसाब रखने का भी उचित प्रबंध किया। उसके द्वारा बनायी गयी योजनाएं सैद्धान्तिक दृष्टि से बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण थीं, किन्तु दुर्भाग्य से उसकी योजनाएं असफल रहीं।

7.8 मुहम्मद तुगलक के चारित्रक दोष :

मुहम्मद तुगलक एक कुशल प्रबंधक भी था। उसने मुस्लिम उलेमा वर्ग को शासन में हस्तक्षेप नहीं करने दिया। उसने कृषि तथा न्याय के क्षेत्र में कुछ सुधार किए। उसने राज्य की आय तथा व्यय का हिसाब रखने का भी उचित प्रबंध किया। उसके द्वारा बनायी गयी योजनाएं सैद्धान्तिक दृष्टि से बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण थीं, किन्तु दुर्भाग्य से उसकी योजनाएं असफल रहीं।

7.8.7. निर्दयी — मुहम्मद तुगलक एक रक्तपिपासु तथा निर्दयी शासक था। उसने सैकडों व्यक्तियों को विभिन्न अपराधों के लिए अमानवीय दण्ड दिए। उसने अपने विद्रोही भतीजे गुर्सस्प की जीवित खाल खिंचवा दी तथा उसका मांस उसके परिजनों का खिलाया। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार ''सुल्तान यद्यपि एक राक्षस की भांति दुष्ट नहीं था, तथापि वह निर्दयी अवश्य था।'' इब्नबतूता लिखता है, ''सुल्तान रक्तपात में निष्ठुर था और कोई ऐसा समय बहुत कम होता था, जब उसके द्वार पर किसी ऐसे मनुष्य का शव पड़ा हुआ न मिले, जिसकी हत्या की गयी हो मैं देखा करता था, जब उसके महल के द्वार पर बहुत से लोगों की हत्या होती रहती थी और उनके शव वहां पड़े रहते थे।'' बरनी ने लिखा है – ''सुल्तान ने निरपराध मुसलमानों का रक्त इतनी क्रूरता से बहाया कि सर्वदा उसके महल के दरवाजे से बहते हुए खून का दरिया देखा जाता था।''

7.8.2. जल्दबाज तथा अहंकारी — मुहम्मद तुगलक जल्दबाज तथा अहंकारी भी था। उसने योजना के कार्यान्वयन में जल्दीबाजी से काम लिया, जिससे योजनाएं असफल हो गयी। वह जिद्दी भी था। वह जब कोई बात ठन लेता था, तो उसे पूरा करके ही छोडता था।

7.8.3. अदूरदर्शी तथा बुद्धिहीन — मुहम्मद तुगलक एक अदूरदर्शी तथा बुद्धिहीन शासक था। वह इतना अहंकारी था कि उसने अमीरों तथा सरदारों से कभी परामर्श नहीं लिया। डॉ. सरन के अनुसार ''मुहम्मद तुगलक अत्यन्त उच्च विचारों तथा विलक्षण बुद्धि वाला था। वह अपने विचारों के अनुसार साम्राज्य को हर प्रकार से आदर्श बनाने की चेष्टा करता था, किन्तु उसमें न तो अवसर को और न ही मानव चरित्र को पहचानने की क्षमता थी। उसकी विद्वत्ता प्रायः उसके दुर्भाग्य का कारण बनी। उसके प्रतिकूल अलाउद्दीन खिलजी, जो कोरा लठ था, सौभाग्य से अपनी आकांक्षाओं में सदैव सफल हुआ, क्योंकि उसमें एक बड़ा गुण यह था कि वह अपने परामर्शदाताओं की सलाह से सब काम करता था।

7.8.4. उग्र स्वभाव वाला — सुल्तान सहनशील तथा गम्भीर नहीं था। वह छोटी–सी बात पर क्रूद होकर कठोर दण्ड दे देता था। वह प्रजा से अपने आदेशों के पालन की अपेक्षा करता था।, किन्तु उसने स्वयं ने प्रजा की भावना को कभी समझने का प्रयत्न नहीं किया, अतः वह असफल रहा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.9 क्या सुल्तान पागल था ?

मुहम्मद तुगलक अपने समय के प्रकाण्ड विद्वानों में एक था। उसमें समझबूझ, योग्यता, बुद्धिमत्ता, दानशीलता और अनेक उच्च कोटि के गुण विद्यमान थे। गणित, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, चिकित्सा–शास्त्र और शरियत (मुस्लिम धार्मिक कानून) का वह एक बड़ा भारी ज्ञाता था। फारसी भाषा पर भी उसका पूर्ण अधिकार था। बरनी ने लिखा है कि वह इतना विद्वान् था कि आसफ और अरस्तू भी उसकी योग्यता को देखकर चंकित हो जाते। दानी वह इतना था कि "कारू के खजाने को भी एक ही व्यक्ति को दे डालना चाहता था", भरा हुआ खजाना लुटा देता था। सुन्दर लिखावट लिखने में उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता था। मुहम्मद तुगलक का जीवन निर्मल था और उद्देश्य बहुत ऊँचे। ललित कलाओं और विशेषकर संगीत से उसे अधिक प्रेम था। उसका जीवन–स्तर बड़ा ऊँचा था। वह सामान्य व्यसनों से मुक्त था। वह अत्यन्त उदार और नम्र स्वभाव का था तथा दान, भेंट, पुरस्कार आदि देने में मुक्तहस्त था।

मुहम्मद तुगलक व्यक्तिगत जीवन में एक आस्थावान मुसलमान था जो पांचों समय की नमाज पढ़ता था और धर्म के नियमों का पालन किया करता था किन्तु वह अन्धविश्वासी नहीं था ओर नियमों को अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसता था। मुहम्मद तुगलक धर्मान्ध भी नहीं था। उसकी नीति हिन्दुओं के प्रति अन्य सुल्तानों जैसी नहीं थी। वह काफी मात्रा में सहिष्णु था।

मुहम्मद तुगलक महत्त्वाकांक्षी था। राज्य–व्यवस्था सम्बन्धी तथा प्रशासनिक विशेषताएं उसमें स्वाभाविक रूप से पाई जाती थी। उसे साहस ऐसा मिला था कि सारे संसार को जीते बिना वह सन्तुष्ट नहीं हो सकता था। वह वीरता और पौरुष का स्वामी था। बाण और भाले चलाने, गेंद खेलने, घोड़ा दौड़ाने और शिकार खेलने में उसका सानी नहीं था। वह राजसी ठाट वाला बड़ा ही रूपवान ओर वीरतापूर्ण व्यक्ति था। स्वभाव में वह विलक्षण रूप से सरल, विनम्र और उदार था। वह अध्यवसायी, हृष्ट–पुष्ट और परिश्रमी था। एक सुल्तान के रूप में उसकी न्यायप्रियता और उदारता की कहानियां विदेशों तक फैल गई थी। उसमें उत्साह ओर लगन की आजीवन कमी नहीं आई।

मुहम्मद तुगलक में मौलिकता थी। नवाचारों का वह पुजारी था, अतः नई–नई योजनाएं बनाने और नए–नए कार्य करने के जोश में व्यावहारिकता की उपेक्षा कर देता था। मुहम्मद तुगलक अपने सुधारों और योजनाओं के द्वारा प्रजा की समृद्धि में वृद्धि करना, सल्तनत की नींव सुदृढ़ करना और स्वयं को एक महान् शासक के रूप में प्रकट करना चाहता था। पर दुर्भाग्यवश व्यावहारिकता की कमी, प्राकृतिक प्रकोप, प्रशासन–यन्त्र की शिथिलता, अमीर वर्ग का असहयोग आदि विभिन्न कारणों से उसकी योजनाएं असफल सिद्ध हुई। सुल्तान ने प्रशासकीय, आर्थिक और सैनिक सभी क्षेत्रों में 'अभिनव प्रयोग' व नवीन योजनाओं का प्रवर्तन किया, पर उसके भाग्य में यश नहीं था। यह मुहम्मद तुगलक का दुर्भाग्य ही था कि उस जैसे प्रतिभाशाली, मौलिक विचारों के धनी और ज्ञानी तथा अनुभवी शासक को 'महान्' के बदले 'पागल' की संज्ञा से विभूषित होना पड़ा।

मुहम्मद तुगलक के गुणों से तो यह लगता है कि वह गुणों में साक्षात् प्रतिभा था और उसमें कोई दोष नहीं थे। लेकिन उसका चरित्र तो विरोधाभासों का सम्मिश्रण था। उसके दोष ऐसे थे जो उसके गुणों को विफल कर देते थे।

जो सुल्तान दयालुता और उदारता में अपना सानी नहीं रखता था किन्तु उसी का दूसरा रूप घोर प्रजापीड़क अत्याचारी और हत्यारे का था। क्रोध और सनक में बहकर वह सम्भवतः 'मनुष्य के खून का प्यासा' हो जाता था। उसके क्रोध से न मुसलमान बचता था न गैर–मुसलमान। कोई नहीं कह सकता था कि उसका क्रोध कब भड़क उठेगा या उसका दिमाग कब बिगड़ जाएगा। क्रोध में आकर वह एक दुष्ट और क्रूर व्यक्ति की भांति निर्दोष प्रजा को भी कठोर दण्ड दे देता था। इब्नबतूता के अनुसार, सुल्तान रक्तपात में निष्ठुर था और कोई समय ऐसा बहुत कम होता था जब उसके महल के द्वार पर किसी ऐसे मनुष्य का शव पड़ा हुआ न मिले जिसकी हत्य की गई थी। मैं देखा करता था जब उसके महल के द्वार पर बहुत से लोगों की हत्या होती रहती थी और उनके शव वहां पड़े रहते थे। नित्य सैंकड़ों लोग जंजीरों में जकड़ कर उसके सभकक्ष में लाए जाते थे। इब्नबतूता ने सुल्तान द्वारा अपने सौतेले भाई, सन्तों, अमीरों और जनसाधारण की हत्याओं का दिल दहलाने वाला वर्णन किया है और बताया है कि किस प्रकार सुल्तान मुहम्मद सामूहिक हत्याएं किया करता था। एक बार उसने 350 मनुष्यों की एक साथ हत्या कराई और खून के पनाले बहा दिए।

मुहम्मद तुगलक विद्वान था पर उसे अपनी योग्यता का बड़ा घमण्ड था। वह हठी और जल्दबाज था। वह इतना सनकी था कि कभी–कभी तो उसकी सामान्य बुद्धि भी विक्षिप्त हो जाती थी। उसमें दूरदर्शिता का अभाव था। इब्नबतूता ने लिखा है – मुहम्मद तुगलक उपहार देने और खून बहाने का शौकीन था। उसके द्वार पर गरीब अमीर बन जाते थे ओर अमीर गरीब।

मुहम्मद तुगलक में अहंकार इतना था कि वह विश्व–विजय के स्वप्न देखता था पर उसमें व्यावहारिक ज्ञान की इतनी कमी थी कि वह किसी क्षेत्र में पूरा सफल नहीं हो सका। उच्चकोटि की कूटनीतिज्ञता भी उसमें नहीं थी। वह ऊँचे–ऊँचे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सिद्धान्तों और नई–नई काल्पनिक योजनाओं में डूबा रहता था। मानव–प्रकृति को समझने की उसमें क्षमता नहीं थी। अपनी अस्थिर चित्तवृत्ति के कारण वह अपनी योजनाओं को सफल नहीं बना सका। लेनपूल ने लिखा है – 'मुहम्मद तुगलक के बहुत अच्छे विचार ओर इरादे होते हुए भी उसमें धैर्य, बुद्धि और सन्तुलन की कमी थी और इसलिए उसे असफलता मिली।'' सुलतान मुहम्मद की योजनाएं सिद्धान्त के रूप में ठोस होती थी और उनमें कभी–कभी राजनीतिक सूझ भी होती थी, पर वे योजनाएं अव्यावहारिक सिद्ध हुई जिससे प्रजा और राज्य पर संकटों का पहाड़ टूट पड़ा। यह सब कुछ सुल्तान की चारित्रिक कमियों के कारण हुआ। अपनी नीति की असफलता ने उसे और भी क्रोधी तथा चिडत्रचिड़ा बना दिया और वह दूसरों पर अकारण ही दुष्टता का अरोप करने लगा। वह अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठा और एक गड़बड़ी के बाद दूसरी गड़बड़ी करता गया। दुर्भाग्यवश सुल्तान कुछ दुष्ट चाहुकारों के प्रभाव में भी था जो सुल्तान की प्रशंसा करके उसे उकसाने और उसका अहित करने के अलावा उनका और कोई काम नहीं था। मुहम्मद तुगलक इस प्रकार गुणों और अवगुणों का सम्मिश्रण था। वास्तव में वह विचित्र विरोधी तत्त्वों का व्यक्ति था। कुछ इतिहासकारों ने उसे पागल कहा है, लेकिन इतना बड़ा आक्षेप एकाकी है। तुगलक की बदनसीबी यही थी कि वह एक ''विचित्र बादशाह था कि जिसकी अस्थिर प्रवृत्ति के कारण उसके गुण अवगुणों में बदल जाते थे। इसीलिए वह अपने समकालीन व्यक्तियों के लिए अनबूझ पहेली रहा ओर आधुनिक इतिहासकारों के लिए भी उसका चरित्र–चित्रण कहना दु:साध्य है।

7.10 सारांश :

मुहम्मद तुगलक का चरित्र परस्पर विरोधी तत्त्वों का सम्मिश्रण था। ख्वाजा मेंहदी हुसैन तथा डॉ. ईश्वरीप्रसाद भी यही मानते हैं। जहां उसमें कई चारित्रिक गुण थे, वहीं उसके चारित्रिक दोषों की भी लम्बी कतार थी। बरनी ने लिखा है, ''सुल्तान छोटे दर्जे के लोगों से घृणा करता था, परन्तु इस पर भी उसने उन्हें उच्च पद प्रदान किए। वह नम्र होते हुए घमण्डी भी था। कभी–कभी तो वह एक सामान्य व्यक्ति की भांति दण्ड भुगतने के लिए स्वयं काजी के सामने उपस्थित हो जाता था ओर कभी–कभी वह छोटे अपराध करने वालों को भी हृदय–वर्धक दण्ड देता था। वह बड़ा विद्वान् तथा प्रतिभाशाली था, किन्तु उसमें सामन्य बुद्धि का अभाव था। उसने धर्मपरायण होते हुए भी मुस्लिम धार्मिक वर्ग की अपेक्षा की। उसने राज्य में कई उलेमा को मृत्युदण्ड दिया। डॉ. श्रीवास्तव लिखते हैं ''साधारणतया वह बहुत दयालु था, किन्तु कभी–कभी जब उसकी क्रोधाग्नि प्रज्जवलित होने लगती थी, तब वह एक अत्यधिक क्रूर तथा अत्याचारी व्यक्ति की भांति व्यवहार करता था। इसलिए हम इस परिणाम पर पहुंचे बिना नहीं रह सकते कि मुहम्मद बिन तुगलक के चरित्र में विरोधी गुणों का मेल था।'' डॉ. आर. सी. मजूमदार ने लिखा है – ''वह न तो रक्तपिपासु दैत्य था और न पागल जैसा कि कुछ व्यक्तियों ने कहा है, लेकिन उसमें विरोधी तत्त्वों का मिश्रण था, इसमें सन्देह नहीं है, क्योंकि असहनीय क्रूरता, तुच्छ सनक और परिस्थितियों को समझने का अपना अत्यधिक विश्वास आदि उसके चरित्र के ऐसे अवगुण थे, जो उसके हृदय और मस्तिष्क के अनेक गुणों के पूर्णतया विरोध में प्रतीत होते हैं। मुहम्मद तुगलक का चरित्र दो विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण किन्तु उसके विचार मौलिक थे।

भारत के मध्ययुग में राजमुकुट धारण करने वालों में मुहम्मद तुगलक नि:सन्देह विचित्र और विशिष्ट व्यक्ति था। उसमें विरोधी तत्त्वों का विचित्र सम्मिश्रण था, परन्तु उसके अनेक विचार मौलिक थे। बरनी के अनुसार, ''ईश्वर ने सुल्तान मुहम्मद को एक अद्भुत जीव बनाया था। उसके विरोधाभासों और योग्यताओं को समझना आलिमों और बुद्धिमानों के लिए सम्भव नहीं है। उसे देख कर बुद्धि चकरा जाती है और उसके गुणों का अवलोकन कर चकित तथा स्तब्ध रह जाना पडता है।''

7.11 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 दीवान–ए–कोही क्या था? अ. राजस्व विभाग ब. न्याय विभाग स. सेना विभाग द. कृषि विभाग

उत्तर – ....

प्रश्न 2 मुहम्मद तुगलक द्वारा किये गये मुद्रा परिवर्तन को बताइये। (30 शब्दों में)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 मुहम्मद तुगलक की विभिन्न योजनाओं को विस्तार से समझाइये और उसकी असफलता का कारण भी बताइये। (निबन्धात्मक प्रश्न)

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–8
फीरोज–तुगलक

संरचना

8.0 उद्देश्य

8.1 जीवन परिचय

8.2 फीरोज तुगलक के सैनिक अभियान

8.2.1 बंगाल अभियान

8.2.2 जाजनगर विजय (1359 ई.)

8.2.3 नगरकोट विजय (1360 ई.)

8.2.4 थट्टा विजय (1362–66 ई.)

8.3 फीरोज तुगलक के सुधार अथवा शासन प्रबन्ध

8.3.1 दुखियों की सहायता

8.3.2 राजस्व विभाग में सुधार

8.3.3 जागीर प्रथा को पुनः जीवित करना

8.3.4 सिचाई प्रबन्ध (नहरों, कुओ, बांधों आदि का निर्माण)

8.3.5 कर प्रणाली और वित्त विभाग में सुधार

8.3.6 न्याय सुधार

8.3.7 सैनिक सुधार

8.3.8 मुद्रा प्रणाली में सुधार

8.3.9 दास–प्रथा

8.3.10 सार्वजनिक निर्माण कार्य

8.3.11 शिक्षा व साहित्य को प्रोत्साहन

8.3.12 अन्य लोक कल्याणकारी कार्य

8.4 धार्मिक नीति

8.5 क्या फीरोज तुगलक, तुगलक साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी था ?

8.5.1 अमीरों के प्रति उदारता के घातक परिणाम

8.5.2 उलेमा वर्ग के प्रति अत्यधिक उदार नीति की घातकता

8.5.3 फिरोज की धर्मान्धता

8.5.4 सेना को निर्बल बनाना

8.5.5 शासन का केन्द्रीकरण

8.5.6 दास प्रथा को विनाशकारी प्रोत्साहन

8.5.7 शासन में अव्यवस्था और भ्रष्टाचार का प्रसार

8.5.8 फिरोज के अदूरदर्शी विजय अभियान

8.5.9 फिरोज के निर्बल उत्तराधिकारी

8.6 मृत्यु

8.7 मूल्यांकन

8.8 सारांश

8.9 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.0 उद्देश्य :

इस इकाई में फीरोज तुगलक के सार्वजनिक सुधारों का उल्लेख निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से किया जायेगा –

–सिचाई व्यवस्था, नहरों का निर्माण
–राजस्व विभाग
–न्याय विभाग में सुधार
–शिक्षा एवं साहित्य में सुधार
–दास प्रथा

8.1 जीवन परिचय :

फीरोज–तुगलक मुहम्मद तुगलक का चचेरा भाई था। उसके पिता का नाम मलिक रज्जब (ग्यासुद्दीन तुगलक का छोटा भाई) था। उसकी माता का नाम बीबी नैला था, जो अबोहर (पंजाब के वर्तमान जिला फीरोजपुर में स्थित है) के भट्टी राजपूत राय रणमल की पुत्री थी। इस प्रकार फीरोज की नसों में हिन्दू मुस्लिम खून का सम्मिश्रण था।

20 मार्च, 1351 ई. को मुहम्मद बिन तुगलक की थट्टा नें मृत्यु गई। उसका अपना कोई पुत्र नहीं था। अतः अमीरों तथा सरदारों ने उसके चचेरे भाई फीरोज–तुगलक को सुल्तान का पद स्वीकार करने के लिए विवश किया। 23 मार्च, 1351 ई. को फीरोज–तुगलक राज्य सिंहासन पर बैठा। उस समय देश की राजनीतिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी। शासन प्रबन्ध अस्त–व्यस्त ओर शिथिल हो चुका था और साम्राज्य का बहुत–सा भाग दिल्ली के अधिकार से निकल चुका था। गुजरात, सिन्ध, बंगाल और दक्षिण के प्रदेश स्वतंत्र हो चुके थे। ऐसी परिस्थितियों में फीरोज के सम्मुख कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य थे, जैसे कि, प्रजा के असन्तोष और कष्टों को दूर करना, शासन को पुनः संगठित करना तथा तुगलक वंश के प्रति जनता में विश्वास उत्पन्न करना।

8.2 फीरोज–तुगलक के सैनिक अभियान :

फीरोज–तुगलक ने मुहम्मद तुगलक के समय साम्राज्य से अलग हुए प्रदेशों पर पुनः अधिकार करने के लिए अभियान किए, किन्तु अधिकांश में वह असफल रहा।

8.2.1. बंगाल अभियान (1353 ई. व 1359 ई.) – 1353 ई. में फीरोज ने बंगाल के शासक हाजी इलियास पर आक्रमण किया, किन्तु कुछ समय बाद वह घेरा उठाकर लौट गया। इलियास के बाद 1359 ई. में उसका पुत्र सिकन्दर शासक बना, जो बड़ा अत्याचारी था। अतः फीरोज ने 1359 ई. में पुनः बंगाल पर आक्रमण किया, किन्तु सफलता नहीं मिली।

8.2.8. जाजनगर विजय (1360 ई.) – 1360 ई. में फीरोज ने जाजनगर (उड़ीसा) तथा कुछ अन्य नगरों पर भी अधिकार कर लिया। उसने पुरी के विख्यात जगन्नाथ मन्दिर को ध्वस्त कर मूर्तियों को समुद्र में फिंकवा दिया।

8.2.3. नगरकोट विजय (1360 ई.) – फीरोज ने 1360 ई. में नगरकोट पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया तथा ज्वालामुखी के मन्दिरों को ध्वस्त किया। फरिश्ता के अनुसार, "सुल्तान ने ज्वालामुखी की मूर्तियों को तोड़ दिया, उनके टुकड़ों को गाय के मांस में मिलाया और उसके गन्ध के थैले बनाकर ब्राह्मणों के गले में लटकवा दिए तथा मूर्ति को विजय–चिन्ह के रूप में मदीना भेज दिया।"

8.2.4. थट्टा विजय (1362–66 ई.) – 1362 ई. में फीरोज ने सिन्ध की राजधानी थट्टा पर आक्रमण कर दिया। वहां के शासक 'जाम' ने उसका डटकर सामना किया। इसी बीच अकाल तथा महामारी से शाही सेना की हालत बिगड़ गई। अतः सुल्तान ने दिल्ली से सैनिक सहायता प्राप्त कर जाम पर आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया तथा अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया। सिन्ध पर आक्रमण से साम्राज्य को जन–धन की भारी हानि हुई तथा फीरोज की विवेकहीनता तथा अयोग्यता प्रमाणित हो गई।

8.3 फीरोज–तुगलक के सुधार अथवा शासन–प्रबन्ध :

फीरोज–तुगलक एक शान्तिप्रिय शासक था जिसके शासन–सुधारों के कारण ही मध्यकालीन भारत के इतिहास में उसका नाम विशिष्ट स्थान रखता है। उसके सभी मुख्य सुधारों को हम निम्नांकित अलग–अलग शीर्षकों में वर्णित कर सकते हैं –

8.3.1. दुखियों की सहायता – फिरोज तुगलक ने अपने चाचा मुहम्मद तुगलक के विवेकहीन कार्यों से दुःखी अनेक लोगों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया। उसने उन्हें राजकोष से सहायता दी और अनेक सरकारी ऋण माफ कर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दिए। सुल्तान ने उन लोगों से यह भी लिखवा लिया कि उन्हें मृत सुल्तान (मुहम्मद तुगलग) के विरूद्ध कोई शिकायत नहीं है। तत्पश्वात् इन क्षमा–पत्रों को एक सन्दूक में बन्द करके मुहम्मद तुगलक की कब्र में रखवा दिया गया। फिरोज का यह काम अपने चाचा के प्रति महान कृतज्ञता का था।

8.3.8. राजस्व विभाग में सुधार–कृषकों और भूमि की दशा सुधारने के लिए फिरोज ने निम्नालिखित सुधार किए–

(क) किसानों द्वारा अकाल के समय मुहम्मद तुगलक से लिए गए ऋणों को माफ कर दिया गया।

(ख) भूमि की अच्छी तरह जांच–पड़ताल करके माल–गुजारी की दर इतनी घटा दी गई कि किसान बिना किसी कठिनाई के अपना कार्य करने लगे।

(ग) सिंचाई के प्रबन्ध को इतना सुव्यवस्थित किया गया कि अधिकाधिक भूमि पर कृषि होने लगी।

(घ) राजस्व विभाग के कर्मचारियों की वेतन वृद्धि कर दी गई ताकि वे रिश्वत से बचे रहें।

(ड.) नहरी सिंचाई वाले क्षेत्रों से उपज का दसवां भाग जल–कर के रूप में लिया जाने लगा।

फिरोज के राजस्व और कृषि सम्बन्धी सुधारों के फलस्वरूप गांवों की हालत सुधर गई और कृषि को बड़ा प्रोत्साहन मिला। किसान समृद्धशाली हो गए, उन्हें खाने–पीने का अभाव नहीं रहा।

8.3.3. जागीर प्रथा को पुनः जीवित करना – फिरोज ने ग्रामीण तथा कृषि क्षेत्र में जहां इतने अच्छे सुधार किए, वहां एक हानिकारक काम भी किया। अलाउद्दीन के शासन काल में समाप्त हो गई जागीर प्रथा के दोषों को दूर करने के लिए यह नियम बनाया गया कि जागीरदारों के घोड़ों और सैनिकों का प्रति वर्ष सरकारी निरीक्षण हुआ करेगा। यद्यपि यह नियम अच्छा था, किन्तु इसका पालन समुचित रूप से नहीं हो सका। प्रायः बूढ़े सैनिक अपनी मुसीबतों की कहानियां सुनाकर सुल्तान को द्रवित कर देते थे और अपने पदों पर बने रहने की आज्ञा प्राप्त कर लेते थे। जागीर प्रथा का पुनः प्रचलन साम्राज्य के लिए बड़ा हानिकारक सिद्ध हुआ। एक ओर तो इससे राज्य को हानि पहुंची ओर दूसरी और घूसखोरी तथा भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिला।

8.3.4. सिचाई प्रबन्ध (नहरों, कुओं, बांधों आदि का निर्माण) – कृषि को प्रोत्साहन देने और पैदावार बढ़ाने के लिए फिरोज ने 5 नहरों, लगभग 150 कुओं और 50 बांधों का निर्माण कराया। पहली और सबसे बड़ी नहर 150 मील लम्बी थी जो यमुना के पानी को हिसार तक ले जाती थी। 96 मील लम्बी दूसरी नहर सतलज से निकल कर घग्घर से मिलती थी और मार्ग के सारे प्रदेश को सींचती थी। तीसरी नहर सिरमौर की पहाड़ियों और हांसी के बीच के प्रदेश की सिंचाई करती थी। अन्य दो नहरें घग्घर व यमुना से निकलकर फिरोजाबाद तक पहुंचती थी। फिरोज ने इन नगरों की निगरानी के लिए कई अच्छे इन्जीनियर नियुक्त किए। उसने बंजर भूमि पर भी कृषि करवाई। फिरोज के इन कार्यों से कृषि उन्नत हो गई और अनाज का उत्पादन बहुत बढ़ गया। उसके समय में कोई अकाल नहीं पड़ा।

8.3.5. कर प्रणाली और वित्त विभाग में सुधार – फिरोज ने राज्य की वित्त–व्यवस्था को सुधारने पर पर्याप्त ध्यान दिया। प्रजा के असन्तोष को दूर करने के लिए उसने प्रचलित 23 या 25 कष्टदायी करों को समाप्त कर दिया। केवल जजिया, खिराज, खम्स और जकात नामक चार करों को रहने दिया क्योंकि इनका लगाना इस्लामी कानून के अनुकूल था।

फिरोज द्वारा अधिकांश करों को हटा देने से राजकोष में धन की जो कमी हुई उसे अन्य साधनों से पूरा कर लिया गया। उदाहरणार्थ जल कर से, शाही बागों से और भूमि कर से राज्य की आय में पर्याप्त वृद्धि हो गई। व्यापार के उन्नत होने से भी राज्य की आय बहुत बढ़ी। करों का बोझ कम होने से प्रजा को बड़ी राहत मिली।

8.3.6. न्याय सुधार – फिरोज तुगलक ने न्याय व्यवस्था को पहले की अपेक्षा अधिक उदार बनाया। उसने कठोर सजाओं में कमी कर दी। हाथ–पांव काटने और अन्य अमानुषिक दण्डों को, जो इस्लाम के विरुद्ध थे, हटा दिया। फिरोज ने मुल्ला और मौलवियों को कानून की व्याख्या करने और न्याय करने का काम सौंप दिया। न्याय सम्बन्धी कानून व दण्ड व्यवस्था निश्चित कर दी गई। राज्य के सब महत्त्वपूर्ण स्थानों पर अदालतें (दारुल अदल) स्थापित की गई। न्याय के क्षेत्र में उदारता दिखाने से फिरोज लोकप्रिय हुआ। पर इस क्षेत्र में भी हिन्दुओं के साथ मुसलमानों की अपेक्षा अधिक कठोर व्यवहार किया जाता था।

8.3.7. सैनिक सुधार – फिरोज ने अलाउद्दीन खिलजी की भांति स्थायी सेना रखने की पद्धति को त्याग दिया। उसने सेना का संगठन, जागीरदारी पद्धति के आधार पर किया। साम्राज्य को विभिन्न भागों और उपभागों में बांट दिया गया जिनका प्रबन्ध भार सैनिक व असैनिक अधिकारियों पर डाला गया। इन्हें अपना व अपने सैनिकों का खर्च सरकार द्वारा दी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गई भूमि की आय से पूरा करना होता था और बदले में वे आवश्यकता पड़ने पर सुल्तान को सैनिक सहायता देते थे। थोड़े से अनियमित सैनिकों को राजकोष से नकद वेतन भी मिलता था। फिरोज ने यह नियम भी बना दिया कि जब कोई सैनिक वृद्ध और सेवा के अयोग्य हो जाए तो उसके पुत्र, दामाद, गुलाम या अन्य रिश्तेदारों को उसके स्थान पर ले लिया जाएगा।

फिरोज का यह सैनिक संगठन बहुत दोषपूर्ण था। इससे भ्रष्टाचार बहुत अधिक फैला तथा सैनिक अनुशासन को गहरा धक्का लगा। इसके अतिरिक्त सैनिक–सेवा वंशानुगत हो गई। फौज में योग्यता व शारीरिक क्षमता का सिद्धान्त गौण हो गया। सुल्तान ने रिश्वत आदि को रोकने का कोई प्रयत्न नहीं किया, बल्कि अपने कुछ कार्यों से इसे स्वयं प्रोत्साहन दिया। सैनिक प्रबन्ध का एक गम्भीर दोष यह रहा कि केवल 80 या 90 हजार अश्वारोही ही राजधानी में रहते थे। शेष सेना अमीरों व अधिकारियों द्वारा जुटाई गई टुकड़ियों से मिलाकर बनी थी जिस पर केन्द्र सरकार का समुचित नियन्त्रण नहीं रह पाता था।

8.3.8. मुद्रा प्रणाली में सुधार – फिरोज के समय अधिकांशतः वे ही सिक्के चलते रहे जो मुहम्मद तुगलक के समय प्रचलित थे। पर निर्धन व साधारण जनता की सुविधा के लिए उसने कम मूल्य वाले कुछ छोटे–छोटे सिक्के भी चलाए जैसे – आधी जीतल और चौथाई जीतल के सिक्के। उसने तांबा व चांदी मिलाकर कुछ इस ढंग से सिक्के बनवाए कि जाली सिक्के नहीं बनवाए जा सकते थे और यदि बनवाए भी जाते तो उनसे विशेष लाभ नहीं हो सकता था। पुराने सिक्कों में भी उसने कुछ सुधार किया।

8.3.9. दास–प्रथा – फिरोज को दासों का बहुत शौक था, अतः उसके शासन–काल में दास–प्रथा को बहुत प्रोत्साहन मिला। फिरोज के सरकारी इतिहासकार हफीफ के अनुसार उस समय दासों की संख्या लगभग 1,80,000 तक पहुंच गई जिनमें 40,000 तो शाही महल में सुल्तान और उसके परिवार की सेवा में रहते थे। दासों की देखरेख के लिए एक अलग विभाग खोला गया। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार दास पद्धति के लिए पृथक् कोष और दीवान थे तथा दासों को विभिन्न हस्तकलाओं की शिक्षा दी जाती थी। दासों की शिक्षा का प्रबन्ध भी किया गया था। फिरोज की दास–प्रथा साम्राज्य के लिए बहुत अधिक हानिकारक सिद्ध हुई। यद्यपि शिल्प–उद्योगों को लाभ पहुंचा, लेकिन राजकोष पर भारी बोझ पड़ा और दासों के षड्यन्त्रों ने फिरोज के दुर्बल उत्तराधिकारियों को विनाश के सन्निकट ला दिया।

8.3.10. सार्वजनिक निर्माण कार्य – फिरोज को नए–नए भवनों, नगरों और बगीचों के निर्माण का बड़ा शौक था। उसने अपने शासनकाल में फिरोजाबाद, झांसी और जौनपुर जैसे महत्त्वपूर्ण व सुन्दर नगर बनवाए। फरिश्ता के अनुसार – ''सुल्तान ने अपने राज्य में 40 मस्जिदों, 30 मदरसों, 20 महलों, 100 स्नानघरों, 10 स्तम्भों और 150 पुलों का निर्माण करवाया।'' फिरोज ने दिल्ली के चारों ओर फलों के लगभग 1200 बाग लगवाए जिनसे राज्य को दो लाख टांके प्रतिवर्ष आय होने लगी। फिरोज ने प्राचीन स्मारकों की रक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने अशोक के समय के दो स्तम्भ मेरठ और खिज्राबाद से उखड़वा कर दिल्ली के समीप गड़वा दिए।

8.3.11. शिक्षा व साहित्य को प्रोत्साहन – कला के समान ही फिरोज ने शिक्षा व साहित्य को प्रोत्साहन दिया और विद्वानों को संरक्षण दिया। जियादद्दीन बरनी नामक इतिहासकार उसी के दरबार में था जिसने 'तारीखे फिरोजशाही' की रचना की। फिरोज ने शिक्षा प्रसार में गहरी रूचि ली। उसके शासनकाल में राज्य में 30 मदरसे खोले गए जिनमें अध्यापकों को अच्छा वेतन दिया जाने लगा और छात्रों की समुचित सहायता का प्रबन्ध किया गया। फरिश्ता के अनुसार – ''सुल्तान ने विद्वानों को देश के भिन्न–भिन्न भागों में रहकर लोगों को विद्या–दान देने के लिए प्रोत्साहन दिया। उसने ज्वालामुखी के स्थान पर एक लाइब्रेरी बनवाई जिसमें हिन्दुओं के 1300 ग्रन्थ थे। उनमें से एक गन्थ का फारसी में अनुवाद भी करवाया गया। इतिहास–प्रेमी होने के कारण सुल्तान में बरनी व हफीफ जैसे इतिहासकारों को संरक्षण भी दिया।'' फिरोज ने नगरकोट से प्राप्त संस्कृत के ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया। चिकित्सा शास्त्र में भी उसे व्यक्तिगत रूचि थी।

8.3.18. अन्य लोक कल्याणकारी कार्य – फिरोज ने जनहित की दृष्टि से ओर भी अनेक कार्य किए जिनमें कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण ये हैं –

(क) बेरोजगारी मिटाने के लिए या बेकारों की सहायता के लिए व्यवस्था की गई। अधिकारियों को आदेश दिए गए कि वे समय–समय पर बेरोजगारों की जांच–पड़ताल करें। सुल्तान ने बेरोजगारों को नौकरी या कुछ काम–काज देने के लिए एक अलग विभाग भी कायम कर दिया।

(ख) रोगियों की सेवा–सुश्रुषा के लिए फिरोज ने अनेक अस्पताल खुलवाए जहां योग्य चिकित्सकों व दवाओं की मुफ्त व्यवस्था की गई। मरीजों को मुफ्त भोजन देने का प्रबन्ध किया गया।

(ग) राजधानी में एक दान–विभाग अथवा 'दीवान–ए–खैरात' खोला गया जिसका मुख्य कार्य विधवाओं और अनाथों की देख–रेख करना तथा उन मुस्लिम लड़कियों की सहायता करना था जिनके माँ–बाप गरीबी के कारण उनका विवाह नहीं कर पाते थे।

विभिन्न क्षेत्रों में अपने इन सुधारों के कारण फिरोज तुगलक ने बड़ी लोकप्रियता हासिल की और अपने को एक आदर्श शासक के निकट ला बैठाया। दुर्भाग्यवश अपनी अनुचित उदारता, दुर्बलता ओर प्रशासनिक अयोग्यता के कारण उसके सुधार स्थाई सिद्ध नहीं हुए और न ही शासन–प्रणाली को सुदृढ़ बना सके। यद्यपि सुधारों से कृषि और व्यापार को भारी प्रोत्साहन मिला और लोगों को भारी राहत मिली, लेकिन हिन्दू प्रजा, मुसलमानों की अपेक्षा बड़ी घाटे में रही। उसके अनेक सुधारों ने धीरे–धीरे एक ऐसी प्रतिक्रिया को जन्म दिया जो तुगलक वंश के लिए घातक सिद्ध हुई। फिरोज के अत्यधिक शराब पीने के व्यसन ने भी साम्राज्य को बड़ी हानि पहुंचाई। इस दुर्व्यसन के कारण फिरोज योग्य उत्तराधिकारियों का निर्माण नहीं कर सका और उसकी मृत्यु के कुछ वर्ष बाद ही तुगलक साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया।

8.4 धार्मिक नीति :

अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक जैसे शासकों ने धर्म को राजनीति से पृथक रखा। इसके ठीक विपरित फीरोज ने राजनीति को धर्म पर आधारित बना दिया। इसका मूल कारण एक तो उलेमाओं द्वारा उसके उत्तराधिकार का समर्थन करना और दूसरा उसका स्वयं का स्वभाव तथा धर्म के प्रति उसकी रूचि थी। डॉ. श्रीवास्तव ने एक अन्य कारण का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ''चूंकि फिरोज तुगलक एक हिन्दू स्त्री का पुत्र था अतः उसने यह दिखाना आवश्यक समझा होगा कि मैं शुद्ध तुर्की माता–पिता से उत्पन्न लोगों से कम अच्छा मुसलमान नहीं हूं। इसीलिए फीरोज ने राजनीतिक तथा शासनिक कार्यों में भी उलेमाओं से परामर्श लेना तथा उनकी सलाहानुसार शासन का संचालन करना स्वीकार कर लिया था। परन्तु उनका दृष्टिकोण संकुचित तथा संकीर्ण था। उनके प्रभाव के कारण भारत में इस्लाम का प्रसार करना, हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाना, हिन्दू मन्दिरों और मूर्तियों को ध्वंस करना और हिन्दुओं पर नाना प्रकार के अत्याचार करना फीरोज के शासन के मुख्य ध्येय बन गए। फीरोज ने अपने आत्मचरित्र में लिखा है कि ''मैंने अपनी काफिर प्रजा को पैगम्बर का धर्म स्वीकार करने में लिए बाध्य किया और यह घोषणा की कि जो भी अपने धर्म को छोड़कर मुसलमान बन जायेगा उसे जजिया से मुक्त कर दिया जायेगा।''

नगरकोट और जाजनगर पर फीरोज के आक्रमण उसकी धार्मिक नीति से प्रेरित थे। इन दोनों स्थानों पर उसने मन्दिर और मूर्तियों को ध्वंस किया और पुजारियों को मौत के घाट उतार दिया। उसकी धर्मान्धता इस सीमा तक बह गई थी कि उसने हिन्दुओं के धार्मिक मेलों पर प्रतिबन्ध लगा दिया और नवीन मन्दिरों के निर्माण की मनाही कर दी गई। एक ब्राह्मण का उसने इस आरोप के कारण वध करवा दिया कि वह मुसलमानों को हिन्दू बनने के लिए प्रोत्साहित करता था वस्तुतः वह अपने आपको केवल मुसलमानों का शासक समझता था।

फीरोज पर उलेमाओं का इतना अधिक प्रभाव था कि शिया तथा अन्य गैर सुन्नी मुसलमान जिन्हें उलेमा वर्ग कट्टर इस्लाम का दोषी मानता था फिरोज तुगलक के अत्याचार से नहीं बच पाये। शिया लोगों को भी कठोर दण्ड दिया तथा उनकी धार्मिक पुस्तकों को जलवा दिया। मुल्हीदियों और महदवियों के साथ भी उसने ऐसा ही किया। सूफी लोग भी उसकी संकीर्णता के शिकार होने से न बच सके। मजूमदार ने ठीक ही लिखा है कि ''फीरोज इस युग का सबसे महान् धर्मान्ध सुल्तान था।''

8.5 क्या फिरोज तुगलक, तुगलक साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी था ?

फिरोज तुगलक, पिछले सभी सुल्तानों के विपरीत, शान्ति पूर्वक गद्दी पर बैठा। उसे गद्दी के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ा। उसके राज्यारोहण का दरबार के लगभग सभी अमीरों ने स्वागत किया। साथ ही उसके शासनकाल में उसे गद्दी से हटाने की नियत से कोई विद्रोह भी नहीं हुआ। फिरोज तुगलक ने अपने शासनकाल में अपनी साम्राज्य को काफी सुव्यवस्थित भी किया तथा उसे प्रशासनिक सुधारों से आम जनता भी सन्तुष्ट थी। लेकिन यह सब होते हुए भी अनेक इतिहासकार फिरोज तुगलक को दिल्ली सल्तनत अथवा तुगलक साम्राज्य के पतन के लिए बहुत अंशों तक उत्तरदायी ठहराते है। इसके समर्थन में उनके द्वारा निम्नलिखित मुख्य तर्क प्रस्तुत किए गए हैं –

8.5.1 अमीरों के प्रति उदारता के घातक परिणाम – साम्राज्य के अमीरों और सरदारों के प्रति फिरोज तुगलक की अत्यधिक उदार नीति तुगलक साम्राज्य और दिल्ली सल्तनत के लिए घातक सिद्ध हुई। समय के साथ अमीरों की क्षमता, कुशलता ओर स्वामिभक्ति का पतन होता गया और वे तुच्छ स्वार्थों के लिए साम्राज्य के हितों का बलिदान करने लगे। साम्राज्य की सैनिक शक्ति पर इसका विशेष रूप से बुरा प्रभाव पड़ा और दिल्ली सल्तनत की शक्तिशाली सेनाएं फिरोज तुगलक के शासन के समाप्त होते–होते निर्वीर्य होकर पुराना तेज और जौहर खो बैठीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.5.2 उलेमा वर्ग के प्रति अत्यधिक उदार नीति की घातता – फिरोज तुगलक ने उलेमा–वर्ग के प्रति जो अत्यधिक उदार, सम्मान और समर्थन की नीति बरती तथा प्रशासकीय मामलों में उनके परामर्श को जो महत्त्व दिया, उसके परिणाम घातक सिद्ध हुए। उलेमा का प्रभाव बढ़ने से स्ल्तनत में धार्मिक पक्षपात और कट्टरता बहुत बढ़ गई जिससे आगे चलकर तुगलक साम्राज्य और दिल्ली सल्तनत को भारी आघात लगां। हिन्दुओं और गैर–मुसलमानों पर सुल्तान ने जो अत्याचार किए उनके मूल में उलेमा–वर्ग के कुटिल परामर्श की मुख्य भूमिका थी।

8.5.3 फिरोज की धर्मान्धता – फिरोज तुगलक की धार्मिक नीति तुगलक साम्राज्य और दिल्ली सन्तनत के लिए घातक सिद्ध हुई। हिन्दुओं और गैर–सुन्नी मुसलमानों पर उसने जो अत्याचार किए वे अन्ततोगत्वा सल्तनत के लिए कब्र साबित हुए। योग्य हिन्दू पदाधिकारियों को हटा दिए जाने से प्रशासन पर सुल्तान की पकड़ मजबूत न रह सकी।

8.5.4 सेना को निर्बल बनाना – अपने उदार विचारों के कारण फिरोज सैन्य व्यवस्था को सुदृढ़ नहीं बनाए रख सका। फिरोज की शिथिल और कायरतापूर्ण नीति के कारण सल्तनत की शक्तिशाली सेना अपनी क्षमता खोने लगी और अन्त में इतनी पंगु हो गई कि विशाल साम्राज्य की सुरक्षा का भार वहन नहीं कर सकी। सैनिकों की भर्ती में भी सुल्तान ने पैतृक अधिकार को मान्यता दे दी जिसके फलस्वरूप योग्य और युद्ध–निपुण पिता के आयोग्य और निर्बल पुत्र भी सेना में स्थान पाने लगे। फिरोज ने स्थायी सेना रखने की नीति को त्याग दिया। चूंकि केन्द्र में एक बड़ी स्थायी सेना नहीं रही, अतः सैनिक संगठन दुर्बल हो गया। सैनिकों और पदाधिकारियों के लिए जागीर देने की प्रथा पुनः चालू करने से सैनिक वर्ग में निष्क्रियता छाने लगी।

8.5.5 शासन का केन्द्रीकरण – यद्यपि पूर्ववर्ती मुस्लिम शासकों ने भी सत्ता का केन्द्रीयकरण किया था लेकिन वे अपने वजीर (प्रधानमंत्री) पर पूर्णतः निर्भर नहीं रहते थे। फिरोज तुगलक ने सत्ता का केन्द्रीयकरण करके अपनी सम्पूर्ण सत्ता अपने वजीर मकबूल को और बाद में उसके पुत्र जूनाशाह को सौंप दी। परिणाम यह निकला कि उन दोनों ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए महत्त्वपूर्ण पदों पर अपने समर्थकों को नियुक्त कर दिया। जूनाशाह ने तो सुल्तान और उसके शहजादा मुहम्मद में भी वैमनस्य उत्पन्न करा दिया। जिससे आगे चलकर तुगलक साम्राज्य को आघात पहुंचा।

8.5.6 दास–प्रथा को विनाशकारी प्रोत्साहन – फिरोज तुगलक की दास'–प्रथा साम्राज्य के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुई। यद्यपि शिल्प–उद्योगों को लाभ पहुंचा, लेकिन राजकोष पर बहुत भार पड़ा और दासों के षड्यंत्रों ने फिरोज तुगलक के दुर्बल उत्तराधिकारियों के विनाश को सन्निकट ला दिया। जिस दास–प्रथा को बलबन ने समाप्त कर दिया था, उस प्रथा को ही सबल बनाकर फिरोज तुगलक ने गुलामों अथवा दासों का एक ऐसा वर्ग पैदा कर दिया जो केवल अपने ही हितों की चिन्ता करने लगा और साम्राज्य के हित के प्रति बेखबर हो गया।

8.5.7 शासन में अव्यवस्था और भ्रष्टाचार का प्रसार – फिरोज तुगलक की अनुचित उदारता, दुर्बलता और प्रशासनिक अयोग्यता के कारण उसके सुधारों और अन्य कार्यों का साम्राज्य पर समूहिक प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा।

8.5.8 फिरोज के अदूरदर्शी विजय–अभियान या उसकी दुर्बल विदेश नीति – फिरोज तुगलक ने जो थोड़े बहुत विजय–अभियान किए वे भी अदूरदर्शी रहे। अपनी विजय योजनाओं में उसने धार्मिक कट्टरता ओर अदूरदर्शिता का परिचय दिया। जामनगर तथा कांगड़ा विजय से उसने हिन्दुओं को नाराज कर दिया तो सिन्ध पर आक्रमण कर उसने अपनी निर्बलता का परिचय दिया। दक्षिण के स्वतन्त्र मुस्लिम राज्यों पर आक्रमण कर उसने अपनी निर्बलता का परिचय दिया। दक्षिण के स्वतन्त्र मुस्लिम राज्यों पर आक्रमण न करके तुगलक ने अपनी राजनीतिक और सैनिक अदूरदर्शिता तथा निर्बलता को और भी स्पष्ट कर दी। बंगाल पर दो बार असफल आक्रमण कर लौटने ने उसकी धार्मिक कट्टरता, सैनिक निर्बलता का पर्दाफाश कर दिया। इन आक्रमणों में विपुल धनराशि भी व्यय हुई। इन सबका तुगलक साम्राज्य पर बहुत बुरा असर पड़ा। फिरोज की अदूरदर्शी और दुर्बल विदेश नीति के कारण उसके समय में ही दिल्ली साम्राज्य का विस्तार घटकर बहुत कुछ विन्ध्यपर्वत के उत्तरी भाग तक ही सीमित रह गया।

8.5.9 फिरोज के निर्बल उत्तराधिकारी – इस क्षेत्र में फिरोज की तुलना अन्तिम महान् मुगल सम्राट औरंगजेब से की जा सकती है। जिस प्रकार औरंगजेब ने अपने शहजादों को योग्य प्रशासक बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया, उसी प्रकार सुल्तान फिरोज ने अपने उत्तराधिकारियों को प्रशासन के योग्य नहीं बनाया। परिणाम यह निकला कि वे अपने पिता के विशाल साम्प्रज्य को सम्भाल नहीं सके। फिरोज के इस लोक से विदा होते ही दिल्ली में गद्दी के लिए गृह–युद्ध शुरू हो गए जिसका अन्तिम परिसणाम यह निकला कि दिल्ली की गद्दी तुगलक सुल्तानों के हाथों से निकल कर सैय्यद वंश के हाथों में चली गई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपर्युक्त कारणों से निःसन्देह इस धारणा को बल मिलता है कि फिरोज तुगलक बहुत अंशों तक तुगलक साम्राज्य की समाप्ति के लिए उत्तरादायी था। तथापि सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उस पर नहीं डाला जा सकता। तुगलक साम्राज्य मुहम्मद तुगलक के समय ही निर्बल बन चुका था। मुहम्मद तुगलक के निष्फल योजनाओं ने तुगलक साम्राज्य की नींव हिला दी थी। फिरोज की उदारता, अक्षमता और धार्मिक कट्टरता ने तुगलक साम्राज्य के पतन को और निकट ला दिया।

8.6 मृत्यु :

फिरोज के अन्तिम दिन प्रसन्नतापूर्वक नहीं बीते। 1374 ई. में उसके उत्तराधिकारी पुत्र फतेखां की मृत्यु हो गयी थी, जिससे सुल्तान को भारी आघात पहुंचा। उसकी उम्र भी काफी हो चुकी थी, शोक के कारण शक्ति तथा निर्णय–बुद्धि क्षीण होने लगी। 1387 ई. में उसका दूसरा पुत्र खाने जहां भी मर गया। अक्टूबर 1388 ई. में 80 वर्ष की अवस्था में उसका देहान्त हो गया।

8.7 मूल्यांकन :

फिरोज एक पक्का मुस्लिम शासक था तथा इस्लामी कानून का पक्का पाबन्द था। उसके चरित्र तथा व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। उसके समकालीन इतिहासकार बरनी तथा शम्सी–सिराज अफीक ने फिरोज को न्यायप्रिय तथा एक दयालु शासक होने का श्रेय दिया है।

आधुनिक इतिहासकार इलियट तथा एलफिंस्टन फिरोज की तुलना अकबर से करते हैं लेकिन दूसरी ओर वी.ए. स्मिथ फिरोज की अकबर से तुलना मूर्खतापूर्ण मानते है। डॉ. ईश्वरी प्रसाद का भी विचार है, ''फिरोज उस विशाल ह्रदय तथा विस्तीर्ण मस्तिष्क वाले सम्राट अकबर की प्रतिभा का शतांश भी नहीं था, जिसने सार्वजनिक हितों के उच्च मंच से सभी सम्प्रदायों और धर्मों के प्रति शान्ति, सद्भावना तथा सहिष्णुता का सन्देश दिया।''

डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव का विचार है कि वास्तव में सत्य इन दोनों उग्र मतों के बीच में है। यद्यपि सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि फिरोज एक सच्चा मुसलमान था तथा धर्म–पालन तथा प्रजा के हित का सदैव ध्यान रखता था। निर्धनों, असहायों, अनाथों, लड़कियों तथा विधवाओं के लए उसने बहुत कुछ किया। बेरोजगार एवं रोगी व्यक्तियों का भी उसे ख्याल था। विद्वानों, शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा शिक्षण संस्थाओं को उसने उदारतापूर्वक दान दिया, सार्वजनिक निर्माण कार्य किये तथा कृषि को प्रोत्साहन दिया. तथापि यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उसके ये सब कार्य मात्र सुन्नी मुसलमानों तक ही सीमित थे। गैर–सुन्नी मुसलमानों के प्रति वह क्रूर एवं अत्याचारी था। उलेमाओं के प्रभाव में आकर उसने संकीर्ण धर्मान्धता का सहारा लिया तथा अपनी बहुसंख्यक हिन्दू जनता पर ही नहीं वरन् सुन्नी मुसलमानों पर भी घोर–अत्याचार किये। डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि ''फिरोज के सुधार हिन्दुओं का विश्वास प्राप्त करने में असफल हुए जिनकी भावनाएं उसकी धार्मिक असहिष्णुता के कारण कटु बन गयी थी। उन सभी ने मिलकर उस प्रतिक्रिया को जन्म दिया जो उस वंश के लिए घातक सिद्ध हुई, जिसका वह एक अयोग्य प्रतिनिधि था।''

8.8 सारांश :

कुल मिलाकर फिरोज न तो उच्च कोटि का आदर्श शासक था और न ही सफल शासक। डॉ. आर.पी. त्रिपाठी के शब्दों में, ''विधता की कुटिल गति इतिहास के इस दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य से प्रकट हुई कि जिन गुणों ने फिरोज तुगलक को लोकप्रिय बनाया वे ही दिल्ली सल्तनत ही दुर्बलता के लिए जिम्मेदार सिद्ध हुए।''

8.9 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 फिरोज तुगलक ने कुल कितनी नहरों का निर्माण कराया?

अ. 10 ब. 4 स. 5 द. 3

प्रश्न 2 फिरोज तुगलक की मुद्रा प्रणाली में किये सुधार को 30 शब्दों में बताइये।

उत्तर – ....

प्रश्न 3 फिरोज तुगलक अच्छाइयों और बुराइयों का सम्मिश्रण था समझाइये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–9
विजयनगर साम्राज्य का उत्थान एवं पतन

संरचना

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 विजयनगर की स्थापना
- 9.2.1 संगम वंश (1336–1485 ई.)
- 9.2.2 सुलुव वंश (1485–1505 ई.)
- 9.2.3 तुलुव वंश (1505–1570 ई.)
- 9.2.4 अरविन्दू वंश (1570–1614 ई.)

9.3 संगम वंश (1336 ई. – 1485 ई.)
- 9.3.1 हरिहर (1336–1356 ई.)
- 9.3.2 बुक्काराय (1356–1377 ई.)
- 9.3.3 हरिहर द्वितीय (1406–1404 ई.)
- 9.3.4 देवराय प्रथम (1406–1422 ई.)
- 9.3.5 देवराय द्वितीय (1422–1446 ई.)

9.4 संगम वंश का पतन
9.5 सुलुब वंश (1485 ई. – 1505 ई.)
9.6 सुलुव वंश का अन्त
9.7 तुलुब वंश (1505 ई. – 1614 ई.)
- 9.7.1 वीर नरसिंह (1505–1509 ई.)
- 9.7.2 कृष्ण देवराय (1509–1529 ई.)
- 9.7.3 अच्युतराय (1529–1542 ई.)
- 9.7.4 सदाशिवराय (1542–1570 ई.) तथा तालीकोट का युद्ध (1565 ई.)

9.8 अरविन्दु वंश (1570 ई. – 1614 ई)
9.9 शासन प्रबन्ध
- 9.9.1 राजा
- 9.9.2 मंत्रीमण्डल

9.10 प्रान्तीय शासन
9.11 स्थानीय शासन
9.12 व्यवस्था
9.13 न्याय व्यवस्था
9.14 सैन्य प्रबन्ध
9.15 धार्मिक सहिष्णुता
9.16 साहित्य एवं कला का विकास
- 9.16.1 साहित्यिक उन्नत्ति
- 9.16.2 कला के क्षेत्र में उन्नत्ति

9.17 विजयनगर की समृद्धि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.18 सामाजिक स्थिति

9.18.1 वर्ण व्यवस्था

9.18.2 खान–पान

9.18.3 स्त्रियों की दशा

9.18.4 मनोरंजन

9.19 आर्थिक स्थिति

9.19.1 कृषि

9.19.2 अन्य व्यवसाय

9.19.3 आयात निर्यात

9.19.4 व्यापारिक विकास

9.20 विजयनगर राज्य के पतन के कारण

9.20.1 बहमनी राज्य से संघर्ष

9.20.2 सैनिक दुर्बलता

9.20.3 प्रजा की दुर्बलता

9.20.4 मुसलमानों के साथ अत्याचार

9.20.5 विभिन्न वंशों का शासन

9.20.6 रक्षा प्रबन्धों की उपेक्षा

9.20.7 अन्तिम शासक की दुर्बलताएँ

9.20.8 मुस्लिम संघ की स्थापना

9.20.9 तालीकोट का युद्ध

9.20.10 प्रान्तीय गर्वनरों की प्रबलता

9.20.11 पश्चिमी समुद्र तट पर पुर्तगालियों का आवास

9.21 सारांश

9.22 अभ्यास प्रश्नावली

9.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में विजयनगर साम्राज्य के उत्थान एवं पतन को विभिन्न पहलुओं द्वारा समझाया जायेगा।

–विभिन्न राजवंशों के नेतृत्त्व में विजयनगर का उत्थान

–विजयनगर का प्रशासन

–विजयनगर का पतन

9.1 प्रस्तावना :

दिल्ली सल्तनत एक अखिल भारतीय साम्राज्य स्थापित करने में असफल रही। तेरहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत को अपने नियन्त्रण में लाने के लिए सल्तनत की महत्त्वाकांक्षाओं से, जिनके फलस्वरूप सैनिक संघर्ष भी हुए, एक अनिश्चितता का वातावरण उत्पन्न हो गया। इस प्रायद्वीप के असंख्य छोटे–छोटे राज्यें को बराबर यह आशंका बनी रही कि कहीं तुर्कों द्वारा विजित होना ही उनकी नियति न हो। परन्तु चौदहवीं शताब्दी में यह वातावरण बदल गया, क्योंकि सल्तनत की दुर्बलता प्रकट हो चुकी थी। दक्षिण के तुर्क राज्यपाल ने विद्रोह करके बहमनी राज्य की स्थापना कर ली थी लेकिन इससे एक दशक पूर्व विजयनगर का स्वतन्त्र राज्य सुदूर दक्षिण में स्थापित हो चुका था, जहां कभी होयसल राजाओं का शासन था। विजयनगर राज्य की स्थापना का अप्रत्यक्ष सम्बन्ध इस तथ्य से भी था कि प्रायद्वीप को अपने आधिपत्य में लाने में सल्तनत असफल रही थी। विजयनगर के उत्थान से पतन तक संगम, सुलुब एवं अरविन्द वंश का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा तथा अंत में तालीकोट के युद्ध में इसकी पराजय के साथ पतन प्रारम्भ हो गया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.2 विजयनगर की स्थापना :

वारंगल पर मुस्लिम आक्रमण के दौरान, सल्तनत की सेना दो स्थानीय राजकुमारों हरिहर तथा बुक्का को बन्दी बनाकर दिल्ली ले आयी थी, जहां उन्हें मुसलमान बना लिया गया और सल्तनत की सत्ता को पुनः स्थापित करने के लिए उन्हें वापस दक्षिण भेज दिया गया। दोनों राजकुमार अपने इस कार्य में सुलझे हुए, परन्तु उनमें अपने निजी राज्य स्थापित करने की इच्छा प्रबल हो गयी। जिस समय मुहम्मद तुगलक की योजनाओं से सर्वव्यापी असन्तोष फैल रहा था, उस समय लगभग 1336 ई. में हरिहर हस्तिनावती (आधुनिक हम्पी) का राजा बना और आगे चलकर वही राज्य विजयनगर कहलाया।

कालान्तर में इन दोनों भाइयों ने पुनः हिन्दू धर्म ग्रहण किया। यह कार्य राज्य, प्राप्त करने से कठिन रहा होगा, क्योंकि इस्लाम ग्रहण करने से वे जाति से बहिष्कृत हो गये थे और तत्कालीन वर्ण–व्यवस्था के अनुसारपुनः वर्ण–मर्यादा प्राप्त करना असम्भव था। परन्तु उस क्षेत्र के एक समादृत धर्माचार्य विद्यारण्य ने इस दोनों भाइयों को न केवल वर्ण–व्यवस्था में ही पुनः सम्मिलित कर लिया अपितु समस्त कठिनाइयों को यह कहकर दूर कर दिया कि हरिहर वास्तव में स्थानीय देवता का प्रतिनिधि है। विजयनगर पर कुल चार राजवंशों ने शासन किया जो इस प्रकार थे –

9.2.1. संगम वंश (1336–1485 ई.)
9.2.2. सुलुव वंश (1485–1505 ई.)
9.2.9. तुलुव वंश (1505–1570 ई.)
9.2.4. अरविन्दू वंश (1570–1614 ई.)

9.3 संगम वंश (1336 ई.–1485 ई.) :

हरिहर, बुक्काराय और उनके उत्तराधिकारी संगम वंशीय कहलाते थे, जिन्होंने विजयनगर पर लगगभग 150 वर्ष तक शासन किया। इस वंश के शासकों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

9.3.1 हरिहर (1336–1356 ई.) – संगम वंश का पहला शासक हरिहर था, जो 1336 ई. में गद्दी पर बैठा। उसने अपनी शक्ति को दृढ़ करने के लिए विजयनगर में एक दुर्ग का निर्माण करवाया। इसके पश्चात् उसने नालौर प्रदेश में उदयगिरि के प्रसिद्ध दुर्ग की नींव रखी। उसने होयसल राज्य के एक बढ़े भाग को विजय करके अपने राज्य का विस्तार किया। डॉ. मजूमदार लिखते हैं, "हरिहर के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में विजयनगर का अधिकार क्षेत्र बहुत बढ़ गया और उसने एक साम्राज्य का रूप धारण कर लिया था।"

9.3.2 बुक्काराय (1356–1377 ई.) – हरिहर की मृत्यु के बाद उसका भाई बुक्काराय सिंहासन पर बैठा। उसका अधिकांश समय बहमनी राज्य के सुल्तान के साथ युद्ध करने में व्यतीत हुआ। युद्ध का प्रमुख कारण यह था कि दोनों ही राज्यों के शासक रायचूर दोआब के उपजाऊ प्रदेश पर अधिकार करना चाहते थे। फरिश्ता के अनुसार , "यद्यपि दोनों शासकों को अन्त में एक सन्धि करनी पड़ी, तथापि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस युद्ध में बुक्कराय का पलड़ा भारी रहा।" बुक्काराय ने मदुरा को विजय किया और वहां के मुसलमानों को मार भगाया। इस विजय फलस्वरूप लगभग सम्पूर्ण दक्षिणी भारत पर बुक्का का अधिकार हो गया। 1374 ई. में बुक्का ने चीन में अपना एक दूत भेजा। 1377 ई. में बुक्काराय की मृत्यु हो गई।

नीलकण्ठ शास्त्री ने लिखा है, "बुक्काराय अपने समय का एक महान् शासक था, जिसे विजयनगर साम्राज्य का सच्चा निर्माता होने का श्रेय दिया जा सकता है। वह एक कुशल योद्धा था, जिसे मुसलमानों के विरुद्ध महान् सैनिक सफलताएं प्राप्त हुई। धर्मान्धता के इस युग में भी बुक्काराय उदारचित्त व्यक्ति था। उसने वेद–विद्या के प्रसार को बहुत प्रोत्साहन दिया।"

9.3.3 हरिहर द्वितीय (1377–1404 ई.) – हरिहर प्रथम और बुक्काराय में से किसी ने भी राजा या महाराज की उपाधि नहीं की। बुक्काराय की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हरिहर द्वितीय विजयनगर का शासक बना। गद्दी पर बैठते ही उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। उसने अपने वीर पुत्र वीरवक्ष की सहायता से अनेक विद्रोह का सफलतापूर्वक दमन किया। हरिहर द्वितीय ने 1377 ई. में बहनमी राज्य के सुल्तान मुजाहिदशाह को 'अदोनी' नामक स्थान पर पराजित किया। सन् 1404 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। उसने अपने शासनकाल में विजयनगर साम्राज्य का विस्तार किया, व्यापार को उन्नत बनाया और अनेक शासन–सम्बन्धी सुधार किए।

9.3.4 देवराय प्रथम (1406–1422 ई.) – हरिहर द्वितीय की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में गद्दी के लिए संघर्ष हुआ और अन्त में 1 नवम्बर, 1406 ई. को देवराय प्रथम विजयनगर का शासक बना। उसने सोलह वर्ष तक शासन किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

देवराय प्रथम ने अपने राज्य को सुरक्षित रखा और साम्राज्य का विस्तार भी किया। फरिश्ता के अनुसार, ''फीरोज तुगलक ने बिना किसी विरोध के विजयनगर पर आक्रमण किये, परन्तु हार खाई। पराजित हाकर भी उसने संघर्ष जारी रखा और अन्त में देवराय को उससे सन्धि करनी पड़ी। देवराय ने अपनी एक पुत्री का विवाह भी फिरोज तुगलक से कर दिया।' आधुनिक इतिहासकार फरिश्ता के इस मत को सही नहीं मानते हैं। 1422 ई. के लगभग देवराय की मृत्यु हो गई। देवराय ने अपनी सैनिक शक्ति हो सुदृढ बनाने के लिए अरब और ईरान से घोड़े खरीदकर मंगवाए। डॉ. वेंकटरमैया के अनुसार, ''उसके शासनकाल में विजयनगर सचमुच ही विद्यानगर' बन गया था, जहां बड़े–बड़े विद्वान् शिक्षा लेते–देते थे।''

9.3.5 देवराय द्वितीय (1422–1446 ई.) – देवराय द्वितीय संगम वंश का एक महान् शासक था, जिसने बहमनी राज्य के साथ अनेक युद्ध लड़े और विजयनगर को मुसलमानों के आक्रमणों से सुरक्षित रखा। उसने अपने 25 वर्ष के शासनकाल में विजयनगर साम्राज्य का विस्तार किया। उसने व्यापार तथा साहित्य को प्रोत्साहन दिया। उसके शासनकाल में दो विदेशी यात्री (इटली का निकौलो कौण्टी और ईरान का अब्दुर्रज्जाक) विजयनगर में आए।

इटली के यात्री कौण्टी ने लिखा है, ''विजयनगर का बादशाह भारत में सबसे शक्तिशाली है। उसके महल में 12,000 स्त्रियां हैं। इन सबके लिए राजा के मरने पर सती होना जरूरी है।'' ईरानी यात्री अब्दुर्रज्जाक ने बादशाह के बारे में लिखा, ''राजा कद का लम्बा तथा शरीर का पतला है। उसका रंग गेहूंआ है। वह गले में बहुमूल्य मोतियों की एक माला पहनता है, जिसकी कीमत का अनुमान करना कठिन है।''

9.4 संगम वंश का पतन :

देवराय की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी (मल्लिकार्जुन और वीरुपाक्ष) दुर्बल प्रमाणित हुए। इससे उत्साहित होकर प्रान्तीय शासकों ने विद्रोह कर दिया। बहमनी सुल्तान ने रायचूर दोआब पर अधिकार कर लिया ओर ऊ़ीसा के राजा पुरुषोत्तम गजपति ने भी विजयनगर के विरुद्ध अभियान भेजा। अन्त में विजयनगर का एक हिन्दूसरदार नरसिंह 1485 ई. में वीरुपक्ष को गद्दी से उतार कर शासक बन गया। इस प्रकार विजयनगर में संगम वंश के स्थान पर सालुव वंश का राज्य स्थापित हुआ।

9.5 सुलुव वंश (1485–1505 ई.) :

नरसिंह (1485–1490 ई.) – सुलुव वंश के संस्थापक नरसिंह ने अपने छः वर्ष के शासनकाल में उन सब शासकों को नीचा दिखाया, जो उसकी सत्ता को मानने के लिए तैयार नहीं थे। वह बहमनी ओर उड़ीसा के सुल्तानों के विरुद्ध सफलता प्राप्त नहीं कर सका। उसने सैनिक–शक्ति सुदृढ़ करने के लिए अरब सौदागरों से बहुत से घोड़े खरीदे और विजयनगर के शान्तिप्रिय किसानों को शक्तिशाली योद्धाओं में परिवर्तित कर दिया। 1490 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

9.6 सुलुव वंश का अन्त :

नरसिंह के उत्तराधिकारी कमजोर एवं अयोग्य प्रमाणित हुए। इससे उत्साहित होकर उसके सेनापति वीर नरसिंह तलुवा ने सुलुव वंश के अन्तिम शासक को 1505 ई. में गद्दी से उतार दिया और स्वयं शासक बन गया।

9.7 तुलुव वंश (1505 ई.–1570 ई.) :

इस वंश में निम्नलिखित राजा हुए –

9.7.1 वीर नरसिंह (1505–1509 ई.) – तुलुव वंश के संस्थापक वीर नरसिंह ने विजयनगर पर केवल 5 वर्ष राज्य किया। उसे अपने शासन काल में निरन्तर विद्रोहों से जूझना पड़ा। अतः शासन प्रबन्ध की ओर पूरा ध्यान नहीं दे सका। फिर भी उसने राज्य के सैन्य संगठन में अनेक सुधार किए और पुर्तगालियों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए। उसने अपनी प्रजा में साहस और शूरवीरता का संचार करने का पूर्ण प्रयत्न किया। कुछ करों को हटाकर उसने प्रजा को राहत देने की भी कोशिश की।

9.7.2 कृष्ण देवराय (1509–1529 ई.) – वीर नरसिंह की मृत्यु के बाद उसका भाई कृष्ण देवराय गद्दी पर बैठा। वह न केवल तुलुव वंश का बल्कि विजयनगर साम्राज्य का सर्वश्रेष्ठ राजा सिद्ध हुआ और इतिहास में उसे भारत का एक महान् शासक बनने का श्रेय प्राप्त है। 1509 ई. तक के अपने 20 वर्ष के शासन काल में उसने विजयनगर को एक विशाल और गौरवपूर्ण साम्राज्य बना दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विजएं – कृष्ण देवराय बहुत ही शूरवीर और कुशल सेनापति था जिसने अपने शासन काल में आन्तरिक विद्रोहों को दबाया और उन सब प्रदेशों को वापस छीन लिया जो बहमनी सुल्तान और उड़ीसा नरेश ने पहले छीन लिए थे। उसने अनेक युद्ध किए और सभी में सफलता प्राप्त की। उसे अपने जीवन में कभी पराजय हाथ नहीं लगी। युद्धों में उसने सेना का नेतृत्व किया।

1509 ई. के अन्तिम दिनों में उसने बहमनी सुल्तान महमूदशाह को करारी हार दी। अगले ही वर्ष उसने दक्षिण मैसूर में उम्मतूर के विद्रोह सरदार को दबाया। 1511–1512 ई. में उसने शिव समुद्रम् के दुर्ग पर कब्जा कर लिया। उसने उड़ीसा के शासक गजपति प्रतापरूद्र पर भी आक्रमण किया और अन्त में एक लम्बे युद्ध के बाद 1518 ई. में दोनो पक्षों में सन्धि हो गई जिसके अनुसार गजपति ने अपनी पुत्री का विवाह कृष्णदेव से कर दिया और कृष्णदेव ने उड़ीसा के जीते हुए प्रदेशों को लौटा दिया।

1512 ई. में कृष्ण देवराय ने बीजापुर के शासक इस्माइल आदिलशाह से रायत्तूर दोआब छीन लिया। यह उसकी उत्तर में सबसे महान् विजय थी। इसके बाद उसने अपने योग्य मन्त्री सालुवत्तिम्म के परामर्श का आदर करते हुए उत्तर के मुस्लिम शासकों से छेड़–छाड़ नहीं की।

कृष्ण देवराय को मार्च, 1520 ई. में बीजापुर सुल्तान इस्माइल आदिलशाह से पुनः जूझना पड़ा, क्योंकि उसने रायचूर दोआब वापस छीनने का प्रयत्न किया। कृष्णदेव ने केवल उसे पराजित ही नहीं किया बल्कि बीजापुर राज्य के विख्यात दुर्ग 'गुलबर्गा' को मिट्टी में मिला दिया।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कृष्णदेव ने महान् सैनिक सफलताओं द्वारा अपने साम्राज्य की शक्ति और सीमाओं को बढ़ाया। विजयनगर राज्य की सीमाएं पूर्व में विजगापट्टम, पश्चिम में दक्षिण कोंकण और दक्षिण में समुद्र तक फैल गई।

पुर्तगालियों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध – कृष्णदेव ने पुर्तगालियों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए। उन्हें व्यापारिक सुविधाएं प्रदान की ओर उसने अपनी सेना के लिए अच्छे घोड़े खरीदे। कृष्णदेव के समय अनेक पुर्तगाली सौदागर ओर यात्री विजयनगर में आने लगे।

यद्यपि कृष्णदेव ने पुर्तगालियों को दोस्त बनाया, लेकिन उसने उन्हें अपने राजनीतिक कार्यों में हस्तक्षेप करने की आज्ञा न दी। सन् 1523 ई. में पुर्तगालियों द्वारा गोआ प्रदेश पर अधिकार करने के प्रयत्न करने पर कृष्णदेव ने उनके विरूद्ध शक्तिशाली सैनिक टुकड़ी भेज दी।

शासन प्रबन्ध – कृष्णदेव ने युद्धों में व्यस्त रहते हुए भी शासन प्रबन्ध की ओर काफी ध्यान दिया। उसने राज्य में अनेक तालाब बनवाए और नहरें खुदवाईं। उसने कुछ अनुचित कर भी हटा दिए। कृषि को उसने प्रोत्साहन दिया जिससे राजकोष में आय बढ़ी। विजयनगर के समीप उसने नगलपुर नामक नगर बसाया और उसे सुन्दर भवनों व मन्दिरों से अलंकृत किया।

कला व साहित्य को संरक्षण – कृष्णदेव ने कला और साहित्य को पूरा संरक्षण दिया। विद्वानों, कवियों और कलाकारों को उसने इतना प्रोत्साहन दिया कि उसे लोग आन्ध्र प्रदेश का भोज कहते थे। तेलगु साहित्य की उसके शासन काल में विशेष उन्नति हुई। उसके दरबार में तेलगु भाषा के 8 प्रसिद्ध कवियों को संरक्षण मिला हुआ था।

निष्कर्षतः कृष्ण देवराय के समय विजयनगर की शक्ति और समृद्धि का चरमोत्कर्ष हुआ।

9.7.3 अच्युतराय (1529–1542 ई.) – कृष्ण देवराय की 1529 या 1530 ई. के लगभग मृत्यु को गई। तत्पश्चात् उसके भाई अच्युतराय ने 1541–42 ई. तक शासन किया। अच्युतराय के बाद उसका पुत्र बैंकट गद्दी पर बैठा जिसका शासन केवल 6 महीने रहा।

9.7.4 सदाशिवराय (1542–1570 ई.) तथा तालीकोट का युद्ध (1565 ई.) – बैंकट के बाद अच्युतराय का भतीजा सदाशिवराय गद्दी पर बैठा। वह अपने मन्त्री रामराय के हाथों की कठपुतली बना रहा जो अरविन्दू वंश का था। रामराय ने अपनी अविवेकपूर्ण नीति से विजयनगर साम्राज्य को पतन की ओर धकेल दिया। उसने उत्तर–दक्षिण के मुस्लिम राज्यों के बीच पड़ना शुरू कर दिया जिससे सभी मुस्लिम शासक विजयनगर राज्य के विरूद्ध हो गए। अन्त में बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा और बीदर के शासकों ने विजयनगर के विरूद्ध एक संघ बनाया जिसका उद्देश्य विजयनगर की शक्ति को कुचल देना था। 23 जनवरी, 1565 ई. को इन मुस्लिम शासकों ने संयुक्त होकर विजयनगर पर आक्रमण कर दिया। कृष्णा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नदी के तट पर तालीकोट नामक स्थान पर भयानक युद्ध में रामराय पकड़ा गया जिसे अहमदनगर के सुल्तान निजामशाह ने जान से मार दिया। विजयी मुस्लिम सेनाओं ने चारों ओर भयानक लूट–मार मचाई। फरिश्ता के अनुसार इस लूट से इतना माल हाथ लगा कि प्रत्येक सैनिक बहुत मालदार बन गया। विजेता मुस्लिम सेना ने विजयनगर में जो तबाही और बर्बादी मचाई, वह वर्णन से बाहर है। तालीकोट का युद्ध विजयनगर के पतन के सन्दर्भ में निर्णायक सिद्ध हुआ। मुस्लिम सुल्तानों ने राज्य के कुछ भाग पर अपना अधिकार कर लिया और राज्य की सैनिक शक्ति को गम्भीर क्षति पहुंचाई। इसके बाद विजयनगर राज्य फिर सम्भल नहीं सका।

9.8 अरविन्दू वंश (1570 ई.–1614 ई.) :

मुस्लिम सुल्तानों ने विजयनगर साम्राज्य के काफ़ी भाग पर अपना अधिकार जमा लिया और शेष भाग पर रामराय के भाई तिरूमल ने (1570 ई. के लगभग) कब्जा जमा कर आरवीदू वंश की नींव डाली। इस वंश के शासकों ने लगभग 1614 ई. तक राज्य किया। इस वंश के सभी शासक अयोग्य और निर्बल सिद्ध हुए जो विजयनगर को नष्ट होने से बचा न सके। प्रान्तीय गवर्नर स्वतन्त्र होते गए ओर कुछ इलाके बीजापुर व गोलकुण्डा के कब्जे में चले गए। आरवींदू वंश का अन्तिम शासक रंग तृतीय बड़ा ही अयोग्य निकला। उसी के समय 1614 ई. के आसपास विजयनगर राज्य समाप्त हो गया। उत्तरी भाग पर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया ओर दक्षिणी भाग पर मदुरा व तंजौर के नायकों ने अपने स्वतन्त्र राज्य काम कर लिए।

9.9 शासन–प्रबन्ध :

विजयनगर के अधिकांश शासक कुशल शासन–प्रबंधक थे। उनके शासन की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार थीं –

9.9.1 राजा – राजा राज्य का सर्वोच्च अधिकारी था तथा राज्य की सभी शक्तियां उसके हाथों में केन्द्रित थी। वह निरंकुश होता था। वह मंत्रियों के परामर्श के अनुसार शासन का संचालन करता था, किन्तु वह उनके परामर्श को मानने के लिये बाध्य नहीं था। राजा ही मंत्रियों को नियुक्त करता था।

9.9.2 मंत्रिमंडल – मन्त्री शसन संचालन में राजा की सहायता करते थे। मन्त्री राज्य के विभिन्न विभागों के प्रमुख होते थे। वे राजा द्वारा नियुक्त किये जाते थे। मन्त्री पद पर सभी जाति के व्यक्तियों को (शूद्र को छोड़कर) नियुक्त किया जाता था। इसके अलावा प्रान्तीय सूबेदार, सेनापति तथा पण्डित भी विभिन्न विषयों पर राजा को परामर्श देते थे। नीलकंत शास्त्री के अनुसार, "केन्द्रीय सरकार के दो राजकोष थे। छोटे राजकोष द्वारा दैनिक लेने–देन का काम होता था, जबकि बड़ा राजकोष सीधा राजा के नियंत्रण में होता था। उसमें राजा की सम्पत्ति होती थी।"

9.10 प्रान्तीय शासन :

साम्राज्य प्रान्तों में, प्रान्त कोट्टम तथा जिलों में विभक्त था। एक कोट्टम में कई गांव होते थे। प्रान्तों का शासक प्रान्तपति होता था, जो एक शक्तिशाली व्यक्ति होता था। नीलकण्ठ शास्त्री के अनुसार, "शासकीय इकाइयों तथा उनके कर्मचारियों के राज्य में भिन्न–भिन्न नाम थे, परन्तु प्रत्येक प्रान्त का शासक अवश्य ही प्रान्तपति होता था। देश में कुछ ऐसे भी भाग थे, जहां प्राचीन शासकों को राज्य करने की आज्ञा दी गयी थी, परन्तु वे विजयनगर शासक का आधिपत्य मानते थे तथा उसे वार्षिक कर भी नियमित रूप से देते थे। प्रान्तपति का पद साधारणतया राजकुमारों को दिया जाता था।

9.11 स्थानीय शासन :

गांव–शासन की सबसे छोटी इकाई थी तथा उसका शासन पंचायत द्वारा चलाया जाता था।

9.12 वित्तीय व्यवस्था :

राज्य की आय का मुख्य साधन भूमि कर था, जो 1/6 से 1/2 भाग तक लिया जाता था। भूमि की पैमाइश की जाती थी। चरागाह, चुंगी, व्यवसाय, गृह, कुम्हार, मोची, धोबी, नाई, वेश्या आदि पर कर लगाया जाता था, किन्तु कर उदारता से वसूला जाता था।

9.13 न्याय–व्यवस्था :

न्याय व्यवस्था भी सुसंगठित थी। न्याय हेतु राज्य में कई न्यायालय होते थे। राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश राजा स्वयं होता था। वह मुकद्दमों का निर्णय भी करता था। न्याय हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार किया जाता था। दण्ड विधान कठोर था। मृत्यु दण्ड, अंग–भंग, जुर्माना आदि दण्ड दिये जाते थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.14 सैन्य प्रबन्ध :

विजयनगर राज्य का सैन्य–प्रबंध भी उत्तम था। संभवतः विजयनगर की सेना में तोपखाना व जलसेना भी शामिल थी। घुड़सवार सेना के मुख्य अंग थे तथा विजयनगर के शासकों ने अरबों तथा पुर्तगालियों से घोड़े खरीदे थे। अब्दुर्रजाक के अनुसार, ''विजयनगर राज्य में बहुत–से सैनिक स्कूल थे, जिनमें वहां के देशवासियों को तलवार तथा धनुष चलाने की शिक्षा दी जाती थी। केवल राजधानी में 90, 000 ऐसे व्यक्ति थे, जो शास्त्र चलाना जानते थे।'' राज्य में 200 सामन्त थे, जो आवश्यकता पड़ने पर राजा की सहायता करते थे।

9.15 धार्मिक सहिष्णुता :

विजयनगर के शासक वैष्णव धर्मावलम्बी थे, परन्तु उन्होंने अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई। बारबोसा ने लिखा है – ''राजा ने इतनी स्वतंत्रता दे रखी है कि कोई भी व्यक्ति इच्छानुसार विचरण कर सकता है तथा अपने धर्म के अनुसार जीवन बिता सकता है, उसे न कोई कष्ट देगा और न यह पूछेगा कि तुम ईसाई, यहूदी, मुसलमान अथवा हिन्दू हो।''

9.16 साहित्य तथा कला का विकास :

विजयनगर राज्य में साहित्य तथा कला का भी बहुत विकास हुआ।

9.16.1 साहित्यिक उन्नति – विजयनगर राज्य में हिन्दू धर्म एवं साहित्य की बहुत उन्नति हुई तथा संस्कृत भाषा का पुनरुद्धार हुआ। माधवाचार्य ने ''न्याय–शास्त्र'' पर एक ग्रंथ लिखा तथा सायण वेदों का महान् टीकाकार था। विजयनगर में तेलगु तथा कन्नड़ साहित्य का बहुत विकास हुआ। कृष्णदेव राय ने 'अमुक्त माल्यद' नामक ग्रन्थ लिखा। नीलकण्ड शास्त्री के अनुसार, ''यह तेलगु भाषा के पांच प्रसिद्ध काव्यों में एक मानी जाती है।'' इसके दरबार में 8 महान् कवि थे। रानी गंगादेवी ने 'मदुरा विजय' नामक ग्रन्थ लिखा।

विजयनगर के राजा बड़े साहित्य प्रेमी थे। इनके राज–दरबार में अनेक विद्वानों को आश्रय प्राप्त था। इनके शासनकाल में संस्कृत तथा तेलगू साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। सायण एवं माधव दो सगे भाई थे। इन दोनों को विजयनगर की राज्य सभी में आश्रय प्राप्त था। माधव ने 'सुदर्शनसंग्रह' नामक गन्थ लिखा तथा सायण ने ऋग्वेद संहिता, ऐतरेय ब्राह्मण तथा आरण्यक उपनिषदों पर टीकाएं लिखीं। ये दोनों भाई बुक्का प्रथम की राज्यसभा के रत्न थे। लक्ष्मीधर नामक विद्वान ने 'सरस्वती विकास' तथा 'सौन्दर्य लहरी' नामक ग्रन्थ लिखे। भट्टोजी दीक्षित ने 'सिद्धान्त कौमुदी' लिखा। श्रीसराज ने 'मायावाद खण्डन' नामक ग्रन्थ लिखा। तेलगू साहित्य की भी पर्याप्त उन्नति हुई। कृष्णदेवराय स्वयं विद्वान था तथा उसके दरबार में उच्चकोटि के विद्वानों को राजश्रय प्राप्त था।

9.16.2 कला के क्षेत्र में उन्नति – विजयनगर के शासक कला–प्रेमी भी थी। उन्होंने कई कलात्मक भवन बनवाये। विजयनगर के हजारा तथा विट्ठलस्वामी नामक दो मन्दिर प्रसिद्ध है। विट्ठलनाथ का मन्दिर विशाल, भव्य तथा कलात्मक है। विरूपाक्ष द्वितीय निर्मित हजारा मन्दिर भी तत्कालीन कला की सुन्दर कृति है। इसमें राम के जीवन से सम्बन्धित दृश्य बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त चित्रकारी, संगीत–कला के क्षेत्र में भी बहुत विकास हुआ।

निकोलों कोण्टी एवं अब्दुलरज्जाक के विवरणों से विदित होता है कि विजयनगर के राजाओं को कला से बड़ा प्रेम था। स्थापत्य कला के क्षेत्र में काफी उन्नति हुई। राजाओं ने अपनी राजधानी में भव्य भवन तथा सुन्दर मन्दिरों का निर्माण करवाया। राजाओं ने अनेक जलाशय तथा तालाब भी बनवाये थे। भवनों तथा मन्दिरों की दीवारों पर चित्रकारी की जाती थी। राजा कृष्णदेव राय ने सुन्दर 'हजारा' का मन्दिर बनवाया था। इस मन्दिर की दीवारों में राम की कथा खुदी हुई थी। अब्दुलरज्जाक ने लिखा है, ''ऐसा नगर न कभी आंखों से देखा है, न कानों से सुना है। नगर में सात दुर्ग एवं सात रक्षा दीवारें है।'' विजयनगर का विट्ठल स्वामी का मन्दिर स्थापत्य कला का एक अन्य श्रेष्ठ उदाहरण है। विजयनगर के शासकों ने चित्रकला एवं संगीत को भी प्रोत्साहन एव संरक्षण दिया तथा नाटक कला की भी उपेक्षा नहीं की गयी। संक्षेप में कहा जा सकता है कि विजयनगर साम्राज्य का इतिहास साहित्य एवं कलात्मक रचनाओं के विकास के लिए प्रसिद्ध है। आर.सी. मजूमदार ने भी विजयनगर की कला की प्रशंसा की है।

9.17 विजयनगर की समृद्धि :

विजयनगर साम्राजय की गणना विश्व इतिहास के अत्यधिक धनी राज्यों में की जाती है। अनेक विदेशी यात्रियों ने विजयनगर के वैभव और समृद्धि की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। इटली यात्री निकोलो कोण्टी ने 1420 ई में विजयनगर की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यात्रा की थी। उसने लिखा है – "नगर की परिधि सात मील है, उसकी दीवारें पर्वत–शिखरों तक पहुंचती है ओर उनके चरणों को घाटिया घेरे हुए हैं, इससे उसका विस्तार ओर भी अधिक ब्ढ़ जाता है। अनुमान से नगर में 90 हजार व्यक्ति अस्त्र–शस्त्र धारण करने योग्य है। राजा भारत के अन्य सभी राजाओं से शक्तिशाली है।"

ईरानी यात्री अब्दुर्रजाक ने 1442–43 ई. में विजयनगर का भ्रमण किया था। उसने लिखा है, "देश इतना अच्छा बसा हुआ है कि उसका चित्र प्रस्तुत करना असम्भव है। राजा के कोषा–गृह में, जिसमें गड्ढे खुदे हुए है, उनमें पिघला हुआ सोना भर दिया गया है, जिसकी ठोस शिलाएं बन गई हैं। देश के सभी उच्च एवं निम्न जातियों के निवासी, यहां तक कि बाजार के कारीगर भी कानों, कण्ठों, बहुओं, कलाइयों तथा उंगलियों में जवाहरात तथा सोने के आभूषण पहनते हैं।"

डेमिंगोस पेइज नामक पुर्तगाली यात्री ने लिखा है – "यह नगर संसार में सबसे अधिक धन–धान्य से सम्पन्न है। इसमें चावल, गेहूं तथा अन्य अनाजों के भण्डार हैं। बाजार तथा सड़कों में अनगिनत बैल सामान से लदे रहते हैं।"

बारबोसा ने 1516 ई. में भारत भ्रमण किया था। उसने विजयनगर की प्रशंसा करते हुए लिखा है – "नगर विस्तृत, घना बसा हुआ तथा चालू व्यापार का केन्द्र है, हीरे, पीगू के लाल, चीन और सिकन्दरिया का रेशम, कपूर, सिन्दूर, कस्तूरी तथा मालाबार की काली मिर्च और चन्दन इन वस्तुओं का अधिक क्रय–विक्रय होता है।

9.18 सामाजिक स्थिति :

विदेशी यात्रियों के लेखों से हमे विजयनगर के लोगों के सामाजिक जीवन का स्पष्ट चित्र मिलता है तथा निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती है :

9.18.1. वर्ण व्यवस्था – विजयनगर का समाज वर्ण–व्यवस्था का पोषक था। हिन्दू समाज के चारों अंग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वहां रहते थे। ब्राह्मणों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। राजा कृष्णदेवराय ने ब्राह्मणों की सहायता के लिए एक नया कर लगाया था। शासन में ब्राह्मणों की सहायता के लिए एक नया कर लगाया था। शासन में ब्राह्मणों की राय ली जाती थी। ये ब्राह्मण वेद–पाठ करते थे और आवश्यकता पड़ने पर इन्हें सेना के उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था। ब्राह्मण व्यापार भी करते थे। राजनीतिक सत्ता क्षत्रियों के हाथों में थी। सेना में क्षत्रिय लिये जाते थे। समाज में उनका विशेष आदर होता था। वैश्य लोग व्यापार करते थे। कृषि इनका विशेष व्यवसाय था। कुछ वैश्य वेद, इत्यादि पढ़ते थे। योगी नामक जाति के लोग प्रायः नग्न रहते थे।

9.18.2. खान–पान – ब्राह्मणों का समाज में अधिक प्रभाव था। ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य सब जातियों के लिए खान–पान पर प्रतिबन्ध नहीं थें राजा तथा साधारण जनता मांसाहारी थी और गाय तथा बैल को छोडकर सभी प्रकार का गोश्त खाया करते थे। चूहे तथा बिल्ली का मांस भी खाया जाता था।

9.18.9. स्त्रियों की दशा – समाज में स्त्रियों को उच्च स्थान प्राप्त था। उन्हें विद्या प्राप्त करने की सुविधाएं भी मिली हुई थी। राज्य के उच्च पदों पर भी स्त्रियों को रखा जाता था। पर्दा–प्रथा का प्रचलन नहीं था। स्त्रियां, पुरुषों के साथ सामाजिक उत्सवों तथा युद्ध में भाग लेती थी। नूनिज के अनुसार, राजा की सेवा करने वाली स्त्रियां, कुश्ती लड़ने वाली, हिसाब–किताब रखने वाली स्त्रियां, नृत्य एवं गायन करने वाली स्त्रियां समाज में रहती थी। सहित्य के निर्माण में भी स्त्रियों का विशेष योगदान था। तिरुमलम्बादेवी ने 'बरदाम्बिकापरिणयम्' नामक ग्रन्थ तथा गंगा नामक स्त्री ने 'मथुरा विजय' नामक ग्रन्थ लिखा था। राजा अनेक रानियां रखता था। सामन्त तथा धनवान लोग भी अनेक पत्नियां रखते थे। इटली के यात्री निकोलो कोण्टी के अनुसार देवराय द्वितीय की अनेक पत्नियां थी। बाल–विवाह का समाज में प्रचलन अधिक था। विवाह में दहेज का प्रचलन था।

विजयनगर में विधवा–विवाह का उल्लेख नहीं मिलता है। स्त्रियां पति की मृत्यु के बाद सती हो जाया करती थी। विधवाओं का जीवन पाप–युक्त माना जाता था। मौर्यकाल के समान वेश्याएं भी समाज में रहती थी। कृष्णदेवराय के समय में स्त्रियों के लिए अलग गणिका नगर बसाया गया।

9.18.4. मनोरंजन – धनी तथा शासक वर्ग के लोग अपना समय विविध प्रकार से मनोरंजन में व्यतीत करते थे। साधारण जनता पशु–पक्षियों की लड़ाई देखती थी। शिकार भी उस समय होता था। हिन्दू लोग अनेक त्यौहारों में भाग लेते थे। बसन्त का उत्सव भी होता था। होली, दशहरा, रामनवमी, आदि त्यौहार धार्मिक आधार पर होते थे। शतरंज का खेल शासक वर्ग में हुआ करता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.19 आर्थिक स्थिति :

विजयनगर की आर्थिक–स्थिति निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट होती हैं –

9.19.1. कृषि – साधारण जनता कृषि करती थी। साम्राज्य के विभिन्न भागों में कृषि को प्रोत्साहन देना और बुद्धिमतापूर्ण सिंचाई नीति द्वारा कृषि के उत्पादन में वृद्धि करना विजयनगर के शासकों की मुख्य नीति थी। कृष्णदेवराय के समय में अनेक तालाब खुदवाये गये तथा इन्जीनियरों द्वारा बड़ी–बड़ी नहरें खुदवायी गयी थी। अच्छी सिंचाई से उत्तम खेती होती थी। तिल, ज्वार एंव कपास की खेती अधिक होती थी। किसानों से उपज का 1/4 से 1/6 तक हिस्सा लिया जाता था।

9.19.2. अन्य व्यवसाय – विजयनगर में वस्त्र व्यवसाय बड़ी उन्नत अवस्था में था। ऊनी, रेशमी तथा सूत्री वस्त्र बनाये जाते थे। कालीकट वस्त्र व्यवसाय का प्रमुख केन्द्र था। भारतीय वस्त्रों की विदेशों में मांग अधिक थी। लोहे, तांबे, आदि धातुओं के व्यवसाय भी उन्नतावस्था में थे। तिरुपति में धातुओं को ढालने का काम होता था। तेल व्यवसाय भी प्रगति की ओर था। उद्योगों तथा व्यवसायों के लिए अनेक संघ थे।

9.19.3. आयात निर्यात – अन्तर्देशीय तथा सामुद्रिक दोनों प्रकार का व्यवसाय उन्नत अवस्था में था। साम्राज्य में अनेक बन्दरगाह थे और हिन्द महासागर के द्वीपों मलाया द्वीपमाला, बर्मा, चीन अरब, ईरान, दक्षिणी अफ्रीका, अबीसीनिया, पुर्तगाल, आदि से अच्छा व्यापार होता था। वस्त्र, चावल, लोहा, शोरा, शक्कर तथा मसाले निर्यात की वस्तुएं थी। घोड़े, हाथी, मोती, तांबा, कोयला, पारा, रेशम तथा मलमल बाहर से मंगाये जाते थे। सामुद्रिक व्यापार जहाजों द्वारा होता था। विजयनगर के पास अपना एक छोटा जहाजी बेड़ा था और यहां के लोग जहाज निर्माण कला से भली–भांति परिचित थे। आन्तरिक व्यापार के लिए बैलों, घोड़ों, गाड़ियों और गधों का प्रयोग होता था।

9.19.4 व्यापारिक विकास – विजयनगर में व्यापारिक विकास भी बहुत हुआ। के.एम. पन्निकर अनुसार, "विजयनगर में लगभग 300 ऐसे बन्दरगाह थे, जिनके द्वारा ईरान तथा पश्चिम के अन्य देशों के साथ व्यापार होता था।" विजयनगर तथा पुर्तगाल में घनिष्ठ व्यापारिक संबंध थे। विदेशी यात्री बारबोसा ने विजयनगर के विदेशी व्यापार के संबंध में लिखा है. "यह साम्राज्य विदेशी व्यापार का एक महान् केन्द्र है। यहां पर पीगू से हीरे ओर जवाहरात तथा मालाबार से काफूर. नाफा, काली मिर्च और सन्दल आते हैं।" ईरानी यात्री अब्दुर्रजाक ने लिखा है, "विजयनगर साम्राज्य का सबसे प्रसिद्ध बन्दरगाह कालीकट है, जहां से वर्मा, चीन, अरब, ईरान, दक्षिणी अफ्रीका और पुर्तगाल के साथ व्यापार होता है। इस साम्राज्य से विदेशों को कपड़ा, चावल, लोहा, शोरा, खांड, गरम मसाला इत्यादि भेजे जाते हैं। बाहर से आने वाली वस्तुओं में घोड़ा, तांबा, जवाहरात, चीनी और रेशम विशेष रूप से प्रसिद्ध है।"

9.20 विजयनगर राज्य के पतन के कारण :

विजयनगर का शक्तिशाली हिन्दू राज्य लगभग 300 वर्षों तक दक्षिण भारत में अपनी धूम मचाकर अन्त में नष्ट–भ्रष्ट हो गया। इसके पतन के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी बने –

9.20.1. बहमनी राज्य से संघर्ष – अपने पड़ोसी शक्तिशाली बहमनी राज्य से विजयनगर राज्य का निरन्तर संघर्ष चलता रहा। दोनों ही प्रबल राज्य एक–दूसरे के घोर प्रतिद्वन्द्वी बन गए और एक–दूसरे को उखाड़ फेंकने को तैयार हो गए। परिणाम यह हुआ कि ये संघर्ष दोनों ही के लिए विनाशकारी सिद्ध हुए। युद्धों में प्रायः विजयनगर को पराजयों का सामना करना पड़ा जिससे इसकी शक्ति को बड़ा धक्का पहुंचा।

9.20.2. सैनिक दुर्बलता – विजयनगर एक विशाल और प्रबल राज्य था, किन्तु दुर्भाग्यवश वहां योग्य और कुशल सैनिकों का अभाव था। बहमनी सुल्तानों से अपनी सैनिक दुर्बलता के कारण ही विजयनगर को बार–बार परास्त होना पड़ा। विजयनगर की सेना के पास गोला–बारूद नहीं थे जबकि बहमनी सेना में एक अच्छा तोपखाना था जिसका प्रयोग करने के लिए कुशल यूरोपीय और तुर्की लोग नियुक्त थे। विजयनगर के पास अच्छी अश्वारोही सेना भी नहीं थी। विजयनगर के शासकों ने हाथियों पर अधिक भरोसा किया, किन्तु ये हाथी मुस्लिम तीरन्दाजों के सामने नहीं ठहर पाते थे।

9.20.9. प्रजा की दुर्बलता – विजयनगर एक समृद्ध राज्य था। वहां के निवासी भोग–विलास में अधिक लिप्त रहते थे। उन्होंने योद्धा बनने की कोई चेष्टा नहीं की। फलस्वरूप मुस्लिम राज्यों की शक्ति का वे मुकाबला नहीं कर सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इसके अतिरिक्त उनकी समृद्धि और कायरता ने मुस्लिम शक्तियों को बारम्बार आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। फलस्वरूप विजयनगर की शक्ति क्षीण होती गई।

9.20.4. मुसलमानों के साथ अत्याचार — विजयनगर के हिन्दू राजाओं ने अविवेकपूर्ण नीति अपनाई। जब कभी उन्हें युद्ध में विजय मिली, उन्होंने मुसलमानों पर अत्याचार किया और निर्दयतापूर्वक उनका वध करवाया। फलस्वरूप मुसलमानों में प्रतिशोध लेने की भावना प्रबल हो गई और विजयनगर की संकल्पहीन जनता इस विरोधी भावना का मुकाबला नहीं कर सकी।

9.20.5. विभिन्न वंशों का शासन — विजयनगर पर विभिन्न वंशों का शासन रहा, अतः एक संगठित राज्य स्थापित नहीं हो सका और राज्य सत्ता की दृढ नींव नहीं रखी जा सकी।

9.20.6. रक्षा प्रबन्धों की उपेक्षा — विजयनगर एक धर्म प्रभावित राज्य रहा। वहां के राजाओं ने हिन्दू धर्म की ओर अधिक ध्यान दिया और नगर की सुन्दरता बढ़ाने में अपना अधिक समय लगाया। उन्होंने नगर की रक्षा के लिए कोई सुदृढ़ प्रबन्ध नहीं किया।

9.20.7. अन्तिम शासक की दुर्बलताएं — कृष्ण देवराय उत्तराधिकारी अत्यन्त अयोग्य और निर्बल निकले। उनके शासनकाल में राज्य की शक्ति छिन्न–भिन्न हो गई। रामराय की अविवेकपूर्ण नीति के कारण तलीकोट का युद्ध हुआ जिसने विजयनगर की शक्ति को नष्ट कर दिया। इस युद्ध के बाद अयोग्य ओर निर्बल शासकों की एक श्रृंखला बन गई जिससे विजयनगर पतन की ओर बढता गया।

9.20.8. मुस्लिम संघ की स्थापना — कृष्णदेवराय के बाद विजयनगर ने मुस्लिम राज्यों की राजनीति में हस्तक्षेप करने की नीति अपनाई। परिणाम यह हुआ कि विजयनगर के विरोधी मुस्लिम राज्यों का एक ऐसा प्रबल संघ बन गया जिसका सामना करने की विजयनगर में शक्ति और क्षमता नहीं थी।

9.20.9. तालीकोट का युद्ध — मुस्लिम राज्यों के संघ ने तालीकोट के युद्ध में विजयनगर को निर्णायक मात दी। उनकी लूट ने विजयनगर की सम्पन्नता और समृद्धि का अन्त कर दिया। इस युद्ध ने विजयनगर की सैनिक शक्ति को इतना कुचल दिया कि वह फिर सम्भल नहीं सकी।

9.20.10. प्रान्तीय गवर्नरों की प्रबलता — विजयनगर के विनाश का एक बड़ा कारण यह भी रहा कि प्रान्तीय राज्यपालों के हाथों में भारी शक्ति रही। केन्द्रीय सत्ता के दुर्बल होने पर ये प्रान्तपति सबल हो गए और अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में लग गए। केन्द्रीय शक्ति इनके सामने निर्बल पड़ती गई और अन्त में मदुरा व तंजौर के नायकों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। इस प्रकार विजयनगर साम्राज्य तेजी से विघटित हो गया।

9.20.11. पश्चिमी समुद्र तट पर पुर्तगालियों का आवास — विजयनगर राज्य के पश्चिमी समुद्र तट पर पुर्तगाली बस गए। यद्यपि ये व्यापारियों के रूप में आए थे, लेकिन धीरे–धीरे उन्होंने भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। जब विजयनगर के दुर्दिन आरम्भ हुए तो ये पुर्तगाली भी विजयनगर राज्य के लिए बड़े घातक सिद्ध हुए।

9.21 सारांश :

इस प्रकार इन सभी कारणों का संयुक्त परिणाम यह हुआ कि विजयनगर जैसा शक्तिशाली हिन्दू साम्राज्य, अन्ततोगत्वा, एकदम छिन्न–भिन्न होकर समाप्त हो गया।

9.22 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 विजय नगर साम्राज्य के उत्थान से पतन तक में कितने वंशों का योगदान रहा–

अ. तीन ब. चार स. पाँच द. छह

प्रश्न 2 कृष्णदेवराय पर टिप्पणी लिखिये। (30 शब्दों में)

उत्तर — ....

प्रश्न 3 विजय नगर के उत्थान से पतन को सविस्तार समझाइये।

उत्तर — ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–10
बहमनी साम्राज्य का उत्थान एवं पतन

संरचना

10.0 उद्देश्य
10.1 स्थापना
 10.1.1 बहमनशाह (1347–58 ई.)
 10.1.2 मुहम्मदशाह प्रथम (1358–73 ई.)
 10.1.3 मुजाहिद और दाऊद (1373–78 ई.)
 10.1.4 मुजाहिद द्वितीय (1378–97 ई.)
 10.1.5 ताजुद्दीन फिरोजशाह (1397–1422 ई.)
 10.1.6 अहमदशाह (1422–35 ई.)
 10.1.7 अल्लाउद्दीन द्वितीय (1435–57 ई.)
 10.1.8 हुमायु (1457–61 ई.)
 10.1.9 मुहम्मदशाह तृतीय (1463–82 ई.)
10.2 बहमनी राज्य का प्रशासन एवं जनजीवन
 10.2.1 राजस्व व्यवस्था
 10.2.2 वाणिज्य एवं व्यापार
 10.2.3 सामाजिक जीवन
 10.2.4 शिक्षा, साहित्य एवं कला
10.3 बहमनी राज्य के पतन के कारण
 10.3.1 विभिन्न वर्गों व दलों का संघर्ष
 10.3.2 सुल्तानों की अविवेकपूर्ण नीति
 10.3.3 विजयनगर से युद्ध
 10.3.4 विदेशी अमीरों की भर्ती
 10.3.5 महमूद गवां का वध
 10.3.6 अयोग्य उत्तराधिकारी
10.4 सारांश
10.4 अभ्यास प्रश्नावली

10.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में बहमनी साम्राज्य की स्थापना से लेकर उसके पतन को विभिन्न शासकों के योगदान को समझाया जायेगा तथा शासन प्रबन्ध, सामाजिक जीवन आर्थिक जीवन एवं पतन के कारणों को विस्तार से विवेचित किया जायेगा।

10.1 स्थापना :

मुम्हमद तुगलक के शासन के अन्तिम वर्षो में दक्षिण भारत में नियुक्त उसके मुस्लिम अमीरों में सुल्तान की अत्याचारपूर्ण नीति के विरूद्ध जबरदस्त असन्तोश उत्पन्न हो गया था। उन्होंने मिलकर मुम्हमद तुगलक के विरूद्ध विद्रोह कर दिया और शाही अधिकारियों को परास्त करके दौलताबाद पर अधिकार कर लिया। फिर उन्होंने सर्वसम्मति से वृद्ध तथा अनुभवी अमीर इस्माइल मख अफगान को "नासिरूद्दीनशाह" के नाम से सुल्तान घोषित कर दिया। मुहम्मद तुगलक ने विद्रोहियों को परास्त कर दौलताबाद को तो जीत लिया। परन्तु धारागिरि दुर्ग में मोर्चा जमाकर बैठे हुए इस्माइल मख और गुलबर्गा में डटे हुए हसन कांगू को परास्त नहीं कर पाया और गुजरात के विद्रोह को दबाने के लिए दौलताबाद से गुजरात चला गया। सुल्तान के जाते ही विद्रोहियों ने पुनः दौलताबाद पर अपना अधिकार जमा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लिया। हसन कांगू ने सुल्तान के सेनापति इमादुलमुल्क को परास्त करके खदेड़ दिया। इस अवसर पर अपूर्व पराक्रम दिखलाने वाले हसन कांगू से प्रभावित होकर इस्माइल मख ने स्वेच्छा से उसके पक्ष में दौलताबाद का सिंहासन त्याग दिया। 13 अगस्त, 1347 ई. को हसन कांगू "अलाउद्दीन अबल मुजफ्फर बहमनशाह" की उपाधि के साथ सिंहासन पर बैठा। "बहमनशाह" को उपाधि के कारण नये राज्य का नाम "बहमनी" पड़ा।

10.1.1 बहमनशाह (1347—58 ई.) — बहमनशाह के प्रारम्भिक जीवन के बारे में हमें अधिक जानकारी नहीं मिलती। फरिश्ता ने लिखा है कि हसन अपने प्रारम्भिक दिनों में गंग नामक एक ब्राह्मण के यहां नौकर था। ब्राह्मण ने उसके सुल्तान होने की भविष्यवाणी की ओर सुल्तान बनने के बाद हसन ने कृतज्ञतावश बहमनी की उपाधि धारण की। परन्तु आधुनिक शोध कार्यों से यह स्पष्ट हो गया है कि फरिश्ता की कहानी मनगढ़न्त है। आधुनिक विद्वानों का मत है कि हसनकांगू अपने आपको ईरानी वीर बहमन का वंशज मानता था और इसीलिए बहमनशाह की उपाधि धारण की, न कि किसी ब्राह्मण उपकारी के नाम पर।

बहमनशाह योग्य तथा शक्तिशाली शासक था। उसने गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया। निरन्तर युद्धों तथा सैनिक अभियानों से उसने बहमनी राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। अब उसकी सीमाएं उत्तर में बानगंगा, दक्षिण में कृष्णा नदी, पश्चिम में दौलताबाद और पूरब में भों गिरी तक विस्तृत हो गई। इस राज्य को उसने चार प्रान्तों—दौलताबाद, गुलबर्गा, बरार ओर बीदर में विभाजित किया। प्रत्येक प्रान्त के ऊपर सूबेदार होता था जो सैनिक तथा असैनिक—दोनों कार्यों को सम्पन्न करता था। बहमनशाह को एक न्यायप्रिय सुल्तान बतलाया जाता है परन्तु हिन्दुओं के लिए वह असहिष्णु तथा अत्याचारी शासक सिद्ध हुआ।

10.1.2 मुहम्मदशाह प्रथम (1358—73 ई.) — बहमनशाह का उत्तराधिकारी उसका बड़ा लड़का मुहम्मदशाह हुआ। उसने राज्य की शासन व्यवस्था को ठोस आधार प्रदान दिया। उसकी विदेश नीति का मुख्य ध्येय अपने पड़ौसी हिन्दू राज्यों की अधिक से अधिक भूमि हड़पना था और इसके लिए उसने अनेक युद्ध भी लड़े। तेलगाना से उसने गोलकुण्डा का प्रसिद्ध दुर्ग छीन लिया और 33 लाख रुपया युद्ध का हर्जाना भी वसूल किया। विजयनगर के विरुद्ध लड़े गये युद्ध अनिर्णायक सिद्ध हुए। उसने खलीफा से अपने राज्य तथा शासन की मान्यता भी प्राप्त कर ली।

10.1.3 मुजाहिद और दाऊद (1373—78) — मुहम्मदशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र मुजाहिद शासक बना। उसने भी विजयनगर पर दो बार आक्रमण किया परन्तु उल्लेखनीय सफलता नही मिली। उसने मध्यएशिया से आने वाले विदेशी अमीरों की उच्च पदों पर नियुक्त करने की नीति अपनाकर अपने अमीरों को रूष्ट कर दिया। परिणाम यह निकला कि उन्होंने षड़यन्त्र रचकर 1377 ई. में उसकी हत्या कर दी और उसके चचेरे भाई दाऊद को सुल्तान बना दिया गया। परन्तु वह भी अधिक दिनों तक सिंहासन का सुख नहीं उठा पाया। मुजाहिद की एक बहिन ने षड़यन्त्र रच कर उसकी हत्या करवा दी।

10.1.4 मुजाहिद द्वितीय (1378—97 ई.) — मुजाहिद द्वितीय को मुहम्मदशाह द्वितीय भी कहा जाता है। वह बहमनशाह का पौत्र था। बहमनी राज्य के सिंहासन पर उस जैसा शान्तिप्रिय और विद्वानुरागी सुल्तान कभी नहीं बैठा। उसने अपने राज्य में भव्य मस्जिदों का निर्माण करवाया तथा अपने दरबार में विद्वानों का जमघट लगवा दिया। उसे हर समय अपनी प्रजा की भलाई की चिन्ता लगी रहती थी और उसने जनकल्याण के लिए बहुत से काम किये। उसने विजयनगर राज्य के साथ भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखे। 1397 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

10.1.5 ताजुद्दीन फीरोजशाह (1397—1422 ई.) — मुजाहिद द्वितीय के बाद गयासुद्दीन और शम्सुद्दीन क्रमशः सुल्तान बने परन्तु दोनों को ही अयोग्यता के कारण जल्दी—जल्दी से अपदस्थ कर दिया गया और बहमनशाह के एक पौत्र ताजुद्दीन फीरोजशाह ने सिंहासन पर अधिकार कर लिया। ताजुद्दीन में अनेक गुणों और दोषों का अपूर्व समन्वय था। वह एक पराक्रमी सैनिक और कुशल सेनानायक था। उसे कला, साहित्य एवं विद्या में अनुराग था। परन्तु वह अत्यधिक भोग—विलासी एवं कट्टर धर्मान्ध शासक भी था। उसने विस्तारवादी नीति को अपनाते हुए विजयनगर पर तीन बार आक्रमण किये। प्रथम दोनों आक्रमणों में उसे सफलता मिली और विजयनगर के शासकों को अपमानजनक सन्धियां करनी पड़ी। परन्तु तीसरी बार उसे देवराय द्वितीय के हाथों बुरी तरह से पराजित होना पड़ा। विजयनगर की सेना ने बहमनी राज्य को बुरी तरह से रौंद डाला और उसके कई इलाकों पर अधिकार कर लिया। इस पराजय के बाद वह शासन कार्यों की उपेक्षा करने लगा। 1422 ई. में उसके भाई अहमदशाह ने उसे अपदस्थ करके सिंहासन पर अधिकार कर लिया।

10.1.6 अहमदशाह (1422—35 ई.) — सुल्तान बनते ही अहमदशाह ने गुलबर्गा के स्थान पर बीदर को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपनी राजधानी बनाया क्योंकि एक तो उसकी किलेबन्दी सुदृढ थी और दूसरा विजयनगर की सीमा से बहुत अधिक दूरी पर होने की वजह से विजयनगर के आक्रमण से सुरक्षित था। अहमदशाह भी एक पराक्रमी शासक था। उसने विजयनगर, वारंगल और मालवा के सुल्तानों से युद्ध लड़े। विजयनगर के साथ लड़े गये युद्धों का परिणाम विवाद का विषय है। परन्तु वह वारंगल से कुछ प्रदेश जीतने में सफल रहा ओर मालवा के सुल्तान होशंगशाह को भी पराजित किया। उसने गुजरात पर भी आक्रमण किया था परन्तु असफल रहा। वह अपने समय का एक क्रूर तथा अत्याचारी शासक था। धर्मान्धता की नीति पर चलते हुए गैर–मुसललानों पर बहुत अधिक अत्याचार किये। उसके शासनकाल में दरबार में दक्षिणी दल तथा विदेशी दल में पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता बहुत अधिक बढ़ गई जिसके परिणामस्वरूप शासन–व्यवस्था में शिथिलता आ गई। 1435 ई. में अहमदशाह की मृत्यु हो गई।

10.1.7 अलाउद्दीन द्वितीय (1435–57 ई.) – अहमदशाह के बाद उसका बड़ा लड़का अलाउद्दीन द्वितीय सुल्तान बना। सुल्तान बनते ही उसे अपने भाई मुहम्मद के विद्रोह का सामना करना पड़ा। उसने भाई के विद्रोह को कुचलने के बाद भी उसके साथ अच्छा व्यवहार किया और उसे रायचुर का सूबेदार बना दिया। इसके बाद अलाउद्दीन ने अपनी सैन्य शक्ति को संगठित किया और 1443 ई. में विजयनगर पर आक्रमण किया और देवराय द्वितीय को बुरी तरह से पराजित किया। देवराय द्वितीय को अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। उसने कोंकण पर आक्रमण कर उसे भी अपनी अधीनता मानते के लिए विवश किया। वह अत्यधिक विलासी भी था। उसने संगमेश्वर राजा की पुत्री से बलपूर्वक विवाह किया। परन्तु वह अपनी जनता की भलाई में रूचि रखने वाला शासक भी था। उसने अनेक पाठशालाओं, दानशालाओं और मस्जिदों का निर्माण करवाया। राजधानी में अनेक भव्य भवन बनवाये।

10.1.8 हूमायूं (1457–61 ई.) – अलाउद्दीन द्वितीय के बाद उसका बड़ा लड़का हुमायूं सिंहासन पर बैठा। इतिहास में उसे ''जालिम हुमायू'' के नाम से याद किया जाता था। वह क्रूर तथा अत्याचारी शासक था। सौभाग्य से उसे महमूद गवां जैसा सुयोग्य मंत्री मिल गया जिसने साम्राज्य में शान्ति और व्यवस्था को बनाये रखा।

10.1.9 मुहम्मदशाह तृतीय (1463–82) – हुमायूं की मृत्यु के बाद उसके अल्पवयस्क लड़के निजामशाह को सुल्तान बनाया गया जो 1463 ई. में मर गया। उसकी मृत्यु के बाद उसके छोड़े भाई को मुहम्मदशाह तृतीय के नाम से सिंहासन पर बैठा दिया गया। उसे मदिरा तथा व्यभिचार के अत्यधिक शौक था। शासन सूत्र महमूद गवां के हाथ में ही रहा। महमूद गवां ने अपनी योग्यता एवं प्रतिभा से बहमनी साम्राज्य को उन्नति की चरम सीमा पर पहुंचा दिया। उसने कोंकण के हिन्दू राजाओं को परास्त कर उनके दुर्गों पर अधिकार कर लिया। उसने विजयनगर वालों से गोआ छीन लिया। इसके बाद उसने विजयनगर पर आक्रमण किया और अपार धन सम्पदा लूट कर ले गया। उसने उड़ीसा के हिन्दू राज्य पर भी आक्रमण किया। मुहम्मदशाह ने कांजीवरम् पर आक्रमण किया और अनेक भव्य मन्दिरों को भूमिसात किया। यहां उसने अनेक ब्राह्मण पुजारियों को मौत के घाट उतार कर गाजी की उपाधि धारण की। उसने जरा से सन्देह पर अपने सुयोग्य वजीर महमूद गवां की हत्या करवा दी और कुछ महीनों बाद अत्यधिक मद्यपान के कारण उसका भी देहान्त हो गया।

10.2 बहमनी राज्य का प्रशासन एवं जन–जीवन :

बहमनी राज्य में भी स्वेच्छाचारी निरंकुश राजतन्त्र था। अतः राज्य की समस्त शक्ति का केन्द्र बिन्दु सुल्तान था। उसके अधिकारों पर किसी पर भी प्रकार का कोई अंकुश नहीं था। बहमनी वंश के अधिकांश सुल्तान धर्मान्ध, भोगविलासी तथा अत्याचारी निकले। दरबार की गुटबन्दी तथा उत्तराधिकार के अनिश्चित नियम के कारण राज्य में कुचक्र होते रहे दरबार की गुटबन्दी से शासन–व्यवस्था को काफी क्षति पहुंची। महमूद गंवा ने निःसन्देह ही शासन–व्यवस्था को मजबूती प्रदान करने का प्रयास किया था। मुस्लिम शासकों ने गैर–मुस्लिम जनता को प्रजा नहीं समझा।

10.2.1 राजस्व व्यवस्था – बहमनी राज्य की राजस्व व्यवस्था भी काफी दोषपूर्ण थी। राजस्व व्यवस्था की वसूली की जांच–पड़ताल सम्बन्धी कोई व्यवस्था नहीं थी, जिसके कारण सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी प्रायः सरकारी धन का गबन कर जाते थें इसके अतिरिक्त ये लोग जनता से निर्धारित करों से अधिक कर वसूल करते थे। सुल्तानों ने राज्य तथा जनता की भौतिक उन्नति के लिए किसी प्रकार की ठोस स्थायी नीति का पालन नहीं किया।

10.2.2 वाणिज्य एवं व्यापार – बहमनी सुल्तानों ने व्यापार तथा वाणिज्य एवं उद्योग–धन्धों को भी उदारतापूर्वक प्रोत्साहन नहीं दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.2.3 सामाजिक जीवन — बहमनी राज्य का सामाजिक जीवन प्रायः अशान्त रहा जिसका मुख्य कारण समाज के दो मुख्य वर्गों में समानता का व्यवहार न होना था। समाज का अल्पसंख्यक मुस्लिम वर्ग राजधर्म का अनुयायी होने के कारण बहुसंख्यक हिन्दू वर्ग से कहीं अच्छी स्थिति में था। अधिकांश हिन्दू कृषि कार्य तथा उद्योग–धन्धों से आजीविका चलाते थे। हिन्दुओं को समाज में कोई सम्मान प्राप्त नहीं था। राजकीय पदों में भी उन्हें निम्न पदों पर नियुक्त किया जाता था। समाज में साम्प्रदायिक हत्याएं तथा सामूहिक लूटमार सामान्य बात थी। कभी–कभी धार्मिक उन्माद के क्षणों में कई निर्दोष व्यक्तियों का मारा जाना आश्चर्यजनक नहीं था। गैर–मुस्लिम जनता से जजिया कर सख्ती से वसूल किया जाता था। मुसलमानों का जीवन भी अधिक सुखी नहीं था। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। केवल सम्पन्न तथा अमीर अधिकारी ही भोग–विलासिता एवं ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करते थे। अमीर वर्ग में ऐश्वर्य के प्रदर्शन में होड़ लगी रहती थी। जिसके लिए वे अक्सर बड़े–बड़े आयोजनों एवं प्रीति–भोजों का आयोजन करते थे। समाज में सबसे बुरी स्थिति मजदूरों की थी। उन्हें अपने परिश्रम का बहुत ही कम धन मिल पाता था। स्त्रियों की स्थिति भी गिरि हुई थी। वे भोग–विलासिता तथा पारिवारिक कार्यों तक ही सीमित थी।

10.2.4 शिक्षा, साहित्य एवं कला — अनेक कमियों के बावजूद भी बहमनी शासक इस्लामी विद्या के प्रति अनुराग रखते थे। शिक्षा की ओर भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया। प्रत्येक गांव में एक मस्जिद बनवायी गयी जिनमें एक–एक मुल्ला नियुक्त किया गया जिसका एक कार्य ग्रामीण बच्चों को शिक्षा देना भी था। प्रत्येक बड़े शहर में एक–एक मकतब, जिन्हें उच्च विद्यालय कहा जा सकता है, बनवाये गये। सरकार की तरफ से इन शैक्षणिक संस्थाओं को उदारतापूर्वक अनुदान दिया जाता था। राजधानी बीदर से अरबी–फारसी की उच्च शिक्षा के लिए एक महाविद्यालय एवं विशाल पुस्तकालय की स्थापना की गयी। सभी शिक्षण संस्थाओं में इस्लामी धर्म, कानून, सभ्यता तथा संस्कृति के पठन–पाठन की व्यवस्था थी। लेकिन हिन्दुओं की शिक्षा के लिए किसी भी सुल्तान ने रूचि नहीं दिखायी। स्त्री–शिक्षा की ओर भी राज्य की तरफ से कोई व्यवस्था नहीं थी। धनी एवं सम्पन्न लोग अपनी लड़कियों को घर पर ही संगीत, नृत्य एवं धार्मिक शिक्षा देते थे।

बहमनी शासकों ने भव्य भवनों का निर्माण भी करवाया। पहले राजधानी गुलबर्गा तथा बाद में बीदर में अपने निवास हेतु भव्य एवं विशाल राजप्रासादों का निर्माण करवाया, अनेक विशाल राजभवन एवं मस्जिदें बनवायी। सार्वजनिक प्रयोग हेतु सरायों, जलाशयों, नहरों, पुलों तथा बीदर में अनेक सुन्दर बाग भी लगवाये। बहमनी काल में एक विशिष्ट स्थापत्य शैली का जन्म हुआ जो भारतीय, तुर्की, मिस्त्री, ईरानी, आदि तत्वों के सम्मिश्रण से बनी थी। बहमनी काल की अधिकांश इमारतों पर हिन्दू शैली का प्रभाव था क्योंकि ये हिन्दू मन्दिरों के स्थान पर एवं उसकी सामग्री से बनी थी।

10.3 बहमनी राज्य के पतन के कारण :

बहमनी राज्य के उत्थान और पतन की कहानी हम पढ चुके हैं। इस कहानी में बहमनी राज्य के पतन के कारण छिपे हैं। उन्हें हम निम्नलिखित रूप से प्रकट कर सकते हैं –

10.3.1. विभिन्न वर्गों व दलों का संघर्ष — बहमनी राज्य में मुसलमानों के अनेक वर्ग और दल निवास करते थे। इनमें तुर्क, मुगल, अरबी, अबीसिनियन ओर भारतीय मुसलमान प्रमुख थे। ये दल एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखते थे। विशेष रूप से देशी और विदेशी अमीरों का वर्ग एक दूसरे को विनिष्ट करने में संलग्न रहता था। इस प्रकार बहमनी राज्य में राष्ट्रीयता के कोई भाव नहीं थे। इस अभाव के फलस्वरूप यह राज्य धीरे–धीरे पतन की ओर बढ़ता गया।

10.3.2. सुल्तानों की अविवेकपूर्ण नीति — बहमनी सुल्तान अपनी अविवेकपूर्ण नीति से शासन को संगठित और स्थायी रूप प्रदान नहीं कर सके। उनकी धार्मिक असहिष्णुता ने बहुसंख्यक हिन्दू जनता को राज्य का विरोधी बना दिया। बहमनी शासक दृढ नीति का अवलम्बन नहीं कर सके, फलस्वरूप अमीरों के आपसी मतभेद उग्र होते गए। सुल्तानों की दुर्बल नीति राज्य के लिए बड़ी घातक हुई।

10.3.3. विजयनगर से युद्ध — बहमनी सुल्तानों ने साम्राज्य–विस्तार के लिए विजयनगर पर बार–बार आक्रमण किया। दोनों राज्यों का युद्ध वंशानुगत हो गया। निरन्तर युद्धों से बहमनी राज्य की शक्ति का बड़ा ह्रास हुआ और राजकोष को बड़ी हानि पहुंची। निरन्तर युद्धों में संलग्न रहने के कारण बहमनी सुल्तान शासन–प्रबन्ध के लिए समय नहीं निकाल सके और जनता को सन्तोष नहीं दे सके।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.3.4. विदेशी अमीरों की भर्ती — बहमनी सुल्तानों ने विदेशी अमीरों पर अधिक विश्वास किया। फलस्वरूप विदेशी और देशी अमीरों में वैमनस्य बढ़ता गया। महमूद गवां जैसे मन्त्री को छोड़कर अन्य अधिकांश विदेशी अमीरों ने राजभक्ति नहीं दिखाई।

10.3.5. महमूद गवां का वध — महमूद गवां ने अपनी निःस्वार्थ सेवा और अद्भुत कार्यकुशलता से बहमनी राज्य की अनेक संकटों से रक्षा की। लेकिन उसके वध के बाद राज्य में अराजकता फैल गई। अब विनाशकारी शक्तियां प्रबल हो गई ओर शीघ्र ही अनेक राज्य स्वतन्त्र हो गए। महमूद गावां के बाद जो भी मन्त्री हुए वे स्वार्थी निकले।

10.3.6. अयोग्य उत्तराधिकारी — मुहम्मद तृतीय की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी बड़े अयोग्य और विलासी निकले। वे अपने अमीरों और प्रान्तपतियों पर नियन्त्रण नहीं रख सके। शासन—सत्ता मन्त्री के हाथों में चली गई। अन्त में, बहमनी वंश के अन्तिम सुल्तान कलीम अल्लाशाह की मृत्यु के बाद साम्राज्य का अन्त हो गया।

10.4 सारांश :

10.5 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 बहमनी साम्राज्य की स्थापना किसने की?

अ. मुहम्मद शाह–I   ब. हसन कागूं

स. हुमायूं   द. मुजाहिद

प्रश्न 2 बहमनी साम्राज्य के कला एवं साहित्य पर टिप्पणी लिखिए। (30 शब्द सीमा)

उत्तर — ....

प्रश्न 3 बहमनी साम्राज्य का उत्थान बताते हुये उसके पतन को समझाइये।

उत्तर — ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 11
सल्तनत काल की सामाजिक एवं आर्थिक अवस्था

संरचना

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 मुस्लिम समाज
    11.2.1 शासक वर्ग
    11.2.2 अमीर
    11.2.3 उलेमा
    11.2.4 मध्यम वर्ग
    11.2.5 जनसाधारण
11.3 हिन्दू समाज
    11.3.1 जाति प्रथा की जटिलता
    11.3.2 हिन्दूओं की सामान्य स्थिति
11.4 जाति व्यवस्था
11.5 भोजन
11.6 मादक द्रव्य
11.7 वस्त्र
11.8 श्रृँगार
11.9 मनोरंजन
11.10 दास प्रथा
11.11 स्त्रियों की स्थिति
    11.11.1 परिवार में नारी का स्थान
    11.11.2 विवाह
    11.11.3 सती प्रथा
    11.11.4 जौहर प्रथा
    11.11.5 पर्दा प्रथा
    11.11.6 बाल विवाह
    11.11.7 स्त्री शिक्षा
11.12 सल्तनतकालीन आर्थिक स्थिति
11.13 भू–राजस्व
    11.13.1 मदद–ए–माश
    11.13.2 खालसा भूमि
    11.13.3 अक्ता
    11.13.4 कृषि योग्य भूमि
111.14 अल्लाउद्धीन खिलजी का बाजार नियन्त्रण
    11.14.1 उद्देश्य
    11.14.2 उद्देश्य की पूर्ति हेतू कार्य
    11.14.3 परिणाम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.15 व्यापार
11.15.1 आन्तरिक व्यापार
11.15.2 विदेशी व्यापार
11.16 कृषि एवं उद्योग धन्धे
11.16.1 कृषि
11.16.2 वस्त्र उद्योग
11.16.3 धातु उद्योग
11.16.4 चीनी उद्योग
11.16.5 चमड़ा उद्योग
11.16.6 काष्ठ उद्योग
11.16.7 कागज उद्योग
11.16.8 शिल्प उद्योग
11.17 मूल्य
11.18 मुद्रा
11.19 करारोपण
11.19.1 खम्स
11.19.2 जजिया
11.19.3 खिराज
11.19.4 जकात
11.20 सारांश
11.21 अभ्यास प्रश्नावली

11.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में मध्यकाल के सल्तनतकाल में समाज की स्थिति तथा आर्थिक अवस्था को समाज के विभिन्न वर्गों, खान–पान, रहन–सहन, स्त्रियों की दशा, व्यापार, वाणिज्य, कर, सिचांई आदि बिन्दुओं से समझाया जायेगा।

11.1 प्रस्तावना :

उत्तर भारत में तुर्क राज्य की स्थापना के साथ ही भारतीय समाज में मुसलमानों के रूप में एक ऐसा तत्त्व आ गया जिसे हिन्दू समाज कालान्तर में भी आत्मसात् न कर सका। धर्म, नीति, विधि–विधान, खान–पान आदि अनेक दिशाओं में विजित ओर विजेताओं में इतना अन्तर था कि मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल तक समवन्यकारी शक्तियाँ इस अन्तर को मिटाने में बहुत कम सफल हो सकीं। सल्तनतकालीन भारतीय समाज के मुस्लिम समाज में अनेक वर्ग थे, जैसे – सुल्तान और उसका दरबार, अमीर, उलेमा, गुलाम और सामान्य मुसलमान।

11.2 मुस्लिम समाज :

इस समय मुस्लिम समाज चार भागों में विभक्त था – शासक वर्ग, मध्यम वर्ग, उलेमा वर्ग तथा जन साधारण।

11.2.1. शासक वर्ग – यह समाज का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वर्ग था। यह शासन का संचालन करता था। शासन का सर्वोच्च पदाधिकारी सुल्तान होता था, जिसके हाथ में शासन की समस्त शक्तियां निहित थी। डॉ. कुरैशी ने सुल्तान को वैधानिक सम्प्रभु तथा वास्तविक सम्प्रभु कहा है।

इस काल में सुल्तान मात्र औपचारिक रूप से खलीफा का प्रतिनिधि माना जाता था। व्यवहारतः वह निरंकुश एवं सर्वोच्च शासक था। उसका जीवन बड़ा भव्य था। उसके सिंहासन पर बैठने के समय उसके मंत्री व अधिकारी उसके समक्ष खड़े रहते थे। छात्र, दूरबास एवं सायबान प्रमुख राज्य चिन्ह माने जाते थे। कलाकार, भांडद्व संगीतज्ञ, नादिम, विदूषक आदि अपनी–अपनी कलाओं द्वारा सुल्तान का मनोरंजन करते थे। सर जांदार, सर आवदार, चाशनीगीर आदि पदाधिकारियों पर सुल्तान की सुरक्षा का दायित्व था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस काल में सुल्तान बड़े भोग–विलासी थे। बी.एन. लूनिया के शब्दों में, "भोग–विलास से परिपूर्ण जीवन मुगल राज दरबार तथा मुगल युग के लिए सम्मान की वस्तु थी। इस युग में भारतीय राजसभाओं तथा सामन्तों के जीवन में सबसे अधिक आकर्षक तत्त्व भोग–विलास की अतुलनीय भावना थी।'

11.2.2. अमीर – इनका मुस्लिम समाज में दूसरा स्थान था। ये चार भागों में विभक्त थे – खान, मलिक, अमीर एवं सिपहसालार। सुल्तान की शक्ति अमीरों के समर्थन पर निर्भर करती थी। ये सुल्तान की शक्ति पर एक प्रकार से नियन्त्रण का काम करते थे। वस्तुतः ये मुगल शासन के आधार स्तम्भ थे तथा इनकी उपेक्षा कर शासन का सही ढंग से संचालन सम्भव न था।

इन अमीरों का राजनीति पर विशेष प्रभाव था। ये शासन कार्य में सुल्तान की सहायता करते थे तथा जनसाधारण का शोषण कर भोग–विलास का जीवन बिताते थें कभी–कभी ये अमीर षड्यन्त्र रचकर सुल्तान के स्थान पर स्वयं गद्दी पर बैठने का भी प्रयत्न करते थे। के.एम. अशरफ ने लिखा है, "सुल्तान अपने जीवन काल में ही इनकी उपाधियां वापस ले सकता था तथा इन्हें सदैव सुल्तान की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता था।" सुल्तान साधारणतः अमीरों का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न करता था। जहां सल्तनतकालीन अमीर स्वतन्त्र एवं षड्यन्त्रकारी थे, वहीं मुगलकालीन अमीरों ने शासन को स्थायित्व दिया।

11.2.3. उलेमा – इन्हें न्याय, धर्म एवं शिक्षा से सम्बन्धित उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था। डॉ. अशरफ ने इनके सम्बन्ध में लिखा है, "कुरान में उलेमा का स्थान साधारण रूप में मुसलमानों से पृथक् माना गया है, जो लोगों को उचित मार्गदर्शन कराते हैं।" ये इस्लाम का प्रचार, धार्मिक कार्य तथा शिक्षण संस्थाओं में अध्यापन का कार्य करते थे। ये कुरान, हदीस, फिक्र आदि में पारंगत होते थे।

सुल्तान प्रमुख राजनीतिक समस्याओं पर इनसे परामर्श लेता था। सल्तनतकाल में अलाउद्दीन के अलावा शेष सभी मुस्लिम शासकों पर इनका काफी प्रभाव रहा। वस्तुतः उलेमाओं का राजनीति में हस्तक्षेप घातक रहा, क्योंकि उन्होंने धार्मिक नीति अपनाने को प्रेरित किया। अगर इन्हें मध्ययुगीन धर्मान्धता का जनक कहा जाए, तो कदाचित् अनुपयुक्त न होगा।

11.2.4. मध्यम वर्ग – इसकी स्थिति शासक वर्ग एवं जनसाधारण के बीच की होती थी। इन्हें पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। बर्नियर ने लिखा है कि अत्यधिक विलासी जीवन बिताने के कारण ही अमीर ऋणग्रस्त थे, जबकि मध्यम वर्ग विलासी एवं आडम्बर प्रेमी न होने के कारण समृद्ध था। इस वर्ग में व्यापारी आते थे, जिनके सम्बन्ध में डॉ. युसूफ हुसैन ने लिखा है, "गुजरात के व्यापारी भारत के समस्त समुद्र तट पर व्यापार करते थे, .जो पूंजीपति व्यापारी थे।"

11.2.5. जनसाधारण – इसमें किसान, मजदूर, कारीगर, दुकानदार आदि शामिल थे। इसमें हिन्दू धर्म को छोड़कर मुसलमान धर्म स्वीकार करने वाले लोग आते थे। विजेता मुसलमानों ने इन भारतीय मुसलमानों को सदैव घृणा की दृष्टि से देखा। डॉ. श्रीवास्तव के अनुसार, "तुर्क जाति विभेदी नीति में विश्वास रखती थी और इसलिए उसने भारतीय मुसलमानों को अपनी जाति से नहीं, वरन् सरकारी नौकरियों से भी वंचित कर रखा था। कुतुबुद्दीन से लेकर कैकुबाद तक सल्तनत की यही कठोर नीति रही कि प्रशासन की सत्ता पर तुर्कों का ही अधिकार बना रहे।" इन धर्म परिवर्तित मुसलमानों के सम्बन्ध में डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव ने लिखा है, "दीर्घकाल तक भारतीय मुसलमानों की स्थिति बहुत दयनीय रही। देश के शासन में उनका हाथ नहीं था ओर न शासक वर्ग में उनका स्थान था। अपने बहुसंख्यक हिन्दू देशवासियों से धन, सामाजिक स्थिति तथा स्वाभिमान की दृष्टि से वह कहीं अधिक नीचे था। उसको केवल यह सन्तोष खड़ा होकर मस्जिद में नमाज पढ़ सकता हूँ।" इस समय आर्थिक दृष्टि से भी जनसाधारण की स्थिति खराब थी। पैलसर्ट ने लिखा है," उनके मकान मिट्टी के बने हुए छप्पर की छतों के हैं। कुछ मिट्टी के घड़ों, पकाने के बर्तनों तथा दो चारपाइयों के अतिरिक्त उनके घर में सजावट के उपकरण या तो बहुत कम है या बिल्कुल नहीं हैं कड़ाके के जाड़े में वस्त्रों के अभाव में वे अत्यन्त दयनीय रातें व्यतीत करते हैं।' डॉ. श्रीवास्तव ने लिखा है, "निम्न श्रेणी के मनुष्य इतने निर्धन है कि वे साधारण सुख–सुविधा का उपभोग ही नहीं कर सकते थे। ये लोग आज के मजदूरों की तरह झोपड़ियों में रहते थे और सारे दिन परिश्रम करते थे। इनके पास जीवनोपयोगी वस्तुएं भी बहुत कम थी।" इस काल में जनसाधारण की स्थिति काफी दयनीय थी तथा उसका बहुत अधिक शोषण किया जाता था।

11.3 हिन्दू समाज :

11.3.1 जातिप्रथा की जटिलता – प्राचीनकाल में हिन्दू समाज वर्ण–व्यवस्था और वर्णाश्रम धर्म पर टिका हुआ था। हिन्दुओं के समाज का प्रमुख आधार जाति–प्रथा था। इस काल में मुसलमानों को जिस प्रकार तुर्की रक्त को जाति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के आधार पर श्रेष्ठ समझा जाता था उसी प्रकार की जाति व्यवस्था हिन्दुओं में भी संकीर्ण होती गयी। मध्यकाल में जाति–व्यवस्था प्रायः उस रूप में आ गई जो आजकल दिखाई पड़ती है। वंश परंपरा के अनुसार हिन्दुओं का व्यवसाय स्थिर होने लगा। खान–पान, धार्मिक विश्वास, भौगोलिक स्थिति, विवाह संस्कार आदि में विभिन्नता के कारण एक वर्ग के भीतर ही अनेक वर्ग बनने लगे। वर्ण संकरों की नई जातियाँ बनीं। पहले गोत्र का महत्व अधिक था, किन्तु अब गोत्र का उल्लेख बंद हो गया और लोगों का परिचय उपाधियों के द्वारा दिया जाने लगा। इस्लाम धर्म अपनाने वाले हिन्दुओं को पुनः हिन्दू समाज और धर्म में वापस लिए जाने की व्यवस्था नहीं थी। यद्यपि इस काल में जातियों की जटिलता बढ़ी, फिर भी समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वश्रेष्ठ रहा और उनका सम्मान होता रहा। छुआ–छूट की भावना पहले से और प्रबल हो गयी तथा अछूतों की स्थिति में और भी पतन हुआ।

11.3.2 हिन्दुओं की सामान्य स्थिति – देश की बहुसंख्यक जनता हिन्दू थी। सल्तनत युग में अधिकांश भूमि पर इन्हीं का अधिकार था। उनमें से बहुत अधिक समृद्धशाली भी थे। बर्नी ने इनकी समृद्ध स्थिति का वर्णन किया है। खुत, मुकद्दम, चौधरी आदि काफी सम्पन्न थे। प्रमुख व्यापार भी इन्हीं के हाथों में था। इनकी दशा कुछ काल तक अच्छी रही, परन्तु अलाउद्दीन के काल में इनकी स्थिति दयनीय हो गयी।

सल्तनत का राज्य लगभग साढ़े तीन सौ वर्षों तक स्थापित रहा। इस काल में विजय तथा दमन की प्रक्रिया हुई। परिणामस्वरूप लाखों हिन्दू मारे गये और उनकी स्त्रियों तथा बच्चों को गुलाम बनाकर बेच दिया गया। इस युग में राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टि से हिन्दू जनता को काफी कष्ट हुआ। उन्हें शासन के महत्वपूर्ण पदों से वंचित नहीं किया गया वरन् उनके साथ घृणापूर्ण दुर्व्यवहार भी किया गया। अपनी नारी जाति के सम्मान की रक्षा के लिए हिन्दुओ ने बाल–विवाह जैसी कुप्रथा को अपना लिया। हिन्दुओं को धार्मिक स्वतंत्रता नहीं थी। इस काल में बड़ी संख्या में अनेक मंदिरों एवं मूर्तियों को नष्ट–भ्रष्ट किया गया और उनके धार्मिक अनुष्ठानों पर तरह–तरह के प्रतिबंध लगाये गये। उन्हें जजिया और तीर्थ यात्रा कर देना पड़ता था। इस प्रकार एक जाति के रूप में हिन्दुओं का काफी पतन हुआ।

11.4 जाति व्यवस्था :

मध्यकाल में भी जाति व्यवस्था विद्यमान थी। इस काल में मुसलमानों में भी जाति भेद विद्यमान थे। तुर्क मुसलमान भारतीय मुसलमानों से घृणा करते थे तथा उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त नहीं करते थे। सुन्नी लोग शिया मत वालों से घृणा करते थे। हिन्दू समाज में चारों वर्णों के अलावा अनेक जातियों व उपजातियों का विकास हो रहा था। ब्राह्मणों व क्षत्रियों को समाज में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। वैश्यों की स्थिति भी अच्छी थी। अलबरूनी का यह कथन भ्रामक लगता है, "वैश्यों को वैदिक मन्त्र सुनने की आज्ञा नहीं थी और यदि कोई वैश्य वैदिक मन्त्र का उच्चारण भी कर लेता था, तो उसकी जीभ काट दी जाती थी।" शूद्रों की स्थिति काफी दयनीय थी। अतः इस्लाम धर्म प्रचारकों ने उन्हें इस्लाम स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित किया।

11.5 भोजन :

हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ही वर्गों के साधारण स्थिति वाले मनुष्यों में इतनी क्षमता नहीं थी कि वे उत्तम प्रकार का भोजन कर सकें अतः वे साधारण भोजन पर ही अपना जीवन–निर्वाह करते थे। खिचड़ी इस वर्ग का मुख्य भोजन था। इसके सम्बन्ध में सभी विदेशी यात्रियों एवं इतिहासकारों ने लिखा है। वर्तमान काल के समान ही दक्षिण भारतीय लोगों का मुख्य भोजन चावल था। उच्च वर्गीय तथा मध्यवर्गीय लोग रोटी, चावल तथा विभिन्न प्रकार की सब्जियां बनाते थे। हिन्दू प्रायः निरामिष होते थे। मुस्लिम परिवारों में सामान्य रूप से गोश्त का प्रचलन था। मैण्डल्सों ने मुसलमानों के भोजन के विषय में लिखा है, "वे स्वतन्त्रतापूर्वक गाय तथा बछड़े का मांस, मछली, शिकार की जाने वाली चिड़या तथा भेड़–बकरी का मांस खाते थे।" इस मांस को स्वादिष्ट बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के मसालों का प्रयोग करते थे।

11.6 मादक द्रव्य :

मुसलमानों में इसका साधारण रूप से प्रयोग होता था। सम्भवतः मुसलमानों में कोई भी वर्ग ऐसा नहीं था जो मदिरा का सेवन न करता हो। स्त्रियां, शिक्षक, धार्मिक पुरुष गुप्त रूप से इसका सेवन करते थे तथा सिपाही एवं सैन्य अधिकारी प्रत्यक्ष रूप से मद्यपान करते थे। अलाउद्दीन खिलजी ही एक मात्र ऐसा शासक था जिसने मद्यपान का विरोध किया था अन्यथा अन्य किसी सुल्तान ने इसका विरोध नहीं किया। तम्बाकू का प्रयोग सल्तनत काल में नहीं होता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.7 वस्त्र :

सल्तनत काल में विभिन्न वर्गों के लोग भिन्न–भिन्न प्रकार की पोशाक पहनते थे। साधारण मुसलमान व धनी मुसलमानों की पोशाक में कोई विशेष अन्तर नहीं था। केवल मुसलमानों के वस्त्र ही उत्तम प्रकार के कपड़े के बने होते थे। दिल्ली के प्रारम्भिक सुल्तान सिर पर कूल्हा तथा लम्बी तारतार टोपी पहनते थे। जलालुद्दीन खिलजी के सम्बन्ध में इतिहासकारों का मत है कि वह पगड़ी पर कूल्हा बांधता था। शरीर पर ये कसा हुआ काबा पहनते थे। यह काबा मौसम के अनुसार मलमल अथवा ऊन का बना होता था। कालान्तर में पेशवाज तथा अंगरखे का भी प्रचलन हो गया। शीत ऋतु में कुर्ता के ऊपर कभी–कभी दगला भी पहना जाता था। यह एक प्रकार का लम्बा कोट होता था जिसमें सूती अथवा किसी अन्य प्रकार के वस्त्र का अस्तर लगा होता था।

11.8 शृंगार :

सल्तनत काल में स्त्री तथा पुरुष दोनों ही श्रृंगार प्रेमी थे। स्त्रियां नेत्रों में काजल, मांग में सिन्दूर तथा हाथों में मेंहदी लगाती थी। शीश, नाक, कान, भुजा, अंगुली, कटि, आदि में तरह–तरह के आभूषण धारण किये जाते थे। चन्दनहार एवं तेल का भी प्रयोग होता था।

11.9 मनोरंजन :

चौगान इस युग के कुलीन परिवारों का मुख्य एवं प्रिय खेल था। आधुनिक युग में इसे 'पोलो' कहा जाता है। भारत में इसको लाने का श्रेय मुसलमानों को ही है। दिल्ली सल्तनत के प्रथम सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु चौगान खेलते समय घोड़े से गिरकर ही हुई थी। इसके अतिरिक्त दिल्ली के मुसलमानों का सर्वाधिक प्रिय मनोरंजन शिकार था और उन्होंने इसके लिए एक पृथक् विभाग की स्थापना की थी जिसका अध्यक्ष 'अमीर–ए–शिकार' कहलाता था। इस विभाग का उत्तरदायित्व किसी अमीर या योग्य व्यक्ति को सौंपा जाता था। 'शाही बाज' तथा अन्य शिकारी पशु–पक्षियों की रक्षा के लिए 'आरिजन–ए–शिकार', 'खस्सारदन', 'हिमतरन', आदि अन्य अधिकारियों की भी नियुक्ति की जाती थी। विभिन्न प्रकार के पशु–पक्षी भारी संख्या में एकत्रित किये जाते थे। दिल्ली के निकट ही चार वर्ग मील के क्षेत्र में 'शाही शिकारगाह' थी। हिरन, नीलगाय तथा जंगली सूअरों का विशष रूप से शिकार किया जाता था। बादशाह शेर का शिकार करता था। इतिहासकार अफीफ ने अपनी पुस्तक तारीख–ए–फिरोजशाही' में फिरोजशाह तुगलक के समय की शिकार पार्टियों का विस्तृत वर्णन किया है। इसी पुस्तक में अफीफ ने फिरोजशाह तुगलक द्वारा मछली के शिकार करने का भी सविस्तार वर्णन किया है।

'शतरंज भी कुलीन वर्गों का प्रिय मनोरंजन था। जायसी ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'पद्मावत' में राजा रत्नसेन एवं दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन के मध्य चित्तौड़ दुर्ग के अन्दर होने वाले शतरंज के खेल का विशद वर्णन किया है।

11.10 दास प्रथा :

मध्यकाल में हिन्दू एवं मुसलमान दोनो को ही दास रखने का बड़ा शौक था। हाट में दासों को पशुओं के समान बेचा जाता था। हिन्दू धर्मग्रन्थों में 15 प्रकार के दासों का वर्णन मिलता है तथा इनके साथ सद्व्यवहार होता था। मुस्लिम समाज में गृह कार्य का दायित्व दासों पर डाल दिया गया था। मुस्लिम समाज में चार तरह के दास थे – (1) खरीदा हुआ, (2) दान व उपहार में प्राप्त, (3) युद्ध बन्दी व (4) आत्मविक्रेता दास।

सामान्यतः मुसलमान भी अपने दासों के साथ उदारता का व्यवहार करते थे। किसी उच्च अधिकारी का दास होने पर दास को अपनी योग्यता के बूते समाज में प्रतिष्ठा पाने का अवसर मिल जाता था। मुहम्मद गोरी के ताजुद्दीन यल्दौज, नासिरूद्दीन कुबाचा, कुतुबुद्दीन ऐबक आदि दास अपनी योग्यता के कारण एवं अपने स्वामी की उदारता के कारण उच्च पदों तक पहुंच पाए थे। नासिरूद्दीन खुसरों मलिक काफूर, खानेजहां मकबूल आदि भी इसी तरह के उदाहरण थें डॉ. पाण्डेय ने लिखा है, ''भारत में तुर्कों की सफलता का प्रमुख कारण उनकी विशिष्ट दास प्रथा थी।' ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, ''पूर्वी मुसलमानी प्रदेशों में किसी राजा अथवा सेनापति का दास होना बड़े गौरव की बात समझी जाती थी ओर प्रायः दास तथा निम्न वंश में जन्म लेने पर भी वे उच्च वंश वाले नवाबों के समकक्ष तथा उनसे उत्तम समझे जाते थे।'' लेनपूल के शब्दों में, ''सुयोग्य राजा का पुत्र असफल हो सकता है, किन्तु मनुष्य के सच्चे नेताओं का दास बहुधा अपने स्वामी के बराबर ही निकल जाता है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

11.11 स्त्रियों की स्थिति :

सल्तनकाल में स्त्रियों की स्थिति निम्न बिन्दुओं में दर्शायी जा सकती है –

11.11.1 परिवार में नारी का स्थान – सल्तनकाल में स्त्रियों की दशा पुरुषों की अपेक्षा निम्न थी किन्तु फिर भी हिन्दू समाज में स्त्रियों का सम्मान था। स्त्री को गृहस्वामिनी के रूप में देखा जाता था। धार्मिक कार्यों में स्त्री की उपस्थिति अनिवार्य थी। पुत्रवती स्त्रियों का अत्यधिक सम्मान था। पति की सेवा एवं घर के कार्यों को करना स्त्री के कर्तव्य थे। इतना सब कुछ होते हुए भी स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं थी। बचपन में वह माता–पिता, युवावस्था में पति एवं वृद्धावस्था में पुत्रों के अधीन रहती थी। जहां तक मुस्लिम परिवारों में स्त्री की दशा का सम्बन्ध है, अत्यन्त खराब कही जा सकती है। मुसलमानों में बहु–विवाह की प्रथा के कारण सहपत्नियों में गृह–कलह रहता था। इससे पारिवारिक जीवन कष्टकारी था। मुसलमान स्त्रियां पूर्णतः पति पर आश्रित थी। वह किसी से बात भी नहीं कर सकती थी। पति को, पत्नी को तलाक देने का पूर्ण अधिकार था।

11.11.2 विवाह – उच्च वर्ग के मुसलमानों में बहु–विवाह का प्रचलन था। वे प्रायः तीन या चार पत्नियां रखते थे। कुरान के अनुसार एक मुसलमान चार पत्नियों का अधिकारी होता है, परन्तु फिर भी निम्न वर्ग में हिन्दुओं व मुसलमानों में अधिकतर एक ही विवाह का प्रचलन था। यथार्थ में मुसलमान निकाह के द्वारा 4 विवाह तथा मुताह के द्वारा अनेक विवाह कर सकता था। अधिकांश हिन्दू परिवारों में एक–विवाह प्रथा प्रचलित थी। कुछ राजकुमारों के एक से अधिक चरित्रहीन होने के अतिरिक्त कभी भी जीवन–पर्यन्त तलाक नहीं देता था।'' हिन्दुओं में विधवा विवाह का प्रचलन नहीं था, विधवा या तो पति के शव के साथ सती हो जाती थी या फिर पवित्रता का जीवन व्यतीत करती थी।

11.11.3 सती प्रथा – हिन्दुओं में सती प्रथा का प्रचलन था। हिन्दुओं के उच्च वर्ग में सती प्रथा का विशेष स्थान था। इब्नबतूता ने इस सम्बन्ध में लिखा है, ''पति की मृत्यु के उपरान्त पत्नी को अपने आपको जला डालना बड़ा ही प्रशंसनीय कार्य समझा जाता था, किन्तु यह अनिवार्य नहीं था। जब कोई विधवा अपने आपको जला डालती है तो उसके घर वालों का सम्मान बढ़ जाता है और वह पति भक्ति के लिए प्रसिद्ध हो जाती है। जो विधवा स्वयं को नहीं जलाती है उसे पीले वस्त्र धारण करने पड़ते हैं तथा उसे बड़ा दुःखी जीवन व्यतीत करना पड़ता है। हिन्दुओं में विधवा को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। अतः जीवन भर की परेशानियों से बचने के लिए विधवाएं सती होना अधिक ठीक समझती थी। जो विधवा पति के शव के साथ सती होती थी उसे समरण या सगमन कहते थे। पति के दूरस्थ स्थान पर होने या स्त्री के गर्भवती होने पर वह पश्चात् में पति की किसी विशेष वस्तु के साथ सती हो जाती थी। इसे अनुमरण या अनुगमन कहा जाता था। इब्नबतूता के अनुसार , ''सती होने से पूर्व स्त्री को सुल्तान की आज्ञा लेनी पड़ती थी।'' इब्नबतूता के इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तानों ने इस प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाने के प्रयत्न किये होंगे। इससे यह लाभ अवश्य मिला होगा कि इच्छा के विरूद्ध स्त्री को सती नहीं किया जा सकता होगा।

11.11.4 जौहर प्रथा – जौहर भारतीय वीरत्व की भावना का अमूल्य प्रतीक है। राजपूतों में जौहर प्रथा प्रचलित थी। राजपूतों के रणभूमि में न्यौछावर हो जाने पर उनकी वीरांगनाएं स्वयं हंसते–हसते अग्नि को समर्पित हो जाती थी। ऐसा वे इसलिए करती थी क्योंकि वे शत्रु के हाथ में पड़कर अपने को अपमानित होने से मर जाना उचित समझती थी। इब्नबतूता ने रणथम्भौर के राजा हम्मीर देव के घराने के जौहर का उल्लेख किया है। अलाउद्दीन खिलजी से स्वयं की रक्षा के लिए चित्तौड़ की रानी पद्मिनी ने जौहर किया था। मुहम्मद तुगलक द्वारा कम्पिला पर आक्रमण करने पर वहां की नारियों ने जौहर किया था। इब्नबतूता इस घटना का उल्लेख करता है, ''पराजय निश्चित समझकर राजा अन्य वीरों के साथ जीवन–मरण का युद्ध करने के लिए दुर्ग के बाहर चला गया, रानी ने स्नान कर शरीर पर चन्दन लगा लिया तथा अग्नि में प्रवेश कर गई। इसी प्रकार मन्त्रियों एवं उच्च पदाधिकारियों की स्त्रियां भी अग्नि में प्रवेश कर गई।

11.11.5 पर्दा प्रथा– सल्तनत काल में पर्दा प्रथा का प्रचलन अत्यधिक बढ़ गया था। रजिया बेगम इस प्रथा की अवहेलना कर बिना पर्दे के दरबार में जाती थी, किन्तु मुस्लिम समाज में इसका अत्यधिक महत्व था। फिरोज तुगलक ने तो ''मुसलमान स्त्रियों को दरगाहों, आदि के दर्शन के लिए जाने पर भी रोक लगा दी थी।'' उच्च घरानों की स्त्रियां पालकियों में चलती थी जबकि निम्न वर्ग की मुस्लिम स्त्रियां सिर से पैर तक अपने को बुर्के से ढके रखती थी। हिन्दू स्त्रियां अपहरण के भय से केवल मुंह पर पल्ला डाले रहती थीं। किसानों की स्त्रियां तो बिना पर्दा डाले खेतों में कार्य करती थी। ग्रामीण स्त्रियों में पर्दे का रिवाज कम था। इस प्रकार माना जा सकता है कि मुस्लिम स्त्रियों में ही पर्दा प्रथा का विशेष महत्व था, हिन्दू समाज में नहीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

11.12.6 बाल–विवाह – तुर्की सरदार किसी सुन्दर कन्या को देखते ही उठा ले जाते थे, अतः हिन्दुओं में बाल–विवाह की प्रथा जन्म ले चुकी थी।

11.12.7 स्त्री शिक्षा – सल्तनत युग में स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी। शिक्षा केवल सम्पन्न एवं उच्च घराने की स्त्रियों को ही प्राप्त थी। उच्च वर्ग एवं धन–सम्पन्न घरानों की स्त्रियों को नृत्य व संगीत की शिक्षा दी जाती थी। देवलरानी, रूपवती एवं पद्मावती इस युग की विदुषी महिलाएं थी। रजिया एक कुशल प्रशासिका थी। इब्नबतूता ने लिखा है कि ''जब वह हनोर पहुंचा तो उसे 13 विद्यालय लड़कियों के मिले।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि सल्तनत काल में स्त्रियों की स्थिति पहले की अपेक्षा अधिक खराब हो गई थी।

11.12 सल्तनतकालीन आर्थिक स्थिति :

तुर्कों के आक्रमण से पूर्व भारत एक समृद्धिशाली देश था। विदेशियों ने देश की अतुल सम्पत्ति को देखकर आक्रमण किये थे। भारत में शासन स्थापित करने से पूर्व मुसलमानों ने देश की सम्पत्ति को खूब लूटा था। महमूद गजनवी ने राजकोष तथा मन्दिरों को लूटा था। उसके लगातार आक्रमणों का देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा था। देश का व्यापार नष्ट हो गया था। महमूद गजनवी का एकमात्र उद्देश्य धन लूटना था। जब मुसलमान देश पर शासन करने लगे तब भी राज्य विस्तार की ओर ही उनका ध्यान गया। एक ओर साम्राज्य विस्तार की नीति का अनुगमन किया जा रहा था तो दूसरी ओर दरबार की शानो–शौकत में बेशुमार खर्च हो रहा था। इस स्थिति में सल्तनत युग में आर्थिक विपन्नता एवं शोषण का ताण्डव ही दृष्टिगोचर होता है। कृषक एवं मजदूर वर्ग का शोषण कर अमीर एवं राजपरिवार के लोग वैभवपूर्ण एवं विलासिता का जीवन व्यतीत कर रहे थे। अमीर खुसरों ने ठीक ही लिखा है, ''सुल्तान के मुकुट का प्रत्येक मोती निर्धन किसानों की आंखों से गिरे हुए रक्त का सफेद किया हुआ कण है।'' सुल्तानों ने आर्थिक सुधारों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। केवल बलबन एवं अलाउद्दीन खिलजी ने ही आर्थिक दशा सुधारने के लिए प्रयत्न किए। संक्षेप में, सल्तनत युग की अर्थव्यवस्था को निम्नलिखित बिन्दुओं में इंगित किया जा सकता है।

11.13 भू–राजस्व :

दिल्ली के सुल्तानों ने अनेक पूर्ववर्ती परम्पराओं को जो कि हिन्दू शासकों के समय प्रचलित थी, ग्रहण किया। भू–राजस्व व्यवस्था सम्बन्धी परम्पराएं सल्तनत युग में भी जारी रही। उदाहरण के लिए, गांव की भूमि पर सुल्तान का पूर्ण अधिकार था और यदि वह चाहे तो भूमि किसी को भी अनुदान में दे सकता था। सल्तनतयुगीन भू–राजस्व व्यवस्था के अन्तर्गत अग्रलिखित 4 प्रकार की भूमि आती थी –

11.13.1. मदद–ए–माशा – यह वह भूमि थी जो कि यदा–कदा प्रसन्न होकर सुल्तानों के द्वारा किसी को दान में दे दी जाती थी। इस प्रकार की भूमि पर राजस्व वसूल नहीं किया जाता था। अभ्यर्थी के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी इस प्रदत्त भूमि का उपयोग करता था।

11.13.2. खालसा भूमि – प्रो. राधेश्याम के अनुसार, ''यह एक अन्य प्रकार की भूमि थी जो कि दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेश एवं दोआब में हुआ करती थी। इस प्रकार की भूमि राजस्व व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्यक्ष रूप से आ जाती थी।'' खालसा भूमि से राजस्व वसूल करने के लिए पृथक् 'आमिल' रखे गये थे। इस प्रकार की भूमि से प्राप्त राजस्व को कारखानों के खर्च एवं सेना के वेतन में काम में लाया जाता था।

11.13.3. अक्ता – प्रो राधेश्याम के अनुसार, ''अक्ता का अरबी में वास्तविक अर्थ भूमि सम्पत्ति के एक भाग से है जिसे कि राज्य की ओर से कोई व्यक्ति प्राप्त करता था। यह भूमि अमीरों को वेतन के स्थान पर अक्ता के रूप में दी जाती थी।'' दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भिक काल में समुचित प्रशासनिक व्यवस्था के अभाव के कारण प्रमुखतः दो लाभों को ध्यान में रखकर इस व्यवस्था का प्रयोग किया गया। प्रथम, सुल्तान दूरस्थ या निकटवर्ती प्रदेशों का प्रत्यक्ष रूप से शासन करने के दायित्व से बचा रहा। द्वितीय, राजस्व के स्रोत निर्धारित न होने के कारण सुल्तान अमीरों, सैनिकों, राजकीय अधिकारियों, आदि को वेतन देने के दायित्व से भी मुक्त रहा। किन्तु बलबन के शासन काल तक इस व्यवस्था में अनेक दोष आ गए थे। अतः बलबन ने इस व्यवस्था में परिवर्तन के लिए कदम उठाये।

बलबन के गद्दी पर बैठते समय अक्तादारों की स्थिति एवं बलबन की नीति : बलबन के गद्दी पर बैठते समय (1266 ई.) बहुत से अक्तादार वृद्ध हो चुके थे तथा वे सेना के साथ प्रस्थान करने में भी असमर्थ थे। वे घर पर ही बैठे रहते

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

थे। सेना के साथ चलने में समर्थ अक्तादार भी दीवान–ए–अर्ज के मुन्शियों को घूस देकर सेना के साथ जाने से बच जाते थे। बलबन ने गद्दी पर बैठते ही इस सम्बन्ध में जो जांच–पड़ताल की उससे स्पष्ट होता है कि इल्तुतमिश के समय के अनेक अक्तादारों के वंशजों ने गांव के गांवों को अपनी मिल्कियत बना लिया था और इस मिल्कियत को वे इनाम समझते थे।

बलबन ने अक्तादारों को तीन श्रेणियों में बांटा : प्रथम श्रेणी में वे अक्तादार रखे जो कि वृद्ध हो चुके थे। इस प्रकार के अक्तादारों को 40 से 50 तनके वजीफे के रूप में देकर उसने गांवों को खालसा में मिला दिया। द्वितीय श्रेणी में वे अक्तादार रखे जो कि हृष्ट–पुष्ट एवं जवान थें उनके गांवों को जब्त कर उनका वेतन निर्धारित कर दिया गया। तृतीय श्रेणी में उन अनाथ एवं विधवाओं को रखा गया जो कि अक्ताएं रखती थी और अपने पिता या पति के दासों के द्वारा दीवाने–अर्ज में अस्त्र–शस्त्र व घोड़े भेजते थे। बलबन ने इस प्रकार अनाथों व विधवाओं के जीवन–मरण को गांव की आय से निर्धारित करने के आदेश दिये। यह भी आदेश दिया गया कि उनके गांव उनसे लेकर राजस्व को राजकोष में जमा किया जाय किन्तु मलिक–उल–उमरा फरखुद्दीन कोतवाल द्वारा तृतीय श्रेणी के अक्तादारों द्वारा सिफारिश किए जाने पर बलबन को अपना आदेश वापस लेना पड़ा। यह ठीक है कि बलबन पूर्णतः अक्तादारी प्रथा का उन्मूलन न कर सका किन्तु उसने अक्तादारों को इस बात के लिए बाध्य अवश्य ही कर दिया कि वे अपनी अक्ताओं की आय से अपना व्यय निकालकर शेष धनराशि दीवान–ए–वजारत के पास जमा करें। उसने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक ख्वाजगी की नियुक्ति भी की जो कि अक्तादारों की आय–व्यय की जानकारी रखे और धनराशि को राजकोष में जमा कराये।

अक्तादारी प्रथा के सम्बन्ध में अलाउद्दीन खिलजी की नीति : अलाउद्दीन खिलजी ने अक्तादारी प्रथा में कतिपय परिवर्तन किये। उसने अक्ता का पूर्ण उन्मूलन करने की नीति न्हीं अपनाई। इसका कारण था साम्राज्य का विस्तार। अलाउद्दीन यह भली–भांति समझता था कि दूरस्थ प्रदेशों में केन्द्र द्वारा सीधा प्रशासन करने में पर्याप्त कठिनाई होगी। अतः उसने दूरस्थ प्रदेशों में अमीरों को अक्ताएं दी। किन्तु उसने दिल्ली के निकटवर्ती प्रदेशों से अक्तादारी तथा को समाप्त कर दिया। रुहेलखण्ड व दोआब का क्षेत्र इसी परिधि में था। उसने इसे खालसा में मिलाया। सैनिकों को नगद वेतन दिया गया। इससे खालसा का राजस्व अब राजकोष में जाने लगा।

अलाउद्दीन ने जिन दूरस्थ प्रदेशों में अक्ताएं दी थीं उसने सभी प्रकार के करों की वसूली के लिए मुक्तियों एवं वलियों को नियुक्त किया। इन मुक्तियों व वलियों पर प्रशासन की ओर से कठोर नजर रखी जाती थी। सुल्तान हमेशा इस बात पर सचेत रहता था कि कहीं मुक्ति या वली राजस्व धन की सही जानकारी न दें। अतः मुक्ति या वली के सही जानकारी न दिये जाने पर कठोर दण्ड दिया जाता था। बरनी के अनुसार, "अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में उसका मन्त्री शरफ पटवारियों के बहीखातों को जांच के उद्देश्य से मंगाता था। उसे यह अधिकार था कि राजस्व की चोरी करने वाले अधिकारियों को बन्दीगृह में डाल दे।"

अलाउद्दीन के पश्चात् अक्तादारी प्रथा पर केवल मुहम्मद तुगलक ही कुछ नियन्त्रण स्थापित कर सका अन्यथा कोई भी सल्तनत उत्तराधिकारी नियन्त्रण स्थापित करने में सफल न हो सका।

11.13.4. कृषि योग्य भूमि – जैसे–जैसे दिल्ली सन्तनत सृदृढ़ता को प्राप्त होती चली गयी वैसे–वैसे सल्तनत ने कृषक वर्ग से राजस्व वसूल करने की व्यवस्था को सुदृढ़ स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न किया। सल्तनत काल में कृषि योग्य भूमि से जो राजस्व कर वसूल किया जाता था उसे खिराज कहा जाता था और इस प्रकार की कृषि योग्य भूमि को खिराज भूमि कहा जाता था। प्रो. राधेश्याम ने लिखा है कि "ऐसा प्रतीत होता है कि 1206 ई. से 1296 ई. तक खिराजी भूमि जो कि हिन्दू–मुसलमान कृषकों के हाथ में थी, पर कुल उत्पादन का 1/5 भाग भू–राजस्व के रूप में लिया जाता था।" बलबन ने कृषकों को सन्तुष्ट रखने, कृषि उत्पादन की वृद्धि एवं उचित राजस्व की प्राप्ति पर बल दिया। मोरलैण्ड ने बलबन की नीति के विषय में लिखा है कि "बलबन ने कृषि प्रधान राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के प्रमुख सिद्धान्त को निःसन्देह समझ ही लिया था।" मोरलैण्ड के इस कथन की सार्थकता बलबन द्वारा अपने पुत्र बुगरा खां से कहे गए इस आदेश से भी होती है कि "खिराज वसूल करते समय मध्यम मार्ग अपनाना। खिराज वसूली इतनी अधिक न हो कि जनता दरिद्र बन जाय ओर इतनी कम भी न ही कि धन की अधिकता जनता को विरोधी बना दे।"

कृषि योग्य भूमि सम्बन्धी अलाउद्दीन की नीति – अलाउद्दीन खिलजी ने कुल पैदावार का 1/2 भाग राजस्व कर के रूप में निर्धारित किया। राजस्व कर नकद एवं अनाज दोनों ही रूपों में लिया जाता था। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अलाउद्दीन खिलजी ने राजस्व विभाग का पुनर्गठन किया। विभाग के अध्यक्ष की सहायता के लिए नायब–ए–वजीर एवं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नायब–ए–मुमालिक की नियुक्ति की गई। अलाउद्दीन खिलजी ने हिसाब–किताब की देख–भाल के निए मुस्तौफी–ए–मुमालिक की नियुक्ति की, परगनों में आमिलों, मुहस्सिलों, मुशरिकों, सरहगों एवं नवीसन्दों की नियुक्ति की गई। नायब–ए–वजीर के कार्यालय में इन्हें अपनी रिपोर्ट देनी होती थी। पटवारी के बहीखाते एवं राजस्व कर वसूल करने वाले के हिसाब में असमानता क्षम्य नहीं थी। इतना होने पर भी कृषकों के पास जो रकम बकाया रह जाती थी उसे वसूल करने एवं उसका लेखा–जोखा रखने लिए मुश्तखराज विभाग खोला गया।

अलाउद्दीन खिलजी ने खिराज वसूल करने के लिए जो कठोर नीति अपनाई उसकी सफलता पर सन्देह है क्योंकि उसकी इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य कृषकों का शोषण रोकना था परन्तु क्या इस व्यवस्था ने कृषकों का शोषण रोककर उन्हें खुशहाल बनाया। यह ठीक है कि उसकी इस व्यवस्था ने सम्पन्न लोगों को भी कर देने पर बाध्य किया किन्तु कृषक वर्ग के लिए अपनी आय का 1/2 भाग कर के रूप में देना कष्टप्रद तो रहा ही होगा।

मुहम्मद तुगलक की कृषि सम्बन्धी नीति – अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र मुबारकशाह ने कोई नई राजस्व नीति नहीं अपनाई अपितु उसने अलाउद्दीन की नीति का ही अनुपालन किया, अतः योग्यता के अभाव में अलाउद्दीन खिलजी की नीति उसके पश्चात् असफल हो गई। किन्तु गयासुद्दीन तुगलक ने भू–राजस्व की नीति का आधार कृषकों के हितों की दृष्टि में रखकर निर्धारित किया, परन्तु उसके उत्तराधिकारी मुहम्मद तुगलक ने पिता से भिन्न नीति का अनुसरण किया। उसकी नीति का विवरण निम्नवत् है –

1. दोआब में कर वृद्धि – पितृ हत्या के अपने निन्दनीय कार्य पर परदा डालने के लिए मुहम्मद तुगलक ने राज्याभिषेक के समय जनता में खूब धन बटवाया जिसके परिणामस्वरूप राजकोष खाली हो गया। अतः उसने राजस्व में कर वृद्धि करने की आवश्यता महसूस की। इसके अतिरिक्त अपनी महान् विजय योजनाओं के लिए भी उसे धन की आवश्यकता थी। इसलिए उसने सिंहासन पर बैठने के कुछ समय बाद ही दोआब के धनी प्रान्त में राजस्व वृद्धि की योजना लागू की। भूमि कर बढ़ा दिया गया। लेकिन दुर्भाग्य से जिस समय दोआब में इस अतिरिक्त कर वृद्धि की योजना को कार्यान्वित किया गया, उस समय वहां अनावृष्टि के कारण अकाल पड़ गया। जनता ने इसका विरोध किया। लेकिन सुल्तान द्वारा नियुक्त कर्मचारियों ने कठोरतापूर्वक कर वसूल करने का कार्य जारी रखा। अतः किसानों को बाध्य होकर अपनी भूमि छोड़नी पड़ी। जियाउद्दीन बरनी के अनुसार, "रैयत की रीढ़ टूट गयी, अन्न महंगा हो गया ओर वर्षा कम हुई इसलिए चारों ओर दुर्भिक्ष फैल गया। यह अवस्था कई वर्ष तक चलती रही जिससे हजारों व्यक्तियों का जीवन नष्ट हो गया।" बरनी की जन्मभूमि को भी दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ा इसलिए उसके वर्णन में कुछ अतिश्योक्ति हो सकती है, लेकिन अतिश्योक्ति का पुट अधिक नहीं है। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "दुर्भाग्य से यह योजना उस समय कार्यान्वित की गयी जबकि दोआब में भयंकर अकाल के कारण जनता के कष्ट बढ़ गये लेकिन इससे सुल्तान सर्वथा दोषमुक्त नहीं हो जाता क्योंकि उसके पदाधिकारियों ने अकाल की परवाह न करते हुए कठोरतापूर्वक कर वसूल किया उपचार तो किया गया परन्तु बहुत देर से।"

2. कृषि की उन्नति (कृषि विभाग का निर्माण) – मुहम्मद तुगलक ने कृषि की उन्नति के लिए कृषि विभाग की स्थापना की। उसका नाम 'दीवाने कोही' रखा गया। राज्य की ओर से आर्थिक सहायता देकर कृषि के योग्य भूमि का विस्तार करना इस विभाग का मुख्य उद्देश्य था। इस कार्य के लिए साठ वर्ग मील का एक भू–भाग चुनकर उसमें बारी–बारी से विभिन्न फसलें बोयी गयी। इस योजना के अन्तर्गत सरकार ने दो वर्ष में लगभग सत्तर लाख रुपया व्यय किया। इस भू–भाग की देख–रेख के लिए बड़ी संख्या में रक्षक तथा पदाधिकारी नियुक्त किये गये। किन्तु अनेक कारणों से यह प्रयोग असफल रहा। पहला कारण असफलता का यह था कि प्रयोग के लिए चुना गया यह भू–क्षेत्र उपजाऊ नहीं था। दूसरा कारण यह था कि प्रयोग नितान्त नया था और इस सम्बन्ध में कोई पूर्व उदाहरण विद्यमान नहीं था। तीसरा तीन वर्ष का समय कम था और उसमें ठोस परिणाम की आशा करना व्यर्थ था। इतने अल्प समय में किसी भी ठोस परिणाम की आशा नहीं हो सकती थी। चौथा कारण यह था कि योजना के लिए निर्धारित किया गया धन सही अर्थ में प्रयोग नहीं किया गया क्योंकि उसमें से कुछ तो भ्रष्ट पदाधिकारी हड़प गये तथा कुछ किसानों ने अपनी निजी आवश्यकताओं पर व्यय कर दिया। इस प्रकार मुहम्मद तुगलक का वह प्रयोग भी असफल रहा ओर उसे इस योजना को त्यागना पड़ा।

मुहम्मद तुगलक के पश्चात् की स्थिति – मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी फिरोजशाह तुगलक के सम्मुख जहां एक ओर राजकोष रिक्त था वहीं दूसरी ओर दोआब व उसके निकटवर्ती प्रदेशों में दुर्भिक्ष का ताण्डव नृत्य था। कृषक वर्ग जर्जरित स्थिति में था, फिरोजशाह ने सभी स्थानों के कृषकों के साथ समान नीति अपनाई। गृह कर व चराई कर को छोड़कर अन्य उपकरों को समाप्त कर दिया गया। कुल पैदावार का 4 प्रतिशत भू–राजस्व कर के रूप में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निर्धारित किया गया। जिन गांवों में नहरों से सिंचाई होती थी वहां पर पैदावार का 1/10 भाग जल के रूप में लगाया गया। फिरोजशाह तुगलक की मृत्यु के पश्चात् तुगलक वंश का पतन हो गया ओर सैय्यद वंश के हाथों सत्ता आ गई। सैय्यद ों के शासन काल में सुल्तान की शक्ति क्षीण हो गई ओर जमींदारों की शक्ति का विकास हुआ। सैय्यदों के पश्चात् लोदी वंश के शासन काल में भू–राजस्व की दर पैदावार का 1/4 बनी रही।

11.14 अलाउद्दीन खिलजी का बाजार नियन्त्रण :

11.14.1 उद्देश्य – सल्तनत काल के इतिहास में अलाउद्दीन खिलजी का बाजार नियन्त्रण निःसन्देह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य था। यह ठीक है कि बाजार नियन्त्रण के पीछे उसका उद्देश्य राजनीति से प्रभावित था, किन्तु फिर भी अर्थव्यवस्था की दृष्टि से उसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता अलाउद्दीन खिलजी अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए एक विशाल सेना रखना चाहता था किन्तु वह इसके लिए राज्य के साधनों पर अत्यधिक बोझ नहीं डालना चाहता था। इधर आन्तरिक विद्रोह का दमन करने के साथ–साथ उसे उत्तर–पश्चिमी सीमा पर होने वाले मंगोलों के आक्रमण का सामना भी करना था। इस स्थिति में विशाल सेना की अनिवार्यता स्वयं–सिद्ध थी। अतः अलाउद्दीन को बाजार नियन्त्रण पर ध्यान देना पड़ा। उसका उद्देश्य था कि दैनिक आवश्यकताओं व सामान्य खाद्य पदार्थों को इतना गिरा दिया जाय कि प्रत्येक सैनिक के आम व्यक्ति अपना जीवन–निर्वाह कर सके।

11.14.2 उद्देश्य की पूर्ति हेतु कार्य – अपने उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए अलाउद्दीन खिलजी ने खालसा भूमि एवं अधीनस्थ सामन्तों की भूमि से राजस्व उपज के रूप में वसूल करना आरम्भ किया। यह घोषित किया गया कि अधिक–से–अधिक अनाज शासन द्वारा एकत्रित किया जाय। कोई भी व्यक्ति सरकारी परिषद के बिना सीधा कृषक से अनाज नहीं खरीद सकता था। जिन व्यापारियों को सरकारी परिषद प्राप्त थे वे ही कृषकों से सीधे अनाज खरीद सकते थे। दिल्ली के सभी व्यापारियों के लिए शहना–ए–मण्डी नामक पदाधिकारी के कार्यालय में नाम लिखवाना अनिवार्य कर दिया गया। राज्य की ओर प्रत्येक वस्तु के लिए निर्धारित कर दिये गये। निश्चित मूल्य से अधिक मूल्य पर वस्तु विक्रय करने पर कठोर दण्ड की व्यवस्था थी। यदि तोल में सामान कम दिया जाता था तो उसके शरीर से उतना ही मांस काट लिया जाता था। दोआब पदाधिकारी इस बात की गारण्टी देते थे कि वे किसी स्थिति में अनाज की चोरी न होने देंगे कोई भी 10 मन से अधिक नाज एकत्रित नहीं कर सकता था। मण्डी की समस्त सूचना दीवाने रियासत तथा शहना–ए–मण्डी नामक पदाधिकारियों द्वारा सुल्तान तक पहुंचती थी। दास का मूल्य 100 से 200 टंका निर्धारित किया गया। गेंहू का मूल्य 7 1/2 जीतल प्रति मन, जौ 4 जीतल प्रति मन, धान 5 जीतल प्रति मन एवं चना 5 जीतल प्रति मन हो गया।

11.14.3 परिणाम – अलाउद्दीन खिलजी की इस बाजार नियन्त्रण की नीति के जो परिणाम सामने आये इतिहासविद्वों ने उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की है। अनाज, कपड़ा व दैनिक आवश्यकता की वस्तुएं सस्ती हो गई। रहन–सहन का खर्च काफी गिर गया। अलाउद्दीन खिलजी ने यह नीति क्या पूरे साम्राज्य में लागू की या फिर केवल दिल्ली व उसे निकटवर्ती क्षेत्रों में ही लागू की? यह प्रश्न विचाराधीन है। यह प्रश्न आज भी विवादास्पद बना हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण साम्राज्य की इस नीति का पालन न किया होगा केवल दिल्ली व उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में ही यह नीति लागू की गई होगी। कुछ भी हो उसकी इस नीति ने सुल्तान के मुख्य उद्देश्य – मुद्रा–प्रसार को रोकने एवं रहन–सहन के खर्च को कम करने को पूरा कर दिया और सुल्तान एक विशाल सेना रखने में सफल हुआ।

11.15 व्यापार :

इस काल में व्यापार बड़ा विकसित था। बहादुर व्यापारी समुद्र मार्ग से भी व्यापार करते थे। फादर मानसरेट ने लाहौर के सम्बन्ध में लिखा है, "लाहौर अपने फैलाव, आबादी और धनराशि में, व्यापारियों की संख्या में, जो सारे एशिया से यहां एकत्रित होते हैं, सम्पूर्ण एशिया या यूरोप में अद्वितीय हैं, उसकी आबादी इतनी अधिक थी कि गलियों में लोगों के कन्धे एक–दूसरे से रगड़ खाते थे।"

11.15.1. आन्तरिक व्यापार – यह मुख्यतः वैश्य, मुल्तानी, मारवाडी व गुजराती लोगों द्वारा होता था। डॉ. लाल अलाउद्दीन के समय में बंजारों का घुमक्कड़ व्यापारियों के रूप में वर्णन करते हैं। व्यापार सड़कों तथा नदियों से होता था। डॉ. युसूफ हुसैन के अनुसार, "देश का आन्तरिक व्यापार अत्यन्त विकसित था तथा देश के सभी बड़े केन्द्रों में साहूकार तथा थोक व्यापारी थे, जो अत्यन्त धनवान थे।...एक स्थान से दूसरे स्थान पर धन भेजने के लिए व्यापारी हुण्डियों का प्रयोग

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

करते थे।'' प्रत्येक प्रान्त एक–दूसरे की आवश्यकता को पूरा करता था। दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएं तथा व्यापारियों द्वारा गांव में घोड़ों पर तथा श्रेष्ठ वस्तुएं नगरों में मंडियों में बेची जाती थी। कपड़ा, अनाज व खाद्य पदार्थों का ही आन्तरिक व्यापार होता था। अलाउद्दीन ने वस्तुओं के दाम बहुत घटा दिए।

11.15.2. विदेशी व्यापार — मध्यकाल में विदेशी व्यापार बड़ा उन्नत था। यह जल व स्थल दोनों मार्गों से होता था। सूरत, भड़ौंच, कालीकट, गोआ, कोचीन, सोनारगांव, चटगांव आदि प्रमुख बन्दरगाह थे। इब्नबतूता के अनुसार, ''कालीकट, खम्भात व भड़ौंच उन्नतिशील व्यापार के केन्द्र थे, जहां से विदेशी व्यापारी जड़ी–बुटियां, गोंद, अदरक, काली मिर्च, नील ले आते थे और उनके बदले में घोड़ा, तांबा तथा सोना छोड़ जाते थे।'' मध्य एशिया से होने वाले व्यापार के सम्बन्ध में डॉ. युसूफ हुसैन ने लिखा है, ''जहांगीर के शासन काल में 14,000 जानवरों पर माल लादकर भारत से कन्धार को प्रतिवर्ष बोलन के दर्रे से भेजा जाता था।'' रेशमी वस्त्र चीन व इराक से, कांच का सामान वेनिस से, शराब यूरोप से, दास अफ्रीका से तथा घोड़े, सोना, चांदी, विलास की सामग्री आदि अन्य देशों से आयात किए जाते थे। खाद्य पदार्थ, सूती व रेशमी वस्त्र, छींट, नील, मसाले, शोरा, चीनी, अफीम आदि का निर्यात होता था। डॉ. श्रीवास्तव के अनुसार, ''भारत का बाह्य जगत से घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था। कृषि की उपज, सूत्री तथा रेशमी वस्त्र, अफीम, नील व जस्ता आदि वस्तुएं विदेशों को भेजी जाती थीं।'' बारबोसा ने कालीकट के सम्बन्ध में लिखा है, ''मुसलमान अपनी वस्तुओं को हर स्थान के लिए जहाजों में लादते थे और हर मानसून में दस या पन्द्रह जहाज अदन और मक्का के लिए रवाना किए जाते थे।'' डॉ. चौबे एवं श्रीवास्तव ने लिखा है, ''भारत का भूमध्य सागर के देशों से व्यापारिक सम्बन्ध प्राचीन काल से था। इस्लाम के आगमन का मात्र यह प्रभाव पड़ा कि हिन्दू व्यापारियों का स्थान मुस्लिम व्यापारियों ने ले लिया।''

11.16 कृषि एवं उद्योग धन्धे :

अलाउद्दीन खिलजी के समय में कृषि व उद्योग–धन्धों की स्थिति निम्नवत् थी —

11.16.1. कृषि — सल्तनत काल में कृषि का उद्योग प्रधान था, अन्न का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में होता था। वस्तुएं सस्ती बिकती थी। अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में धान 5 जीतल प्रति मन था। गेंहू 7 1/2 जीतल प्रति मन था। जौ चार जीतल प्रति मन था। 1388 ई. तक देश की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। 14वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में आर्थिक कठिनाई उत्पन्न हो गई।

किसान दो फसलें उगाते थे। दाल, गेंहू, ज्वार, जौ, मटर, चावल, गन्ना और तिलहन मुख्य उपजें थी। कपास की खेती अधिक होती थी। मार्कोपोलो के कथनानुसार उस समय कपास के 6 कदम ऊंचे पौधे होते थे। फलों के बाग लगाये जाते थे। अंगूर, सेव, आम, नारंगी, छुआरा तथा अंजीर बहुत होता था। सुल्तानो को बाग लगाने का बहुत शौक था। फिरोज तुगलक ने दिल्ली के आस–पास 1,200 बाग लगवाये थे।

11.16.2. वस्त्र उद्योग — सल्तनत काल में वस्त्र उद्योग प्रमुख उद्योग था। वरथेमा ने बंगाल को समृद्धिशाली बतलाते हुए लिखा है, ''बंगाल सूती कपड़े के लिए विश्व के धनी देशों में से एक स्थान था।'' बंगाल के वृहद् मात्रा में रेशम का उत्पादन होता था। यहां पर ऊन पहाड़ी भेड़ों से प्राप्त होती थी। अमीर खुसरों, वरथेमा एवं बारबोसा ने बंगाल को सबसे बड़ा औद्योगिक केन्द्र बतलाया है। बंगाल के अतिरिक्त खम्भात भी महत्वपूर्ण वस्त्र उद्योग का केन्द्र था। यहां रेशम के वस्त्र तैयार होते थे।

11.16.3. धातु उद्योग — सोना, चांदी, पीतल, कांसा, लौह, आदि धातुओं की वस्तुओं का निर्माण सल्तनत काल में होता था। गुजरात के स्वर्णकार सोने व चांदी से तैयार माल पर नक्काशी के लिए प्रसिद्ध थे। सोने व चांदी के कार्य के लिए विशेष कारखाने थे। गुजरात एवं बंगाल में मूंगे का कार्य होता था। फतेहपुर सीकरी, बिहार एवं बरार कांच की वस्तुओं के निर्माण के लिए प्रसिद्ध था। हाथी दांत का कार्य भी होता था।

11.16.4. चीनी उद्योग — सल्तनत युग में चीनी या खांड का उद्योग अत्यन्त उन्नत था। इस उद्योग का प्रमुख केन्द्र बंगाल था।

11.16.11. चमड़ा उद्योग — चर्म उद्योग का प्रमुख केन्द्र गुजरात था। मार्कोपोलो के अनुसार, ''चमड़े की चटाइयों पर सुन्दर पशु–पक्षियों के चित्र बनाये जाते थे।'' चर्मकार जूते, मश्क एवं कृषि के कार्य आने वाली चमड़े की वस्तुओं का निर्माण करते थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.16.6. काष्ठ उद्योग – सल्तनत काल में काष्ठ उद्योग भी उन्नति पर था। पलंग, खूंटी, दरवाजे, खिलौने, आदि लकड़ी के बनाये जाते थे।

11.16.7. कागज उद्योग – सल्तनत काल में कागज उद्योग के लिए दिल्ली एवं गुजरात प्रसिद्ध थे। कागज विशेष रूप से सरकारी कार्य एवं पुस्तकें लिखने के लिए प्रयोग किया जाता था।

11.16.8. शिल्प – अमीर खुसरों लिखता है कि ''उस युग में दिल्ली के भवन निर्माता एवं शिल्पकार सम्पूर्ण मुस्लिम जगत में सर्वश्रेष्ठ कलाकार थे।'' शिल्पकारों को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। अलाउद्दीन खिलजी ने 70 हजार कारीगरों को भवन निर्माण का प्रशिक्षण दिया गया। यही नहीं ईंटें बनाने व संगतराशी के कार्य भी कुछ लोग किया करते थे।

11.17 मूल्य :

सल्तनत काल में वस्तुओं के मूल्य काफी कम थे। ये इस प्रकार थे :

सल्तनतकालीन खाद्य पदार्थ

(कीमत जीतलों में प्रति मन दर से)

	वस्तुएं	अलाउद्दीन खिलजी	मुहम्मद तुगलक	फीरोज तुगलक
1.	गेहूँ	7.5	12	8
2.	जौ	4	8	4
3.	चावल	5	14	–
4.	दाल	5	–	4
5.	मसूर	3	4	4
6.	चीनी (सफेद)	100	80	–
7.	चीन (साफ्ट)	60	64	120,140
8.	भेड़ का मांस	10	64	–
9.	घी	16	–	100

11.18 मुद्रा :

मध्यकाल में सोने, चांदी तथा तांबे के बने सिक्कों द्वारा विनिमय होता था। कौड़ी का भी प्रचलन था। सल्तनत काल में मुद्रा के क्षेत्र में अनेक सुधर किए गए। इल्तुतमिश ने चांदी के टंके तथा दौकानी नामक छोटा सिक्का चलाया। मुहम्मद तुगलक ने सोने के स्थान पर तांबे की सांकेतिक मुद्रा चलाई. किन्तु कुछ भूलों के कारण उसकी यह योजना विफल रही। अपने नवीन प्रयोग के कारण उसे 'धनवानों का राजकुमार' व्हा गया।

11.19 करारोपण :

मध्यकाल में शासकों द्वारा मुख्य रूप से चार प्रकार के कर वसूल किए जाते थे – (1) खम्स, (2) जजिया, (3) खिराज व (4) जकात। इन करों के अतिरिक्त लिए जाने वाले कर शासक की निरंकुशता के प्रतीक थे।

11.19.1. खम्स : 'खम्स' शब्द का तात्पर्य है 1/5 अर्थात् सेना द्वारा लूटे गए धन का 1/5 भाग राजकोष में जमा किया जाए तथा 4/5 भाग सैनिकों में बांट दिया जाए। किन्तु मध्यकाल में मात्र फीरोज तुगलक ने शरीयत के अनुरूप इस नियम को लागू किया था अन्यथा अन्य शासकों ने तो 4/5 भाग राजकोष में रखकर 1/5 भाग ही सैनिकों में बांटा था।

11.19.2 जजिया : यह कर शासन की भेदभाव की नीति का प्रतीक था, क्योंकि यह मात्र गैर मुसलमानों से ही वसूल किया जाता था। सुल्तान इसकी वसूली को अपना पवित्र कर्तव्य मानते थे। कुछ इतिहासकारों ने इस कर को गैर धर्मावलम्बियों को दी जाने वाली सुविधाओं हेतु लिया जाने वाला शुल्क बताया है। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार ''मुस्लिम धर्माचार्यों के गैर मुसलमानों (जिम्मियों) से इसलिए लिया जाता था कि उन्हें मृत्यु दण्ड नहीं दिया जाता था। जजिया अदा करके गैर मुस्लिम अपने प्राणों को खरीद लेते हैं।'' प्रो. यू.एन.डे. का मानना है, ''प्रारम्भ में जजिया मुस्लिम राज्य के अपमान के प्रतीक, सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए क्षतिपूर्ति एवं सैनिक सेवा से मुक्ति के रूप में लिया जाता था...... परन्तु बाद में इसके क्षेत्र को विस्तृत कर दिया गया तथा इसमें मूर्तिपूजकों व काफिरों को भी सम्मिलित कर दिया गया।'' डॉ. आर.एस. त्रिपाठी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के शब्दों में, ''जजिया केवल काफिरों पर उनके कुफ्र के दण्ड के रूप में लगाया जाता था।'' डॉ. पाण्डेय ने लिखा है, ''विधर्मी देशों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् इस्लामी शासक का यह कर्तव्य था कि वह इन विधर्मियों को अपने संरक्षण में ले ले, जो राज्य में लगाए जाने वाले कर देने को प्रस्तुत हों, इनको जिम्मी कहते हैं। कुरान में इस्लाम स्वीकार न करने वाले व्यक्ति के लिए मृत्यु दण्ड की व्यवस्था की गई है, किन्तु मुहम्मद बिन कासिम ने सोचा कि बिना हिन्दुओं की सहायता के शासन कैसे होगा, अतः उसने 'जजिया' की प्रथा का सूत्रपात किया। कालान्तर में जजिया वसूल करते समय उत्पीड़न का आश्रय लिया जाने लगा। जजिया कर देने वाले व्यक्ति तीन श्रेणियों में विभक्त थे –

1. **उच्च श्रेणी** : जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। ये 48 दिरहम वार्षिक जजिया देते थे।
2. **मध्यम वर्ग** : सामान्य आर्थिक स्थिति वाले लोग। ये 24 दिरहम वार्षिक जजिया देते थे।
3. **निम्न श्रेणी** : कम आय वाले लोग। इन्हें 12 दिरहम वार्षिक जजिया देना पड़ता था।

डॉ. त्रिपाठी के अनुसार, ''धनी व्यक्ति वे हैं, जिनके पास 10,000 या इससे अधिक दिरहम है। निर्धन व्यक्ति वे हैं जिनके पास 200 दिरहम से कम हैं। इन दोनों वर्गों के बीच में मध्यम वर्ग के मनुष्य हैं।'' अबू युसूफ ने निर्धन का तात्पर्य मजदूरों से बताया है।

मुस्लिम धर्मशास्त्रों में जजिया को न्यायसंगत माना गया है, किन्तु इसे वसूले जाने के तरीके तथा उस दौरान किए जाने वाले अत्याचार व अपमान के कारण असन्तोष फैला।

11.19.3 खिराज : यह कर हिन्दू एवं मुसलमानों दोनों से लिया जाता था। भिन्न–भिन्न शासकों के समय में इसकी दर भिन्न–भिन्न शासकों के समय में इसकी दर भिन्न–भिन्न रही। इसे नकद अथवा अनाज दोनों रूपों में जमा करवाया जा सकता था। सामान्यतः यह उपज का 1/3 भाग होता था, किन्तु कुछ साम्राज्यवादी शासकों ने इसे 1/2 भाग कर दिया था, मगर यह इससे अधिक नहीं वसूला जा सकता था। कर की वसूली के सम्बन्ध में बरनी ने लिखा है, ''वे खिराज जुजार कहलाते हैं और जब तहसीलदार उनसे चांदी मांगता है, तब वे बिना हिचक के बड़ी नम्रता तथा आदर के साथ सोना भेंट करते हैं।

11.19.4 जकात – यह मुसलमानों से लिया जाने वाला धार्मिक कर था, किन्तु यह बलपूर्वक नहीं लिया जाता था एवं अल्प वयस्क, दास, ऋणी, विक्षिप्त, और मुसलमान आदि से नहीं लिया जाता था। निसाव से कम होने पर इसे नहीं वसूला जाता था। कपड़ा, मकान, भोजन, पुस्तकें, सवारी, नौकर, फर्नीचर, कृषि के लिए पशु आदि इस कर से मुक्त थे।

इसके अलावा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सम्पत्ति पर लिए जाने वाले 'सदका' नामक कर का भी उल्लेख मिलता है। 20 दिरहम से कम कीमत की वस्तुओं पर कर नहीं लगता था। सोने पर 20 मिसकल तथा चांदी पर 200 दिरहम निसाब था। सदक करों में 'टिथे' नामक कर भी था, जो भूमि की वास्तविक उपज पर लगता था। यह विशेष परिस्थितियों में क्षमा कर दिया जाता था तथा इससे प्राप्त आय को धार्मिक कार्यों पर ही व्यय किया जाता था।

11.20 सारांश :

इस प्रकार सम्पूर्ण विवेचन स्पष्ट करता है कि सल्तनत काल में दिल्ली के सुल्तान किसी निश्चित आर्थिक नीति का पालन नहीं कर सके। जहाँ तक कृषि, उद्योग–धन्धों एवं व्यापार का प्रश्न है तैमूर के आक्रमण ने इसे भयंकर आघात प्रदान किया था। फिर भी यह तो मानना ही होगा कि बलबन एवं अलाउद्दीन खिलजी जैसे शासकों ने जो नीतियां अपनाई वह तत्कालीन युग की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी।

11.21 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 अमीर कितने भागों में विभाजित थे?

अ. दो   ब. तीन   स. चार   द. पाँच

उत्तर – ....

प्रश्न 2 सल्तनतकालीन स्त्रियों की स्थिति पर टिप्पणी लिखिए। (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 सल्तनतकालीन आर्थिक स्थिति पर निबन्धात्मक वर्णन करिये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–12
सल्तनतकालीन प्रशासन

संरचना

12.0 उद्देश्य

12.1 सन्तनतकाल में राज्य का स्वरूप – धर्मतंत्रिका राज्य

12.2 खलीफा का स्थिति

12.3 केन्द्रीय सरकार

  12.3.1 सुल्तान

  12.3.2 मजलिस–ए–खलवत

12.4 मन्त्रिमण्डल

  12.4.1 वजीर तथा दीवाने वजारत

  12.4.2 आरिजे मुमालिक तथा दीवाने आरिज

  12.4.3 दीवाने इन्शा तथा दरबारे खास

  12.4.4 दीवान–ए–इसालत

  12.4.5 सदरउसुदूर तथा मुख्य काजी

12.5 प्रान्तीय और स्थानीय प्रशासन

  12.5.1 सूबेदार (प्रान्तपति)

  12.5.2 परगना (आमिल तथा मुशरफ)

  12.5.3 गांव (नम्बरदार, पटवारी, पंचायत आदि)

12.6 स्थानीय शासन

12.7 वित्तीय व्यवस्था

  12.7.1 भूमि–कर

  12.7.2 खम्स

  12.7.3 खिराज

  12.7.4 जकात

  12.7.5 शर

  12.7.6 जजिया

  12.7.7 अन्य कर

12.8 सैन्य संगठन

12.9 न्याय विभाग

12.10 पुलिस विभाग

12.11 डाक विभाग

12.12 सारांश

12.13 अभ्यास प्रश्नावली

12.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में सल्तनतकालीन राज्य के स्वरूप को बताते हुये उसके केन्द्रीय, प्रान्तीय, स्थानीय, ग्राम्य प्रशासन को विस्तार से समझाया जायेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.1 सल्तनत काल में राज्य का स्वरूप-धर्मतंत्रिका राज्य :

दिल्ली सल्तनत एक धर्मतन्त्रिका राज्य था। इस्लाम ही राजधर्म था तथा उसी के अनुसार शासन संचालन करना पड़ता था। उच्च पदों पर भी मुसलमानों को ही नियुक्त किया जाता था। इस्लाम का प्रसार राज्य का कर्त्तव्य माना जाता था।

12.2.खलीफा की स्थिति :

उस समय खलीफा काफी शक्तिशाली होता था। सैद्धान्तिक रूप से विभिन्न प्रदेशों के सुल्तान खलीफा के अधीन थे। जब कोई मुसलमान सेनापति किसी प्रदेश पर अधिकार कर लेता था, तब शासक बनने के लिए खलीफा की स्वीकृति जरूरी होती थी। दिल्ली के सुल्तान अपने सिक्कों पर खलीफा का नाम खुदवाते थे तथा उसके नाम से ही खुतबा पढ़ते थे।

सल्तनत काल में अलाउद्दीन खिलजी, फिरोजशाह तुगलक और सिकन्दर लोदी जैसे कुछ प्रमुख शासकों ने सुदृढ शासन–प्रबन्ध स्थापित किया। इस शासन–व्यवस्था का मूल आधार ईरानी और अरबी शासन–प्रणालियां थीं, परन्तु फिर भी इसमें भारतीय संस्थाओं के चिह्न स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होते थे। सल्तनतकालीन शासन–व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित थी।

12.3 केन्दीय सरकार :

सल्तनत काल की केन्द्रीय सरकार भली–भांति संगठित थी। इसमें सुल्तान और उसके कुछ मन्त्री होते थे, जिनके केन्द्रीय विभाग नियमित रूप से कार्य करते थे। केन्द्रीय सरकार की कार्य–विधि और उसके प्रमुख अधिकारियों के नाम ईरानी शासन–प्रणाली से लिए गए थे।

12.3.1 सुल्तान – सुल्तान केन्द्रीय सरकार का मुखिया होता था। उसे ईश्वर का प्रतिनिधि समझा जाता था। सैद्धान्तिक रूप से सुल्तान से कुरान के नियमों के अनुसार राज्य करने की आशा की जाती थी, परन्तु व्यवहार में उसकी शक्तियों पर कोई ऐसा प्रतिबन्ध नहीं था, जो उसे इस्लामी कानून के अनुसार शासन करने पर विवश कर सकता। यही कारण था कि दिल्ली के कई सुल्तानों ने अपने व्यक्तिगत जीवन तथा शासन प्रबन्ध नें कुरान की आज्ञाओं का पालन नहीं किया। सैद्धान्तिक रूप से सुल्तान का पद बहुत ऊँचा था, लेकिन व्यवहार में प्रजा उसे देवता तुल्य नहीं मानती थी और न ही उसका पद पैतृक था। कई बार सुल्तानों के अयोग्य सिद्ध होने पर उन्हें गद्दी से उतार दिया जाता था। सुल्तान को गद्दी से हटाने के लिए कोई संवैधानिक मार्ग नही था। उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था। प्रायः षड्यन्त्र और तलवार ही इस सम्बन्ध में निर्णय करते थे। डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव के शब्दों में – "सीजर की निरंकुश शक्ति और पोप की धार्मिक शक्ति दोनों का ही भारी मात्रा में समावेश था।" सुल्तान अपनी शक्ति तथा वैभव से जनता को प्रभावित करने के लिए शानदार दरबार लगाता था। उसके दरबार में आने–जाने के निश्चित नियम बने हुए थे। सुल्तान के महल में हजारों रानियों की सेवा के लिए अनेक दास–दासियां होती थी। शाही घराने पर राज्य का बहुत धन खर्च होता था।

सुल्तान के पास प्रशासनिक, न्यायिक और विधायी सभी प्रकार की शक्तियां थी। पदाधिकारियों की नियुक्ति, पदोन्नती एवं विमुक्ति उसके हाथ में थी। वही राज्य का सर्वोच्च सेनापति था। सर्वोच्च न्यायाधीश होने के नाते वह महत्त्वपूर्ण मुकदमों के फैसले स्वयं करता था। संक्षेप में, राज्य की समस्त शक्तियां सुल्तान के हाथों में केन्द्रित थी और वह पूर्ण रूप से निरंकुश था, परन्तु व्यावहारिक रूप में सुल्तान कुछ शक्तियों का सहयोग लेकर चलता था। वह मुस्लिम सैनिक वर्ग का सहयोग प्राप्त करने के लिए 'शरा' का पालन करता था। मुस्लिम धार्मिक वर्ग का भी वह आदर करता था। प्रजा के किसी भी शक्तिशाली वर्ग की इच्छा की अवहेलना भी वह प्रायः नहीं करता था।

12.3.2 मजलिस–ए–खलवत – सुल्तान की एक परामर्शदात्री सभा होती थी, जिसे मजलिस–ए–खलवत कहा जाता था। इस सभा में सुल्तान के हितैषी, मित्र तथा विश्वसनीय अधिकारी सम्मिलित होते थे। सुल्तान प्रायः उनसे राज्य के महत्त्वपूर्ण मामलों के सम्बन्ध में परामर्श लेता था, लेकिन उसको मानने के लिए वह बाध्य नहीं था। फिर भी उनके परामर्श का शासन की नीति पर काफी प्रभाव पड़ता था।

12.4 मन्त्रिमण्डल :

राज्य–कार्य में सुल्तान की सहायता के लिए बड़े योग्य तथा अनुभवी व्यक्तियों का एक मन्त्रिमण्डल होता था। दास वंश के समय मन्त्रियों की संख्या चार रही, परन्तु बाद में दो अन्य पदाधिकारियों को भी मन्त्री पद प्रदान किया गया।

12.4.1. वजीर तथा दीवाने वजारत – राज्य का प्रधानमन्त्री वजीर कहलाता था। वित्त विभाग का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मुख्याधिकारी भी वही होता था। उसका एक बहुत बड़ा कार्यालय था, जो 'दीवाने–वजारत' के नाम से विख्यात था। वजीर राज्य के आय–व्यय का हिसाब रखता था। राज्य के दूसरे विभागों की निगरानी रखता था और सैन्य विभाग की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति भी वहीं करता था। सुल्तान की ओर से उसे विशेष अधिकार प्राप्त होते थे। समकालीन लेखकों के अनुसार 'दीवाने–वजारत इतना महत्त्वपूर्ण विभाग था कि सूबेदार से लेकर चपरासी तक प्रत्येक व्यक्ति को उससे काम पड़ता था। डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव के अनुसार – "अपनी विस्तृत शक्ति के आधार पर वह बडे मान का उपभोग करता था तथा विशाल जागीर की आय के रूप में भारी वेतन प्राप्त करता था। उसके कार्यालय दीवाने वजार में अनेक छोटे–मोटे अधिकारी काम करते थे, जिनमें 'नायब वजीर' तथा मुशरफ–ए–मुमालिक वजीर के मुख्य सहायक थे। नायब वजीर कार्यालय का अध्यक्ष होता था और मुशरफ–ए–मुमालिक प्रान्तों से प्राप्त धनराशि का लेखा रखता था। हिसाब की जांच करने के लिए मुस्तफी–ए–मुमालिक होता था।

12.4.2. अरजे मुमालिक तथा दीवाने आरिज – राज्य के सैन्य मंत्री को आरिजे मुमालिक कहा जाता था। उसके प्रमुख कार्य थे – सैनिकों की भर्ती करना और उनमें अनुशासन बनाये रखना, सैनिकों व घोड़ों का हुलिया रिकार्ड रखना, सैनिक अभियानों के आयोजन में सुल्तान को सहयोग देना, सैनिकों का निरीक्षण करना, शाही आदेश पर अभियानों का नेतृत्व करना, फौज की साज–सज्जा का प्रबन्ध करना आदि।

12.4.3. दीवाने इन्शा तथा दरबारे–खास – दीवाने इन्शा राज्य का पत्र विभाग था, जिसका मुखिया दरबारे–खास कहलाता था। विदेशी शासकों और राज्य के महत्त्वपूर्ण अधिकारियों को भेजे जाने वाले पत्र इस विभाग द्वारा तैयार किए जाते थे। यह विभाग महत्त्वपूर्ण आदेशों की नकलें भी रखता था।

12.4.4. दीवान–ए–रसालत – इस महत्वपूर्ण विभाग के कार्यों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। डॉ. कुरैशी के मतानुसार इस विभाग का सम्बन्ध राज्य के धार्मिक मामलों के साथ था। इसके विपरीत डॉ. हबीब के मतानुसार इस विभाग का मुखिया विदेश मन्त्री होता था। इसका मुख्य कार्य बाहर के राजदूतों का स्वागत करना और अपने राजदूतों को बाहर भेजना था। अधिकांश आधुनिक इतिहासकार डॉ. हबीब के इस मत का समर्थन करते हैं।

12.4.5. सदरउसुदूर तथा मुख्य काजी – सदरूसदूर धर्मार्थ विभाग का मुखिया था, जिसका मुख्य कार्य विद्वानों तथा निर्धनों को छात्रवृत्तियां तथा अनुदान दिलवाना था। वह यह भी देखता था कि प्रजा कुरान के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत कर रही है या नहीं। मुख्य काजी राज्य के विभाग का अध्यक्ष था। काजी ही न्याय–प्रबन्ध का निरीक्षण भी करता था।

12.5 प्रान्तीय और स्थानीय प्रशासन :

शासन–प्रबन्ध की सुविधा के लिए दिल्ली साम्राज्य को भागों तथा उप–विभागों में विभक्त किया गया था। सम्पूर्ण राज्य प्रान्तों में विभाजित था। प्रान्त शासन की सबसे बड़ी इकाई थी। प्रारम्भ में इसे 'इक्ता' कहा जाता था, परन्तु अलाउद्दीन के शासनकाल में इसे 'सूबा' कहा जाने लगा। अलाउद्दीन के साम्राज्य में कुल 11 सूबे थे, जबकि मुहम्मद तुगलक का राज्य 23 प्रान्तों में विभक्त था।

12.5.1 सूबेदार (प्रान्तपति) – प्रान्त अथवा सूबे के मुख्याधिकारी को सूबेदार कहते थे। उसके प्रमुख कार्य थे – प्रान्त में शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखना, शाही आदेशों को लागू करना, सुल्तान की आज्ञानुसार अभियान करना, सुल्तान को समय पर सैनिक सहायता देना।

प्रान्तीय सूबेदारों को काफी अधिकार दिए गए थे। प्रायः शहजादों को अथवा सुल्तान के निकट सम्बन्धियों या विश्वासपात्र सरदारों को ही सूबेदार के पद पर नियुक्त यिका जाता था। सूबेदारों पर नियन्त्रण बनाये रखने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा कई कर्मचारी नियुक्त किए जाते थे। अपने शासन के खर्चे के लिए आवश्यक धन को रखकर शेष सारा धन उन्हें सुल्तान के पास भेजना पड़ता था। दूर के प्रान्तों में शासन करने वाले सूबेदारों को तो विशेष शक्तियां दी गई थी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्तीय विभाग केन्द्रीय विभाग से सम्बन्धित होता था और इसी के प्रति उत्तरदायी था।

12.5.2 परगना (आमिल तथा मुशरफ) – प्रान्तों को भी प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से परगनों में बांट दिया गया था। इनमें आमल व मुशरफ नामक प्रमुख अधिकारी होते थे। आमल परगने में शासन–व्यवस्था बनाए रखता था। लगान सम्बन्धी कार्यों का उत्तरदायित्व मुशरफ पर था। इन अधिकारियों के अतिरिक्त एक खजान्ची, दो कारकून ओर एक

कानूनगो आदि अन्य कर्मचारी भी होते थे। कई बार परगनों में चौधरी नामक कर्मचारी भी नियुक्त किया जाता था, जो किसानों की दशा के सम्बन्ध में अधिकारियों को सूचित करता था।

12.5.3 गांव (नम्बरदार, पटवारी, पंचायत आदि) — परगनों को गांवों में बांटा गया था। गांव ही राज्य की सबसे छोटी शासकीय इकाई थी। इसका प्रबन्ध नम्बरदार, पटवारी और चौकीदार करते थे। नम्बरदार गांव में शान्ति–व्यवस्था बनाए रखता था और भूमि–कर एकत्रित करने में सहायता देता था। गांव की पंचायतें शासन तथा न्याय–सम्बन्धी कार्य करती थीं। गांवों को अपने मामलों में काफी स्वतंत्रता प्राप्त थी।

12.6 स्थानीय शासन :

स्थानीय शासन की भी विशेष व्यवस्था की गयी थी। सल्तनत के प्रान्त 'शिको' में विभक्त थे। 'शिक' का शासक 'शिकदार' कहलाता था। 'शिक' पुनः सरकारों में बंटे हुए थे सरकार परगनों में और परगने 'ग्रामों' में बंटे हुए थे। प्रत्येक ग्राम का प्रबन्ध करने के लिए मुकद्दम से सहायता ली जाती थी। 'पटवारी' मालगुजारी सम्बन्धी पत्र रखता था। परगने के प्रबन्ध के लिए 'चौधरी' होता था। इसके अतिरिक्त अन्य कर्मचारी भी होते थे जो परगने के शासन में योग देते थे। इनमें से एक फसल का निरीक्षण करके लगान निश्चित करता था, एक लगान वसूल करता था और एक चपरासी का कार्य करता था। लेखक का कार्य करने वाले 'कारकून' कहलाते थे जो हिसाब–किताब रखते थे।

12.7 वित्तीय व्यवस्था :

दिल्ली राज्य की आय के विभिन्न साधन थे, जिनमें भूमि–कर अधिक महत्त्वपूर्ण था।

12.7.1. भमि–कर (उशर) — राज्य की आय का मुख्य साधन भूमि–कर था, जो उपज का पांचवां भाग होता था। अलाउद्दीन खिलजी तथा मुहम्मद तुगलक ने भूमि–कर को बढ़ाकर उपज का 1/2 भाग कर दिया था। राज्य की भूमि को चार भागों में बांट दिया गया था। कर निर्धारित करने के लिए राज्य के कई भागों में भूमि की पैमाइश को आधार बनाया जाता था, परन्तु कुछ भागों में बटाई–प्रथा भी प्रचलित थी।

12.7.2. खम्स — यह वह सम्पत्ति थी, जो युद्ध के दौरान की गई लूट से मिलती थी। सुल्तान लूट के 1/5 भाग का अधिकारी होता था और शेष 4/5 भाग सैनिकों को बांट दिया जाता था।

12.7.3. खिराज — यह वह कर था, जो हिन्दू जमींदारों से लिया जाता था। यह उपज का 1/2 भाग वसूल किया जाता था।

12.7.4. जकात — जकात एक प्रकार का धार्मिक कर था, जो अमीर मुसलमानों से लिया जाता था। यह उनकी सम्पत्ति का 2 1/2 प्रतिशत होता था। इस कर से प्राप्त राशि धार्मिक कार्यों में खर्च की जाती थी।

12.7.5. शर — मुस्लिम जमींदारों से शर नामक कर लिया जाता था, जो उपज का 1/10 भाग होता था।

12.7.12. जजिया — यह कर केवल हिन्दुओं से लिया जाता था, परन्तु ब्राह्मण इस कर से मुक्त थे। फिरोज तुगलक पहला शासक था, जिसने ब्राह्मणों से भी यह कर वसूल किया था। स्त्रियां, बच्चे, फकीर और अन्धे भी इस कर से मुक्त थे। हिन्दुओं से यह कर उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार क्रमशः 48,24,12 दिरहम वार्षिक लिया जाता था।

12.7.7. अन्य कर — उपरोक्त करों के अतिरिक्त साम्राज्य में और भी व्यापारों सम्बन्धी अनेक कर थे, जैसे चुंगी कर आदि। हिन्दू व्यापारियों से चुंगी मुसलमान की अपेक्षा दुगुनी ली जाती थी। अलाउद्दीन खिलजी ने घरों, पशुओं और चराई पर भी कर लगा दिए थे। सारांश यह है कि सल्तनत काल में जनता पर कर–भार बहुत अधिक था। इस तथ्य की पुष्टि फीरोज तुगलक के कथन से भी होती है। उसने लिखा है कि — ''मैने पचास–साठ के लगभग गैर–कानूनी करों को, जो स्थानीय शासकों ने लगा रखे थे, हटा दिया है।''

12.8 सैन्य संगठन :

भारत में मुसलमान विदेश से आये थे। उन्हें शासन स्थापित करने के साथ–साथ रक्षा की भी समुचित व्यवस्था करनी पड़ी, जिसके लिए उन्हें एक विशाल सेना रखनी पड़ी। इन्होंने हिन्दुओं के राज्यों को जबरदस्ती छीना था अतएव उनसे भी राज्य की रक्षा करनी होती थी। आये दिन देश में विद्रोह भड़क उठते थे। इन विद्रोहों को दबाने के लिए सुल्तानों को एक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शक्तिशाली सेना का निर्माण करना पड़ा था। सीमा की सुरक्षा का प्रश्न भी सुल्तानों के सामने महत्वपूर्ण था। इन सभी कारणों से दिल्ली के सुल्तानों ने एक शक्तिशाली सेना का निर्माण किया था। अतः सैनिक व्यवस्था के लिए 'दीवाने अर्ज' विभाग की स्थापना की गयी थी जिसका प्रधान 'आरिज–ए–मुमालिक' होता था। सेना में कई प्रकार के सैनिक रखे जाते थे। प्रथम प्रकार के सैनिक सुल्तान के सैनिक कहलाते थे। ये सैनिक केन्द्रीय सरकार से सम्बन्धित थे। दूसरे प्रकार के सैनिक प्रान्तीय गवर्नरों के अधीन थे। इनकी नियुक्ति गवर्नर या अमीर करते थे। ये सैनिक अमीर, सूबेदार अथवा गवर्नर के प्रति उत्तरदायी होते थे तथा सैनिक सुल्तान की आज्ञा पर युद्ध–क्षेत्र में जाया करते थे। अन्य प्रकार के सैनिक हिन्दुओं के विरुद्ध युद्ध में भाग लेने जाते थे। ये लोग धर्म–युद्ध में भाग लेते थे। ये लोग बर्छी तथा तलवारों से युद्ध करते थे। अलाउद्दीन खिलजी के समय से तोपखाने का भी प्रयोग होने लगा था। किलों को उड़ाने के लिए मशीनें थीं तथा राज्य की ओर से अनेक दुर्ग भी बनाये गये थे। इन दुर्गों में सेनाएं रहती थीं तथा अस्त्र–शस्त्र तथा सैनिकों की आवश्यकता के अन्य पदार्थ भी एकत्रित रहते थे।सेना में इंजीनियर तथा कारीगर भी होते थे, जो युद्धकाल में सेना की सेवा करते थे। प्रत्येक सेना के साथ एक 'बरीदे–लश्कर' होता था जो सभी घटनाओं की सूचना राजधानी में भेजता था।

12.9 न्याय विभाग :

सल्तनत युग में सुल्तान न्याय विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता था। वह राज्य का रक्षक समझा जाता था तथा काजियों के द्वारा किये गये फैसलों के विरुद्ध अपील सुनता था। उसके सामने नये मुकदमे भी पेश होते थे। विद्रोहियों के मुकदमों का फैसला या तो स्वयं सुल्तान करता था या उसके सेनापति सैनिक अदालतों में उनके मुकदमों का निर्णय करते थे। मुहम्मद तुगलक ने विद्रोहियों के मुकदमों के लिए एक अलग अदालत खोल थी, जो 'दीवाने रियासत' कहलाती थी, क्योंकि उसके समय में आये दिन विद्रोह होते रहते थे। प्रान्तीय शासकों को मृत्यु दण्ड देने का अधिकार नहीं था अतः वे ऐसे बन्दियों को राजधानी में भेज देते थे। सबसे पहले मुकदमा 'हजीब' के पास जाता था। यदि निर्णय सन्तोषजनक नहो तो 'काजी–ए–मुमालिक' की अदालत में पेश होता था और सबसे बाद में सुल्तान स्वयं उसकी सुनवाई करता था। जब सुल्तान मुकदमा सुनता था, तब 'काजी–ए–मुमालिक' कानूनी सलाह के लिए सुल्तान की बगल में बैठता था। दीवानी के मामले में पेशी 'दीवाने कजा' में होती थी। काजी–ए–मुमालिक इसका भी प्रधान होता था।

जेलों की उचित व्यवस्था नहीं थी और अधिकतर पुराने किलों को ही जेल बनाया जाता था। जेलों का शासन–प्रबन्ध भी उचित रीति से नहीं होता था और उसमें बहुत अधिक व्यभिचार व्याप्त था।

12.10 पुलिस विभाग :

इस विभाग का प्रधान कोतवाल होता था। कोतवाल के पास अनेक सैनिक होते थे, जो रातभर नगर में पहरा देते थे और मार्गों की रक्षा करते थे। कोतवाल के पास एक रजिस्टर होता था, जिसमें नगरवासियों के नाम लिखे रहते थे। उसे नगर की प्रतिदिन की घटनाओं की सूचना मिलती रहती थी। उसके पास नगर में आने वालों तथा वहां से बाहर जाने वालों की भी सूचना रहती थी। दण्ड विधान कठोर था तथा प्रजा की जान व माल बिल्कुल सुरक्षित थे।

12.11 डाक विभाग :

सल्तनतकाल में राजधानी दिल्ली का प्रान्तीय राजधानियों तथा प्रमुख नगरों के साथ सम्पर्क बनाये रखने तथा आवश्यक राजकीय पत्रों को लाने–ले जाने के लिए डाक–विभाग स्थापित किया गया था। डाक–विभाग की देख–रेख में डाक–चौकियां कायम की गई और इन चौकियों पर डाक लाने–ले जाने वाले हरकारों को नियुक्त किया गया। ये हरकारे आगे की डाक चौकी के हरकारों से डाक के थैलों का आदान–प्रदान कर लिया करते थे। हरकारे बहुत ही तेज गति से दौड़कर अगली डाक चौकी तक जाया करते थे। डाक के माध्यम से राज परिवार तथा अन्य महत्त्वपूर्ण पदाधिकारियों के लिए खाद्य पदार्थ तथा फल भी मंगाये जाते थे। डाक चौकी पर घुड़सवार डाकियों भी व्यवस्था रहती थी। राज्य के प्रमुख मार्गों पर स्थित ये डाक –चौकियां राहगीरों के लिए विश्राम–स्थल का भी काम करती थी।

12.12 सारांश

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि दिल्ली सल्तनत का राजनीतिक संगठन उत्तम था। स्वयं सुल्तान के राजपरिवार का संगठन ही राज्य की रक्षा के लिए पर्याप्त था। राजपरिवार के पदाधिकारियों के द्वारा सुल्तान अमीरों पर पूर्ण नियन्त्रण रखता था। इतना ही नहीं, इन्हीं की सहायता राज्य विस्तार में भी प्राप्त होती थी। डॉ. कुरैशी के अनुसार, "राज दरबार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राजनीतिक, सामाजिक, तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से सल्तनत का हृदय था।" इसके अतिरिक्त सल्तनत काल के अन्य विभाग भी अपना–अपना कार्य सफलतापूर्वक करते थे। पुलिस, आदि क्रा अच्छा प्रबन्ध था तथा जनता की जान–माल की पूर्ण सुरक्षा थी। सुल्तानों के सैनिक संगठन के कारण ही विदेशी आक्रमणों से देश की रक्षा की जा सकी तथा इसी सेना के द्वारा ही आन्तरिक विद्रोह का सामना किया जा सका। अतः यह कहा जा सकता है कि सल्तनतकालीन राजसंस्था का संगठन उच्च कोटि का था, इसीलिए देश की सांस्कृतिक उन्नति इस युग में यथेष्ठ हुई। शासन–धर्म से प्रभावित था, इस कारण हिन्दुओं पर कुछ शासकों ने अत्याचार किये।

12.13 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 मजलिस–ए–खलवत क्या था?

अ. अंगरक्षक   ब. परामर्शदात्री सभा

स. सेना विभाग   द. न्याय विभाग

उत्तर – ....

प्रश्न 2 सल्तनतकालीन न्याय विभाग को समझाइये। (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 सल्लनतकालीन प्रशासन को सविस्तार समझाइये। (निबन्धात्मक)

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई 3 : मुगल काल–I

इकाई – 13

मुगल सम्राट बाबर

संरचना

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 बाबर पूर्व भारत की राजनीतिक अवस्था
13.2.1 दिल्ली
13.2.2 पंजाब
13.2.3 कश्मीर
13.2.4 सिन्ध और मुल्तान
13.2.5 बंगाल
13.2.6 मालवा
13.2.7 गुजरात
13.2.8 बहमनी राज्य
13.2.9 खानदेश
13.2.10 विजयनगर राज्य
13.2.11 उड़ीसा
13.2.12 मेवाड़
13.3 सैनिक स्थिति
13.3.1 दोषपूर्ण विभाजन
13.4 कृषि
13.5 व्यापार
13.6 प्रदेश और नगर
13.7 हिन्दूस्तान की विशेषताएं
13.8 समय का विभाजन
13.9 बाबर के भारत में प्रारम्भिक प्रयास
13.9.1 प्रथम आक्रमण
13.9.2 दूसरा आक्रमण
13.9.3 तीसरा आक्रमण
13.9.4 चौथा आक्रमण
13.9.5 पांचवा आक्रमण
13.10 भारत विजय
13.11 पानीपत का प्रथम युद्ध (21 अप्रैल 1527 ई.)
13.11.1 युद्ध की घटनाएँ
13.11.2 युद्ध के परिणाम
13.11.3 बाबर की सफलता के कारण
13.11.4 पानीपत के युद्ध के बाद बाबर की कठिनाइयाँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.12 खानवा का युद्ध (17 मार्च 1527 ई.)
13.12.1 युद्ध के कारण
13.12.2 युद्ध की घटनाएँ
13.12.3 युद्ध का महत्त्व एवं परिणाम
13.13 चन्देरी का युद्ध (1528 ई.)
13.14 घाघरा का युद्ध (1529 ई.)
13.15 बाबर का साम्राज्य
13.16 बाबर की मृत्यु
13.17 भारत में बाबर की सफलता के कारण
13.17.1 भारत की डावांडोल राजनीतिक स्थिति
13.17.2 इब्राहीम की कमजोरियां
13.17.3 बाबर का व्यक्तित्व
13.17.4 बाबर की सेना का सहयोग
13.17.5 सैनिकों का धार्मिक उत्साह
13.17.6 राजपूतों का दोषपूर्ण सैन्य संगठन
13.18 चरित्र तथा मूल्यांकन
13.18.1 व्यक्ति के रूप में
13.18.2 विद्वान के रूप में
13.18.3 धार्मिक विचार
13.18.4 सैनिक और रण
13.18.5 शासक और कूटनीतिज्ञ के रूप में
13.18.6 शासन–प्रबंधक के रूप में
13.19 इतिहास में बाबर का स्थान और सारांश
13.20 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.0 उद्देश्य :

इस इकाई में भारत में तुर्कों के पतन तथा मुगल साम्राज्य की स्थापना को मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर के सन्दर्भ में समझाया जायेगा। बाबर के भारत में प्रारम्भिक आक्रमण के साथ–साथ उसके चार महत्त्वपूर्ण युद्धों को विस्तार से विवेचित किया जायेगा तथा भारत की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का भी वर्णन किया जायेगा।

13.1 प्रस्तावना :

सन् 1526 का वर्ष मध्यकालीन भारत के इतिहास में दिल्ली सल्तनत के पतन और मुगल राजवंश के संस्थापन का वर्ष था। 21 अप्रैल, 1526 ई. को पानीपत के मैदान में अंतिम लोदी सुल्तान इब्राहीम की पराजय और मृत्यु के साथ ही उस दिल्ली सल्तनत का अंत हो गया जिसकी नीवं 1206 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक ने डाली थी। यद्यपि 1540 ई. में शेरशाह सूरी ने दिल्ली सल्तनत का उद्धार किया और सूरी–वंश की स्थापना की, लेकिन 1556 ई. में इस राजवंश की समाप्ति के साथ ही दिल्ली सल्तनत के इस पुनरूद्धारकाल का भी अंत हो गया और मुगल–साम्राज्य की सुदृढ़ता के साथ स्थापना हो गई। भारत के इतिहास में दिल्ली सल्तनत का युग 1206 ई. से 1525 ई. तक और मुगल राजवंश का युग 1525 ई. से 1707 ई. तक माना जाता है, यद्यपि नाममात्र के अंतिम मुगल बादशाह 1858 ई. तक बने रहे। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी 'बादशाह' कहलाने योग्य नहीं थे। अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह तो अंग्रेजों का पेन्शन–भोक्ता ही बन गया था और जब 1857 ई. में भारत की आजादी की प्रथम क्रांति असफल हो गई तो अंग्रेजों ने बहादुरशाह को गद्दी से उतार कर रंगून भेज दिया जहां 1862 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार वैधानिक रूप से 1858 ई. में मुगल साम्राज्य का सदैव के लिए अंत हो गया। मुगल राजवंश में बाबर (1526–1530 ई.), हुमायूं (1530–1540 ई. एवं 1555–1556 ई.), अकबर (1556–1530 ई.

), जहांगीर (1605–1627 ई.), शाहजहां (1627–1657 ई.) तथा औरंगजेब (1658–1707 ई.) नाम के महत्त्वपूर्ण सम्राट दिल्ली के सिंहासन पर बैठे। औरंगजेब के अयोग्य और निर्बल उत्तराधिकारी थे–बहादुरशाह प्रथम, जहादारशाह, फर्रुखसियर, मुहम्मदशाह, अहमदशाह, आलमगीर द्वितीय, शाहआलम द्वितीय, अकबर द्वितीय एवं बहादुरशाह द्वितीय।

भारतीय इतिहास का मुगल युग संसार के इतिहास का एक अत्यन्त गौरवशाली युग था। "तत्कालीन संसार के अन्य साम्राज्यों में मुगल साम्राज्य कदाचित् सबसे बड़ा एवं शक्तिशाली साम्राज्य था जिसकी उपलब्धि न केवल कला एवं संस्कृति के क्षेत्रों में, वरन् एक सुसंगठित राजनीतिक व्यक्तित्व की संरचना, तथा हिन्दू और मुसलमान सम्राटों को एक राष्ट्र के अन्तर्गत सूत्रबद्ध करने में, उसके विशाल सैनिक एवं भौतिक साधनों के अनुरूप थी। अपने सर्वोच्च उत्कर्ष–काल में उसने कार्यकुशलता के उस उच्च स्तर को प्राप्त किया, जिसके लिए कोई भी शासन उचित ही अभिमान कर सकता है।

13.2. बाबर पूर्व भारत की राजनीतिक अवस्था

सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत की राजनीतिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी। देश सल्तनत के पतन के कारण या तो प्रान्तपतियों के नेतृत्व में स्वतंत्र हो गया था या यहां के स्थानीय राज्य अधिक शक्तिशाली हो गये थे। इन राज्यों में दिल्ली, काश्मीर, जौनपुर, बंगाल, गुजरात, मालवा, बहमनी राज्य, विजयनगर और स्वतंत्र राजपूत राज्य आदि प्रमुख थे।

13.2.1. दिल्ली – दिल्ली में इस समय लोदियों का राज्य था जिसे नाम मात्र का केन्द्रीय साम्राज्य कहा जा सकता है। इब्राहीम लोदी, जो 1517 ई. में दिल्ली के राज्य सिंहासन पर बैठा एक निर्बल शासक था। उसके राज्य में दिल्ली, आगरा, जौनपुर, बयाना, चंदेरी तथा बिहार सम्मिलित थे। इब्राहीम ने अपनी हठधर्मी तथा कठोर नीति के कारण कई स्वाभिमानी लोदी, लोहानी, फरमूली और नियाजी, अमीरों को अपने विरूद्ध बना लिया था। उसके चाचा आलमखाँ लोदी ने कुछ अपने पक्ष के सरदारों की सहायता से राज्य सिंहासन को प्राप्त करने के प्रयत्न किये। इस स्थिति से चारों ओर असंतोष का वातावरण छा गया। बिहार के कई सरदार दरियाखाँ लोहानी के नेतृत्व में विद्रोही हो गए। यहां तक कि उसके पुत्र बहादुरखाँ ने तो अपने–आपको बिहार का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। इसी प्रकार जौनपुर में नासीरखाँ लोहानी तथामारूफ फरमूली ने विद्रोह का झंडा उठाया और जौनपुर को स्वतंत्र सत्ता घोषित कर दिया। इस परिस्थिति ने दिल्ली राज्य के मान और प्रतिष्ठा को हानि पहुंचाई। विद्रोह और अशांति के वातावरण ने लोदी–राज्य को क्षुब्ध और निर्बल बना दिया।

13.2.2. पंजाब – दिल्ली के निकटवर्ती पंजाब का प्रान्त वैसे तो दिल्ली सल्तनत का एक प्रमुख अंग था, परन्तु विपरीत परिस्थिति के कारण उसका हाकिम दौलतखाँ लोदी केन्द्रीय शक्ति को निर्बल पाकर अपनी स्वतंत्र शक्ति की स्थापना में लगा हुआ था। धीरे–धीरे उसके सम्बन्ध इब्राहीम के साथ बिगड़ते चले गये और वह अपने प्रान्त का एक प्रकार से स्वतंत्र शासक बन बैठा। जब इब्राहीम को इन गतिविधियों का भान हुआ तो वह उसे दबाने और अपमानित करने की चेष्टा करने लगा। जब इस प्रकार के विचारों की सूचना इब्राहीम को मिली तो वह सुलतान के विरूद्ध बाबर से साँठ–गाँठ जोड़ने लगा, यह समझते हुए कि बाबर की शक्ति से भयभीत होकर इब्राहीम उसे पंजाब में स्वतंत्र बनाये रखेगा। इस महत्त्वाकांक्षा ने न केवल दौलतखाँ का सर्वनाश किया वरन् दिल्ली राज्य के अस्तित्व को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया।

13.2.3. काश्मीर – पंजाब से सटा हुआ एक और मुस्लिम राज्य था जिस पर शाह मिर्जा नामक एक वीर योद्धा ने 1339 ई. में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। उसने वहां के हिन्दूवंश का अंत कर नये मुस्लिम राजवंश की स्थापना की थी। इसी वंश का एक शासक जिसे जैनुलआबीदीन कहते हैं अपने समय का बड़ा उदार तथा धर्म सहिष्णु सुल्तान था। उसने संस्कृत साहित्य को प्रोत्साहन देकर अपनी उदार भावनाओं का परिचय दिया। जब 1470 ई. में उसकी मृत्यु हो गई तो काश्मीर में अव्यवस्था तथा अराजकता का वातावरण पैदा हो गया। उसकी आंतरिक अवस्था इतनी बिगड़ गई कि एतद्कालीन राजनीति में काश्मीर कोई प्रभावशाली भाग लेने में असमर्थ था।

13.2.4. सिन्ध और मुल्तान – मुहम्मद तुगलक के शासनकाल से ही सिन्ध और मुलतान दिल्ली सल्तनत से पृथक् हो चुके थे। सुमरावंश, जो कि चौदहवीं शताब्दी के म्ध्य में सिन्ध में अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुआ अब निर्बल हो चला था। इसी समय कन्धार का हाकिम शाहबेग अरधुन, जिसे बाबर के दबाव ने सिन्ध छोड़ने के लिये विवश किया था, 1516 ई. में सिन्ध की ओर बढ़ा। उसने सुमरावंश के नरेश को परास्त कर वहां अपना राज्य स्थापित कर लिया। उसके उत्तराधिकारी शाह हुसैन में एक सूझ थी। उसने अपनी विवेक बुद्धि से सिन्ध की शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने की चेष्टा की। अपने राज्य–विस्तार की नीति के अन्तर्गत उसने मुलतान को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। बाबर के आक्रमण के समय अरधुन राज्य में एक व्यवस्था थी और वह शक्ति सम्पन्न तथा प्रभावशाली राज्य था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.2.5. बंगाल – फिरोज तुगलक के शासनकाल से बंगाल हुसैनी वंश के नेतृत्व में स्वतंत्रता प्राप्त कर चुका था। इस वंश की शक्ति इतनी बढ़ चली थी कि यहां के शासक अलाउद्दीन हुसैन ने (1493–1519 ई.) जौनपुर के हुसैन शाह शरकी को शरण देकर अपने प्रभाव का परिचय दिया था। उसने अपने राज्य की सीमा भी उड़ीसा तथा आसाम के कामतपुर तक बढ़ा ली थी। उसका लड़का नुसरतशाह एक योग्य शासक था। उसके समय में बंगला साहित्य का विकास हुआ तथा महाभारत को बंगलाभाषा में अनुदित किया गया। उसके राज्य में सुख और शांति थी और बंगाल की गणना सम्पन्न राज्यों में की जाती थी। वहां की परम्परा में उसी शासक को मान्यता दी जाती थी जो अपने शौर्य एवं साहस का परिचय देकर राजगद्दी को प्राप्त करे। बाबर स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखता है कि बंगाली उसी शासक को मान्यता देते थे जो अपनी शक्ति के बल पर शासक बनता था और अपना स्वतंत्र कोष संचित करता था। वहां के लोगों में सिंहासन के प्रति बड़ी भक्ति थी। बाबर ने नुसरतशाह से सन्धि कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। वह अपनी आत्मकथा में उसकी प्रशंसा करता है।

13.2.6. मालवा – मध्यभारत के मुस्लिम राज्यों में मालवा की ख्याति एक स्वतंत्र राज्य के रूप में थी। तैमूर के आक्रमण के अनन्तर गौरी वंशी दिलावरखाँ के नेतृत्व में यह राज्य दिल्ली सल्तनत से स्वतंत्र हो गया। परन्तु इस वंश की प्रभुता 1435 ई. में मुहम्मद खिलजी ने समाप्त कर दी और तब से वहाँ खिलजी राज्य की स्थापना हुई। महमूद अपने समय का एक योग्य शासक था। अभाग्यवश जब खिलजी सत्ता महमूद द्वितीय के, जो बाबर का समकालीन था हाथ में आयी तो मालवा अव्यवस्था का शिकार बन गया। वहाँ की स्थिति सुधारने के लिए महमूद द्वितीय ने चंदेरी के राजा मेदिनीराय की सहायता प्राप्त की और उसे अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। मेदिनीराय ने अपने पक्ष को प्रबल बनाने के लिए कई हिन्दू तथा राजपूत सहयोगियों को नियुक्त किया। इस स्थिति से असंतुष्ट होकर मुस्लिम सामन्तों ने उसके विरूद्ध षड्यंत्र रचे और महमूद को भड़का कर गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरशाह की सहायता प्राप्त करने को प्रेरित किया। महमूद ने गुजरात की सहायता से मेदिनीराय पर आक्रमण कर दिया। मेदिनीराय ने अपनी स्थिति को यथावत् बनाये रखने के लिए महाराणा सांगा की सहायता ली। महाराणा अपने राजनैतिक प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाना चाहता था। उसे यह एक अच्छा अवसर मिल गया। उसने अपने सैनिक शक्ति से महमूद को करारी हार दी और उसे चित्तौड़ में बंदी बना लिया, परन्तु अंत में राजपूत उदारता से प्रेरित होकर उसने उसे मुक्त कर दिया। इस उथल–पुथल के समय मालवा की शक्ति क्षीण हो गई। इस स्थिति का लाभ उठाकर 1531 ई. में गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने मांडू पर अपना अधिकार स्थापित कर मालवा की स्वतंत्रता को समाप्त कर दिया।

13.2.7. गुजरात – मालवा की भांति दिल्ली सल्तनत की निर्बल अवस्था में गुजरात भी एक स्वतंत्र राज्य घोषित हो गया। 1401 ई. में मुजफ्फरशाह जिसका पहले का नाम जाफर खाँ था गुजरात का प्रथम स्वतंत्र सुल्तान बना। इस वंश का सबसे अधिक योग्य शासक महमूद बेगड़ा था जिसके समय में गुजरात एक सम्पन्न राज्य कहा जाता था। उसका उत्तराधिकारी मुजफ्फरशाह द्वितीय, जो बाबर का समकालीन शासक था, 1511 ई. में गुजरात का स्वामी बना। उसके समय में इस राज्य को महाराणा साँगा जैसे वीर तथा साहसी योद्धा से संघर्ष करना पड़ा। इसके फलस्वरूप गुजरात को बड़ी हानि उठानी पड़ी। 1526 ई. में जब उसकी मृत्यु हो गई तो यहाँ थोड़े समय अशांति के बादल छा गये। परन्तु शीघ्र ही स्थिति में सुधार हो गया जब राज्य की बागडोर उसके लड़के बहादुरशाह के हाथ में आ गई। वह एक सेयोग्य तथा सफल शासक सिद्ध हुआ।

13.2.8. बहमनी राज्य – दक्षिण भारत का एक मुस्लिम राज्य बहमनी राज्य था जो सुल्तान मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने में सफल हुआ। परन्तु विजयनगर राज्य से संघर्ष में व्यस्त रहने के कारण उसकी आंतरिक स्थिति बिगड़ती चली गई और अंत में सम्पूर्ण राज्य पाँच राज्यों में बँट गया। ये राज्य बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा, बरार और बीरद थे। अभाग्यवश इन राज्यों के आपसी वैमनस्य के कारण इनकी शक्ति क्षीण होती चली गई। यह राज्य बाबर के आक्रमण के समय राजनैतिक असंतुलन और अव्यवस्था का शिकार बना हुआ था।

13.2.9. खानदेश – यह भी एक मुस्लिम राज्य था जो मालवा के दक्षिण में विन्ध्य और सतपुड़ा के पर्वतीय क्षेत्र में बसा हुआ था। इसकी स्वतंत्रता मलिक राजा फरूकी के द्वारा सन् 1388 ई. में हुई थी। 1399 ई. में फरूकी की मृत्यु हो गई। इस घटना के अनन्तर खानदेश को गुजरात से आये दिन झगड़े मोल लेने पड़े जिससे इस राज्य की आंतरिक स्थिति बिगड़ चली। 1508 ई. में जब यहाँ के एक शासक दाउद की मृत्यु हो गई तो राज्य में उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर संघर्ष छिड़ गया। दो विभिन्न उत्तराधिकारियों के समर्थक अहमदनगर तथा गुजरात की बाह्य शक्तियाँ थी। गुजरात का एक दावेदार आदिलखाँ का पोषक था जिसे खानदेश का सिंहासन प्राप्त करने में सफलता मिली। जब 1520 ई. में आदिलखाँ की मृत्यु हो गई तो महमूद प्रथम उसका उत्तराधिकारी बना। आंतरिक निर्बलता और सतत् संघर्ष के कारण खानदेश की गणना शक्तिशाली राज्य के रूप में न हो सकी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उपरोक्त मुस्लिम शक्तियाँ अपनी–अपनी समस्याओं में उलझी हुई थीं जिससे दिल्ली सल्तनत में होने वाली उथल–पुथल पर ये शक्तियाँ अपनी सक्रियता नहीं बतला सकीं। केन्द्रीय शक्ति से दूर होना भी एक बहुत बड़ा कारण था जिससे ये राज्य दिल्ली की राजनीति पर कोई विशिष्ट प्रभाव स्थापित न कर सके। इन राज्यों के कई शासक या तो निर्बल थे या उनमें महत्त्वकांक्षा न थी। अतएव तत्कालीन राजनीति में उनको कोई प्रभाव नहीं था। वे तो अपनी–अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लक्ष्य को लेकर आपस में झगड़ते थे। उन्हें इस बात का भान भी न था कि कोई बाह्य शक्ति उनकी फूट और निर्बलता का लाभ उठा सकती है और उनके अस्तित्व पर खतरा उपस्थित हो सकता है। बाबर के लिये इन परिस्थितियों ने अनुकूल वातावरण बनाया।

इन मुस्लिम राज्यों के साथ–साथ कुछ एक हिन्दू राज्य भी थे जो अपने–अपने क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण थे। इन राज्यों में दक्षिण का विजयनगर राज्य और उत्तर के उड़ीसा तथा मेवाड़ प्रमुख थे।

13.2.10. विजयनगर राज्य – दक्षिण प्रदेश का यह राज्य तत्कालीन हिन्दू राज्यों में बड़ा शक्तिशाली राज्य था। इस राज्य की उत्पत्ति ही हिन्दू धर्म और संस्कृति के आधार को लेकर हुई थी। इसी कारण यहाँ के राजा निरन्तर अपने पड़ौसी बहमनी राज्य से संघर्ष करते रहे। यहाँ के अनेक योग्य शासक भी हुए थे जिनमें कृष्णदेव राय का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उसकी गणना उस युग के उन महान् शासकों में की जाती है जो रण–कुशल तथा साहित्य और कला के प्रेमी थे। बाबर के आक्रमण के समय इस राज्य की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति अच्छी थी। उस युग के विदेशी यात्रियों ने विजयनगर की समृद्धि और सम्पन्नता की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। वे उस राज्य के ऐश्वर्य और सुख–शांति को देखकर विस्मित हो गये थे, जैसा कि उनके द्वारा दिये गये वर्णन से स्पष्ट है। अपनी आंतरिक और पड़ौसी राज्य द्वारा उत्पन्न की गई समस्याओं के कारण सशक्त होते हुए यह राज्य उत्तर–भारत की राजनीति में कोई सक्रिय भाग नहीं ले सका।

13.2.11 उड़ीसा – यह पूर्वीय भारत का एक विशाल राज्य था। यहाँ के सशक्त शासकों के कारण दिल्ली के शासक इस राज्य पर अपनी अच्छी तरह से प्रभुता स्थापित करने में असफल रहे। दूरस्थ होने से इस राज्य का उत्तर भारत की राजनीति पर कोई प्रभाव नहीं था। परन्तु उड़ीसा ने अपने बल और प्रभाव से अलबत्ता बंगाल की शक्ति को पश्चिम की ओर प्रसारित होने से रोके रखा। इस अर्थ में उड़ीसा की शक्ति का अपना एक स्वतंत्र महत्त्व था।

13.2.12. मेवाड़ – ऊपर दिये गये हिन्दू राज्यों में मेवाड़ राज्य अपने आप में एक स्वतंत्र शक्ति थी जिसे छठी शताब्दी से लेकर 16वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक वहाँ के कर्मण्य शासको ने निर्मित किया था। ऐसे शसकों में गुहिल, बाया, जैतसिंह आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन शासकों की मानमर्यादा का दूसरा प्रतीक महाराणा कुम्भा भी था जिसने अपने साहस, धैर्य और विद्यानुराग से देश में एक विशिष्ट नाम अर्जित किया था। अनेकों किले, राजप्रासाद तथा मन्दिरों के निर्माण द्वारा उसने अपूर्व ख्याति अर्जित की थी तथा सैनिक बल और जनहित कल्याण के पक्ष को परिपुष्ट किया था। उसने मालवा के सुल्तान को पराजित कर मध्यभारत में अपने प्रभाव को स्थापित करने में सफलता प्राप्त की थी। बाबर के आक्रमण के समय यहाँ का शासक महाराणा साँगा (संग्रामसिंह) था जिसने अनेकों युद्धों में भाग लेकर एक अच्छे योद्धा होने का परिचय दिया था। कई युद्धों में भाग लेने से उसकी एक आँख और एक बाँह जाती रही थी और वह एक पैर से लंगड़ा भी हो गया था। शरीर पर अनेक शस्त्रों के घाव लगने के कारण कर्नल टॉड ने उसे 'सैनिक का भग्नावशेष' कहा है, जो उसके कुशल सैनिक गुण का द्योतक है। वह न केवल एक वीर योद्धा ही था वरन् कुशल राजनीतिज्ञ भी। उसने अपने राजनीतिज्ञ प्रभाव से अनेक राजा और महाराजाओं को अपना सहयोगी बना रखा था जो बड़ी संख्या में अपनी सैनिक शक्ति से उसके नेतृत्व में शत्रु का मुकाबला करने को सर्वदा उद्यत रहते थे। गुजरात मालवा और मध्यभारत की राजनीति में सक्रिय भाग लेकर उसने उत्तरी भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। जब बाबर भारत आया तो उसने उससे इब्राहीम को परास्त करने के लिए सहयोग चाहा। इसी घटना को लेकर बाबर और साँगा का वैमनस्य बढ़ा जिसका विस्तार से वर्णन यथास्थान किया जायेगा।

ऊपर वर्णित हिन्दू राज्यों की स्थिति से ऐसा प्रतीत होता है कि वे शक्तिशाली अवश्य थे, परन्तु उनके लिए अपनी–अपनी समस्याएँ थीं। उनकी भौगोलिक दूरी भी उस समय की परिस्थिति के लिए उपयोगी न थी। इस प्रकार की राजनीतिक परिस्थिति से हमें एक नवीन स्थिति स्पष्ट होती है कि स्थानीय शक्तियाँ या तो निर्बल थीं या वे अपनी निजी शक्ति के परिवर्तन में पड़ौसी शक्तियों से संघर्ष में लगी हुई थीं। इसका प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि कोई भी शक्ति सक्रिय रूप से न तो अफगानों के साथ और न मुगलों के साथ मिल सकी। जो अफगान–मुगल संघर्ष हुआ वह इन दोनों शक्तियों में अकेला हुआ जिसमें लोदियों की शक्ति जो निर्बल थी मुगलों की होड़ में विजयी न हो सकी। सम्पूर्ण देश में कोई भी ऐसा शक्तिशाली शासक न था जो बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा करने के लिए देश को संगठित कर सकता था।

13.3. सैनिक स्थिति :

सैन्य व्यवस्था–बाबर के आक्रमण के समय भारत की सैन्य–व्यवस्था अत्यन्त दोषपूर्ण हो चुकी थी। नये युद्ध उपकरणों से अपरिचितता– संसार में निर्मित होने वाले युद्ध उपकरणों से भारतीय अपरिचित थे तथा तोप, जिनका प्रयोग मध्य एशिया में बहुलता से किया जाने लगा था, भारतीयों के लिए सर्वथा नवीन वस्तु थी।

संगठन का अभाव–भारत की सैन्य–व्यवस्था का अन्य महत्त्वपूर्ण दोष था, सैनिकों में संगठन का अभाव। भारतीय सेना में तुर्क, अफगान, देशी मुसलमान, हिन्दू आदि अनेक वर्गों के सैनिक थे जो सुल्तान से अधिक अपनी जाति अथवा वर्ग के नेता के प्रति स्वामिभक्त होते थे तथा यदि उनके नेता चाहें तो वह सुल्तान विरूद्ध युद्ध करने को तैयार रहते थे। सेना में राष्ट्रीयता का अभाव था।

13.3.1. दोषपूर्ण विभाजन – सेनाओं का विभाजन भी प्राचीन पद्धति के अनुसार चार भागों में था, हस्तिसेना को प्राध्यान्य दिया जाता था, जो तोपों की भयंकर अग्नि के सम्मुख पीछे की ओर अपनी ही सेना को रौंदते हुए भागने लगते थे। इस दोषपूर्ण सैन्य–व्यवस्था के कारण भारतीय संख्या में अत्यधिक होते हुए भी बाबर की गिनी–चुनी सुशिक्षित सेना के सम्मुख टिक न सके तथा बाबर को भारत पर विजय प्राप्त करने में सफलता मिली। भारत की राजनीति शृंखला तथा प्राचीन सैन्य व्यवस्था भारतीयों की पराजय का सर्वप्रमुख कारण बन। बाबर के आक्रमण के समय भारत की आर्थिक दशा–बाबर ने भारत की आर्थिक समृद्धि से आकृष्ट होकर भारत–विजय करने का निश्चय किया था। जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया था उस समय धन–सम्पन्न एवं समृद्धिशाली देश था तथा इस गुण के लिए वह विदेशों में विख्यात था। भारत की आर्थिक सम्पन्नता का प्रमुख कारण कृषि तथा व्यापार का सुन्दर सामंजस्य था। कृषि प्रधान देश होते हुए भी इस समय भारत विदेशों के साथ व्यापार करता था जिससे अत्यधिक लाभ होता था।

13.4. कृषि :

कृषि इस समय भारत का प्रमुख उद्यम था। सिंचाई की सुव्यवस्था के कारण देश में अनाज बहुतायत से उत्पन्न होता था। डॉ. श्रीवास्तव के शब्दों में, "इस युग में कृषि की अवस्था बड़ी अच्छी थी।" यद्यपि बाबर लिखता है कि "भारत के गांव थोड़े ही समय में आबाद और बर्बाद हो जाते हैं। जब–जब कृषि की ओर उचित ध्यान और कृषकों को समुचित प्रोत्साहन दिया जाता था खेतों और खलिहानों में फसलों का अपार वैभव नाचता था, परन्तु किसी युद्ध अथवा राज्य परिवर्तन के समय दूर–दूर तक विनाश ही दिखाई देता था।"

13.5. व्यापार :

यद्यपि सुल्तानों ने राज्य की ओर से व्यापार को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया, तथापि इस समय व्यापार उन्नत दशा में था। भारत का पृथकत्व समाप्त हो जाने के कारण विदेशों से व्यापारिक सम्पर्क स्थापित हो गये। भारत कनाड़ा, मसाला, बर्तन आदि बाहर भेजता था। इसके बदले हीरे, जवाहरात, घोड़े तथा गुलाम बाहर से आते थे। इस समय भारत में अनेक घरेलू उद्योग–धन्धे प्रचलित थे। इनमें कपड़ों का उद्योग महत्त्वपूर्ण था। सूती, ऊनी तथा रेशमी तीनों प्रकार का कपड़ा भारत में तैयार होता था जो विदेशों में विलासिता की सामग्री समझा जाता था। बंगाल, बिहार, उड़ीसा, गुजरात आदि कपड़े के लिए प्रसिद्ध थे। चमड़े की वस्तुएं भी बहुतायत से निर्मित होती थीं। इन वस्तुओं के निर्माण का अधिकतर भार हिन्दुओं पर था। सामाजिक दशा–इस समय समाज दो वर्गों में विभाजित था–हिन्दू और मुसलमान। परन्तु ये परस्पर विरोधी जातियां अपने मतभेद त्याग कर परस्पर सहयोग तथा समन्वय की भावनाएं रखती थीं। कुछ पीढ़ियों के पश्चात् विदेश से आने वाले मुसलमानों ने भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्त्वों को ग्रहण करना आरम्भ कर दिया तथा उनमें सहिष्णुता और उदारता के भाव जाग्रत होने लगे। बाबर जिस समय भारत में आया उसने इस तथ्य का स्पष्टतः अनुभव किया। अपनी आत्मकथा में उसने इस ओर संकेत भी किया है। उनका कथन है कि भारत के मुसलमानों में एक अद्भुत भारतीयपन दृष्टिगोचर होता है जो भारत के अतिरिक्त अन्य कहीं भी प्रतीत नहीं होता। यह भारतीयपन भारत के मुसलमानों को अन्य देश के मुसलमानों से पृथक् करता है। प्रान्तीय शासकों के उदारतापूर्ण व्यवहार के कारण तथा भक्ति आंदोलन के कारण हिन्दू तथा मुसलमान जातियां परस्पर मतभेद भूलकर एक–दूसरे के निकट आ रही थीं। धार्मिक अत्याचार कम हो गये थे तथा मुस्लिम शासकों का विदेशीपन धीरे–धीरे कम होता जा रहा था। इस तथ्य का वर्णन डॉ. आशीर्वादी लाल ने इन शब्दों में किया है, "कश्मीर के सुल्तान जैनुल आबेदीन ने न केवल अनेक निर्वासित ब्राह्मण परिवार को ही वापस बुलवाया वरन् उसने अनेक विद्वान पंडितों को अपने दरबार में आश्रय दिया। जिन्हें धर्म की पूर्ण स्वतंत्रता थी। उसने राज्य में गोहत्या बंद करवा दी और अपने दरबार में संस्कृत और हिन्दी के विद्वानों को आश्रय दिया। इस सुयोग्य शासक के राज्य काल में जिसे "कश्मीर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का अकबर'' के नाम से ठीक ही पुकारा जाता है, लोग प्रसन्न और संतुष्ट थे और समान जीवन का सुख ले रहे थे। इसी प्रकार बंगाल के शासक अलाउद्दीन हुसैन शाह ने भी हिन्दू–मुसलमान के भेदभाव को आश्रय नहीं दिया।''

इस प्रकार बाबर ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया उस समय भारत में सामाजिक भेदभाव की भावना कम होने लगी थी, जिसका पूर्ण उत्कर्ष बाबर के महान पौत्र अकबर के काल में दृष्टिगोचर होता है।

बाबर द्वारा हिन्दुस्तान का वर्णन

बाबर ने अपनी आत्मकथा 'बाबरनामा' अथवा 'तुजुक–ए–बाबरी' में अपनी भारतीय अभियानों के समय का विवरण दिया है, जिसके कुछ पहलू यहां दिये जा रहे हैं–

हिन्दुस्तान के शासक–''जब मैंने हिन्दुस्तान को विजय किया, तो वहां पांच मुसलमान तथा दो काफिर बादशाह राज्य करते थे। इन लोगों को बड़ा सम्मान प्राप्त था और ये स्वतंत्र रूप में शासन करते थे। इनके अतिरिक्त पहाड़ियों तथा जंगलों में भी छोटे–छोटे राय एवं राजा थे, किन्तु उनको अधिक आदर सम्मान प्राप्त नहीं था।''

''सर्वप्रथम अफगान थे, जिनकी राजधानी देहली थी, मीरा से बिहार तक के स्थान उनके अधिकार में थे। अफगानों के पूर्व जौनपुर सुल्तान हुसैन शर्की के अधीन था। इन लोगों के वंश को हिन्दुस्तानी पूर्वी कहते हैं। देहली सुल्तान इब्राहीम के अधिकार में थी। वे लोग सैय्यद थे। दूसरे, गुजरात में सुल्तान मुजफ्फर था। इब्राहीम की पराजय के कुछ दिन पूर्व उसकी मृत्यु हो गयी थी। तीसरे, दक्षिण में बहमनी थे, किन्तु आजकल दक्षिण के सुल्तानों की शक्ति एवं अधिकार छिन्न–भिन्न हो गया है। उनके समस्त राज्य पर उनके बड़े–बड़े अमीरों ने अधिकार जमा लिया है। चौथे, मालवा में, जिसे मन्दू भी कहते हैं, सुल्तान महमूद भी था। वे खिलजी सुल्तान कहलाते हैं, किन्तु राणा सांगा ने उसे पराजित करके उसके राज्य के अधिकांश भाग पर अधिकार जमा लिया था। यह वंश भी शक्तिहीन हो गया था। पांचवें, बंगाल के राज्य में नुसरतशाह था। वह सैय्यद था। उसकी उपाधिक सुल्तान अलाउद्दीन थी।''

13.6. प्रदेश और नगर :

''हिन्दुस्तान के प्रदेश और नगर अत्यन्त कुरूप हैं। इसके नगर और प्रदेश सब एक जैसे हैं। इसके बागों के आस–पास दीवारें नहीं हैं और इसका अधिकांश हिस्सा मैदान है। कई स्थान पर ये मैदान कांटेदार झाड़ियों से इतने ढके हुए हैं कि परगनों के लोग इन जंगलों में छिप जाते हैं। वे समझते हैं कि वहां पर उनके पास कोई नहीं पहुंच सकता। इसप्रकार ये लोग प्रायः विद्रोह करते रहते हैं और कर नहीं देते हैं। भारतवर्ष में गांव ही नहीं, बल्कि नगर भी एकदम उजड़ जाते हैं और बस जाते हैं। बड़े–बड़े नगरों, जो कितने ही बरसों से बसे हुए हैं, खतरे की खबर सुनकर एक दिन में या डेढ़ दिन में ऐसे सूने हो जाते हैं कि वहां आबादी का कोई चिन्ह भी नहीं मिलता। लोग भाग जाते हैं।'' बाबर ने अपने अभियान के दौरान जिन भू–खण्डों को देखा था, उन्हीं का उल्लेख किया है।

13.7. हिन्दुस्तान की विशेषताएं :

''हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह बहुत बड़ा देश है।यहां अत्यधिक सोना–चांदी है। वर्षा ऋतु में यहां की हवा बड़ी ही उत्तम होती है। शीतकाल तथा ग्रीष्म ऋतु में भी हवा बड़ी ही उत्तम रहती है। यहां बल्ख तथा कन्धार के समान तेज गर्मी नहीं पड़ती और जितने समय तक वहां गर्मी पड़ती है, उसकी अपेक्षा यहां आधे समय तक भी गर्मी नहीं रहती। हिन्दुस्तान का एक बहुत बड़ा गुण यह है कि यहां हर प्रकार एवं हर कला के जानने वाले असंख्य कारीगर पाये जाते हैं। प्रत्येक कार्य तथा कला के लिए जातियां निश्चित हैं, जो पूर्वजों के समय से वहीं कार्य करती चली आ रही हैं।''

13.8. समय का विभाजन :

''हमारे देश में दिन और रात को 24 भागों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक भाग को एक साअत कहते हैं। हर साअत को 60 भागों में विभाजित करते हैं। प्रत्येक भाग को एक दकीका कहते हैं। इस प्रकार पूरे दिन तथा रात में 1440 दकीके होते हैं।''

''हिन्दुस्तान वाले रात और दिन को 60 भागों में विभाजित करते हैं। प्रत्येक भाग घड़ी कहलाता है। ये दिन तथा रात को चार–चार भागों में विभाजित करते हैं और प्रत्येक भाग पहर कहलाता है, जिसे फारसी में पास कहते हैं। हिन्दुस्तान के सभी बड़े–बड़े नगरों में कुछ ऐसे लोग नियुक्त किये जाते हैं, जो घड़ियाली कहलाते हैं। दो अंगुल मोटा, थाली के बराबर एक पीतल का टुकड़ा काट लिया जाता है, जो घड़ियाल कहलाता है। इसे किसी ऊंचे स्थान पर लटका दिया जाता है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

"इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तान वाले प्याले के समान एक बर्तन रखते हैं। उसके पेंदे में छेद होता है। हर घड़ी पर वह भर जाता है। घड़ियाली इस बर्तन में जल भरकर प्रतीक्षा किया करते हैं। जब एक बर्तन भर जाता है, तो वे मुरगी से घड़ियाल पर एक चोट मार देते हैं। जब वह बर्तन पुनः भर जाता है, तो वे दो बार मुरगी को घड़ियाल पर मार देते हैं। इसी प्रकार पहर के अंत तक वे एक बढ़ाकर मुरगी मारते जाते हैं। पहर समाप्त हो जाने के उपरान्त वे जल्दी–जल्दी कई बार घड़ियाल को बजाते हैं और यदि एक पहर समाप्त हो जाता है, तो जल्दी–जल्दी बजाने के उपरान्त क्षण–भर ठहरकर एक बजा देते हैं। यदि दूसरा पहर समाप्त हो जाता है, तो जल्दी–जल्दी बजाने के उपरान्त दो बजाते हैं, इसी प्रकार तीन और चार। जब दिन के चार पहर समाप्त हो जाते हैं, तो रात के चार पहरों में भी इसी नियम से घड़ियाल बजाए जाते हैं।"

बाबर द्वारा भारत पर आक्रमण

समरकंद पर उजबेक नेता उबैदुल्ला खान का अधिकार हो जाने के बाद बाबर 1591 ईत्र तक काबुल में शांतिपूर्वक शासन करता रहा, लेकिन 1513 ई. के बाद वह भारत अभियान की तैयारी भी करता रहा। बाबर ने उजबेकों से तुलुगमा पद्धति, मंगोलों व अफगानों से व्यूह रचना, ईरानियों से बन्दूकों का प्रयोग और अपने सजातीय तुर्कों से अश्वारोही सेना का संचालन सीख लिया था। इस प्रकार बाबर ने भारत पर आक्रमण करने से पूर्व अपनी युद्ध कला को अत्यन्त विकसित कर लिया था। भारत पर बाबर के आक्रमण के अनेक कारण थे। सर्वप्रथम तो स्वयं बाबर अत्यन्त ही महत्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का था। इसलिये काबुल जैसे छोटे से प्रदेश से वह संतुष्ट नहीं रह सकता था। दूसरा, बाबर भारत पर अपना पैतृक अधिकार मानता था, क्योंकि तैमूर ने पश्चिमी पंजाब पर अधिकार किया था तथा उसके प्रतिनिधि खिज्र खां ने दिल्ली पर भी अपना अधिकार कर लिया था। अतः बाबर अपने पूर्वजों के राज्य को पुनः प्राप्त करना चाहता था। तीसरा, उस समय भारत की तत्कालीन राजनीति भी बाबर के अनुकूल थी। पंजाब का सूबेदार दौलत खां लोदी वहां का स्वतंत्र शासक बनना चाहता था। अतः उसने इब्राहीम लोदी के विरूद्ध बाबर को भारत आने का निमंत्रण दे दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि बाबर को दिल्ली दरबार के षड़यंत्रों की जानकारी मिल गई। अंत में, वह भारत नें इस्लाम का प्रचार–प्रसार करना चाहता था। इन सभी कारणों ने बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया।

13.9. बाबर के भारत में प्रारम्भिक प्रयास :

13.9.1. प्रथम आक्रमण – बाबर ने भारत पर पहला अभियान 1519 ई. में किया था। बाबर ने बाजौर पर आक्रमण कर दूर्ग को घेर लिया। दुर्ग रक्षकों ने बड़ी वीरता से सामना किया, लेकिन वे बन्दूकों के सामने टिक नहीं सके। अतः कुछ ही घण्टों में 7 जनवरी 1519 को बाबर ने बाजौर किला जीत लिया। बाजौर निवासियों ने प्रतिरोध किया था, अतः बाबर ने लगभग तीन हजार लोगों की हत्या करवा दी तथा स्त्रियों व बच्चों को कैद कर लिया। अपने इस कार्य का औचित्य सिद्ध करते हुए बाबर ने लिखा है कि इस्लाम के शत्रु थे तथा उनमें काफिरों की प्रथाएँ प्रचलित थी। बाजौर पर अधिकार करने के बाद फरवरी 1519 में वह झेलम नदी के तट पर स्थित भेरा नामक स्थान पर पहुंचा। भेरा के निवासियों ने बिना किसी प्रतिरोध के आत्मसमर्पण कर दिया। अतः बाबर ने अपने सैनिकों को वहां लूटमार न करने की सलाह दी। भेरा से बाबर ने मुल्ला मुर्शीद नामक अपने दूत को इब्राहीम लोदी के पास भेजकर उन सभी प्रदेशों की मांग की जो कभी तुर्कों के अधीन रह चुके थे। लेकिन दौलत खां लोदी ने मुल्ला मुर्शीद को लाहौर में ही रोक लिया और उसे इब्राहीम लोदी के पास जाने की अनुमति नहीं दी। अतः लगभग पांच महीने पश्चात् मुल्ला मुर्शीद वापिस काबुल लौट गया। कुछ दिन भेरा में रहने के बाद बाबर भी काबुल लौट गया था। भेरा हिन्दूबेग को सौंपकर शाह मुहम्मद को उसकी सहायता के लिए नियुक्त कर दिया। भेरा से सिन्धु तक का प्रदेश मुहम्मदअली जंग को तथा खुशाब लंगरखान को दे दिया।

13.9..2 दूसरा आक्रमण – बाबर ने ज्योंही अपनी पीठ फेरी, स्थानीय अफगानों व हिन्दुओं ने मिलकर हिन्दूबेग को भेरा से खदेड़ दिया। हिन्दूबेग जान बचाकर काबुल पहुंचा। अतः 1519 ई. के अंत में बाबर ने दूसरी बार युसुफजई अफगानों के विरूद्ध अभियान किया। लेकिन पेशावर पहुंचने के पहले ही उसे सूचना मिली कि सुल्तान सैदखान बदख्शा की ओर बढ़ रहा है। अतः बाबर को वापिस काबुल लौटना पड़ा।

बाबर के उपर्युक्त दोनों आक्रमणों का उद्देश्य भारत की राजनीति की जानकारी प्राप्त करना था।

13.9.3.तीसरा आक्रमण – बाबर ने तीसरा आक्रमण 1520 ई. में किया। बाबर बाजौर, भीरा होता हुआ स्यालकोट तक जा पहुंचा। भेरा में उसने उन लोगों को दण्डित किया जिन्होंने विद्रोह किया था। स्यालकोट के पास स्थित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सैयदपुर के पठान शासक और वहां के निवासियों ने बाबर का मुकाबला किया था, किन्तु उन्हें कुचल दिया गया। सैयदपुर में बाबर के सैनिकों ने भयंकर लूटमार की। इसी समय उसे सूचना मिली कि कन्धार के शासक शाह अरधुन ने काबुल की सीमा पर आक्रमण कर दिया है, अतः बाबर को तुरन्त काबुल की ओर लौटना पड़ा। अब बाबर भारत पर कोई सैनिक अभियान आरम्भ करने से पूर्व कन्धार को जीत कर काबुल को सुरक्षित करना चाहता था। अतः 1522 ई. में उसने कन्धार पर अधिकार कर लिया तथा अपने दूसरे पुत्र कामरान को वहां का सूबेदार बना दिया।

13.9.4. चौथा आक्रमण – कन्धार पर अधिकार हो जाने के बाद बाबर अपने आपको सुरक्षित अनुभव करने लगा और अब उसके लिये भारत की ओर अधिक ध्यान देना संभव हो गया। इसी समय सुल्तान इब्रहीम लोदी का चाचा आलम खां सुल्तान के दुर्व्यवहार से तंग आकर बाबर से प्रार्थना की कि दिल्ली का तख्त दिलाने हेतु वह उसकी सहायता करे। इध् ार पंजाब के सूबेदार ने भी इब्राहीम लोदी के विरूद्ध बाबर से सहायता मांगी। अतः बाबर ने जनवरी 1524 ई. में चौथी बार भारत पर आक्रमण किया। लाहौर में सुल्तान की अफगान सेनाओं ने बाबर का मुकाबला किया, लेकिन पराजित हुई। चार दिन बाद बाबर दीपालपुर पहुंचा, जहां दौलत खां ने बाबर से भेंट की। दौलत खां का अनुमान था कि तैमूर की भांति बाबर भी लूटमार करके लौट जायेगा। लेकिन उसका अनुमान गलत सिद्ध हुआ, क्योंकि किसी प्रदेश पर एक बार अधिकार करने के बाद उसे छोड़ देना बाबर के स्वभाव में नहीं था। अतः बाबर के इरादे से दौलत खां बड़ा क्षुब्ध हुआ और उसने बाबर के साथ विश्वासघात करना चाहा। लेकिन बाबर ने उसे कैद कर काबुल लौटते हुए मार्ग में छोड़ दिया। बाबर ने उसकी पैतृक जागीर दिलावर खां को दे दी और पंजाब के जीते हुए प्रदेशों में अपने अधिकारी नियुक्त कर स्वयं काबुल लौट गया। इस बार बाबर के पुनः काबुल लौटने के प्रमुख तीन कारण थे। प्रथम तो बाबर जिन अमीरों के निमंत्रण पर भारत आया था, उन्हीं अमीरों ने बाबर का विरोध किया था। दूसरा इब्राहीम लोदी को इतना कमजोर नहीं पाया, जितनी उसने आशा कर रखी थी। तीसरा और अंतिम कारण इस समय बल्ख में उजबेकों का उपद्रव बढ़ रहा था, जिससे उसे वापिस काबुल लौटना पड़ा।

बाबर के काबुल लौटते ही दौलत खां ने सेना एकत्र कर सुल्तानपुर पर अधिकार कर लिया तथा दीपालपुर से आलम खां को भगा दिया। आलम खां भागकर काबुल पहुंचा और बाबर के साथ एक सन्धि की जिसके अनुसार बाबर ने उसे दिल्ली का तख्त दिलाने का वादा किया। इसके बदले में आलम खां ने बाबर को लाहौर और उसके पश्चिम के प्रदेश सौंपने का आश्वासन दिया। लेकिन वापिस लौटकर आलम खां ने सन्धि की उपेक्षा करते हुए पंजाब दौलत खां के पास रहने दिया और दोनों ने मिलकर दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। लेकिन दोनों सुल्तान की सेना से पराजित हुए।

13.9.5. पांचवा आक्रमण – दौलत खां के विद्रोह की सूचना मिलने पर बाबर ने दिसम्बर 1525 में पांचवी बार भारत पर आक्रमण किया। स्यालकोट पहुचंने पर बाबर को दौलत खां और आलम खां के बीच हुई सन्धि तथा दोनों के दिल्ली पर असफल अभियान की सूचना मिली। 15 जनवरी, 1526 को बाबर ने मिलवट का किला घेर लिया। दौलत खां किले में था, लेकिन उसका पुत्र गाजी खां भागकर उसके शत्रु इब्राहीम लोदी के पास चला गया। उसके दूसरे पुत्र दिलावर खां ने आरम्भ से ही बाबर का साथ दिया था। अतः दौलत खां ने बाबर का प्रतिरोध करना उचित न समझ आत्मसमर्पण कर दिया। बाबर की इस सफलता से प्रोत्साहित होकर इब्राहीम लोदी के असंतुष्ट अमीरों ने बाबर के प्रति अपनी शुभकामनाएं प्रकट करने के लिये अपने दूत भेजे और अन्य अमीरों ने भी अपनी अधीनता के प्रस्ताव भेजे। इन अनुकूल परिस्थितियों के कारण बाबर ने अब आगे बढ़ने का निश्चय किया।

13.10. भारत विजय :

बाबर ने अब भारत विजय का निश्चय किया। 1526 ई. में उसने स्वयं लिखा, "काबुल विजय करने के समय से अब तक मैं हिन्दुस्तान पर अधिकार करने के लिए सदैव तुला हुआ था, परन्तु कभी अपने अमीरों के दुराचरण के कारण, कभी अपने भाइयों आदि के विरोध के कारण मुझे रूठना पड़ा। अंत में वह बाधाएं दूर हो गईं और मैं एक सेना एकत्रित करके बाजौर और स्वात की ओर चला, जहां से झेलम नदी के पश्चिम से भेरा की ओर बढ़ा।" 1519 ई. से 1524 ई. के बीच बाबर ने पंजाब पर चार बार आक्रमण किये, किन्तु लाहौर से आगे नहीं बढ़ सका।

13.11. पानीपत का प्रथम युद्ध (21 अप्रैल, 1526 ई.) :

नवम्बर, 1525 में बाबर ने पंजाब के सूबेदार दौलत खां लोदी तथा इब्राहीम के चाचा आलम खां के निमंत्रण पर 12,000 सैनिकों सहित दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। दिल्ली तक पहुंचते–पहुंचते उसकी सेना में 25,000 सैनिक हो गये। पानीपत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के युद्ध से पहले इब्राहीम का सरदार बिब्बन तीन हजार सैनिकों सहित उससे आ मिला। राणा सांगा ने भी बाबर के पास आगरा की तरफ से आक्रमण करने का संदेश भिजवाया। इनसे उत्साहित होकर बाबर पानीपत के मैदान में पहुंच गया, जहां इब्राहीम उसकी सेना सहित प्रतीक्षा कर रहा था।

13.11.1 युद्ध की घटनाएं – 21 अप्रैल, 1526 ई. को बाबर तथा इब्राहीम लोदी के बीच पानीपत का प्रथम युद्ध हुआ था। बाबर के पास 25,000 सैनिक व 700 तोपें थीं, जबकि इब्राहीम के साथ एक लाख सैनिक थे। इब्राहीम एक अयोग्य सेनापति था। उसके अधिकतर सैनिक किराये के थे, जिनमें न तो वीरता थी और न ही अनुशासन। दोनों पक्षों की व्यूह रचना के सम्बन्ध में एस.आर. शर्मा लिखते हैं, "एक ओर निराशाजनित साहस और वैज्ञानिक युद्ध प्रणाली के कुछ साधन थे, दूसरी ओर मध्यकालीन ढंग के सैनिकों की भीड़ थी, जो भाले और धनुष–बाण से सुसज्जित थी और मूर्खतापूर्ण ढंग से जमा हो गई थी।"

21 अप्रैल, 1526 ई. को बाबर ने इब्राहीम पर आक्रमण कर दिया और दोनों पक्षों में घमासान संघर्ष शुरू हो गया। इब्राहीम परास्त हुआ और मारा गया। इस युद्ध के सम्बन्ध में बाबर ने अपनी आत्मकथा 'बाबरनामा' में लिखा है, "सवेरे सूर्य निकलने के बाद लगभग नौ–दस बजे युद्ध आरम्भ हुआ था, दोपहर तक दोनों सेनाओं के बीच भयानक युद्ध होता रहा। दोपहर के बाद शत्रु कमजोर पड़ने लगा और उसके बाद वह भीषण रूप से परास्त हुआ। उसकी पराजय को देखकर हमारे शुभचिन्तक बहुत प्रसन्न हुए। सुल्तान इब्राहीम को पराजित करने का कार्य बहुत कठिन था, लेकिन ईश्वर ने उसे हम लोगों के लिए सरल बना दिया।"

13.11.2. युद्ध के परिणाम – पानीपत का प्रथम युद्ध मध्यकालीन भारतीय इतिहास की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। इससे भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, "लोदी वंश की सत्ता टूटकर नष्ट हो गई और हिन्दुस्तान का प्रभुत्व चुगताई तुर्कों के हाथों में चला गया।" इस युद्ध के प्रमुख परिणाम इस प्रकार थे–

13. इस युद्ध से लोदी वंश समाप्त हुआ और मुगल वंश स्थापित हुआ। लेनपूल के शब्दों में, "अफगानों के लिए पानीपत का प्रथम युद्ध बड़ा भयंकर सिद्ध हुआ।" इससे उनका साम्राज्य समाप्त हो गया और उनकी शक्ति का अंत हो गया।" डॉ. आर.पी.त्रिपाठी के अनुसार, "लोदियों की सैन्य शक्ति पूर्णतः छिन्न–भिन्न हो गई और उनका राजा युद्ध क्षेत्र में मारा गया। हिन्दुस्तान की सर्वोच्च सत्ता कुछ काल के लिए अफगान जाति के हाथों से निकल कर मुगलों के हाथ में चली गई।"

2. दिल्ली तथा आगरा पर बाबर का अधिकार हो गया। अब उसने साम्राज्य विस्तार का निश्चय किया। रशब्रुक विलियम्स के अनुसार, "बाबर के इधर–उधर भटकने के दिन बीत गये थे और अब उसे अपने प्राणों की रक्षा के लिए अथवा सिंहासन को सुरक्षित रखने के लिए चिंतित होने की जरूरत नहीं रही थी, उसे तो अब राज्य विस्तार के लिए युद्ध योजनाओं में शक्ति लगानी थी।"

3. बाबर को आगरा एवं दिल्ली से अपार धन तथा विख्यात कोहिनूर हीरा मिला। अब उसकी आर्थिक दशा सुधर गई। डॉ. आर.पी. त्रिपाठी के अनुसार, "बाबर ने जो धन दिल्ली एवं आगरा में प्राप्त किया था, उसमें से बहुत–सा धन अपने सैनिकों को दे दिया। वह समरकन्द, इराक, खुरासान व काशगर में स्थित सम्बन्धियों को तथा समरकन्द मक्का व मदीना तथा खुरासान के पवित्र आदमियों को भी भेंट भेजना न भूला।"

4. विजय के बाद बाबर के नाम का खुतबा पढ़ा गया, जिससे उसका गौरव बढ़ गया। डॉ. स्मिथ के अनुसार, "वह अपने समय का एशिया का महान प्रतिभाशाली राजा था तथा भारत के सम्राटों में एक उच्च स्थान के योग्य था।"

5. यह युद्ध निर्णायक था। एस.एम. जाफर के अनुसार, "इस युद्ध से भारतीय इतिहास में एक नये युग का आरम्भ हुआ। लोदी वंश के स्थान पर मुगल वंश की स्थापना हुई। इस नये वंश ने समय आने पर ऐसे प्रतिभाशाली तथा महान बादशाहों को जन्म दिया, जिनकी छत्रछाया में भारत ने असाधारण उन्नति तथा महानता प्राप्त की।"

6. इस युद्ध का सभ्यता तथा संस्कृति पर प्रभाव पड़ा। डॉ. त्रिपाठी के अनुसार, "भारत में मुगल संस्कृति व सभ्यता के समन्वय से भारत में नवीन सभ्यता का सूत्रपात हुआ। मुगलों के ठाठ–बाट ने भारतीयों के जनजीवन में महान परिवर्तन किया। ईरान की कला व साहित्य ने भारत पर अपना प्रभाव जमाना आरम्भ कर दिया।"

13.11.3. बाबर की सफलता के कारण – बबर ने इब्राहीम की विशाल सेना को परास्त किया था। बाबर की विजय के मुख्य कारण इस प्रकार थे–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13. बाबर एक अनुभवी तथा योग्य सेनानायक था। डॉ.आर.पी. त्रिपाठी के अनुसार, ''वास्तव में उत्कृष्ट नेतृत्व, वैज्ञानिक रण कला, श्रेष्ठ शस्त्राशस्त्र तथा सौभाग्य के कारण बाबर की विजय हुई।'' विलक्षण सैन्य प्रतिभा वाले बाबर के समक्ष इब्रहीम पूर्णतः अयोग्य था। लेनपूल के अनुसार, ''पानीपत के रणक्षेत्र में मुगल सेनाओं ने घबराकर युद्ध आरम्भ किया, परन्तु उनके नेता की वैज्ञानिक योजना तथा अनोखी चालों ने उन्हें आत्मविश्वास और विजय प्रदान की।''

2. बाबर ने कुशल तोपखाने की मदद से इब्राहीम को परास्त किया। आर.बी. विलियम्स के अनुसार, ''बाबर के शक्तिशाली तोपखाने ने भी उसे सफल होने में बहुमूल्य सहायता दी।''

3. इब्राहीम की सेना में एकता तथा अनुशासन नहीं था। इब्राहीम के अविवेकपूर्ण कार्यों से जनता तथा सरदारों में उसके विरूद्ध असंतोष था। उसकी सेना के अधिकांश सैनिक किराये के थे, जिनके बारे में बाबर ने अपनी आत्मकथा में लिखा, ''हिन्दुस्तान के सैनिक मरना जानते हैं, लड़ना नहीं।''

4. इब्राहीम एक अयोग्य सेनापति था। जे.एन. सरकार के अनुसार, ''इब्राहीम ने भारत के राजसी तरीके से लड़ाई के लिए कूच किया था अर्थात् दो तीन मील तक कूच करता था और तदुपरांत दो दिन तक अपनी सेनाओं के साथ आराम करता था। उसका फौजी खेमा एक चलते–फिरते अव्यवस्थित शहर की तरह था।'' बाबर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, ''इब्राहीम एक योग्य सेनापति नहीं था। वह बिना किसी सूचना के कूच कर देता था और बिना सोचे–समझे पीछे हट जाता था। इसके अतिरिक्त वह बिना दूरदर्शिता के युद्ध में कूद पड़ता था।'' अतः बाबर ने उसे आसानी से परास्त किया।

5. मुगल सैन्य संगठन अफगान सैन्य संगठन से बहुत उत्तम था। मुगल सैनिक वीर, अनुभवी, साहसी तथा कुशल योद्धा थे, जबकि इब्राहीम के अधिकतर सैनिक किराये के थे और उनमें एकता, अनुशासन, संगठन एवं राष्ट्रीय हित की भावना नहीं थी।

13.11.4. पानीपत के युद्ध के बाद बाबर की कठिनाइयां–

13. यद्यपि पानीपत के मैदान में विजय प्राप्त करने से बाबर दिल्ली का शासक बन गया था, किन्तु उसका अधिकार क्षेत्र बहुत सीमित था। लेनपूल के अनुसार, ''भारत कहां, उसे तो अभी उत्तरी भारत का भी राजा नहीं कहा जा सकता था।'' अतः बाबर के लिए साम्राज्य विस्तार करना अनिवार्य था।

2. उसे अपने सिंहासन की सुरक्षा के लिए मध्यवर्ती भारत के विद्रोही सरदारों का दमन करना था तथा राजपूतों को परास्त करना था।

3. भारत की जनता बाबर को विदेशी समझकर उससे नफरत करती थी। लेनपूल के अनुसार, ''भारत का प्रत्येक गांव मुगलों के लिए शत्रु शिविर था।'' अतः बाबर को भारतीयों का विश्वास जीतना था।

4. इब्राहीम की मृत्यु के बाद कासिम खां ने संभल, निजाम खां ने बयाना तथा हसन खां ने मेवात पर अधिकार कर लिया था। बाबर को इन सरदारों को अपनी अधीनता में लाना था।

5. बाबर के सैनिक तथा सरदार अपने घर लौटने के लिए व्यग्र थे तथा वे भारत की गर्मी सहन नहीं कर पा रहे थे। अतः बाबर को उन्हें अगले आक्रमण के लिए तैयार करना थ।

बाबर ने बड़े साहस तथा धैयै से इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की। बाबर ने सैनिकों तथा सरदारों को यह कहकर समझा लिया कि ''वर्षों के परिश्रम से, कठिनाइयों का सामना करके, लम्बी यात्राएं करके, अपने वीर सैनिकों को युद्ध में झोंककर और भीषण हत्याकांड करके हमने खुदा की कृपा से दुश्मनों के झुण्ड को हराया है, ताकि हम उनकी लम्बी–चौड़ी विशाल भूमि को प्राप्त कर सकें। अब ऐसी कौन–सी शक्ति है, जो हमे विवश कर रही है और ऐसी कौन–सी आवश्यकता है, जिसके कारण हम उन प्रदेशों को छोड़ दें, जिन्हें हमने जीवन को संकट में डालकर जीता है।''

मध्यवर्ती भारत के विद्रोहियों को कुचलना–महमूद, फीरोज खां, शेख बयाजीद आदि अफगान सरदारों ने युद्ध लड़े बिना ही बाबर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। बाबर ने अन्य विद्रोही अफगान सरदार को कुचल दिया तथा सम्भल, बयाना, इटावा, धौलपुर, कन्नौज, ग्वालियर तथा जौनपुर पर अधिकार कर लिया।

दिल्ली में बाबर के नाम का खुतबा पढ़ा जाना

पानीपत का मैदान फतह करने के बाद उसी दिन बाबर ने हुमायूं मिर्जा को आदेश दिया कि वह यथासंभव शीघ्रता के साथ आगे बढ़कर आगरा पर अधिकार जमाए और वहां सारा कोष अपने कब्जे में लेकर उसकी रक्षा के लिए आदमी नियुक्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कर दे। साथ ही मेहन्दी ख्वाजा (या मंहदी ख्वाजा) को आदेश दिया कि वह अपने साथ मुहम्मद सुल्तान मिर्जा, आदिल सुल्तान, सुल्तान जुनैद बरलास और कुतलूक कदम को साथ लेकर तुरन्त दिल्ली पहुंच जाए और वहां के खजाने की रक्षा का काम प्रारम्भ कर दें। दूसरे दिन स्वयं बाबर ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। 25 अप्रैल को बाबर ने वली किजील को दिल्ली का शिकदार और दोस्त (बेग) को दीवान नियुक्त किया और आदेश दिया कि खजानों पर मुहर लगाकर उन्हें सौंप दिए जाए। 26 अप्रैल बृहस्पतिवार को बाबर ने यमुना नदी पर तुगलुकाबाद (कुतुबमीनार के पूर्व में लगभग पांच मील पर स्थित) के सामने पड़ाव किया और अगले ही दिन शुक्रवार, 15 रजब अर्थात् 27 अप्रैल को उसी पड़ाव पर ठहरे हुए मौलाना महमूद, शेलजैन तथा अन्य लोगों ने दिल्ली जाकर जुमे की सामूहिक नमाज पढ़ी। वहां बाबर के नाम का खुतबा पढ़वाया और फकीरों तथा गरीबों को कुछ धन बांटकर वे वापिस शिविर में लौट आए।

हुमायूं का आगरे को जीतना और बाबर का वहां पहुंचना

हुमायूं को आगरा पहुंच कर मलिक दादा कर्रानी, मिल्ली सुरदूक, फिरोज खां मेवाती आदि अफगान सरदारों के विरोध का सामना करना पड़ा। हुमायूं ने दुर्ग को घेर लिया। घेरा चल ही रहा था कि उसे शहर पर अधिकार जमाने और खजाने को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त हो गई। ग्वालियार के शासक राजा विक्रमादित्य के परिवार के सदस्य सुल्तान इब्राहीम की पराजय के समय आगरा में ही थे। उन्होंने भागने का प्रयत्न किया लेकिन हुमायूं द्वारा मार्गों की रक्षा के लिए सैनिक नियुक्त कर देने से उनका भागना संभव न हो सका। उन लोगों ने, जैसा कि बाबर ने लिखा है, हुमायूं को स्वेच्छा से भारी मात्रा में जवाहरात और बहुमूल्य वस्तुएं दीं जिनमें वह प्रसिद्ध हीरा भी था जिसे सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी लाया था। उसका मूल्य समस्त संसार के ढाई दिन के भोजन के व्यय के बराबर आंका जाता था और वह लगभग आठ मिस्कल (लगभग 320 रत्ती) के बराबर था। हुमायूं ने दुर्ग के सैनिकों को दुर्ग समर्पित करने पर बाध्य कर दिया। दुर्ग को जीतकर उसने बाबर के नाम का खुतबा पढ़ा।

बाबर भी दिल्ली न ठहर कर 28 अप्रैल को ही आगरे की ओर रवाना हो गया। हुमायूं द्वारा आगरे को जीतने के समाचार उसे मिल चुके थे। 4 मई को आगरे के निकट पहुंच कर उसने सुलेमान फारमूली की मंजिल में पड़ाव डाला और अगले 6 दिनों तक वह इस स्थान पर रूका रहा। इस अवधि में हुमायूं उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। आगरे में बाबर के कुछ प्रमुख कार्य ये रहे–

विरोधी सरदारों को दण्ड–बाबर ने मलिक दाद कर्रानी, मिल्ली सूरदूक तथा फिरोज खां मेवाती को मृत्यु का दण्ड दिया क्योंकि उन्होंने हुमायूं का विरोध किया था। किन्तु लोगों द्वारा बहुत आग्रह करने पर बाबर ने अंत में तीनों व्यक्तियों को न केवल क्षमा कर दिया बल्कि उनकी सम्पत्ति भी उन्हें लौटा दी। बाबर ने उन्हें परगने भी प्रदान किए।

इब्राहीम लोदी की माता के प्रति उदारता–मृत सुल्तान इब्राहीम लोदी की माता के प्रति उदारता दिखाते हुए बाबर ने उसे सात लाख (दाम) के मूल्य का एक परगना प्रदान किया। साथ ही उसे उसके प्राचीन सेवकों सहित आगरा के निकट ही निवास स्थान भी प्रदान किया।

कोहिनूर हीरा हुमायूं को प्रदान करना–10 मई को बाबर ने आगरा में प्रवेश किया, वह सुल्तान इब्राहीम के महल में ठहरा। हुमायूं ने कोहिनूर हीरा बाबर को भेट किया किन्तु बाबर ने उसे हुमायूं को ही दे दिया।

आगरे के खजाने का वितरण–12 मई को बाबर ने अगरे के खजाने का निरीक्षण व वितरण का कार्य प्रारम्भ किया। स्वयं बाबर के शब्दों में–"शनिवार 29 रजब को खजाने का निरीक्षण तथा वितरण प्रारम्भ हुआ। हुमायूं को खजाने से 70 लाख प्रदान किए गए। इसके अतिरिक्त एक खजाना इस बात का पता लगाए बिना कि इसमें क्या है तथा लिखे बिना उसी तरह उसे दे दिया गया। कुछ बेगों को 10 लाख और कुछ को 8, 7 और 6 लाख प्रदान किए गए। जितने लोग सेना में थे–अफगान, हजारा, अरब, बिलोच इत्यादि–उन्हें उनकी श्रेणी के अनुसार खजाने से नकद इनाम दिए गए। प्रत्येक व्यापारी, विद्यार्थी अपितु प्रत्येक व्यक्ति को जो इस सेना के साथ आया था, इनाम तथा दान द्वारा पूर्ण रूप से लाभ पहुंचाया गया और प्रसन्न कर दिया गया। उदाहरणार्थ कामरान को 17 लाख, मुहम्मद जमान मिर्जा को 15 लाख तथा अस्करी एवं हिन्दाल अपितु समस्त सम्बन्धियों , निकटवर्तियों एवं छोटे बच्चों को अत्यधिक लाल व सफेद वस्त्र, जवाहरात तथा दास भेजे गए। इस देश के बेगों (अमीरों) तथा सैनिकों को भी बहुत कुछ उपहार भेजे गए। समरकंद, खरासान, काशगर तथा ईराक में जो बहुत से सम्बन्ध ी थे उन्हें भी बहुमूल्य उपहार भेजे गए। खुरासान तथा समरकन्द के मशायख को भी नजरें भेजी गई और इसी प्रकार मक्का और मदीना को। काबुल तथा वरसक की घाटी की ओर से प्रत्येक नर–नारी, दास, स्वतंत्र तथा बालिक एवं नाबालिग को एक–एक शाहरूखी इनाम में दी गई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपनी दयालुता, उदारता और दानशीलता के कारण बाबर इतना प्रसिद्ध हो गया कि लोग उसे 'कलन्दर' कहने लगे और बाबर ने भी इस उपाधि को सहर्ष स्वीकार किया। दिल्ली और आगरे को विजित करने के साथ ही बाबर द्वारा हिन्दुस्तान को जीतने का प्रथम चरण समाप्त हो गया।

13.12. खानवा का युद्ध (17 मार्च, 1527 ई.) :

बाबर ने पानीपत के युद्ध के बाद अफगानों की शक्ति को कुचल दिया था। अब उसने मेवाड़ के राणा सांगा अथवा संग्रामसिंह से निपटने का निश्चय किया।

13.12.1. युद्ध के कारण –

13. राणा सांगा राजस्थान का सबसे शक्तिशाली सरदार था। वह असाधारण युद्ध सामग्री और साधनों का स्वामी था। कर्नल टॉड के अनुसार, "अस्सी हजार घुड़सवार, 7 बड़े–बड़े नरेश, 9 राव और 104 रावल तथा रावत हर समय उसके इशारे पर रणक्षेत्र में कूदने के लिए तैयार रहते थे।" राणा सांगा की शक्ति को कुचले बिना बाबर सम्पूर्ण उत्तरी भारत का शासक नहीं बन सकता था। इसके अतिरिक्त राणा सांगा भारत में हिन्दू साम्राज्य अथवा 'हिन्दू–पद–पादशाही' स्थापित करना चाहता था।

2. सांगा का यह विचार था कि बाबर भी अन्य मुस्लिम आक्रमणकारियों की भांति धन–दौलत लूटकर भारत से चला जाएगा। इस प्रकार उसे भारत में हिन्दू–पद–पादशाही स्थापित करने का अवसर मिल जाएगा, लेकिन जब उसे बाबर के इस निश्चय का पता चला कि वह भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना करेगा, तो उसके सम्मुख केवल एक ही मार्ग था–बाबर से युद्ध। संक्षेप में, सांगा और बाबर की परस्पर विरोधी महत्त्वाकांक्षाओं के कारण दोनों के बीच युद्ध अनिवार्य हो गया था।

3. कहा जाता है कि जब बाबर काबुल में था, तब सांगा और उसके बीच एक सन्धि हुई थी। बाबर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, "जब मैं काबुल में था और हिन्दुस्तान नहीं आया था, उन दिनों राणा सांगा ने अपना दूत मेरे पास भेजा था और उसके द्वारा मेरे प्रति सम्मान प्रकट किया गया था। उस दूत के द्वारा यह निश्चय हो गया कि बादशाह काबुल से चलकर दिल्ली पर आक्रमण करे और उसी समय मैं आगरा पर आक्रमण करूंगा। इस प्रकार निश्चय हो जाने के बाद राणा सांगा का दूत काबुल से लौटकर चला गया था।" पूर्व में की गई सन्धि के अनुसार सांगा ने पानीपत के युद्ध के समय इब्राहीम लोदी पर आक्रमण नहीं किया। अतः बाबर ने सांगा पर वचन भंग करने का दोष लगाया। यह युद्ध का एक कारण बना।

4. राणा सांगा ने बाबर को उखाड़ फेंकने के लिए इब्राहीम लोदी के भाई महमूद लोदी और हसन खां मेवाती से गठजोड़ कर लिया था। बाबर इस राजपूत–अफगान गठबन्धन को अपने लिए खतरनाक मानता था। इसी कारण एस.आर. शर्मा ने लिखा है, "यह युद्ध मुसलमानों के विरूद्ध हिन्दुओं का युद्ध न था, बल्कि एक विदेशी शत्रु के विरूद्ध संयुक्त राष्ट्रीय प्रयत्न था।"

5. पानीपत के युद्ध के बाद बाबर ने बयाना पर अधिकार कर लिया था। सांगा बयाना को अपने अधीन समझता था। अतः सांगा ने बयाना पर पुनः अधिकार कर लिया। अतः दोनों पक्षों के बीच युद्ध अनिवार्य हो गया था।

13.12.2.युद्ध की घटनाएं – फरवरी, 1527 ई. में दोनों पक्षों की सेनाएं आगरा के पास करवाहा के रणक्षेत्र में एकत्र हो गईं। युद्ध आरम्भ होने से पूर्व बाबर को एक विचित्र कठिनाई का सामना करना पड़ा। जब राजपूतों ने मुगलों के अग्रिम पहरियों को हरा दिया, तो इससे मुगल सैनिकों में बड़ी निराशा फैल गई। इसी समय रणक्षेत्र में उपस्थित ज्योतिषी मुहम्मद शरीफ ने यह भविष्यवाणी की कि इस युद्ध में विजय राजपूतों की होगी। इससे मुगल सैनिकों को अधिक निरुत्साहित कर दिया था। ऐसे संकट के समय में भी बाबर ने असाधारण योग्यता तथा धैर्य का परिचय दिया। बाबर ने अपने सैनिकों में आत्मविश्वास और उत्साह संचार करने के लिए शराब के भण्डार को पृथ्वी पर बहा दिया; शराब के पात्रों को तोड़ डाला और आजीवन शराब न पीने की शपथ ली। उसने ज्योतिषी को भला–बुरा कहकर बन्दीगृह में डाल दिया। इस नाटकीय कार्य के बाद बाबर ने मुलक सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहा–"सरदारों और सिपाहियों! प्रत्येक व्यक्ति जो इस संसार में आता है, नाशवान है। जब हम लोग मर जाते हैं और इस संसार से चल बसते हैं, तो केवल ईश्वर ही अपरिवर्तनीय होकर अमर रहता है। जो कोई भी जीवन मौज में बिताता है, उसके समाप्त होने से पहले ही उसको मृत्यु का प्याला पीना पड़ता है, जो मृत्यु की सराय में पहुंचता है, उसका दुनिया से जो दुःखों का घर है, लौट जाना निश्चित है। बदनामी के साथ जीने की अपेक्षा सम्मान के साथ मरना कितना अच्छा है। यश के साथ मरूं भी, तो मैं संतुष्ट हूँ। इस कारण कि यह यश हमारा हो, क्योंकि शरीर पर तो मौत का अधिकार है। सबसे सच्चे ईश्वर ने हम लोगों के प्रति दया दिखाई है और हमें ऐसे संकट में डाल दिया है कि यदि हम लड़ाई के मैदान में खेलते रहते हैं, तो शहीद

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की मौत मरते हैं। यदि जीवित रहते हैं, तो ईश्वर की इच्छा को कार्यान्वित करते हुए विजयी निकलते हैं। इसलिए आओ! हम लोग एक स्वर से अल्लाह के पवित्र नाम की शपथ ग्रहण करें कि जब तक आत्मा हमारे शरीर को छोड़ नहीं जाती, तब तक हममें से कोई भी इस युद्ध–भूमि में मुंह मोड़ने की बात नहीं सोचेगा और न ही इस युद्ध और रक्तपात से, जो आगे होने जा रहा है, भगेगा।''

बाबर के इस भाषण ने मुगल सैनिकों में प्राण फूंक दिये और प्रत्येक सैनिक ने पवित्र 'कुरान' को उठाकर बाबर का साथ देने की सौगन्ध खाई।

17 मार्च, 1527 ई. को राजपूतों और मुगलों के बीच भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजपूतों की बुरी तरह पराजय हुई। ''ऐसा कोई भी राजपूत दल नहीं रहा, जिसके श्रेष्ठ नायक का रक्त न बहा हो।'' राणा सांगा बुरी तरह घायल हुआ। उसे मूर्छित अवस्था में उस भूमि से ले जाया गया। इस आकस्मिक घटना से राजपूतों में भगदड़ मच गई। विजय बाबर की हुई। बाबर ने इस समय 'गाजी' की उपाधि धारण की।

13.12.3. युद्ध का महत्त्व एवं परिणाम —खानवाहा का युद्ध भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस युद्ध के परिणामस्वरूप बाबर के लिए मुगल साम्राज्य स्थापित करने का कार्य सुगम हो गया। बाबर निश्चयपूर्वक इब्राहीम लोदी के सिंहासन पर बैठ गया। भाग्य की खोज में घूमने के उसके दिन समाप्त हो गये। इस युद्ध से बाबर के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण इकाई आरम्भ हुआ। रशब्रुक विलियम्स के अनुसार, ''अब उसके भाग्य की खोज में भटकने के दिन समाप्त हो गये थे। उसका भाग्य जाग उठा था और अब उसे अपने आपको इस भाग्य के योग्य सिद्ध करना था। निःसंदेह उसे कई और युद्ध लड़ने थे, परन्तु ये युद्ध शक्ति के विस्तार, शत्रुओं के दमन तथा राज्य में व्यवस्था लाने के लिए थे, सिंहासन–प्राप्ति के लिए नहीं।''

इस युद्ध के परिणामस्वरूप राजपूत शक्ति को गहरा आघात पहुंचा। सैनिक संगठन छिन्न–भिन्न होने से उनकी शक्ति क्षीण हो गई और राजपूतों का वैभव नष्ट हो गया। लेनपूल के अनुसार, ''कनवाहा का युद्ध राजपूतों के लिए इतना विनाशकारी सिद्ध हुआ कि कोई बिरली ही ऐसी राजपूत जाति होगी, जिसके श्रेष्ठ योद्धा इस युद्ध में काम न आये हों।'' एस.आर. शर्मा के शब्दों में, ''राजपूतों की सर्वोच्चता का भय, जो गत दस वर्षों से मंडरा रहा था, वह सदैव के लिए समाप्त हो गया।''

डॉ. आर.पी. त्रिपाठी के अनुसार, ''इस युद्ध का प्रभाव बहुत दूर तक पहुंचा। राजपूत संगठन का अस्तित्व, जाति, बन्धुत्व, धर्म या संस्कृति के किसी बौद्धिक आधार पर न था।, वह केवल उदयपुर राजघराने के ऐश्वर्य, उसके लड़ाकू नेताओं की सैनिक या कूटनीतिक विजयों पर आधारित था। इस घराने का नैतिक ऐश्वर्य अस्त हुआ, तो राजपूर संगठन भी विकृत हुआ। उत्तरी भारत के मुस्लिम राज्य अपने अस्तित्व के लिए चिन्तित थे। राजपूत संगठन के टूटने पर उनका दुःखद स्वप्न भंग हुआ। बहुत–से सशक्त राजपूत सरदारों के विनाश और राणा की निर्बलता से राजपूत संगठन में टूट–फूट होने लगी, तो पड़ोसी राज्यों के लिए राजपूताना पर आक्रमण का मार्ग खुल गया और वे शीघ्र ही इसके लिए तैयार भी हो गये। खानवाहा की विजय ने मुगल साम्राज्य के बीजवपन के मार्ग से बहुत बड़ी बाधा हटा दी। बाबर ने 'गाजी' की उपाधि ग्रहण की और भारत में उसकी गद्दी पूर्णतया सुरक्षित हो गई। उसकी शक्ति का आकर्षण केन्द्र निश्चित रूप से काबुल से हटकर भारत में आ गया। राजपूतों की पराजय से अफगानों की शक्ति को भी धक्का लगा। राजपूताना के अशक्त और स्वतंत्र शासकों की सहायता से वे मुगलों के जीतने हेतु भीषण प्रतिद्वन्द्वी हो सकते थे, उतना अकेले होने पर उनके लिए असंभव था।''

राजपूतों की पराजय से हिन्दू–पद–पादशाही की स्थापना का भय जाता रहा। डॉ. आर.सी. मजुमदार के अनुसार, ''दिल्ली सल्तनत के ह्रास से उत्साहित होकर राजपूत अपनी सैनिक–शक्ति के पुनरुत्थान की जो आशा लिए हुए थे, वह इस युद्ध के परिणामस्वरूप समाप्त हो गई, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि राजनीतिक क्षेत्र से राजपूतों का प्रभाव सदैव के लिए समाप्त हो गया। केवल तीस वर्ष बाद उन्हें मुगल साम्राज्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया और उन्होंने मुगल साम्राज्य के इतिहास पर गहरा प्रभाव डाला।'' इस विजय के उपरान्त

बाबर की गतिविधियों का केन्द्र काबुल के बजाय हिन्दुस्तान हो गया।

13.13 चन्देरी का युद्ध (1528 ई.) :

खानवाहा युद्ध के पश्चात् बाबर ने राजपूतों के एक महत्त्वपूर्ण दुर्ग चन्देरी (भूपाल के समीप) पर अधिकार करने का निश्चय किया। चन्देरी पर मेदिनी राव नामक शक्तिशाली राजपूत सरदार का अधिकार था। 20 जनवरी, 1528 ई. को बाबर ने चन्देरी के दुर्ग को घेरे में ले लिये। मेदिनीराव अपने कुछ हजार योद्धाओं सहित किले के भीतर बन्द होकर शत्रु का सामना करता रहा। अंत में विवश होकर मेदिनीराव और उसके साथियों ने अपने बीवी–बच्चों को मार दिया तथा युद्ध में लड़ते हुए

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University Ladnun

वीर गति प्राप्त की। चन्देरी पर बाबर का अधिकार हो गया। कहा जाता है कि इस दुर्ग पर विजय प्राप्त करने के बाद बाबर ने चन्देरी और पड़ोसी राज्यों की मस्जिदों की मरम्मत करवाई।

13.14 घाघरा का युद्ध (1529 ई.) :

पानीपत के प्रथम युद्ध में अफगान सरदार परास्त हुए थे, कुचले नहीं गये थे। लेनपूल के शब्दों में, ''अफगान सर्प घायल हो गया था, मरा नहीं था।'' अफगानों के विद्रोह को हमेशा–हमेशा के लिए समाप्त करने के उद्देश्य से बाबर उनके साथ युद्ध पर उतारू था। अफगान विद्रोही बंगाल के शासक नुसरत शाह के यहां राजनीतिक सुरक्षा प्राप्त कर लेते थे। बाबर और नुसरत शाह के बीच मित्रता थी। किन्तु, विद्रोही अफगानों को लेकर नुसरत शाह से वह एक समझौता करना चाहता था। किन्तु, इसमें उसे सफलता नहीं मिल पायी। इस असफलता से तिलमिलाकर बाबर ने उसको चुनौती भेज दी, 'यदि तुमने मार्ग खुला न छोड़ा और मेरी शिकायतों पर ध्यान न दिया तो जो कुछ विपत्ति तुम्हारे सिर पर पड़े, उसको अपने ही कुकर्मों का फल समझना चाहिए और जो भी अवांछनीय घटनाएं घटे उसके लिए तुम्हें अपने को दोषी ठहराना चाहिए।'' अन्ततोगत्वा 6 मई, 1529 ई. को घाघरा के तट पर अफगानों से युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस भीषण संघर्ष में दोनों ओर से तोपखानों और नावों का प्रयोग हुआ। अफगान पराजित हुए। बाबर और नुसरत शाह के बीच एक सन्धि सम्पन्न हुई। इस संधि के अनुसार दोनों ने एक–दूसरे की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार किया तथा नुसरत शाह ने विद्रोही अफगानों को भविष्य में शरण न देने का भी वादा किया। बाबर के जीवन का यह अंतिम युद्ध था। इसके पश्चात् प्रायः सभी अफगान सरदानों ने बाबर की अधीनता स्वीकर कर ली। अब बाबर के अधिकार में इस देश का सिन्धु नदी से बिहार तक और हिमालय से ग्वालियर और चन्देरी तक का भाग था।

13.15. बाबर का साम्राज्य :

पानीपत के युद्ध में विजय प्राप्त करके बाबर ने भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली। अगले चार वर्षों में इस नींव को मजबूत बनाने और साम्राज्य का विस्तार करने के लिए उसे प्रादेशिक शक्तियों से लगातार संघर्ष भी करना पड़ा। दिसम्बर, 1530 ई. में जब बाबर इस संसार से विदा हुआ तो वह अपने पुत्र हुमायूं के लिए एक विशाल साम्राज्य विरासत में छोड़ गया। डॉ. परमात्मा शरण ने उसकी सीमाओं की रूपरेखा खींचते हुए लिखा है–

''मृत्यु के समय बाबर का राज्य बहुत विस्तुत था और मध्य एशिया की वंशु नदी से लेकर बिहार तक फैला हुआ था। सिन्धु नदी के उस पार लगे हुए काबुल, गजनी और कन्धार तथा हिन्दूकुश के बहुत से पहाड़ी प्रदेश थे, जहां बसने वाले फिरके उसकी नाम–मात्र की अधीनता स्वीकार कर चुके थे। काबुल, गजनी और कन्धार के पश्चिमी तथा सिन्धु नदी के पूर्वी सीमान्तों के बीच निम्नस्तरीय प्रदेशों, जलालाबाद, पेशावर और कोहदानन तथा स्वात और बाजौर पर भी उसका अधिकार था, किन्तु अफगानिस्तान के अधिक दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र तथा सीमान्त की पट्टी आजाद ही थी और वहां कबाइली फिरकों के आक्रमण और मुगलों के प्रत्याक्रमण का दौर कभी खत्म ही न हुआ। उपरले तथा निचले सिन्ध में उसके नाम का खुजबा पढ़ा जाता था और उसकी सर्वोपरिता सभी मानते थे, परन्तु इससे उसका अधिकार मान्य न था।''

''हिन्दुस्तान में सिन्ध के पूर्व की ओर पंजाब और मुल्तान के अतिरिक्त सतलज से बिहार तक सारा प्रदेश उसके अधिकार में था। उत्तर से दक्षिण की ओर उसका राज्य, उत्तर की पहाड़ियों की उपत्यकाओं से लगाकर मालवा और राजपूताने तक विस्तृत था। उसके राज्य की दक्षिणी सीमा बयाना, रणथम्भौर, ग्वालियर तथा चन्देरी को मिलाने वाली रेखा तक थी। ये स्थान उसकी तरफ की विजय–यात्रा के अंतिम स्थल थे। चूंकि बिहार का दक्षिणी भाग पहाड़ी और वन–संकुल था, इसलिए उस तरफ उसका अधिकार प्रभावी न था। उस भाग पर अफगान सरदारों का ही कब्जा उस समय भी था।''

''बाबर का राज्य दक्षिण में बुन्देलखण्ड के छोटे–छोटे राज्यों तथा छिन्न–भिन्न मालवा राज्य से, पूर्व में बंगाल से और उत्तर में हिमालयी सरदारों के छोटे–छोटे राज्यों से घिरा हुआ था।''

13.16. बाबर की मृत्यु :

यह बाबर का दुर्भाग्य ही था कि इतनी कठिनाई से अर्जित की हुई अपनी विजयों के फल को वह अधिक समय तक भोग नहीं सका। घाघरा के युद्ध के बाद बाबर ने मई, 1529 ई.के मध्य तक बिहार की शासन–व्यवस्था पूरी की। अपने राज्य की पूर्वी सीमाओं को सुरक्षित रखने के लिए उसने बंगाल के शासक नुसरतशाह के प्रति उदारता का व्यवहार किया और उसके साथ सन्धि कर ली। इस सन्धि का परिणाम यह हुआ कि अनेक अफगान सरदार बाबर की सेवा में उपस्थित हो गए।

भारत में आकर भी बाबर ने मध्य एशिया का ध्यान नहीं छोड़ा था और हुमायूं को बदख्शाँ भेजकर हिसार, हिरात तथा समरकन्द के प्रदेश जीतने के आदेश दिए थे। ये प्रदेश उजबेगों के हाथों में थे।

बाबर ने पुत्र के प्रति स्नेह और स्वागत प्रदर्शित करते हुए उसे सम्भल की जागीर प्रदान की। 1530 ई.के गर्मी के दिनों में हुमायूं बुरी तरह बीमार हो गया उसे आगरा लाया गया। गुलबदन बेगन ने 'हुमायूंनामा' में लिखा है–

बाबर ने, जैसा कि अबुल फजल ने लिखा है, प्रार्थना–कक्ष में एकान्त में पहुंचकर विशेष प्रार्थना की ओर तीन बार हुमायूं के चारों ओर चक्कर लगाए। ईश्वर ने बाबर की प्रार्थना स्वीकार कर ली अतः उसे अपनी तबीयत भारत महसूस होने लगी और वह चिल्ला उठा–"उठा लिया, उठा लिया।" तत्काल ही बादशाह को विचित्र प्रकार का ज्वर आने लगा और उधर हुमायूं का रोग कम होने लगा। हुमायूं अल्प समय में ही स्वस्थ हो गया, किन्तु बाबर का रोग बढ़ गया और मृत्यु के चिन्ह साफ दिखाई देने लगे। बाबर ने राज्य के उच्च पदाधिकारियों को बुलवाया और उनसे हुमायूं के प्रति अधीनता की शपथ दिलवाई तथा हुमायूं को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। बाबर तब स्वयं राजसिंहासन के नीचे रोग–शैया पर लेट गया। उसने हुमायूं को सलाह और शिक्षा दी। बाबर ने कहा–"मेरी शिक्षा का सारांश यह है कि अपने भाइयों की हत्या का चाहे वे इसके कितने ही योग्य क्यों न हो, कभी विचार भी न करना।" हुमायूं के पक्ष में अपनी वसीयत करने के तीन दिन बाद ही बाबर 5 जमादि उल–अव्वल 937 हिजरी अर्थात् 26 दिसम्बर, 1530 को चल बसा।

13.17. भारत में बाबर की सफलता के कारण :

13.17.1 भारत की डावांडोल राजनीतिक स्थिति – भारत में बाबर की सफलता का सर्वप्रथम कारण भारत की बिगड़ी हुई राजनीतिक अवस्था थी। तैमुर के आक्रमण ने देश की केन्द्रीय सत्ता के खोखलेपन का पर्दाफाश कर दिया था। जैसाकि स्वाभाविक है केन्द्रीय सत्ता के कमजोर पड़ जाने से प्रान्तों के बीच स्वतंत्रता की भावना तेज होती गयी और अनेक प्रान्तीय शासक एक के बाद दूसरे स्वतंत्र होचले गये। देश अनेक छोटे–छोटे स्वतंत्र राज्यों का समूह बन गया। इन स्वतंत्र राज्यों के बीच एकता नाम मात्र की नहीं रह गयी। ठीक इसके विपरीत उनके बीच ईर्ष्या, द्वेष एवं कलह की भावना शक्तिशाली होती गयी। वे राज्य आपस में संघर्ष करते और ऐसे मौके की तलाश में रहते कि जब एक राज्य कमजोर हो जाये तो उस पर चढ़ाई करके उसे हड़प लिया जाये। इन राज्यों में दिल्ली के पूर्व जौनपुर का राज्य, बिहार के लोहानी शासकों का राज्य, बंगाल में नुसरत खां के अधीन स्वतंत्र राज्य, राजपूताना के अनेक स्वतंत्र हिन्दू राज्य, दक्षिण भारत में बहमनी शासकों और विजयनगर का हिन्दू राज्य आदि प्रमुख थे। इनके बीच राज्य सत्ता के लिए निरन्तर संघर्ष जारी था। देश में सत्ता स्थापना हेतु अफगान सरदारों और राजपूतों के बीच निरन्तर शक्ति की आजमाईश हो रही थी। अगर ये एक साथ मिलकर बाबर का सामना करते तो संभव था बाबर को भारत वर्ष में वांछित सफलता नहीं मिल पाती।

13.17.2 इब्राहीम की कमजोरियां – दिल्ली पर लोदी वंश का शासन चल रहा था। लोदियों का अंतिम शासक इब्राहीम लोदी का व्यक्तित्व और उसके कारनामें तत्कालीन परिस्थितियों में युक्तसंगत नहीं कहे जा सकते हैं। वह प्रान्तीय शासकों, वरिष्ठ अधिकारियों, शक्तिशाली सामंत एवं जनता के बीच धीरे–धीरे अलोकप्रिय होता चला गया। वह एक हठ्ठी, अत्याचारी एवं निर्दयी शासक था। सामन्तों एवं अधिकारियों के ऊपर उसने दरबार के कठोर नियमों को थोप दिया था। परिणामस्वरूप राज्य की शक्ति के मुख्य स्तम्भ, अफगान अधिकारी एवं समन्त, उससे बिगड़ गये एवं उन्होंने इब्राहीम के विरूद्ध षडयंत्र प्रारम्भ कर दिये। मेवाड़ के शासक राणा सांगा एवं पंजाब का शासक दौलत खां ने बाबर को भारत पर आक्रमण के लिए निमंत्रण भी भेज दिया। दिल्ली के सुल्तान को जनता का सहयोग भी प्राप्त न था। शासन में भ्रष्टाचार, बेइमानी, ईर्ष्या आदि का बाजार गर्म हो गया। चारों ओर अशांति एवं अव्यवस्था फैल गयी। देश को पुनः सुव्यवस्थित करना अब लोदी शासन के बस के बाहर की बात थी। इन परिस्थितियों में बाबर की सफलता कोई आश्चर्य की बात नहीं कही जा सकती है।

13.17.3 बाबर का व्यक्तित्व – बाबर की सफलता का श्रेय उसके व्यक्तित्व को भी दिया जा सकता है। बाबर बचपन से ही कठिनाइयों से जूझता चला आ रहा था। एक सिपाही और सेनापति के रूप में वह अद्वितीय था। व्यूह–रचना में बाबर बहुत कुशल था। कठिन–से–कठिन परिस्थितियों में वह विचलित नहीं होता था और अपने ओजस्वी भाषणों के द्वारा वह सतत् अपनी सेना को उत्साहित करने में समर्थ था। उसका सैन्य संगठन बहुत अच्छा था। बाबर के तोपखाने में उस काल की उन्नत सामग्री थी। इसकी देखरेख एवं प्रबन्ध का भार उसने अपने कुशल सेनापति उस्ताद अली के हाथों में रखी थी। भारतीय सेना में इसका नितान्त अभाव था और वह बाबर के तोपखाने एवं पटु तोपचियों का सामना करने में असमर्थ थी। भारत में बाबर को जो भिन्न–भिन्न युद्धों सफलता मिली उसमें उसके तोपखाने का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान था।

13.17.4 बाबर की सेना का सहयोग – बाबर की सफलता का श्रेय उसकी साहसी एवं निपुण सेना को भी दिया जा सकता है। बाबर के सैनिक शक्तिशाली तेजस्वी थे। भारत विजय की आकांक्षा उनका लक्ष्य था। विजय अथवा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मृत्यु उनके दो विकल्प थे। युद्धों में सफलता के लिए उन्होंने अपनी जान की बाजी लगा दी। ऐसी शक्तिशाली एवं महत्वाकांक्षी सेना का सामना इब्राहीम की सेना, जो न तो अपने स्वामी के प्रति भक्ति रखती थी और न विजय की महत्वाकांक्षा रखती थी, के लिए असंभव था। लोदी सेना में सैनिक व्यवस्था, सहयोग, महत्वाकांक्षा, आशा जैसे सद्‌गुणों की कमी थी। वह युद्ध–कला में अयोग्य एवं अनुभवहीन थे। अतः बाबर की सफलता स्वाभाविक थी।

13.17.5 सैनिकों का धार्मिक उत्साह – भारत एक हिन्दू प्रधान देश था। बाबर के सैनिकों में इस्लाम की कट्टरता मौजूद थी। हिन्दू शासकों के विरूद्ध बाबर की लड़ाई 'जिहाद' थी। विशेष रूप से जब बाबर ने राणा सांगा के विरूद्ध खानुवा की लड़ाई शुरू की तो उसने अपने सैनिकों को अल्लाह एवं पवित्र कुरान पर भरोसा रखकर हिन्दू काफिरों को रौंद डालने का आदेश दिया। बाबर के सैनिकों का आदर्श युद्ध में सफलता अथवा मृत्यु रह गया।

13.17.6 राजपूतों का दोषपूर्ण सैन्य संगठन – अगर सांगा के विरूद्ध उन्हें सफलता मिल जाती तो सारा देश उनकी मुट्ठी में चला जाता और अगर युद्ध में उनकी मृत्यु हो जाती तो वे 'गाजी' हो जाते। इस तरह से बाबर तथा उसकी सेना के लिए हिन्दुओं के विरूद्ध युद्ध एक राजनीतिक एवं धर्मिक महत्व की चीज थी। अतः इससे भी बाबर को वांछित सफलता मिली। यहां हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बाबर ने राजपूतों की कमजोरियों तथा उनकी आपसी फूट का पूरा–पूरा फायदा उठाया। इसके अतिरिक्त, राजपूतों के विरूद्ध बाबर की सफलता राजपूत सेना की कमजोरियों के चलते भी संभव हो पायी, क्योंकि राजपूतों की युद्ध–कला एवं युद्ध–सामग्री दोनों ही पुराने थे।

13.18 चरित्र तथा मूल्यांकन :

तत्कालीन तथा आधुनिक युग के प्रायः सभी इतिहासकारों ने एकमत होकर राय प्रकट की है कि बाबर मध्यकाल में एशिया के अत्यन्त प्रतिभाशाली सम्राटों में से एक था। उसके एक कुटुम्बी मिर्जा हैदर ने, जो 'तारीखे–रशीदी' के लेखक हैं, उसके बारे में लिखा है कि उसके अन्दर बहुत–से गुण और अनेक विशेषताएं थीं; वीरता और मानवता के सद्‌गुण इनमें सर्वोपरि थे। वास्तव में उसके परिवार में उससे पहले ऐसा कोई नहीं हुआ जिसमें ऐसे गुण हों, और न उसकी जाति में ही ऐसा कोई व्यक्ति हुआ था जिसने ऐसी आश्चर्यजनक वीरता, शौर्य, साहस और पराक्रम का परिचय दिया हो। उसकी लड़की गुलबदन बेगम ने उसके बारे में 'हुमायूंनामा' में ऐसे ही विचार प्रकट किये हैं, और आधुनिक इतिहासकारों में प्रायः सभी ने तत्कालीन इतिहासकारों की ही राय का समर्थन किया है। उदाहरण के लिए, वी.ए. स्मिथ ने लिखा है कि "उस युग के एशियाई शासकों में वह सर्वाधिक प्रतिभाशाली थे, और किसी भी देश अथवा युग के राजाओं के बीच में उसे उच्च स्थान दिया जा सकता है...।" उसके बारे में हैवेल की राय है कि "इस्लाम के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों में से वह एक है।" रशब्रुक विलियम्स ने तो व्यक्ति के रूप में और एक राजा के रूप में उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की है और इतिहासकार डेनीसन रोस ने भी उस युग के सम्राटों में उसका स्थान ऊंचा रखा है।

13.18.1 व्यक्ति के रूप में – बाबर का व्यक्तिगत जीवन बड़ा ही आदर्शमय था। अपने बाल्यकाल में वह अपने पिता का बड़ा ही आज्ञाकारी और कर्तव्यपरायाण पुत्र था। यद्यपि बचपन में ही, जबकि वह ग्यारह वर्ष की अवस्था से कुछ ही बड़ा होगा, उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था, लेकिन उनके प्रति उसके ह्रदय में अपार प्रेम और श्रद्धा थी। वह अपनी माँ, दादी और नानी को अत्यन्त प्रेम करता था और यह प्रेम उनके प्रति अगाध श्रद्धा का ही दूसरा रूप था। यद्यपि अनेक मुसलमान शासक और सरदारों की भांति ही उसने भी बहु–विवाह किये थे, तथापि अपनी पत्नियों के प्रति वह पूर्णरूप से अनुरक्त था। मित्र भी वह बहुत अच्छा था; अपने बचपन के साथियों को वह केवल याद ही नहीं करता था, बल्कि उनकी मृत्यु पर बहुत रोता था। अपने कुटुम्बीजनों और अन्य रिश्तेदारों के प्रति भी उसका वही प्रेम–भाव था, और जिन लोगों को सहायता की जरूरत होती थी, वह उनकी पूरी मदद करता था। मानवीय स्वभाव की मूल अच्छाइयों में उसका पूरा विश्वास था और उसकी ह्रदय एवं इनसे भरा हुआ था। यद्यपि उन दोष–दुर्गुणों से, जो साधारणतया अभिजात्य वर्ग के लोगों में पाये जाते हैं, वह बिलकुल मुक्त नहीं था, तथापि अपने व्यक्तिगत जीवन में उसने उच्चकोटि की नैतिकता को स्थान दिया था, जो उसकी जन्मभूमि और उसके युग विशेष में मुश्किल से दिखायी देती है। वह शराब का शौकीन अवश्य था और कभी–कभी बहुत अधिक भी पी लेता था, लेकिन अपने बेटे हुमायूं की तरह वह नशे का गुलाम कभी नहीं बना। स्त्रियों के प्रति उसके व्यवहार में एक प्रकार का संयम रहता था, जिस संयम से उस काल में मध्य एशिया के लोग अपरिचित थे। जीवन के ऐश, आराम और विलासिता का गुलाम वह नहीं था। स्वभाव से ही साहसिक कृत्यों के प्रति प्रेम रखने के कारण उसके दिल–दिमाग में एक अजीब–सी बेचैनी दिखायी देती थी और जीवन की असामान्य और भयानक स्थितियों का सामना करने में वह बड़ा आनन्द

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लेता था। आरम्भ से ही कठिनाइयों के विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने के कारण अभावों से तो वह अभ्यस्त हो गया था और धैर्य, साहस औ सहनशीलता आदि विशेषताओं का उसने अपने चरित्र में पूर्णतया विकास किया था। शारीरिक शक्ति उसमें इतनी थी कि बगल में दो आदमियों को दबाये किले की चहारदीवारी की छत पर वह मजे से दौड़ लेता था। भारतवर्ष में उसके रास्ते में गंगा को छोड़कर जो भी नदियां पड़ी, उन सबको तैरकर ही उसने पार किया और एक बार तो उत्साह में आकर गंगा को भी वह तैरकर पार कर गया।

13.18.2. विद्वान के रूप में – संस्कृति और लोक–शिष्टाचार में अद्वितीय होने के साथ ही बाबर एक महान पण्डित और ललित–कलाओं का प्रेमी भी था। प्राकृतिक सौन्दर्य की विशेषताओं का वह अद्भुत पारखी था तथा व्यक्ति और जीवन के बहुरंगी रूपों के समझने में वह दक्ष था। वह तुर्की भाषा का एक उच्चकोटि का सुयोग्य लेखक था और उसकी लेखन–शैली विशुद्ध थी। उसकी सुप्रसिद्ध आत्मकथा 'बाबरनामा' ने उसे अमरत्व प्रदान कर दिया है। कवि भी वह उच्चकोटि का था। तुर्की भाषा में उसका दीवान (कविता–संग्रह) काव्य–कला का एक अनुपम उदाहरण है जिसकी प्रशंसा उसके समसामयिक काव्य–प्रेमियों से लेकर आज तक की जाती है। फारसी में भी उसने कविताएं लिखी थीं और 'मुबइयान' नाम की एक विशेष पद्य–शैली का वह जन्मदाता माना जाता है। एक सुलेखक और ललित–कलाओं–विशेषकर कविता और संगीत–का प्रेमी होने के साथ–साथ उसकी आलोचनात्मक अभिरूचि भी अत्यन्त विशिष्ट थी। 'आत्मचरित्र' लेखकों में उसका स्थान एक राजा की भाँति ही ऊंचा माना जा सकता है। 'बाबरनामा' में अपने कार्यकलापों का उसने ऐसा सजीव चित्रण किया है और भविष्य के लिए वह मनोरंजक सामग्री छोड़ी है कि बस प्रशंसा करते ही बनती है। इन वृत्तान्तों में भ्रमण किये हुए देश–विदेशों का वर्णन है; वहां की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक दृश्य और वृक्षादि का वर्णन है। वैसे तो बाबर में एक विद्वान की सभी विशेषताएं विद्यमान थीं; फिर भी उसे सैनिक विद्वान कहना ठीक होगा। वह सैनिक पहले था, और विद्वान बाद में। उसकी विद्वत्ता और संस्कृति ने अविश्रान्त सैनिक कार्य–कलापों में कोई बाधा नहीं डाली और न इनके द्वारा उसके अन्दर उन अतिशय कोमल भावनाओं का ही उदय हुआ, जो प्रायः विद्वत्ता के साथ सम्बन्धित रहती है।

13.18.3. धार्मिक विचार – वैसे तो बाबर एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था, लेकिन धार्मिक कट्टरता उसमें नहीं थी और अन्य कट्टरपंथी सुन्नी मतावलम्बियों की तरह उसने गैर–मुसलमान काफिरों को सताना अपना कर्तव्य नहीं बना लिया था। सुन्नी मत के प्रति उसकी श्रद्धा और विश्वास ने दूसरे मत–पंथ के लोगों के साथ मित्रता करने से उसे नहीं रोका। फारस के शिया मतावलम्बी शासक शाह इस्माइल सफवी के साथ भी, जो अपने क्षेत्र में सुन्नियों पर जोर–जुल्म करने के लिए बदनाम था, उसने एक समझौता किया था और समरकन्द में शिया मत को प्रोत्साहन देने के लिए भी वह राजी हो गया था। ईश्वर के प्रति उसका इतना अटूट विश्वास था कि उसे एक 'विशिष्ट धार्मिक व्यक्ति' ठीक ही कहा गया है। वह कहा करता था, "ईश्वर की इच्छा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता; उसकी शरण में ही रहकर हमें आगे बढ़ना चाहिए।" उसका यह विश्वास था कि ईश्वर ही उसे आगे कदम बढ़ाने के लिए प्रेरित करता है। जब–जब उसे विजयश्री प्राप्त होती थी, वह भगवान को अनेकानेक धन्यवाद देता था और उसे उसकी अनुकम्पा का ही परिणाम मानता था। भारतवर्ष में अपने युग की परिस्थितियों से ऊपर उठना उसके लिए कठिन था। हमारे देश के लोगों के साथ उसने धार्मिक उदारता और सहिष्णुता की नीति नहीं बरती। राणा सांगा के विरूद्ध उसने धर्मयुद्ध (जिहाद) आरम्भ किया था और अपने आदमियों को यह कहकर उसके विरूद्ध लड़ने के लिए भड़काया था कि वह काफिर है और उसके खिलाफ युद्ध करना उनका धार्मिक कर्तव्य है। विजय–प्राप्ति के पश्चात् उसने गाजी (काफिरों का नाशक) का खिताब प्राप्त किया था। चंदेरी के मेदिनीराय के विरूद्ध भी उसने ऐसा ही धर्मयुद्ध लड़ा था और एक धर्मान्ध सुन्नी के रूप में व्यवहार किया था। अयोध्या में उसने अपनी मस्जिद ऐसे स्थान पर निर्माण करायी थी जिसे श्री रामचन्द्रजी का जन्म–स्थान मान लाखों हिन्दू पूजते थे। चुंगी–कर हटाने में भी उसने हिन्दू–मुसलमान के भेदभाव को माना था। मुसलमान व्यापारियों से तो चुंगी बिलकुल हटा दी गयी थी जबकि हिन्दुओं से यह पूर्ववत ली जाती थी। लेकिन यह सब होते हुए भी यह कहना उचित ही होगा कि यहां की जनता के प्रति बाबर का व्यवहार सल्तनत–युग के अन्य शासकों के व्यवहार की भांति बुरा नहीं था।

13.18.4. सैनिक और रण – कुशल सेनापति के रूप में–बचपन से लेकर मृत्युपर्यन्त बाबर को अपने जीवन की सुरक्षा, सिंहासन छीनने और अन्य स्थानों पर विजय–प्राप्ति के निमित्त निरन्तर लड़ाइयां लड़नी पड़ी थी। इस प्रकार अपने बाल्यकाल से ही मुख्य रूप से वह एक सैनिक बन गया था। वह "एक प्रशंसनीय घुड़सवार, कमाल का निशानेबाज, बढ़िया तलवारबाज और एक कुशल शिकारी था।" इसके अतिरिक्त उसके अन्दर अमित शारीरिक शक्ति और अपूर्व साहस था; शौर्य–कृत्यों के लिए उसके मन में विकट उत्साह रहता था और मृत्यु को उसने सदैव उपेक्षा की दृष्टि से देखा। असाधारण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

धैर्य और सहनशीलता के सद्‌गुण भी उसके अन्दर थे। वह उच्चकोटि का सेनापति और नेता था। दूसरों के ऊपर कमान करने की उसके अन्दर स्वतः शक्ति और प्रतिभा होने के कारण वह अपने अनुयायियों और सैनिकों से सरलता से अपने आदेशों का पालन करा लेता था। स्वभाव से ही सैनिकों के साथ निकटता प्राप्त करने का भाव रखने और मानव–चरित्र का पारखी होने के कारण उसके सैनिक और अन्य अधिकारी उसके स्वभाव और चरित्र से अच्छी तरह परिचित हो गये थे, और वह उनमें अत्यन्त लोकप्रिय बन गया था। उसकी आत्मकथा (बाबरनामा) से पता चलता है कि अपने एक अभियान के समय जब वह अपने फौजी दस्तों के साथ ही एक छोटी–सी पर्वतीय गुफा में शरण लेने के लिए गया, तो किस प्रकार भयंकर हिमपात से उसने अपने प्राणों की रक्षा की थी। इधर–उधर छायी हिम–राशि को अपने हाथों से साफकर गुफा के दरवाजे के निकट उसने अपने बैठने के लिए स्थान बना लिया था। उसके आदमियों ने उससे गुफा के अन्दर जाकर आराम से बैठने के लिए अपार आग्रह और अनुरोध किया, लेकिन वह राजी नहीं हुआ, क्योंकि वह तो उन्हीं लोगों के साथ वहां का कष्ट भोगना चाहता था। वह लिखता है, ''मैंने अनुभव किया कि मैं गरमाहट लूं और आराम से रहूं और उधर मेरे आदमी हिमपात से गलते रहें, अन्दर मैं आराम से सोता रहूं और उधर मेरे आदमी कष्ट और असुविधाएं भोगते रहें–नहीं, यह एक भले आदमी का काम नहीं है और बन्धु–भावना से गिरी हुई चीजें हैं। एक बलवान आदमी को जो सहना चाहिए वह मैं सहूंगा, क्योंकि एक फारसी कहावत है, 'मित्रों की मण्डली में मृत्यु भी एक विवाह–भोज मालूम होता है।' इस प्रकार मैं अपने हाथ से खोदी हुई गुफा में बरफ और ठण्डी हवा की मार सहन करते हुए बैठा रहा,; मेरी खोपड़ी, कान और कमर पर चार हाथ मोटी बरफ की मोटी–मोटी तहें जम गयी थीं। ''यद्यपि अपने सिपाहियों को इस तरह प्यार करता था; किन्तु जरूरत के समय उसे सख्ती से पेश भी आना पड़ता था।

13.18.5. शासक और कूटनीतिज्ञ के रूप में – एक सफल फौजी नेता के लिए जैसा स्वाभाविक होता है, बाबर ने भी एक शक्तिशाली शासक के रूप में केवल भारतवर्ष में ही अपनी विशेषताओं का परिचय नहीं दिया, बल्कि अपने स्वदेश ट्रान्स–ऑक्सियाना में भी उसने शांति और अनुशासन की स्थापना की थी। अपने सुविस्तृत साम्राज्य में, जिसका विस्तार बदख्शां से लेकर बिहार की पश्चिमी सीमा तक था, उसने लुटेरों से अपनी प्रजा के जान–माल की रक्षा की व्यवस्था की थी। सुविधा से आने–जाने के लिए उसने अपने क्षेत्र के मुख्य–मुख्य भागों में सड़कें सुरक्षित करवा दी थीं। उसने यह भी ध्यान रखा कि स्थानीय अधिकारी लोगों के ऊपर जोर–जुल्म न करें। उसका दरबार संस्कृति का ही केन्द्र–स्थल नहीं था, बल्कि कठोर अनुशासन का भी केन्द्र था। एक शासक के रूप में वह अपने प्रजाजनों की सुख–सुविधा का बड़ा ख्याल रखता था और बाहरी आक्रमण तथा आंतरिक अशांति से उन्हें बचाने की पूरी चेष्टा करता था। लेकिन अपनी प्रजा की नैतिक और भौतिक स्थिति सुधारने का न तो उसका विचार था और न उसमें योग्यता ही थी। वह एक कुशल कूटनीतिज्ञ था। 1494 ई.में जब वह ग्यारह वर्ष की अवस्था से कुछ ही बड़ा होगा, उसने अपने चाचा अहमद मिर्जा को जो संवाद भेजा था उससे ज्ञात होता है कि यह गुण उसमें स्वाभाविक ही था। शायद उसका यह विश्वास था कि सच्चाई ही सर्वोत्तम कूटनीति है। अपने विरोधी पर अभियान आरम्भ करने से पूर्व वह अपने पक्ष का लेखा तैयार कर लेता था। काबुल के लोगों के साथ अपनी कूटनीतिज्ञता का जिस रूप में उसने उपयोग किया, उस रूप में फरगाना और समरकन्द में अपने निकट के लोगों के साथ नहीं कर सका था, और भारतवर्ष में उसने जो सफलता प्राप्त की उसका श्रेय बहुत कुछ उसकी कूटनीति को ही है जिसके द्वारा उसने अपने शत्रुओं में फूट डाल दी थी। डेनीसन रौस के शब्दों में, ''जिस नीति से उसने सुल्तान इब्राहीम के विद्रोही सामन्तों को आपस में एक–दूसरे से भिड़ाया, वह मैक्यावेली की योग्यता से कम न थी।''

13.18.6. शासन–प्रबन्धक के रूप में – एक सैनिक और विजेता के रूप में बाबर ने इतनी सफलता अवश्य प्राप्त की, किन्तु शासन–प्रबन्धक वह अच्छा नहीं था। उसमें रचनात्मक बुद्धि का अभाव था। हर जगह उसने पुरानी, जीर्ण और दकियानुसी संस्थाओं को जारी रखा और उनकी जगह समय के अनुकूल एवं नवीन शासन–प्रणाली को व्यवहार में लाने का प्रयत्न नहीं किया। ऐसा करने में वह अयोग्य था। हमारे देश में उसके कार्यकलाप विध्वंसात्मक ही रहे, रचनात्मकता उनमें नहीं थी। मुगलों के आक्रमण से दिल्ली सल्तनत का शासन–तंत्र ध्वस्त हो गया था, किन्तु बाबर ने उसकी जगह किसी अच्छी शासन–प्रणाली की स्थापना करन्े की चेष्टा नहीं की। उसने अपने साम्राज्य को अपने सामन्तों तथा अन्य अधिकारियों में बांट दिया था और उन्हीं को शासन–प्रबन्ध का काम भी सौंप दिया गया था। इस प्रकार सारे साम्राज्य में फौजी गवर्नरों के छोटे–छोटे राज्य स्थापित हो गये, जो अर्द्ध–स्वतंत्र थे। केवल सम्राट का व्यक्तित्व ही उन्हें एकसूत्र में बांधे हुए था। बाबर बा साम्राज्य, जैसा ऐर्स्किन ने लिखा है, ''छोटे–छोटे राज्यों का समूह मात्र था, वह एकसे शासन–प्रबन्ध के अन्तर्गत विधिपूर्वक सुसंगठिन साम्राज्य नही था। सीमान्त और पर्वतीय जिलो में से बहुत–से तो नाममात्र के लिए उसकी अधीनता मानते थे।'' प्रत्येक स्थानीय गवर्नर शासन–प्रबन्ध में अपना ही तौर–तरीका बरतता था और अपने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

क्षेत्र के लोगों के जीवन–मरण का स्वामी था। जब बादशाह की मांग होती थी तो वह अपने फौजी दस्ते भेज देता था और केन्द्रीय कोष में वार्षिक कर जमा कर देता था। बस उसके उत्तरदायित्व की यहीं तक इतिश्रीथी। वैसे वह स्वतंत्र होता था। साम्राज्य में एकसी लगान–व्यवस्था स्थापित करने की ओर बाबर ने कोई कदम नहीं उठाया। जमीन की नाप–जोख तथा उसकी पैदावार को ध्यान में रखते हुए एकसे कर की मांग रखने की ओर कोई चेष्टा नहीं की गयी। न्याय–प्रबंध भी बड़ा अव्यवस्थित था। इस प्रकार ''इस विशाल साम्राज्य के विभिन्न भागों की राजनीतिक स्थिति में बहुत कम समानता थी। राजा की निरंकुश शक्ति को छोड़कर शायद ही ऐसा कोई कानून था जो उस समय सारे साम्राज्य में लागू समझा जाता हो।''

13.19. इतिहास में बाबर का स्थान और सारांश :

बाबर का एक राजा के रूप में अपनी मातृभूमि ट्रान्स–ऑक्सियाना के इतिहास में, जहां से उसे अपमानपूर्वक काबुल में शरण लेने के लिए निकाल बाहर किया गया था, कोई प्रमुख स्थान नहीं है और न अफगान लोग ही उसे श्रद्धापूर्वक याद करते हैं, क्योंकि अफगानिस्तान में उसने शासन–प्रणाली में ऐसे कोई उपयोगी सुधार नहीं किये जिनके साथ उसका स्मरण किया जाता। यदि उसके पुत्र हुमायूं के निष्कासन के बाद मुगलों के हाथ से सारा साम्राज्य हमेशा के लिए निकल गया होगा, तो भारतवर्ष के इतिहास में भी उसकी याद शेष नहीं रहती। किन्तु यह उसका सौभाग्य था कि अकबर जैसा उसका पोता उत्पन्न हुआ, जिसने मुगल साम्राज्य की ऐसी गहरी और सुदृढ़ नींव डाली जिससे दो सौ वर्ष से अधिक काल तक यह फलता–फूलता रहा। इसलिए भारतवर्ष में मुगल–साम्राज्य का स्थापक वास्तव में अकबर को ही माना जाता है, उसके दादा बाबर को नहीं। बाबर ने तो मुगल–साम्राज्य की नीवं का पहला पत्थर ही रखा था; इसलिए भारतीय इतिहास में उसका स्थान एक विजेता और साम्राज्य का शिलान्यास करने वाले व्यक्ति के रूप में ही है। इस विशाल मुगल–साम्राज्य को पुनःस्थापित करने और उसे शानदार शासन–प्रणाली द्वारा संचालित करने का श्रेय तो उसके पोते अकबर महान् को ही है।

यदि बाबर को हिन्दुस्तान पर विजय प्राप्त करने में सफलता नहीं भी मिली होती और अपने बेटे के लिए उसने साम्राज्य नहीं छोड़ा होता, तो भी साहित्य जगत में उसकी स्मृति सदैव जीवित रहती। सामान्य पाठक के लिए तो बाबर के राजनीतिक कार्यकलापों की अपेक्षा उसके भव्य व्यक्तित्व का आकर्षण ही अधिक है। विश्व–इतिहास में उसका बड़ा ही दिलचस्प व्यक्तित्व है। वह उन लोगों में से था ''जो मन और शरीर से इतने स्फूर्तिवान होते हैं कि कभी प्रमाद में नहीं रहते और सब कुछ कर लेने के लिए समय निकाल लेते हैं।'' उसके चरित्र में एक महान राजा और एक श्रेष्ठ पुरुष के सद्गुणों का बड़ा सुन्दर मिश्रण था। वह इतना प्रसन्नचित्त, स्पष्ट और साहस–सम्पन्न था कि किसी भी प्रकार की कमी, कठिनाई अथवा आपत्ति उसके स्थिर मन को विचलित नहीं कर सकती थी। साहसिकता उसके जीवन की प्राण–मात्र थी। कभी–कभी स्वभाव से वह बड़ा भयंकर, कठोर और निर्दयी दिखायी देता था, किन्तु वह यह मनोदशा क्षणिक होती थी और वह पुनः अपने और सौम्य रूप में आ जाता था।

13.20 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 घाघरा का युद्ध कब हुआ?

अ. 1526 ई. ब. 1527 ई.

स. 1528 ई. द. 1529 ई.

उत्तर – ....

प्रश्न 2 भारत में बाबर की सफलता के कारण बताइये। (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 भारत में मुगल वंश की स्थापना में बाबर की भूमिका समझाइये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 14
हुमायूं

संरचना

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 हुमायु का प्रारम्भिक जीवन

14.3 राज्यारोहण के पूर्व का सार्वजनिक जीवन

14.3.1 हुमायु का बदख्शां में अवस्थान

14.3.2 हुमायु का भारत लौटना और रोग–ग्रस्त होना

14.3.3 हुमायु का राज्याभिषेक

14.4 हुमायु की कठिनाईयां

14.5 आन्तरिक कठिनाईयां

14.5.1 मुगल साम्राज्य की विशालता

14.5.2 रिक्त राजकोष

14.5.3 हुमायु के भाई

14.5.4 असंगठित शासन व्यवस्था

14.5.5 बाबर के सम्बन्धी

14.6 बाह्य कठिनाईयां

14.6.1 गुजरात

14.6.2 अफगान

14.6.3 बंगाल

14.6.4 सिन्ध और मुल्तान

14.6.5 मालवा

14.6.6 खानदेश

14.6.7 कश्मीर

14.6.8 राजपूताना

14.7 साम्राज्य का विभाजन

14.8 हुमायु का विजय अभियान

14.8.1 कालिंजर का अभियान (1531 ई.)

14.8.2 अफगानों के विरूद्ध प्रथम अभियान : चुनार का प्रथम घेरा (1532 ई.)

14.8.3 मालवा एवं गुजरात के शासकों के साथ संघर्ष (1535–36 ई.)

14.8.4 बंगाल अभियान

14.8.5 चुनार का दूसरा घेरा

14.8.6 शेरखाँ का रोहतास के दुर्ग पर अधिकार

14.8.7 बनारस विजय तथा शेरखाँ से सन्धि वार्ता

14.8.8 हुमायु का बंगाल में प्रवेश

14.8.9 चौसा का युद्ध (1539 ई.)

14.8.10 हुमायु की असफलता के कारण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.9 हुमायु का निर्वासनकाल
- 14.9.1 जौधपुर प्रस्थान
- 14.9.2 अकबर का जन्म
- 14.9.3 कन्धार में हुमायु
- 14.9.4 ईरान में हुमायु
- 14.9.5 काबुल एवं कंधार विजय

14.10 हुमायु का दिल्ली की गद्धी पर पुनः आरूढ़ होना
14.11 मच्छीवाड़ा का निर्णायक युद्ध
14.12 सरहिन्द का युद्ध
14.13 हुमायु का दुबारा भारत का सम्राट बनना
14.14 हुमायु की अन्तिम योजनाएं : हुमायु की मृत्यु
14.15 हुमायु की असफलता के कारण
- 14.15.1 व्यक्तिगत दुर्बलताए
- 14.15.2 अपव्ययता
- 14.15.3 भाइयों के प्रति अत्यधिक उदार
- 14.15.4 राजपूतों का सहयोग न मिलना
- 14.15.5 विलासिता
- 14.15.6 शासन के प्रति उदासीनता
- 14.15.7 सफल नेतृत्त्व का अभाव
- 14.15.8 दृढ़ निश्चय का अभाव

14.16 हुमायु का चरित्र
- 14.16.1 परिवार प्रेमी
- 14.16.2 उदारचित्त
- 14.16.3 विद्धान तथा साहित्य प्रेमी
- 14.16.4 सच्चा मुसलमान
- 14.16.5 आत्मविश्वासी तथा धैर्यवान
- 14.16.6 योग्य सेनानायक
- 14.16.7 शासन प्रबंधक

14.17 सारांश
14.18 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में बाबर के पुत्र निजामुद्दीन हुमायु द्वारा मुगल साम्राज्य को दिये अपने योगदान को दो चरणों में समझाया गया है।

– प्रथम चरण में शेरशाह सूरी से पराजित होने से पहले तथा उसके साथ युद्धों को समझाया गया है।

–द्वितीय चरण में शेरशाह सूरी से पराजित होने के पश्चात निर्वासित जीवन बिताने के पश्चात पुनः ाारत के राजसिंहासन को प्राप्त करने तथा पुन मुगल साम्राज्य की स्थापना को समझाया गया।

– इसके अलावा हुमायु की विभिन्न कठिनाइयों को भी विस्तार से समझाया गया है।

14.1. प्रस्तावना :

बाबर के चार पुत्र थे–हुमायूं, कामरान, हिन्दाल एवं मिर्जा अस्करी। निजामुद्दीन हुमायूं का जन्म 6 मार्च, 1508 ई. को

काबुल में हुआ था। उसका जन्म उत्सव बड़ी धूमधान से मनाया गया। बाबर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है "जब वह (हुमायूं) पांच–छः दिन का हो गया, तो मैं चारबाग पहुंचा, जहां उसके जन्म का समारोह मनाया गया।"

14.2 हुमायूं का प्रारम्भिक जीवन :

हुमायूं का जन्म मार्च, सन् 1508 ई. में हुआ था। हुमायूं की माता माहम बेगम सुल्तान हुसेन बैकरा के परिवार से सम्बन्धित थी और वह शिया धर्म को मानती थी। जब बाबर से उसकी सन् 1506 ई. में भेंट हुई तब वह उसके रूप–गुण पर इतना मुग्ध हुई कि उसने धर्म–विभेद को महत्व नहीं दिया। माहम शीघ्र ही बाबर की अनन्य प्रेमपात्री सिद्ध हुई। बालक हुमायूं का शैशव इसी स्नेहपूर्ण वातावरण में बीता। बाबर की इच्छा थी कि हुमायूं एक आदर्श शासक बन सके। इस हेतु वह उसको सर्वगुण–सम्पन्न बनाने का इच्छुक था। उसने उसकी शिक्षा के लिए योग्य अध्यापक नियुक्त किये और हुमायूं ने विद्याभ्यास में समुचित उत्साह दर्शाया तथा तुर्की, अरबी और फारसी का ज्ञान प्राप्त कर लिया। उसने फारसी में कविता करने का भी अभ्यास किया। उसे गणित, दर्शन तथा ज्योतिष में विशेष रूचि थी और उसने फलित ज्योतिष में इतना अधिकार प्राप्त कर लिया था कि अनेक अवसरों पर वह अपनी गणना को ही मानकर चलता था, यथा हमीदा बानू से विवाह के समय। भारत में आने के उपरान्त उसने हिन्दी का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया। हुमायूं की शिक्षा में एक दोष यह दिखाई पड़ता है कि उसने इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि व्यावहारिक विषयों में अभिरूचि नहीं प्राप्त की वरन् कल्पना को व्यापक एवं पुष्ट करने वाले मननात्मक विषयों में। संभवतः इसी कारण व्यवहार जगत में वह अधिक सफल नहीं हो सका। विद्याभ्यास के अतिरिक्त उसे सैनिक शिक्षा भी दी गयी। बाबर उसकी गतिविधि में बराबर रूचि लेता रहा क्योंकि यद्यपि उसके अन्य पुत्र भी थे परन्तु हुमायूं ही उसका सर्वाधिक प्रेमभाजन था।

14.3 राज्यारोहण के पूर्व का सार्वजनिक जीवन :

हुमायूं ने सन् 1520 ई. से सार्वजनिक जीवन में पदार्पण किया और उसे बदख्शां का शासक नियुक्त किया गया। जब बाबर ने भारतीय विजय के लिए अंतिम आक्रमण किया, उस समय हुमायूं भी उसके साथ आया। उसने अफगानों के विरूद्ध अनेक युद्ध किये। पानीपत के युद्ध में वह दक्षिण पार्श्व का नेता था। इसके बाद उसने ग्वालियर के राजा विक्रमादित्य को हराकर आगरे का घेरा डाला और उस पर अधिकार कर लिया। बाबर के वहां आने पर उसने विक्रमादित्य की रानी से प्राप्त कोहिनूर हीरा उसे भेंट किया परन्तु बाबर ने उसे उसी को लौटा दिया। जब बाबर ने अपनी विजय के उपलक्ष में सबको उपहार देना आरंभ किया तब हुमायूं को 3 1/2 लाख रुपया मिला। इसके कुछ समय बाद ही हुमायूं ने जाजमऊ के निकट एकत्रित अफगानों को तितर–बितर किया और सन् 1527 ई. में राणा सांगा के विरूद्ध फिर दक्षिण पार्श्व का नेतृत्व ग्रहण किया।

14.3.1 हुमायूं का बदख्शां में अवस्थान (1527–29 ई.) – हुमायूं को भारत में हिसार फिरोजा और सम्भल की जागीरें देने के बावजूद बाबर ने उसे बदख्शां भेज दिया। सन् 1527 ई. से सन् 1529 तक हुमायूं बदख्शां रहा। परन्तु वह बाबर की मनोकामना के अनुरूप न हो सका। बाबर चाहता था कि हुमायूं या तो स्वयं समरकन्द पर अधिकार कर ले अथवा बाबर द्वारा उस पर आक्रमण के लिए समुचित पृष्ठभूमि तैयार करे। इसके विपरीत वह कलन्दरों और सूफियों की संगति में समय नष्ट करता रहा और वैराग्य तथा संसार के सुखों की निस्सारता के गीत गाने लगा।

14.3.2. हुमायूं का भारत लौटना और रोग–ग्रस्त होना – हैदर मिर्जा दगलात लिखता है कि बाबर ने हुमायूं को इसलिए वापस बुलाया था ताकि उसकी मृत्यु होने पर उत्तराधिकारी निकट रहे। डाक्टर सुकुमार बनर्जी का मत है कि बाबर ने शायद उसे वैराग्य के भूत से मुक्त करने के लिए पास बुलाया था। अर्सकीन और श्रीमती बेवरिज का मत है कि माहम ने गुप्त संदेश भेज कर हुमायूं को वापस बुलाया था क्योंकि उसे प्रधानमंत्री खलीफा के विरोध का पता चल गया था। हुमायूं के कुछ दिन भारतवर्ष में रह लेने के बाद बाबर ने उसे फिर बदख्शां भेजना चाहा परन्तु हुमायूं के अनुरोध पर उसने उसे सम्भल का शासन संभालने को भेजकर मिर्जा सुलेमान को बदख्शां सौंप दिया। कुछ समय बाद हुमायूं बीमार पड़ा और कहा जाता है कि जब उसके बचने की कोई आशा नहीं रही तब बाबर ने भगवान् से प्रार्थना की कि हुमायूं के बदले वह उसका प्राण ले ले। हुमायूं की प्राण–रक्षा सचमुच बाबर की प्रार्थना के कारण और उसके आत्मोत्सर्ग के प्रभाव से हुई या नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु बाबर के समसामयिक लोग इसमें विश्वास करते थे।

14.3.3. हुमायूं का राज्याभिषेक – बाबर की मृत्यु 26 दिसम्बर, 1530 ई. को हुई। उसके तीन दिन पूर्व उसने हुमायूं को बुलाया और प्रधान मंत्री निजामुद्दीन खलीफा तथा अन्य अमीरों की उपस्थिति में उसने हुमायूं को सिंहासन पर बिठाते

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हुए उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया तथा सभी सरदारों को उसे युवराज स्वीकार करने का आदेश दिया। परन्तु इतना होने पर भी बाबर की मृत्यु के बाद हुमायूं तुरंत गद्दी पर बिठाया नहीं गया। इस देरी का कारण प्रधान मंत्री खलीफा का विरोध था। अर्सकीन और श्रीमती बेवरीज का कथन है कि खलीफा बहुत पहले से हुमायूं से असंतुष्ट था और वह उसे राजगद्दी के लिए अनुपयुक्त समझता था। कुछ विद्वानों ने अटकल लगाई है कि शायद हुमायूं की कोमलता, अनुशासन रखने में ढिलाई और राज्य–कार्य की ओर विशेष रूचि न दिखाना इस असंतोष के मूल में था।

निजामुद्दीन अहमद ने अपनी पुस्तक तबकात अकबरी में लिखा है कि खलीफा हुमायूं के स्थान पर खानजादा बेगम के पति महदी ख्वाजा को गद्दी देना चाहता था। महदी ख्वाजा प्रायः 20 वर्ष से बाबर की सेना में था। वह एक अनुभवी सैनिक योद्धा था और उसे पानीपत तथा खानुआ के युद्धों में वही सम्मान मिला था जो हुमायूं को। उसकी आयु अधिक होने के कारण उसमें विचारों की प्रौढ़ता तथा शसन की समुचित क्षमता विकसित हो चुकी थी। उसका सामान्य व्यवहार भी दोषरहित था। परन्तु यह षड्यन्त्र बाबर से गुप्त रखा गया। खलीफा को बाद नें पता चला कि महदी ख्वाजा उसके प्रति सद्भाव नहीं रखता। अतएव उसे भय हुआ कि उसे राजगद्दी पर बिठाना मृत्यु का वरण करना था। इसलिए खलीफा ने हुमायूं को बुला कर 30 दिसम्बर, 1530 ई. को उसे विधिवत् सम्राट घोषित कर दिया।

14.4. हुमायूं की कठिनाइयाँ :

बाबर की मृत्यु के समय तक मुगल साम्राज्य की जड़े पूरी तरह जम नहीं पाई थी, क्योंकि बाबर अपने शत्रुओं को पूरी तरह परास्त नहीं कर पाया था। बाबर ने जो राज्य छोड़ा था वह राज्यों का संगठन मात्र था जिनमें एकता का अभाव था। इसके अतिरिक्त हुमायूं के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को गद्दी पर बैठाने की योजना ने हुमायूं की मानसिक स्थिति को दुर्बल बना दिया था। हुमायूं की इन कठिनाइयों को हम दो भागों में बांट सकते हैं–आंतरिक कठिनाइयां तथा बाह्य कठिनाइयां।

14.5. आंतरिक कठिनाइयां :

14.5.1. मुगल साम्राज्य की विशालता – हुमायूं को उत्तराधिकार में मिला साम्राज्य अत्यन्त ही विशाल था, जिसमें मध्य एशिया के बलख, कुन्दुज और बदख्शां के प्रान्त भी शामिल थे। इस साम्राज्य की दुर्बलता यह थी कि उसे कोई सुदृढ़ आधार प्राप्त नहीं था। क्योंकि बाबर अपने अल्पकालीन शासन के कारण उसे सुसंगठित नहीं कर पाया था। वह साम्राज्य सैनिक शक्ति पर टिका हुआ था और शांतिकाल में इसे बनाये रखना अत्यन्त कठिन था। अनेक दूरस्थ प्रान्तों में तो मुगल शासन केवल नाम मात्र का था। इसके अतिरिक्त मुगल सेना में अफगान, ईरानी, भारतीय, उज्जबेक आदि जातियों के लोग थे जिनके मन में बाबर के प्रति तो श्रद्धा थी, लेकिन हुमायूं के प्रति कोई श्रद्धा नहीं थी। ऐसी स्थिति में विशाल साम्राज्य को बनाये रखने में सेना से पूर्ण सहयोग प्राप्त करना अत्यन्त कठिन था।

14.5.2. रिक्त राजकोष – बाबर की खर्चीली और उदार नीति ने राजकोष रिक्त कर दिया था। इसके अतिरिक्त बाबर अपने संघर्षमय जीवन के कारण धन संचन नहीं कर पाया था। स्वयं बाबर की आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गयी थी, जिसके कारण बाबर को अपने उच्च अधिकारियों पर 30 प्रतिशत कर लगाना पड़ा था। फिर भी उसकी आर्थिक दशा शोचनीय बनी रही। अतः हुमायूं को विरासत में रिक्त राजकोष प्राप्त हुआ, जिससे उसकी कठिनाइयां और अधिक बढ़ गई थी। रशब्रुक विलियम के शब्दों में, "हुमायूं की कठिनाइयों में उसकी आर्थिक स्थिति का बहुत बड़ा हाथ था।"

14.5.3. हुमायूं के भाई – हुमायूं के तीन भाई थे– कामरान जो 17 वर्ष का था, अस्करी 15 वर्ष का और हिन्दाल 12 वर्ष का था। बाबर ने अपनी मृत्यु से पूर्व हुमायूं को सलाह दी थी कि वह ऐसा कार्य न करें जिससे उसके भाइयों को दुःख और कष्ट हो। इतना ही नहीं, बाबर ने हुमायूं को अपने भाइयों में साम्राज्य विभाजन का भी निर्देश दिया था। फलस्वरूप हुमायूं ने अपने भाइयों के प्रति सदैव उदार नीति अपनाई थी। इसके प्रत्युत्तर में हुमायूं के भाई उसकी कठिनाइयों के निवारण में सहायता दे सकते थे, लेकिन उसके भाइयों ने सदैव उसके प्रति विरोधी आचरण अपनाकर उसकी कठिनाइयों में और अधिक वृद्धि कर दी। इसके अतिरिक्त हुमायूं के तीनों भाई अल्पवयस्क थे, इसलिये महत्वाकांक्षी अमीर अपनी महत्वाकांक्षा की तुष्टि के लिये उन तीनों का उपयोग हुमायूं के विरूद्ध बड़ी सरलता से कर सकते थे।

14.5.4. असंगठित शासन व्यवस्था – बाबर अपने अल्पकालीन शासनकाल में शासन–व्यवस्था संगठित न कर पाया था अतः हुमायूं को विरासत में एक असंगठित विशाल राज्य प्राप्त हुआ था। प्रान्तों का प्रबन्ध अत्यन्त ही ढीला था तथा सैनिक जागीरों की व्यवस्था से बड़े–बड़े सरदार शक्तिशाली हो गये थे। ये शक्तिशाली सरदार हुमायूं के आदेशानुसार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चलने को तैयार नहीं थे, क्योंकि वे हुमायूं को निर्बल और अस्थिर चित्त का भी व्यक्ति समझते थे। बाबर ने एक शासक के रूप में अपनी प्रजा की सुख सुविधा का पूरा ध्यान नहीं रखा। अतः प्रजा, मुगलों को विदेशी आक्रान्ता के रूप में देख रही थी। ऐसी स्थिति में हुमायूं अपनी प्रजा के सहयोग से भी वंचित हो गया। इस प्रकार हुमायूं को न तो अपने सरदारों से सहयोग प्राप्त हो सका और न अपनी प्रजा से।

14.5.5. बाबर के सम्बन्धी – मध्य एशिया के कई वंशों के अमीर बाबर के साथ भारत आकर यहीं बस गये थे और बाबर ने भी उनका सम्मान करते हुए उनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये थे। इनमें खुरासान का मुहम्मद जमाल मिर्जा, मुहम्मद सुल्तान मिर्जा, मीर मोहम्मद मेहदी ख्वाजा और खलीफा मुख्य थे। बाबर इनके प्रति बड़ा दयालु था, अतः वे अपने को बाबर का उत्तराधिकारी समझने लगे थे। हुमायूं की गद्दीनशीनी के समय खुरासान में मिर्जाओं का प्रभाव समाप्त हो गया था, अतः वे भारत में कोई राज्य प्राप्त करने के इच्छुक थे। नयी परिस्थितियों में वे साम्राज्य में अपना विशेष स्थान प्राप्त करने के लिए हुमायूं के समक्ष गंभीर कठिनाइयां उपस्थित कर सकते थे।

14.6. बाह्य कठिनाइयां :

हुमायूं की गद्दीनशीनी के समय मुगल साम्राज्य की सीमा के निकट निम्नलिखित शक्तियां ऐसी थी जो मुगल साम्राज्य के लिये कभी भी खतरा उत्पन्न कर सकती थी–

14.6.1. गुजरात – हुमायूं की गद्दीनशीनी के समय गुजरात पर बहादुरशाह शासन कर रहा था, जो नौजवान एवं महत्वाकांक्षी था। उसने एक शक्तिशाली सेना संगठित कर ली थी और 1531 ई. में उसने मालवा पर आक्रमण कर उसे अपने राज्य में मिला लिया था। उसने आस–पास के असंतुष्ट अमीरों को अपने दरबार में आश्रय प्रदान किया था। मालवा को अपने राज्य में मिलाने के पश्चात् उसके राज्य की सीमाएं मुगल साम्राज्य के निकट पहुंच गई थी। महत्वाकांक्षी बहादुरशाह हुमायूं की आंतरिक कठिनाइयों से लाभ उठा सकता था और हुमायूं के लिये अनेक राजनीतिक समस्याएं उत्पन्न कर सकता था।

14.6.2. अफगान – पानीपत और घाघरा युद्धों में अफगान रूपी सर्प को कुचल अवश्य दिया गया था, लेकिन वह मरा नहीं था। अधिकांश अफगान बिहार में अपनी शक्ति संगठित कर रहे थे। इन अफगानों के प्रमुख दो नेता थे–महमूद लोदी और शेरखां। महमूद लोदी ने अपने पूर्वजों की गद्दी पुनः प्राप्त करने की आशा अभी नहीं छोड़ी थी। शेरखां, जो अत्यन्त ही महत्वाकांक्षी था, अफगानों के शक्तिशाली संगठन की सहायता से एक स्वतंत्र राज्य का निर्माण करना चाहता था। इसके अतिरिक्त बिब्बन और बायजीद भी, जो अपने राज्य खो चुके, अपने अपने राज्यों को पुनः प्राप्त करने की ताक में थे। डॉ. एच. एस. श्रीवास्तव के मतानुसार, ''इसमें कोई संदेह नहीं कि इस नई परिस्थिति में, जबकि पानीपत का विजेता मर चुका था, उसका पुत्र हुमायूं अभी नौजवान और अनुभवहीन था, जिसे गद्दी पर बैठाने में भी मुगल अमीरों को थोड़ी हिचकिचाहट थी, अफगान पूर्णरूप से लाभ उठाने को तैयार थे। निःसंदेह यह उनके लिये स्वर्ण अवसर था।'' वास्तव में शेरखां बिहार में अफगानों का नेतृत्व करने लगा और बाद में हुमायूं के लिये सिरदर्द बन गया था।

14.6.3. बंगाल – बंगाल का शासक नुसरतशाह न केवल अफगानों को सहयोग दे रहा था, बल्कि बाबर के विद्रोही अफगानों को अपने यहां शरण देकर उन्हें अच्छी जागीरें भी प्रदान करवा दी थी। इतना ही नहीं इब्राहीम लोदी की पुत्री से शादी करके मुगलों में भय उत्पन्न कर दिया था। नई परिस्थितियों में वह बिहार के अफगानों की सहयाता से मुगल सत्ता को खतरा उत्पन्न कर सकता था।

14.6.4. सिन्ध और मुल्तान – यद्यपि गुजरात के शासक बहादुरशाह के भय से सिन्ध और मुल्तान के शासक ने बाबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु अब वह हुमायूं की अयोग्यता एवं दुर्बलता का लाभ उठाकर पुनः अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर सकता था और हुमायूं के लिये एक नया सिरदर्द उत्पन्न कर सकता था।

14.6.5. मालवा – गुजरात और राजपूताने के मध्य स्थित होने के कारण मालवा का सामरिक महत्व था और इसीलिये गुजरात और राजपूताने के बीच संघर्ष का मुद्दा बना हुआ था। 1531 ई. में गुजरात के शासक बहादुरशाह ने इसे जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था। अतः अब मालवा हुमायूं के लिये कभी भी समस्या बन सकता था।

14.6.6. खानदेश – दिल्ली से दूर होने के कारण खानदेश का उत्तरी भारत की राजनीति में कोई प्रभाव नहीं था, किन्तु यहां के शासक मुहम्मद प्रथम की मां, गुजरात के शासक बहादुरशाह की बहन थी, जिससे उसका महत्व बढ़ गया था। बहादुरशाह से सम्बन्ध होने के कारण हुमायूं के विरोधी बहादुरशाह के अधिक शक्तिशाली होने की संभावना थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.6.7. कश्मीर — पहाड़ों से घिरे होने के कारण तथा सीमान्त प्रदेश होने के कारण कश्मीर का विशेष महत्व था। यद्यपि हुमायूं की गद्दीनशीनी के समय इस राज्य में पारस्परिक संघर्ष चल रहा था, लेकिन हुमायूं की अयोग्यता और कठिनाइयों का लाभ उठाने के लिये वह एकता के सूत्र में बंधकर हुमायूं के लिये गंभीर समस्या उत्पन्न कर सकता था।

14.6.8. राजपूताना — खानवा–युद्ध की पराजय ने राजपूतों में एकता समाप्त कर दी थी। राणा सांगा की मृत्यु के बाद मेवाड़ का शासक बना, लेकिन रानी कर्मवती ने इसका विरोध करते हुए हुमायूं से सहायता मांगी थी। हुमायूं इस घरेलू झगड़े का लाभ न उठा सका, फलस्वरूप वह हमेशा के लिये राजपूतों के सहयोग से वंचित रह गया। राजपूताने में मारवाड़, आमेर, सिरोही आदि महत्वपूर्ण राज्य थे, किन्तु ऐसा कोई शक्तिशाली शासक नहीं था, जो इनमें एकता स्थापित कर सके। यद्यपि हुमायूं को राजपूताने से कोई तात्कालिक भय नहीं था, लेकिन राजपूताने में बहादुरशाह के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण हुमायूं के लिये राजपूताना समस्या बन सकता था।

उपर्युक्त परिस्थितियों में एक ऐसे शासक की आवश्यकता थी जो उच्च कोटि का सैनिक हो, जिसे अपने अमीरों व सरदारों का विश्वास प्राप्त हो और जो एक उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ हो। लेकिन हुमायूं में इन योग्यताओं का अभाव था। उसका पालन–पोषण बड़े लाड़–प्यार में हुआ था, अतः उसने कठिन परिस्थितियां कभी देखी ही नहीं थी। उसे युद्ध के प्रति लगाव न होकर आमोद–प्रमोद के प्रति लगाव था। उसमें शीघ्र निर्णय लेकर उसे कार्यान्वित करने की योग्यता नहीं थी। लेनपूल ने लिखा है, "चारित्रिक बल तथा संकल्प शक्ति का उसमें अभाव था। जी–जान से प्रयत्न करना उसकी शक्ति से बाहर था। विजय प्राप्ति के थोड़ी देर बाद ही अपने हरम में जाकर आनन्द से पड़ा रहता था और अपने अमूल्य समय को अफीमची के सपनों की दुनियां में नष्ट करता रहता था, जबकि उधर शत्रुओं का गर्जन उसके द्वार पर सुनाई दे रहा होता था। स्वभाव से दयालू होने के कारण उसे जहां दण्ड देना चाहिये, वहां वह क्षमादान करता था। नम्र स्वभाव व मिलनसार होने के कारण वह नाजुक समय में भी मौज करता नजर आता था, जबकि उस समय उसे युद्ध क्षेत्र में होना चाहिये था।" हुमायूं की इस प्रवृत्ति के कारण वह स्वयं अपना सबसे बड़ा शत्रु और अपने स्वयं के लिये एक समस्या था। अतः उसकी सफलता आरम्भ से ही संदिग्ध थी।

14.7. साम्राज्य का विभाजन :

अपने शासन के आरम्भ से ही हुमायूं ने अपनी निर्णयहीनता के कारण हानि उठानी आरंभ कर दी। साम्राज्य को अपने भाई और चचेरे भाइयों में विभाजित कर उसने पहली भूल की। अपनी द्वेषी और प्रतिद्वन्द्वी भाइयों पर कड़ा नियंत्रण रखने के बजाय उसने उन्हें अपने राज्य का भागीदार बना दिया। सुलेमान मिर्जा को बदख्शां में स्थायी पद दे दिया गया। हिन्दाल को बदख्शां से लौटने पर मेवात का विस्तृत क्षेत्र जागीर मे दे दिया गया, जिसमें आधुनिक अलवर, गुड़गांव और मथुरा के जिले तथा आगरा का कुछ भाग सम्मिलित था, और एक शक्तिशाली सेना का सरदार बनाकर उसे मेवात की राजधानी अलवर भेज दिया। सम्भल का जिला असकरी के नाम कर दिया गया। यह भी मेवात की तरह घना बसा हुआ विस्तृत प्रदेश था। कामरान को, जो कि खुल्लमखुल्ला विद्रोह कर रहा था, काबुल और कन्धार का स्थायी अधिकारी ही नहीं बना दिया गया बल्कि पंजाब और हिसाक के अपहरण को स्वीकार करके हुमायूं ने अपने पिता के साम्राज्य–संगठन की जड़ काट दी। काबुल, कन्धार और सिन्ध के क्षेत्र कामरान के अधिकार में चले जाने से सेना के लिए रंगरूटों की भरती का सबसे अच्छा क्षेत्र हाथ से निकल गया। मुगल मध्य एशिया से अपनी सेना में सैनिकों की भरती किया करते थे। कामरान का पंजाब और अफगानिस्तान का वास्तविक शासक बन जाने की स्थिति में हुमायूं का सम्पर्क मध्य एशिया से टूट गया और उसे सिन्धु के पार रंगरूटों की भरती करने से वंचित होना पड़ा। हिसार पर अधिकार करने से कामरान ने पंजाब और दिल्ली के बीच की सदर सड़क पर भी अपना अधिकार सुरक्षित कर लिया। फौजी अधिकारियों को बहुत अधिक मात्रा में भूमि वितरित करने की घातक नीति के दुष्परिणामों को समझने में वह असमर्थ रहा जिसके लिए उसका पिता भी उत्तरदायी था। भाइयों में साम्राज्य को विभाजित करने पर भी मानो उसे संतुष्टि न मिली हो, इसलिए उसने अपने प्रत्येक सरदार की जागीरों में अभिवृद्धि कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि उच्च मुगल अधिकारियों को स्वच्छन्द स्वाधीन होने का प्रोत्साहन मिला और हुमायूं को अत्यन्त बाधाओं का सामना करना पड़ा।

14.8. हुमायु का विजय अभियान :

14.8.1. कालिंजर का अभियान (1531 ई.) — राज्याभिषेक के पश्चात् छह मास के भीतर हुमायूं बुन्देलखण्ड के कालिंजर दुर्ग को घेरने के लिए चल पड़ा। दुर्ग के शासक को अफगानों का शुभचिन्तक समझा जाता था। यह घेरा कुछ महीनों तक पड़ा रहा और अंत में हुमायूं को सुलह करनी पड़ी। उसने राजा से जन–धन की हानि का मुआवजा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लिया ताकि शीघ्र ही पूर्व में अफगानों के उपद्रव का सामना करने के लिए वहां से चल दे। कालिंजर का अभियान एक बड़ी भूल थी। राजा को पराजित न किया जा सका और हुमायूं अपने लक्ष्य की पूर्ति में असफल रहा। राजा आसानी से अपनी तरफ मिला लिया जा सकता था और उसको मित्र भी बनाया जा सकता था।

14.8.2. अफगानों के विरूद्ध प्रथम अभियान : चुनार का प्रथम घेरा (1532 ई.) – हुमायूं को कालिंजर का घेरा उठाने के लिए बाध्य होना ही पड़ा क्योंकि महमूद लोदी के संचालन में बिहार के अफगान मुगल प्रदेश जौनपुर की ओर बढ़े चले आ रहे थे। इस प्रान्त का गवर्नर जुन्नैद बरलास था जो प्रधानमंत्री खलीफा का छोटा भाई था। जुन्नैद मैदान में न ठहर सका और पीछे हट गया। अफगान लोग बाराबंकी जिले के अन्तर्गत वर्तमान नवाबगंज तक बढ़ आये। हुमायूं और महमूद लोदी की मुठभेड़ दौहरिया में अगस्त 1532 ई. में हुई। अफगान लोग पराजित हुए और भयभीत होकर बिहार की ओर भाग खड़े हुए। इसके बाद हुमायूं ने चुनार का दुर्ग घेर लिया जो शेरखां के आधिपत्य में था। यह घेरा चार मास तक पड़ा रहा (सितम्बर से दिसम्बर 1532 ई.), किन्तु दुर्ग–विजय करने के बजाय अंत में हुमायूं ने घेरा उठा लिया और शेरशाह का आत्मसमर्पण स्वीकार कर लिया, जिसके अनुसार शेरखां ने अफगान सैनिकों की एक टुकड़ी अपने लड़के कुतुबखां के संरक्षण में मुगल सम्राट की सेवा में छोड़ दी। हुमायूं फिर आगरा लौट आया और इस प्रकार शेरखां को अपनी शक्ति–साधन की वृद्धि का अवसर मिल गया। यह हुमायूं की तीसरी भूल थी।

समय और धन की बरबादी (1533–34)

यद्यपि गुजरात से, जहां बहादुरशाह निश्चिन्त होकर अपने वैभव के उत्कर्ष में लगा हुआ था, चिन्ताजनक सूचनाएं बराबर आ रही थीं, तो भी हुमायूं अगले डेढ़ वर्ष तक आगरा और दिल्ली में आमोद–प्रमोद में समय नष्ट करता रहा। उसका कोष खाली था, फिर भी राजभोगों पर वह बहुत सा धन व्यय करता। पुरस्कार और सत्कारस्वरूप बहुमूल्य खिलअतों का वितरण अपने सहस्त्रों राज्याधिकारियों तथा सरदारों में किया करता था। उसने अपना काफी समय और धन दिल्ली में एक बड़ा दुर्ग बनाने की विशाल योजना में नष्ट किया। इस दुर्ग का नाम उसने 'दीनपनाह' रखा। इस प्रकार उसने बहादुरशाह को सीमा–विस्तार और शक्ति–वृद्धि का पर्याप्त अवसर दिया।

14.8.3. मालवा एवं गुजरात के शासकों के साथ संघर्ष (1535–36 ई.) – मालवा मध्य युग में एक महत्त्वपूर्ण भाग समझा जाता था। गुजरात, मेवाड़ तथा दिल्ली के शासकों के बीच मालवा को लेकर बराबर संघर्ष बना रहता था। बाबर शासक था। बाबर की मृत्यु के पश्चात् सुल्तान महमूद ने राणा सांगा द्वारा अधिकृत स्थानों पर अधिकार करने तथा गुजरात की गद्दी पर बहादुरशाह के भाई चाँदखाँ को बैठाने की योजना बनाई। बहादुरशाह ने इससे लाभ उठा कर मालवा पर आक्रमण किया, तथा 1531 ई. में उसने मालवा को अपने राज्य में मिला लिया। इस तरह हुमायूं के राज्य रोहण के प्रथम वर्ष ही मालवा पर बहादुरशाह का अधिकार हो गया।

हुमायूं के गद्दी पर बैठने के समय गुजरात पर बहादुरशाह शासन करता था, यह एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था उसने दो तुर्की विशेषज्ञों की सहायता से अपना तोपखाना शक्तिशाली तथा मजबूत कर लिया था। उसकी सेना में लगभग 10 हजार विदेशी सैनिक थे। हिन्दुओं के साथ ही उसका व्यवहार अच्छा था, थोड़े ही दिनों में वह जनप्रिय शासक बन गया, उसने निकट के भागों पर अधिकार करे अपनी शक्ति को और बढ़ा लिया

1532 ई. में उसने रायसीन पर अधिकार किया। 1533 ई. में उसने चित्तौड़ पर आक्रमण कर उसे आत्म–समर्पण करने पर विवश किया, किन्तु उसे उसने अपने राज्य में नहीं मिलाया। इस बीच बहादुरशाह ने कई प्रमुख अफगान अमीरों को जो मुगलों से असंतुष्ट थे, अपने दरबार में शरण दी। इनमें आलमखाँ, अलाउद्दीन लोदी, आलमखाँ जिघाट तथा तातार खाँ प्रमुख थे। मुहम्मद जमान मिर्जा तथा अन्य मुगल अमीर भी हुमायूं से असंतुष्ट होकर इसके दरबार में आये। इस तरह बहादुरशाह का दरबार हुमायूं विरोधी आंदोलन का केन्द्र बन गया। बहादुरशाह की योजना आगरा और दिल्ली पर अधिकार करने की थी। उसने एक महान् योजना बनाई जिसके अनुसार तीन तरफ से मुगल क्षेत्रों पर आक्रमण करने की योजना थी। आलमखाँ लोदी को कालिंजर पर, दूसरी सेना वुरहानुल मुल्क वनियानि के नेतृत्व में दिल्ली पर तथा तीसरी तातार खाँ के नेतृत्व में आगरा पर आक्रमण करने के लिए भेजी गयी, किन्तु इसमें किसी को सफलता न मिली।

हुमायूं ने प्रारम्भ में पत्र व्यवहार के द्वारा गुजरात के साथ सम्बन्ध सुधारने का प्रयत्न किया, किन्तु इसे इसमें सफलता न मिली। इस बीच बहादुरशाह ने नवम्बर, 1534 ई. में चित्तौड़ पर आक्रमण किया। इस समाचार को सुनकर हुमायूं अपनी सेना के साथ आगरा से मालवा की तरफ रवाना हुआ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हुमायूं ने रायसीन पर बिना किसी कठिनाई के अधिकार कर लिया। यहां वह बजाय इसके चित्तौड़ पर आक्रमण करे कुछ दिन वहीं रूका रहा। और जब तक बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर अधिकार नहीं कर लिया, तब तक वह आगे नहीं बढ़ा। हुमायूं के सारंगपुर रूकने की विद्वानों ने आलोचना की है। बनर्जी ने उसका समर्थन किया है, किन्तु उनके विचार सही नहीं हैं। हुमायूं ने यदि इस समय राजपूतों की सहायता की होती और इन्हें मित्र बना लिया होता तो उसे भविष्य में एक शक्तिशाली मित्र प्राप्त हो जाता।

चित्तौड़ विजय पर बहादुरशाह मन्दसौर आया। हुमायूं भी यहां पहुंच गया था। दोनों की सेनायें एक–दूसरे के सामने–आमने खड़ी थी। हुमायूं बहादुरशाह की सेना को घेरे रहा। जिससे शत्रु को आवश्यक सामग्री मिलने में कठिनाई हुई। कदाचित् इस कठिनाई से, या मुगल सेना के भय से बहादुरशाह एक रात्रि कुछ विश्वास पात्र सैनिकों के साथ निकल भागा। उसने जवाहरात, तोपखाना तथा अन्य वस्तुओं को जहां तक संभव हो सका नष्ट कर दिया। रात्रि में हुमायूं को बहादुरशाह के भागने की सूचना मिली। वह अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए तैयार रहा। लेकिन उसने बहादुरशाह की भागती सेना पर आक्रमण नहीं किया। दूसरे रोज बहादुरशाह के बचे हुए सैनिक वहां से मांडू की तरफ रवाना हो गये। हुमायूं ने बहादुरशाह का पीछा किया, बहादुरशाह मांडू के दुर्ग में जा छिपा। कुछ दिन हुमायूं उसका घेरा डाले रहा। यहां भी बहादुरशाह हुमायूं के विरूद्ध युद्ध न कर सका और एक रात मांडू से भी निकल भागा। हुमायूं ने मांडू के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। यहां कत्ले आम की आज्ञा दी, जिससे मांडू के बहुत से लोग मारे गये। इस हत्याकाण्ड से गुजराती जनता की दृष्टि में मुगल एक भयंकर आक्रमणकारी माने जाने लगे।

बहादुरशाह मांडू से भाग कर चम्पानेर के दुर्ग में गया। चम्पानेर का दुर्ग गुजरात के शासकों का कोष संचित करने का स्थान था। बहादुरशाह चम्पानेर से भाग कर कैम्बे चला गया। हुमायूं ने बिना चम्पानेर के दुर्ग पर अधिकार किये, बहादुरशाह का पीछा किया। बहादुरशाह के कैम्बे भाग जाने के पश्चात् हुमायूं लौटकर पुनः चम्पानेर आया और उसने चम्पानेर पर अधिकार किया। इस तरह बिना किसी युद्ध के पूरा गुजरात हुमायूं के अधिकार में आ गया।

हुमायूं ने अस्करी को गुजरात का गवर्नर नियुक्त किया और स्वयं मांडू में आकर रहने लगा। इस बीच अस्करी की दावतों तथा मुगलों की शासकी अयोग्यता ने गुजरात में एक मुक्ति आंदोलन आरंभ कर दिया। कुछ महीनों में या कुछ ही दिनों में, एक के बाद एक स्थान से मुगल भगाये जाने लगे। चम्पानेर में तरदीबेग नामक मुगल था। अस्करी ने चम्पानेर पर अधिकार करना चाहा। इस कारण तरदीबेग से उसका संघर्ष हुआ। विवश होकर अस्करी आगरा की तरफ रवाना हुआ। हुमायूं भी इस समाचार से आगरा की तरफ रवाना हुआ, और दोनों भाइयों में मुलाकात हुई।

गुजरात अभियान में विजित स्थानों का वाइसराय हुमायूं ने अपने भाई अस्करी को ही बनाया था। हुमायूं के गुजरात छोड़ने के तीन महीने बाद तक शांति बनी रही। यदि अस्करी ने अच्छे शासक की योग्यता दिखाई होती और मुगल अमीरों को अपने में मिलाकर उसने गुजरात में एक शक्तिशाली शास्न की नींव डाली होती तो मुगल साम्राज्य की रक्षा हो सकती थी। दुर्भाग्यवश अस्करी ने अपना समय दावतों में बरबाद किया और उसी का अमीरों ने भी अनुसरण किया।

अस्करी अपने स्वभाव, व्यवहार तथा योग्यता से न मुगल अमीरों को प्रसन्न कर सका, न गुजरात की जनता को। पर अपने वायसराय के पद को अधिक महत्व देना चाहता था तथा गुजरात के सभी मुगल अमीरों को अपने अधीन समझता था। गुजरात मुक्ति आंदोलन के प्रसार ने सभी मुगल सैनिकों को सतर्क कर दिया। अस्करी तथा हिन्दू बेग हुमायूं के पास मांडू संदेश भेज रहे थे तथा उससे सहायता और निश्चित आदेश चाहते थे। हुमायूं से कोई उत्तर न पाने पर अस्करी को हिन्दू बेग ने सुझाव दिया कि वह अपने नाम से खुतबा पढ़े, सिक्के चलाये तथा गुजरात का स्वतंत्र शासक बन जाये। अस्करी ने प्रकट रूप में यह विचार अस्वीकार कर दिया। पर उसके मन में इस अभिलाषा ने घर कर लिया जो उसकी एक दावत की घटना से स्पष्ट है जिसमें उसने शराब के नशे में कहा था, कि वह ईश्वर का प्रतिरूप है। इस तरह धीरे–धीरे हुमायूं से स्वतंत्र होने के भाव ने उसके हृदय में स्थान बना लिया था।

गुजरात स्वतंत्रता सेनानियों के विरूद्ध अस्करी ग्यारसपुर में युद्ध करना चाहता था पर यह स्थान उसे असुरक्षित लगा, और उसने हिन्दू बेग की सलाह से चम्पानेर को अपना केन्द्र बनाया। चम्पानेर में तरदी बेग ने उसे रहने का स्थान दिया था, परन्तु जब उसने धन की मांग की तो तरदी बेग ने हुमायूं की स्वीकृति की आवश्यकता बताई। इतना ही नहीं तरदी बेग ने मांडू में उसकी उपस्थिति की सूचना हुमायूं को दी, और बताया कि अस्करी के विचार पवित्र नहीं है। वह आगरा पर अधिकार करना चाहता है। अस्करी को इन परिस्थितियों के दबाव में चम्पानेर छोड़ कर आगरा की ओर प्रस्थान करना पड़ा।

Jain (Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हुमायूं को मालवा में अस्करी की आगरा यात्रा की सूचना मिली। इस स्थिति में वह भी आगरा की ओर रवाना हुआ जिससे वह अस्करी से पूर्व ही आगरा पहुंच जाय। आगरा के रास्तें में चित्तौड़ के निकट अस्करी और हुमायूं की भेंट हुई। दोनों भाइयों में पुनः मित्रता स्थापित हो गयी हुमायूं ने अस्करी तथा उसके अमीरों सभी को क्षमा कर दिया।

अस्करी हुमायूं के पास जाने के बजाय आगरा की तरफ क्यों रवाना हुआ? अबुलफजल तथा कुछ अन्य समकालीन इतिहासकारों का मत है कि अस्करी आगरा पर अधिकार करना चाहता था। उसके मन में जो भी इरादा हो, प्रकट रूप में उसने न खुतबा पढ़ा न अपने नाम से सिक्के चलाये, जैसा बाद में हिन्दाल ने किया। हो सकता है उसका इरादा आगरा में राजस्व धारण करने का था किन्तु उसे समय नहीं मिला। गुजरात के मुगल साम्राज्य से अलग हो जाने में काफी हद तक अस्करी उत्तरदायी था। उसने अपने व्यवहार से मुगल अमीरों को तो असंतुष्ट किया ही उसने गुजराती जनता के मन में मुगलों की अयोग्यता का प्रदर्शन भी कर दिया। विद्रोह होने पर उसका सामना करने की अयोग्यता दिखाकर, उसने गुजरात में मुगलों को अस्तित्व ही समाप्त कर दिया।

हिन्दू बेग के आश्वासन से शेरखाँ को विश्वास हो गया कि हुमायूं अब कुछ दिन उस पर आक्रमण नहीं करेगा। इसी बीच उसने बंगाल पर आक्रमण कर उस पर अधिकार करने का निश्चय किया। शेरखाँ ने कर न देने का दोष लगाकर बंगाल पर आक्रमण कर दिया। महमूद के लिए शेरखाँ का सामना करना सरल नहीं था। वह भागकर गौड़ में जा छुपा। शेरखाँ की सेना ने नगर की ओर प्रस्थान किया तथा उसके आस–पास के स्थानों पर अधिकार कर लिया।

14.8.4. बंगाल अभियान – जैसे ही हुमायूं को शेरखाँ के अभियान की सूचना मिली, उसने बंगाल पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। आक्रमण से पहले उसने दिल्ली, आगरा आदि अनेक स्थानों का समुचित प्रबंध किया और हिन्दाल के साथ 27 जुलाई, 1537 ई. को आगरा से रवाना हुआ। उसके साथ उसकी बेगमें तथा साम्राज्य के प्रमुख अमीर रूमीखाँ, तर्दीबेग, बैरमखाँ, कासिम हुसैनखाँ, जाहिद बेग, जहाँगीर कुलीबेग इत्यादि थे। अधिकतर अमीर नदी के मार्ग से रवाना हुए किन्तु सेना का मुख्य भाग स्थल मार्ग से चला। हुमायूं कभी जल मार्ग से नाव पर चलता था तथा कभी घोड़े पर स्थल मार्ग से। हुमायूं के आक्रमण की सूचना पाते ही शेरखाँ ने इसका प्रतिवाद किया और कहा कि उसने मुगलों के विरूद्ध कोई कार्य नहीं किया। पर हुमायूं ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया और आगे बढ़ गया। हुमायूं के अभियान से शेरखाँ चिंतित हुआ। उसने गौड़ के घेरे का प्रयत्न किया तथा वहां ख्वासखाँ को नियुक्त किया। चुनार के दुर्ग की रक्षा का उत्तरदायित्व उसने अपने पुत्र कुतुबखाँ तथा अन्य अफगानों को सौंपा। शेरखाँ स्वयं भरकुण्डा में अफगान परिवारों के साथ चला गया। बाहर से वह दोनों दुर्गों पर तथा हुमायूं की गतिविधि पर दृष्टि रख सकता था। आगरा से चलकर हुमायूं 1537 ई. में चुनार पहुंचा।

14.8.5. चुनार का दूसरा घेरा – जिस समय हुमायूं चुनार के दुर्ग को घेरे हुए था उसी समय शेरखाँ की सेना गौड़ को घेरे हुए थी। गौड़ में बंगाल के शासक का राजकोष था। हुमायूं के बंगाल पहुंचने के पूर्व यदि शेरखाँ गौड़ पर अधिकार कर लेता है तो उसे यह कोष, आभूषण तथा यश भी प्राप्त होता, जिससे उसकी शक्ति बढ़ जाती। पर हुमायूं ने अपने अनुभवी अमीरों की सलाह को न मानकर नौजवान अमीरों की सलाह मानी और चुनार पहुंच कर चारों ओर से घेरा डाल दिया। हुमायूं को चुनार पर अधिकार करने में लगभग 6 महीने लगे। इसी बीच शेरखाँ ने गौड़ पर अधिकार कर कोष को सुरक्षित स्थान से हटा दिया तथा कुछ ही दिनों में हुमायूं को पराजित करने में सफल हुआ।

इस दुर्ग पर अधिकार करने का उत्तरदायित्व रूमीखाँ पर डाला गया। रूमीखाँ ने स्वयं दुर्ग का निरीक्षण किया। उसने देखा कि किले के भाग इतने दृढ़ थे कि सफलता मिलना कठिन है। दुर्ग के कमजोर स्थान का पता लगाने के लिए उसने एक अबीसीनियाई दास कुलाकात को बुरी तरह बेतों से मारा। बुरी अवस्था में कुलाकात चुनार के दुर्ग के पास गया और उसने रूमीखाँ के व्यवहार की निन्दा की और अपने सेवायें चुनार के दुर्गपति को अर्पित की। अफगानों ने उसके प्रति सद्भावना दिखलाई उसके घावों की मरहम–पट्टी की और दुर्ग की आंतरिक कमजोरियों का ज्ञान हो गया और रूमीखाँ ने अपना कार्य करना शुरू कर दिया। उसकी योजना दुर्ग पर तोपों की सहायता से अधिकार करने की थी। रूमीखाँ ने नौकाओं पर एक मुकबिलकोब या सरकोब तैयार करवाया। यह एक तैरता हुआ तोपखाना था जो काफी ऊँचा था जिससे किले के पास की दीवाल को सरलता से उड़ाया जा सकता था। स्थल मार्ग से भी आक्रमण करने का प्रबंध किया गया था। सम्पूर्ण प्रबंध हो जाने के बाद दोनों पक्षों में भीषण संग्राम हुआ जिसमें अफगानों ने बड़ी वीरता दिखलाई। 700 मुगल मारे गए, रूमीखाँ के सरकोब का एक भाग टूट गया। उसकी मरम्मत कराने के बाद दूसरे दिन आक्रमण करने का पुनः प्रबंध किया गया। अफगानों ने दुर्ग

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

को बचाना असंभव जानकर दुर्ग को समर्पित कर दिया। दुर्ग के समर्पण के बाद बहुत से अफगान तथा सैनिक बंदी बनाये गए। जौहर के अनुसार 300 तोपचियों के हाथ काट लिए गए जिससे भविष्य में वे अपने अनुभव का पुनः प्रयोग न कर सकें जिसके लिए हुमायूं को आंशिक रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। अबुल फजल इस हत्या का उत्तरदायित्व मुईद बेग चुगदाई पर डालता है। जौर रूमीखाँ पर उत्तरदायित्व डालता है। विजय के हर्ष में रूमीखाँ को दुर्ग का गवर्नर बनाया गया पर कुशल साथियों ने ईर्ष्यावश जहर देकर मार डाला।

14.8.6. शेरखाँ का रोहतास के दुर्ग पर अधिकार – जिस समय हुमायूं चुनार के किले पर घेरा डाले हुए था, उसी बीच शेरखाँ ने गौड़ दुर्ग के घेरे को ओर भी कठोर कर दिया। बिहार तथा बंगाल के अधिकांश भागों पर उसने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। जलालखाँ तथा ख्वासखाँ को गौड़ के घेरे का उत्तरदायित्व सौंप कर शेरखाँ पुनः भरकुण्डा के निकट पहुंच गया।

शेरखाँ ने इसी बीच अनुभव किया कि भरकुण्डा का दुर्ग उसके तथा अन्य अफगानों के परिवारों को सुरक्षित रखने के लिए काफी नहीं था। गौड़ में प्राप्त धन इत्यादि रखने की भी समस्या थी। इस दृष्टि से रोहतास का दुर्ग बहुत ही उपयुक्त प्रतीत हुआ। यद्यपि रोहतास के दुर्ग के राजा से शेरखाँ की मित्रता थी लेकिन उसका ब्राह्मण मंत्री चूणामणि उसका परम मित्र था। जागीर सम्बन्धित संघर्ष के समय शेरखाँ के भाई निजाम ने अपने परिवार के साथ यहीं शरण ली थी। शेरखाँ की प्रार्थना पर और अपनी कठिनाइयों का उल्लेख करने पर चूणामणि ने राजा को शरण देने के लिए प्रार्थना की, जिस पर राजा ने कुछ दिनों के लिए स्वीकृति प्रदान कर दी थी। किन्तु परिवार के पहुंचने पर राजा ने प्रवेश की अनुमति नहीं दी। जिस पर शेरखाँ ने राजा को चेतावनी दी कि यदि हुमायूं ने वहां पहुंचकर अफगानों को नष्ट किया तो उसका उत्तरदायित्व आपके ऊपर होगा। किले में शरण देने के लिए रिश्वत के रूप में शेरखाँ ने 6 मन सोना दिया और उसे धमकाया कि यदि उसे दुर्ग न दिया गया तो वह हुमायूं से मिलकर संयुक्त रूप से हमला कर देगा। दूसरी तरफ चूणामणि ने राजा को धमकाया कि यदि मेरा वचन आपने भंग किया तो आत्महत्या कर लूंगा। राजा ने विवश होकर अफगानों को प्रवेश करने दिया। अफगानों को शेरखाँ ने डोलियों में छिपाकर दुर्ग में भेजा तथा शक्ति के बल पर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार के संकट के समय शरण देने वाले राजा के साथ शेरखाँ ने जो धोखा किया वह उसके चरित्र पर बहुत बड़ा कलंक है।

14.8.7. बनारस विजय तथा शेरखाँ से सन्धि वार्ता – चुनार पर अधिकार करने के बाद हुमायूं ने बनारस पर अधिकार कर लिया, तत्पश्चात् मुगल सेना आगे बढ़कर सोन नदी के तट पर मनेर पहुंची। जौहर के अनुसार उसका इरादा भरकुण्डा के दुर्ग की तरफ जाने का था जहां से शेरखाँ बंगाल तथा बिहार की सेनाओं को नियंत्रित कर रहा था। लेकिन मनेर पहुंच कर हुमायूं ने शेरखाँ से सन्धि करने का विचार किया, जबकि चुनार विजय के बाद अफगानों को पराजित करने का संकल्प करना चाहिए था। जिसके लिए हुमायूं ने काबुल हुसैन तुर्कमान को अपना दूत बनाकर भेजा तथा उसने सन्धि की निम्नलिखित शर्तें रखीं–

1. शेरखाँ मुगलों की सेवा में हाजिर होगा।
14. बंगाल के शासन से प्राप्त राजछत्र तथा अन्य राज्य चिन्ह मुगल सम्राट को देगा।
3. रोहतास तथा बंगाल से अपने अधिकारों को त्याग देगा।
4. चुनार, जौनपुर या जो अन्य जागीर शेरखाँ पसन्द करे उसे प्राप्त होगी।

पर शेरखाँ जैसे व्यक्ति के लिए इन उपर्युक्त शर्तों को मानना असंभव था। अतः शेरखाँ ने कूटनीति का उत्तर कूटनीति में ही देने का विचार किया, क्योंकि इन शर्तों को स्वीकार करने का अर्थ यह था कि अफगान संगठन नष्ट हो जाय और पूर्ण रूप से मुगलों के आधीन हो जाए। सन्धि की शर्तों को ठुकरा देने पर युद्ध की संभावना थी जिसके लिए शेरखाँ तैयार नहीं था क्योंकि गौड़ में प्राप्त धन को वह हटाना चाहता था। अतः शेरखाँ ने हुमायूं के प्रस्ताव के विरोध में दूसरा प्रस्ताव रखा जिसमें शेरखाँ ने मुगल सम्राट को प्रति वर्ष 10 लाख रुपया, बिहार प्रदेश समर्पित करने का वचन दिया और स्वामिभक्त बने रहने का आश्वासन दिया।

हुमायूं ने शर्तों को मानकर उपहार स्वरूप शेरखाँ के लिए घोड़ा तथा खिलअत भेजा। पर दुर्भाग्यवश हुमायूं को गौड़ के पतन की सूचना मिली। पहले बंगाल के पराजित शासक महमूद ने अपने राजदूत को भेजा फिर स्वयं मुगल सम्राट के पास आया और हुमायूं से प्रार्थना की कि वह शेरखाँ को पराजित करे जिसमें हम पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे। अतः मुगल सम्राट ने सन्धि को भंग कर दिया क्योंकि शेरखाँ ने न तो अभी तक मुगलों को कोई इलाका ही दिया था और जब मुगल सेना रोहतास

पहुंची तो उसे निराश होकर वापस लौटना पड़ा था। इस प्रकार सन्धि को तोड़ने का फल बुरा हुआ। हुमायूं अफगानों के सामने झूठा और कमजोर साबित हुआ और शेरखाँ अधिक समय पाकर अपनी शक्ति का संचय करता रहा पर यह मुगल सम्राट का दुर्भाग्य था कि वह शेरखाँ की इस चाल को समझ न सका और शक्ति संचित करने का उसे अधिक से अधिक मौका दिया।

14.8.8. हुमायूं का बंगाल में प्रवेश – सन्धि वार्ता की विफलता के बाद हुमायूं ने अपनी सेना को बंगाल अभियान के लिए दो भागों में बांटा। सईद बेग, तरदी बेग और जहाँगीर कुली के नेतृत्व में 30,000 अश्वारोहियों का दल आगे–आगे चला। दूसरा दल हुमायूं के नेतृत्व में अग्रणी दल के सात कोस पीछे चला। कुछ सेना जल मार्ग से चली। पटना तक हुमायूं उसी मार्ग से गया जहां से गंगा के निकट की ओर हमला करने का सरल मार्ग था। इसी समय हुमायूं ने कासिम हुसैन सुल्तान को पटना का गवर्नर नियुक्त किया और मुंगेर की तरफ मुगल सेना को बढ़ने की आज्ञा दे दी जिस समय हुमायूं पटना के निकट था, सईद बेग के जासूसों ने सूचना दी की शेरखाँ रास्ते में मिले हुए सईफ खाँ के परिवार को रोहतास लेकर चला गया दूसरी ओर मुगलों को रोकने का उत्तरदायित्व सईफखाँ ने स्वयं लिया फिर दूसरे दिन मुगल सेना शेरखाँ का पीछा करती हुई आगे बढ़ी पर मार्ग में गूंगारधर पर सईफ खाँ ने तीन भाइयों समेत मुगलों से युद्ध किया जिसमें दोपहर के बाद सभी मारे गये। घायल अवस्था में हुमायूं के सामने सईफ को पेश किया गया। हुमायूं ने उसके बहादुरी और स्वामिभक्ति की प्रशंसा कर छोड़ दिया। पटना से मुंगेर होता हुआ हुमायूं भागलपुर पहुंचा। जहां से बैरमखाँ और जहाँगीर कुली बेग की अध्यक्षता में कलह गांव के निकट गढ़ी पर भेजा, पर सूचना मिली की अफगानों ने सुल्तान महमूद के दोनों पुत्रों को मार डाला है। अतः प्रिय पुत्रों के आघात वश पिता महमूद की भी मृत्यु हो गयी। हुमायूं कहल गांव से तेलिया गढ़ी पहुंचा। जहां पर शेरखाँ ने 13,000 चुने हुए सैनिकों के साथ अपने बेटे जलालखाँ को नियुक्त कर रखा था। जलाल को यह सख्त आज्ञा थी कि जब तक कोष रोहतास न चला जाये वह मुगल सेनाओं को रोके रहे। ख्यासखाँ, जलालखाँ का सहायक था। जलाल ने दर्रे की चोटियों के चारों ओर तोपें लगा रखीं थी जिससे आती हुई मुगल सेना का डटकर सामना किया जा सके।

मुगलों ने तेलियागढ़ी के कुछ दूर पर अपना पड़ाव डाला और अफगानों को बाहर आने के लिए उत्तेजित करते रहे। जबकि दूसरी ओर शेरखाँ की कठोर आज्ञा घेरे से बाहर न निकलने की थी। जब जलालखाँ मुगलों की घृणित कार्यवाहियों से बहुत परेशान हो गया तब आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। जब मुगल सैनिक अपने खेमें में आराम कर रहे थे जलालखाँ ने तोपखाना तथा 6000 घुड़सवारों के साथ (1538 ई. जुलाई–अगस्त) मुगलों पर आक्रमण कर दिया। जिसमें बहुत से मुगल मारे गये और भाग कर कहल गांव में हुमायूं को सूचना दी। उसी समय आंधी और पानी ने स्थिति को और भी गंभीर बना दिया। मुगलों को एक महीना तक सफलता नहीं मिली। इसी बीच शेरखाँ ने कोष को रोहतास के दुर्ग में पहुंचा दिया और अफगान सेना अपने आप दर्रे से हट गयी। हुमायूं ने बिना किसी कठिनाई के दर्रे पर अधिकार कर लिया जहां बहुत से आदमियों की लाशें पड़ी थी जिसे हुमायूं ने दफनवा दिया और प्रबंध के लिए अमीरों को नियुक्त किया और गौड़ का नाम जन्नताबाद कर दिया। जलवायु पसन्द होने के नाते हुमायूं यहां कई महीने निवास करता रहा, जबकि राजधानी की स्थिति बड़ी ही गंभीर थी।

14.8.9. चौसा का युद्ध (1539 ई.) – हुमायूं ने अपनी शक्ति में वृद्धि हेतु कुछ समय पाने के लिए शेख खलील को दूत बनाकर सन्धि के लिये शेरखां के पास भेजा, किन्तु शेरखां ने इन्कार कर दिया। अंत में 26 जून, 1539 ई. को चौसा नामक स्थान पर हुमायूं तथा शेरखां के बीच युद्ध हुआ। युद्ध में हुमायूं ने वीरता का परिचय दिया, किन्तु सैनिकों के पूर्ण सहयोग न देने के कारण परास्त हुआ। असहाय होकर हुमायूं जान बचाने के लिये घोड़े सहित गंगा में कूद पड़ा। इस समय निजाम नामक भिश्ती ने उसकी प्राणरक्षा की। अतः हुमायूं ने उसे दो दिन के लिये हिन्दुस्तान का बादशाह बना दिया। इस पराजय से हुमायूं की प्रतिष्ठा को गहरी क्षति पहुंची तथा शेरखां का गौरव बढ़ा। हुमायूं बड़ी कठिनाई से आगरा पहुंचा। शेरखां ने हुमायूं की बन्दी बेगमों को बाइज्जत वापस पहुंचा दिया।

बिलग्राम अथवा कन्नौज का युद्ध (1540 ई.)

आगरा पहुंचकर हुमायूं ने अपने भाइयों से सहयोग मांगा। कामरान ने इन्कार कर दिया और लाहौर लौट गया। अस्करी भी उसके प्रति उदासीन रहा। ऐसी परिस्थिति में हुमायूं ने 9,000 सैनिक एकत्रित किये और कन्नौज की तरफ बढ़ा। शेरखां भी सेना सहित वहां पहुंच गया। दोनों पक्षों में हुए भयंकर युद्ध में हुमायूं पुनः परास्त हुआ। इसके बाद हुमायूं भारत में इधर से उधर ठोकरें खाता रहा। अंत में उसे शेरखां ने भारत छोड़ने के लिए विवश कर दिया। शेरखां ने दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार कर स्वयं को सम्राट घोषित किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.8.10. हुमायूं की असफलता के कारण – शेरखां तथा हुमायूं के बीच लम्बा संघर्ष चला, जिसमें अंत में हुमायूं को परास्त होकर भारत छोड़ना पड़ा। हुमायूं की असफलता के प्रमुख कारण निम्न थे–

1. हुमायूं चारित्रिक दृष्टि से दुर्बल था। वह रंगरेलियों में डूब जाया करता था। वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रयत्न नहीं करता था, जिससे शत्रु अपनी शक्ति बढ़ा लेता था।

2. हुमायूं अदूरदर्शी था। उसने शेरखां के विरूद्ध कई भूलें की। उसने शेरखां की बढ़ती शक्ति के प्रति उदासीन रूख अपनाया तथा हिन्दू बेग द्वारा शेरखां के सम्बन्ध में दी गई रिपोर्ट पर बिना किसी जांच पड़ताल के विश्वास कर लिया। गौड़ की अपेक्षा चुनार को घेरकर उसने मूर्खता का परिचय दिया। गौड़ पर अधिकार करने के बाद वह रंगरेलियां मनाने लगा, जिससे शेरखां को अपनी शक्ति में वृद्धि करने का अवसर मिल गया।

3. हुमायूं के भाइयों ने उसके साथ असहयोग किया। चौसा के युद्ध से पहले हिन्दाल ने आगरा में विद्रोह करके हुमायूं के लिए नयी कठिनाई उत्पन्न कर दी। कामरान ने हुमायूं की सहायता की प्रार्थना को ठुकरा दिया। यदि हुमायूं को अपने भाइयों का सहयोग मिला होता, तो उसे दर–दर की ठोकरें नहीं खानी पड़ती।

4. मुगल सैनिकों तथा कर्मचारियों ने हुमायूं के साथ दगा किया। हिन्दू बेग तथा शेख खलील ने शेरखां से मिलकर हुमायूं को धोखे में रखा तथा शाही सैनिकों ने कन्नौज तथा चौसा के युद्धों में शेरखां का पक्ष लिया।

5. हुमायूं अयोग्य सेनानायक एवं चारित्रित दृष्टि से दुर्बल था, जबकि शेरखां चतुर, महत्वाकांक्षी तथा कुशल सेनानायक था।

14.9. हुमायूं का निर्वासनकाल :

कन्नौज के युद्ध में परास्त होने के बाद हुमायूं भागकर आगरा गया। शेरखां ने उसका पीछा किया। वह आगरा से दिल्ली व लाहौर पहुंचा। यहां उसकी सहायता की अपील को उसके भाइयों ने ठुकरा दिया। शेरखां उसका पीछा कर रहा था। अब वह सिन्ध पहुंचा, जहां शाह हुसैन अरगुन का अधिकार था उसने सिन्ध में भक्कर तथा सहवान के दुर्गों पर अधिकार करने का असफल प्रयास किया। 1541 ई. में उसने अपने भाई हिन्दाल के धर्मगुरु अकबर जामी की चौदह वर्षीय पुत्री हमीदा बानू से विवाह कर लिया। सिन्ध में परेशान होकर हुमायूं ने जोधपुर प्रस्थान किया।

14.9.1. जोधपुर प्रस्थान – विवाह से कुछ समय पहले हुमायूं को जोधपुर नरेश मालदेव ने एक निमंत्रण द्वारा उसे शेरखां के विरूद्ध दो हजार सैनिकों की सहायता देने का वचन दिया था। जोधपुर पहुंचने पर उसे मालदेव के विश्वासघाती होने की जानकारी मिली। अतः उसने फिर सिन्ध की तरफ प्रस्थान किया।

14.9.2. अकबर का जन्म – सिन्ध के मार्ग में हुमायूं अमरकोट नामक स्थान पर रूका। वहां के राजपूत राजा ने उसका स्वागत करते हुए उसे सहायता देने का भी वचन दिया। यहां 15 अक्टूबर, 1542 ई. को अकबर का जन्म हुआ। इस शुभअवसर पर हुमायूं के पास केवल कस्तुरी की एक मंजूषा थी। उसने अपने मित्रों में कस्तुरी बांटी तथा अपने पुत्र के नाम की कस्तुरी की सुगन्ध की तरह सारे संसार में फैलने की कामना की।

14.9.3. कन्धार में हुमायूं – पुत्र जन्म के बाद राजपूतों की मदद से हुमायूं ने भक्कर विजय का असफल प्रयत्न किया। अंत में दोनों में सन्धि हो गयी, जिसके अनुसार भक्कर के राजा ने हुमायूं को सुरक्षित कन्धार पहुंचा दिया। कन्धार पर हुमायूं के भाई कामरान का शासन था। उसने हुमायूं की मदद करने के स्थान पर उसे बन्दी बनाने एवं उसका मार्ग रोकने का प्रयास किया। हुमायूं बड़ी मुश्किल से किसी तरह ईरान पहुंचा।

14.9..4 ईरान में हुमायूं – हुमायूं ने अकबर को कन्धार में किसी सुरक्षित स्थान पर छोड़ दिया था। ईरान के शासक तहमास्प ने उसका भव्य स्वागत किया। वैराम खां के प्रयत्नों से हुमायूं तथा तहमास्प के बीच सन्धि हो गई, जिसके द्वारा निश्चित किया गया कि–

1. तहमास्प हुमायूं को काबुल, बुखारा तथा कन्धार विजय में सहायता देगा।

2. इन प्रदेशों पर अधिकार करने के बाद हुमायूं कन्धार का प्रदेश तहमास्प को दे देगा।

3. हुमायूं शिया मत को अपनाकर उसे अपने राज्य में फैलाएगा। बदायूंनी के अनुसार, "दोनों सम्राटों में मेल हो जाने के उपरान्त शाह ने हुमायूं से शिया धर्म स्वीकार करने को कहा और हुमायूं ने इस दिशा में कदम भी उठाया। उसने फारस में शिया धर्म से सम्बन्धित स्थानों तथा हजरत अली के मजार की यात्रा की।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.9.5. काबुल एवं कन्धार विजय – ईरान के शासक की मदद से हुमायूं ने काबुल एवं कन्धार पर अधिकार कर लिया। उसने असाधारण वीरता दिखाते हुए बदख्शां के सूबेदार सुल्तान मिर्जा को भी अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया। उसने मध्य एशिया में अपने पिता के खोये हुए प्रदेशों पर अधिकार करने का प्रयत्न किया, किन्तु बलख से आगे नहीं बढ़ सका। अब उसने भारत विजय का निश्चय किया।

14.10 हुमायूं का दिल्ली की गद्दी पर पुनः आरूढ़ होना :

नवम्बर, 1554 ई. में अपने पश्चिमोत्तर एवं विजित क्षेत्रों को सुदृढ़ कर हुमायूं ने भारत की ओर प्रस्थान कर दिया। प्रतापी शेरशाह, जिसने हुमायूं को भारतीय सम्राट को पद से हटा दिया था, मई 1545 ई. में इस संसार से विदा हो चुका था। शेरशाह के उत्तराधिकारी इस्लामशाह, फिरोजशाह अथवा आदिलशाह में इतनी योग्यता न थी कि वे विशाल भारतीय साम्राज्य को संगठित कर अपने अधिकार में रखते। वैसे इस्लामशाह कुछ अंश में शेरशाह को उचित उत्तराधिकारी था और वह अपने पिता की श्रेष्ठ शासन–नीति पर चलकर प्रजा की सुख–सुविधा का ध्यान रखते हुए शासन करने में सफल रहा था, किन्तु सरदारों को अपने अधीन रखने में उसे पूरी सफलता प्राप्त न हो सकी। अस्तु, उसकी मृत्यु के पश्चात् अफगान साम्राज्य का पतन आरंभ हो गया। इस्लामशाह के उत्तराधिकारी पुत्र फिरोजशाह की हत्या कर मुवारीज खां जो रिश्ते में उसका मामा लगता था, आदिलशाह के नाम से दिल्ली की गद्दी पर आरूढ़ हुआ। आदिलशाह स्वभाव से भोग–विलास प्रिय एवं आलसी शासक था। उसने शासन के सारे कार्यो को अपने वजीर हेमू को सौंप दिये और स्वयं निश्चिंत होकर चुनार में जाकर रहने लगा था। परिस्थितियां भी सूर शासकों के विरूद्ध थी और इब्राहिम शाह तथा सिकन्दर शाह के जैसे अनेक अफगान सरदार आदिल शाह के अधिकार को चुनौती दे रहे थे। इस प्रकार अफगान सरदारों की आपसी फूट के कारण ही शेरशाह द्वारा स्थापित अफगान साम्राज्य की जड़ हिल गयी थी। भारत की राजनीतिक स्थिति इतनी डावांडोल थी कि हुमायूं के लिए भारत की गद्दी को फिर से प्राप्त कर लेना अथवा भारत में पुनः मुगल साम्राज्य की स्थापना करना आसान हो गया।

भारत पर पुनः अपनी सत्ता को स्थापित करने के उद्देश्य से हुमायूं ने अपनी सेना को सुसंगठित किया। इस कार्य में उसे अपने परम विश्वासपात्र अधिकारी वैरम खां तथा अनेक सैनिक अधिकारियों का सहयोग प्राप्त हुआ। कालानौर नामक स्थान पर उसने अपनी फौज को तीन भागों में विभाजित कर उनमें से एक को सिहाबुद्दीन के नेतृत्व में लाहौर की ओर भेजा तथा दूसरे को बैरम खां के नेतृत्व में हरियाणा क्षेत्र के अफगान प्रधान नवीब खां को पराजित करने के लिए भेजा। 24 फरवरी, 1555 ई. को मुगल सेना बिना किसी प्रतिरोध के लाहौर में प्रवेश कर गयी। मुगलों ने सहबाज खां को पराजित कर दिपालपुर तथा नसिब खां को हराकर हरियाणा पर भी अपना अधिकार कर लिया। अब पंजाब, सरहिन्द, दिपालपुर, हिसार, हरियाणा आदि के क्षेत्र पूर्ण रूप से हुमायूं के कब्जे में आ गये। मुगलों की विजयी सेना हर्ष के साथ दिल्ली पर अधिकार करने के उद्देश्य से आगे बढ़ी।

14.11. मच्छिवाडा का निर्णायक युद्ध :

उन दिनों दिल्ली पर सिकन्दर शाह का अधिकार था। सिकन्दर शाह ने तातार खां तथा हेबात खां के नेतृत्व में लगभग तीस हजार अफगान सैनिकों को मुगल सेना पर आक्रमण करने के लिए भेजा। दोनों सेनाएं लुधियाना से लगभग 9 मील पूर्व सतलज के किनारे मच्छिवाडा नामक स्थान पर आ डटी। अफ्गान सैनिकों की तुलना में मुगल सैनिकों की संख्या कम थी, फिर भी उन्होंने जोश के साथ आगे बढ़ना चालू रखा ओर 15 मई, 1555 ई. की संध्या में दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध छिड़ गयी। अफगानों ने वाणों की वर्षा द्वारा युद्ध आरम्भ किया, किन्तु अंधेरा हो चला था। इसलिए मुगलों पर उनके वाणों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मुगलों ने अफगानों पर भयंकर गोलीबारी की। अफगान गोलाबारी से बहुत भयभीत हुए और उन्होंने भागकर पास के एक गांव में शरण ली। चूंकि हिन्दुस्तान के गांव के अधिकतर घरों पर छप्पर पड़े होते हैं इसलिए गोलेबारी से उसमें आग लग गयी और युद्ध क्षेत्र प्रकाशित हो उठा। मुगल धमुर्धारियों ने निकल कर जलते हुए प्रकश में जी भरकर अपने हथियार प्रयोग किया। अग्नि के प्रकाश में भलीभांति शत्रु को अपने वाणों का लक्ष्य बना सके। अफगान और अधिक न डट सके और वे भाग खड़े हुए।

मच्छिवाडा की सफलता मुगलों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभावित हुई। उन्हें लूट में अनेक हाथी, अस्त्र–शस्त्र तथा बहुत–सा धन प्राप्त हुआ। इस युद्ध के पश्चात् लगभग सम्पूर्ण पंजाब सरहिंद, हिसार फिरोजा तथा दिल्ली के कुछ क्षेत्रों पर हुमायूं का अधिकार हो गया। इस युद्ध ने सिकन्दर शाह के महत्वाकांक्षी पर पानी फेर दिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.12 सरहिन्द का युद्ध :

मच्छिवारा की पराजय को सिकन्दर शाह सहज ही स्वीकार करने को तैयार नहीं था। मुगलों से प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से तथा सरहिन्द को पुनः अपने अधिकार में कर लेने की इच्छा से 27 अप्रैल, 1555 ई. को सिकन्दर शाह ने अस्सी हजार घुड़सवार और हाथी तथा तोपखाना लेकर दिल्ली से सरहिन्द की ओर कूच किया। मुगलों ने भी संगठित होकर सिकन्दर शाह का सामना किया। सरहिन्द के निकट दोनों सेनाओं के बीच 22 जून को भयंकर लड़ाई छिड़ गयी। कुछ दिनों तक दोनों सेनाओं के शाही योद्धाओं ने एक–दूसरे को चुनौती दी और अपने पराक्रम का प्रदर्शन किया और अंत में राजकुमार अकबर ने सेना के अग्रभाग को युद्ध के लिए खड़ा कर दिया। एक दल ने बैरम खां की अधीनता में एक ओर से तथा दूसरे दल ने इस्लाम खां की अधीनता में दूसरी ओर से शत्रु सेना पर आक्रमग किये। युद्ध में सभी अमीरों ने अदम्य साहस तथा दृढ़ संकल्प का परिचय दिया। अफगानों की संख्या एक लाख थी, फिर भी वे परास्त हुए क्योंकि साहस में वे घटिये थे। युद्ध में पराजित होकर सिकन्दर भाग खड़ा हुआ।

विजेताओं ने शत्रु सेना का पीछा किया और उनमें से अनेक को मार डाला। लूट का अतुल धन लेकर वे सम्राट् की सेना में उसे बधायी देने के लिए उपस्थित हुए। सम्राट् की आज्ञा से विजय का एक फरमान निकाला गया जिसमें से विजय का श्रेय अकबर को दिया गया और चारों ओर उसे घुमाया गया।

14.13. हुमायूं का दुबारा भारत का सम्राट बनना :

फरिश्ता के शब्दों में, "इस युद्ध ने साम्राज्य के भाग्य का निर्णय कर दिया और दिल्ली का राज्य सदा के लिए अफगानों के हाथ से निकल गया।" इस महान् विजय के पश्चात् हुमायूं ने अपनी विजय सेना के साथ सरहिन्द को पदार्पण किया। उसने सिकन्दर खां उजवेग को दिल्ली पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। दिल्ली के अफगान नेता मुगलों का मुकाबला करने में असफल रहे और उन्हें भागना पड़ा। सिकन्दर खां उजवेग ने दिल्ली के ऊपर अधिकार कर लिया। एक मुगल सेना को मीर अब्दुल माली के नेतृत्व में सिकन्दर खां सूर को, जो सरहिन्द की पराजय के पश्चात् शिवालिक के पहाड़ियों में भाग गया था, पकड़ने के लिए लाहौर भेजा गया। दिल्ली पर मुगल सेना का अधिकार हो जाने के पश्चात् रमजान के महीने में (23 जुलाई, 1545 ई.) सम्राट् हुमायूं ने धूमधाम के साथ दिल्ली में प्रवेश किया और एक बार फिर हिन्दुस्तान में उसके नाम के खुतने पढ़े गये तथा सिक्के ढाले गये। गद्दी पर बैठने के बाद उसने अपने अमीरों, सैनिकों तथा गैर–सैनिक अधिकारियों को राज दरबार में सम्मानित किया था तथा उन्हें उदारतापूर्वक पुरस्कृत किया। बैरम खां को पंजाब का गवर्नर नियुक्त किया गया। आगरा तथा इसके आसपास के क्षेत्रों पर पुनः अधिकार करने के प्रयत्न किये गये और थोड़े ही समय में हुमायूं ने अपने खोये हुए साम्राज्य के अनेक हिस्सों पर पुनः अपना अधिकार कर लिया।

14.14. हुमायूं की अंतिम योजनाएं एवं मृत्यु :

दिल्ली की गद्दी पर पुनः आरूढ़ होने के पश्चात् राज्य के कार्यों की देखभाल में जुट गया। उसने मुगल सैनिकों को विभिन्न प्रान्तों पर आधिपत्य स्थापित करने के उद्देश्य से भेजा और उनके प्रगति का निरीक्षण किया। इस काल में उसने मुगल शासन व्यवस्था के अनेक दोषों को भी सुधारने का प्रयत्न किया। वस्तुतः मुगलों की गद्दी को पुनः प्राप्त करने के पश्चात् हुमायूं ने अनुभव किया कि उसके सामने कुछ ऐसी प्रज्ज्वलित समस्याएं थीं जिन्हें सुलझाये बगैर वह शांति से शासन नहीं कर सकता था। अभी तक साम्राज्य के अनेक क्षेत्र उसके अधीन नहीं हो पाये थे और सम्पूर्ण साम्राज्य में अफगान तथा अन्य विद्रोहियों ने झण्डे गाड़ रखे थे। अस्तु शक्तिशाली हाथों से इन विद्रोहों का दमन कर साम्राज्य में शांति–सुव्यवस्था तथा राजनीतिक एकता लाना उनके लिए अत्यन्त अनिवार्य था। हुमायूं को अपनी पहली समस्या के समाधान में विशेष कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा और जल्द ही उसने मुगल सत्ता की स्थापना हेतु अपने सैनिक कार्य प्रारम्भ कर दिये। किन्तु, शासन व्यवस्था को अच्छे ढंग से स्थापित कर प्रजा की सहानुभूति प्राप्त करने का उसने शायद कोई प्रयत्न नहीं किया। वैसे कुछ विद्वानों का मत है कि उसने इसकी योजना बनायी थी। इस योजना के अनुरूप साम्राज्य को अनेक भागों में विभक्त करना, प्रत्येक भाग के लिए एक राजधानी तथा स्थानीय विषयों के संचालन के लिए एक प्रशासक मण्डल की स्थापना करना था। इस योजना के अनुरूप जो राजधानियां निश्चित की गयीं उनमें दिल्ली, आगरा, कन्नौज, माण्डू और लाहौर उल्लेखनीय थे। इनमें से प्रत्येक में एक योग्य सेना नायक के अधीन एक शक्तिशाली सैनिक दल की स्थापना की बात सोची गयी जिससे उसे दूसरों की सहायता पर निर्भर न रहना पड़े, किन्तु हुमायूं में आवश्यक दृढ़ता तथा अध्यवसाय की कमी के कारण अथवा समयाभाव के कारण ये योजनाएं कार्यान्वित नहीं की जा सकीं। सम्राट् का अंत अब निकट आ चुका था। 24 जनवरी, 1556 ई. को जब अपनी पुस्तकालय में हुमायूं अजान का शब्द सुनकर तेजी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

से पुस्तकालय की सीढ़ियों से उतरने लगा तो उसके पैर फिसल गये और वहां से गिर जाने के कारण उसको इतनी गहरी चोट आयी कि 27 जनवरी को संध्याकाल में उसकी मृत्यु हो गयी। हुमायूं की मृत्यु पर विचार व्यक्त करते हुए इतिहासकार लेनपूल ने स्मरणीय वाक्य कहा है–''हुमायूं गिरते–पड़ते इस जीवन से मुक्त हो गया – ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सम्पूर्ण जीवन काल में वह गिरते–पड़ते चल रहा था।'' अपने जीवन के अंतिम दिनों में हुमायूं ने अकबर को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था।

14.15. हुमायूं की असफलता के कारण :

मुगल शासकों में सर्वाधिक ठोकरें हुमायूं को खानी पड़ी थी। यद्यपि उसे विरासत में असंगठित साम्राज्य और रिक्त राजकोष मिला था, जो किसी योग्यतम शासक को भी असफलता के द्वार पर पहुंचा सकते हैं, लेकिन स्वयं हुमायूं की व्यक्तिगत दुर्बलता और तात्कालिक परिस्थितियां भी उसकी असफलता का कारण सिद्ध हुई। समग्र रूप में हुमायूं की असफलता के निम्नलिखित कारण बताये जा सकते हैं–

14.15.1. व्यक्तिगत दुर्बलताएं – यह सत्य है कि बाबर ने एक अस्त–व्यस्त साम्राज्य छोड़ा था, जिसके चारों ओर शत्रु सिर उठा रहे थे। किन्तु हुमायूं की व्यक्तिगत दुर्बलताओं ने भी स्थिति को अधिक विषम बना दिया था। जिन विषम परिस्थितियों में हुमायूं ने गद्दी प्राप्त की थी, उसे अपने साम्राज्य को संगठित करना चाहिए था तथा अपने शत्रुओं से डटकर मोर्चा लेना चाहिये था, जबकि उसने मूर्खतावश अपने भाइयों में साम्राज्य का विभाजन करके साम्राज्य की रही सही एकता को भी समाप्त कर दिया। पंजाब और काबुल कामरान को दे देने से उसकी शक्ति का आधार ही समाप्त हो गया। वह कालिंजर के राजा को भी कूटनीति से अपने पक्ष में कर सकता था, लेकिन उसने कालिंजर का घेरा डालकर अपनी अदूरदर्शिता का परिचय दिया। उसने शेरशाह की बढ़ती हुई शक्ति और महत्वाकांक्षा को रोकने की बजाय शेरशाह से सन्धि कर ली। शेरशाह जैसा कूटनीतिज्ञ हुमायूं की दुर्बलता समझ गया। तत्परता से निर्णय लेकर कार्य करने की क्षमता न होने के कारण ही उसे चौसा के युद्ध में पराजित होना पड़ा था। जैसाकि एलफिन्सटन ने लिखा है कि वह वीर अवश्य था, किन्तु स्थिति की गंभीरता को समझने की उसमें क्षमता नहीं थी। यही कारण था जिसकी वजह से कन्नौज के युद्ध में पराजित होकर दर दर की ठोकरें खानी पड़ी। अपनी विलासी प्रवृत्ति के कारण विजित हुए गुजरात राज्य को भी खोना पड़ा। वस्तुतः इन्हीं व्यक्तिगत दुर्बलताओं के कारण वह जीवन भर ठोकरें खाता रहा।

14.15.2 अपव्ययता – हुमायूं को विरासत में रिक्त राजकोष मिला था, जबकि अस्तव्यस्त साम्राज्य की सुरक्षा के लिये धन की आवश्यकता थी। लेकिन हुमायूं ने धन संचय की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। यद्यपि उसे कालिंजर के शासक से जन–धन की हानि का मुआवजा प्राप्त हुआ था तथा चांपानेर से गुजरात के बादशाहों का राजकोष मिल था, लेकिन वह अपने धन को बड़ी–बड़ी दावतें देने, आनन्द मनाने, अपने अनुयायियों को पुरस्कार बांटने और बड़ी–बड़ी इमारतें बनवाने में खर्च करता रहा। वह अपने अनुयायियों में खिल्लत बांटने और दावतें देने को सदैव तत्पर रहता था। उधर शत्रु द्वार खटखटा रहा होता था और हुमायूं दावतें खाने में ही व्यस्त रहता था। हुमायूं की इस अपव्ययता के कारण साम्राज्य की बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति को और अधिक खराब कर दिया। तात्कालिक परिस्थितियों में उसे मितव्ययी होना चाहिये था।

14.15.3. भाइयों के प्रति अत्यधिक उदार – यह सत्य है कि बाबर ने हुमायूं को अपने भाइयों के प्रति उदार रहने का निर्देश दिया था। लेकिन जब उसे मालूम हो गया कि उसके भाई उसके प्रति वफादार नहीं है, तब उसे अपने व्यवहार में परिवर्तन करना चाहिये था। लेकिन उसके भाइयों के विरोधी रवैये के बावजूद वह अपने भाइयों के प्रति उदार बना रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि हिसार–फिरोजा और पंजाब जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र उसके हाथ से निकल गये और उसने इन क्षेत्रों पर कामरान का अधिकार स्वीकार कर लिया। फिर भी कामरान के विरोधी रूख में कोई परिवर्तन नहीं आया। अस्करी ओर हिन्दाल भी उसके प्रति वफादार नहीं रहे। उन्हें जब भी अवसर मिला उन्होंने हुमायूं के विरूद्ध विद्रोह कर स्वयं को सम्राट घोषित कर दिया। लेकिन हुमायूं बार–बार अपने भाइयों को क्षमा करता रहा। अपने भाइयों के प्रति अत्यधिक उदारता हुमायूं की असफलता में सहायक सिद्ध हुई।

14.15.4. राजपूतों का सहयोग न मिलना – जब हुमायूं गुजरात के शासक बहादुरशाह के विरूद्ध संघर्ष करने जा रहा था, तब मेवाड़ की रानी कर्मवती ने बहादुरशाह के विरूद्ध हुमायूं की सहायता मांगी थी। यदि हुमायूं बहादुरशाह पर उसी समय आक्रमण कर देता जबकि वह चित्तौड़ का घेरा डाले हुए था, तो बहादुरशाह की शक्ति चित्तौड़ में ही नष्ट हो जाती और राजपूतों की सहानुभूति भी प्राप्त हो जाती। लेकिन हुमायूं ने बहादुरशाह पर उस समय आक्रमण करना पाप समझा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

क्योंकि बहादुरशाह एक गैर–मुस्लिम के विरूद्ध संघर्ष कर रहा था। यह हुमायूं की राजनीतिक भूल थी। इसी भूल के परिणामस्वरूप उसे राजपूतों के सहयोग से वंचित होना पड़ा। जिस प्रकार राजपूतों ने अकबर को सहयोग देकर मुगल साम्राज्य को दृढ़ता प्रदान की थी, उसी प्रकार हुमायूं को भी सहायता देकर उसके साम्राज्य की रक्षा कर सकते थे। लेकिन अपनी राजनीतिक अदूरदर्शिता के कारण हुमायूं को राजपूतों का सहयोग नहीं मिल सका और उसे अपने साम्राज्य से हाथ धोना पड़ा।

14.15.5. विलासिता – हुमायूं की विलासिता ही उसकी प्रबल शत्रु सिद्ध हुई। वस्तुतः उसके लाड़–प्यार के पालन–पोषण ने ही उसे विलासी बना दिया था। गद्दी पर बैठने के तुरंत बाद उसने अपने आपको भोग–विलास और आमोद–प्रमोद में लिप्त कर लिया था। चाहे शत्रु उसके सिर पर मंडरा रहा होता, लेकिन वह अपनी रंगरेलियों को नहीं छोड़ता था। गुजरात में बहादुरशाह को पूर्ण परास्त किया ही नहीं था कि मांडू में उसने कई सप्ताह रंगरेलियों में व्यतीत कर दिये। इसका परिणाम यह हुआ कि बहादुरशाह को अपनी शक्ति संगठित करने का अवसर मिल गया। जिस समय शेरखां के बंगाल अभियान की उसे सूचना मिली, वह अपने आमोद–प्रमोद में ही मस्त था। फिर शेरखां के विरूद्ध अपने बंगाल अभियान के समय वह शेरखां को परास्त भी नहीं कर पाया था कि उसने गौड़ में आठ महीने भोग–विलास में बिता दिये। फलस्वरूप शेरखां ने विशाल भू क्षेत्रों पर अपना अधिकार कर लिया। अपने सैनिक अभियानों में भी वह अपना विशाल हरम साथ रखता था, जिससे तोपों की गर्जन के बीच भी सैनिक शिविर में उसकी रंगरेलियां आरम्भ हो जाती थी। अपने पलायन काल में भी, जबकि वह अपना सर्वस्व खो चुका था, चौदह वर्षीय हमीदाबानू से निकाह करना उसकी विलासी–प्रवृत्ति का परिचायक है। वस्तुतः औरतें हुमायूं की सबसे बड़ी कमजोरी थी। उसकी यही कमजोरी उसकी असफलताओं का प्रमुख कारण बनी।

14.15.6. शासन के प्रति उदासीनता – यह सही है कि हुमायूं को विरासत में अस्त–व्यस्त प्रशासन व्यवस्था प्राप्त हुई थी। इसका कारण तो यह बताया जा सकता है कि बाबर को पर्याप्त समय नहीं मिल पाया। लेकिन हुमायूं को तो पर्याप्त समय मिला था, और यदि उसमें योग्यता होती तो वह प्रशासन को सुसंगठित कर सकता था। लेकिन उसे तो अपनी रंगरेलियों से ही फुर्सत नहीं मिलती थी। अतः प्रशासन की ओर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। गुजरात को अधिकृत करने के बाद यदि वह वहां पर अच्छी प्रशासन व्यवस्था स्थापित कर देता तो बहादुरशाह के अधिकारी इमादुलमुल्क को अहमदाबाद से मालगुजारी एकत्र करने का अवसर ही न मिलता और न गुजरात उसके अधिकार से जाता। साम्राज्य के स्थायित्व के लिये सुसंगठित प्रशासन व्यवस्था का होना अनिवार्य है। दुर्भाग्यवश हुमायूं इस तथ्य को समझ ही नहीं सका। इसलिये उसे दर–दर की ठोकरें खानी पड़ी थी।

14.15.7. सफल नेतृत्व का अभाव – जिस समय हुमायूं गद्दी पर बैठा था, यह वह काल था जबकि साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिये शासक में नेतृत्व के आवश्यक गुणों का होना अनिवार्य था। लेकिन हुमायूं में इन गुणों का अभाव था। हुमायूं को युद्धों के प्रति कोई लगाव नहीं था और जहां तक संभव होता वह युद्ध को टालता रहता था। गद्दी पर बैठने से पूर्व उसने कभी कठिन परिस्थितियां देखी नहीं थी। अतः गद्दी पर बैठने के बाद वह कठिन परिस्थितियों से भागता रहा। अपने सैनिक अधिकारियों पर वह कोई नियंत्रण नहीं रख पाता था, फलस्वरूप उसके सैनिक अधिकार उच्छृंखल हो गये। उसे न तो सैन्य संगठन का ज्ञान था और न सैन्य संचालन का। जिस समय शेरखां गौड़ का घेरा डाले हुए था, उस समय हुमायूं द्वारा चुनार का घेरा डालना मूर्खता थी। यदि उसे सैन्य संचालन एवं रणनीति का ज्ञान होता तो वह चुनार की बजाय सीधा गौड़ पर आक्रमण करता। चौसा और बिलग्राम के युद्ध के अवसर पर उसने मुगल शिविर ऐसे स्थान पर लगाये जो काफी नीचे था। फलस्वरूप वर्षा आ जाने से मुगल शिविर में पानी भर गया और उसकी अधिकांश युद्ध सामग्री भी पानी में बह गई। जिस समय हुमायूं चौसा के मैदान में पहुंचा उस समय शेरखां की सेना भी थकी हुई पास में आराम कर रही थी। इस समय हुमायूं ने अपने अधिकारियों की सलाह की उपेक्षा करते हुए शेरखां पर आक्रमण नहीं किया और दोनों सेनाएं लगभग तीन महीने तक आमने सामने पड़ी रही। फलस्वरूप शेरखां को पर्याप्त समय मिल गया। इस प्रकार हुमायूं को यह भी ज्ञान नहीं था कि शत्रु पर कब और किस प्रकार आक्रमण करना चाहिये।

14.15.8. दृढ़ निश्चय का अभाव – हुमायूं में तत्काल निर्णय लेने की क्षमता नहीं थी और कभी ले भी लेता था तो उस पर दृढ़ निश्चय के साथ कार्यवाही करने की योग्यता नहीं थी। चुनार के प्रथम घेरे के समय उसने शेरखां से संदिग्ध ा सी सन्धि कर ली। 1538 ई. में उसने शेरखां से समझौता करने में कई माह खराब कर दिये और समझौता स्वीकार करने के बाद जब बंगाल के शासक ने हुमायूं से शेरखां को पराजित करने की प्रार्थना की तो उसने शेरखां से हुए समझौते को भंग

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कर दिया। फलस्वरूप वह अफगानों के समक्ष झूंठा सिद्ध हुआ। हुमायूं की इस ढिल–मिल नीति के कारण उसके सैनिक तो उससे असंतुष्ट रहते ही थे, किन्तु उसके भाई भी उससे नाराज रहते थे। हुमायूं की इस नीति का लाभ उठाते हुए ही कामरान ने पंजाब पर अधिकार किया था। बिलग्राम के युद्ध में पराजित होकर जब वह लाहौर आया तब उसकी इसी नीति से क्षुब्ध होकर हिन्दाल सिन्ध की तरफ चला गया था। वस्तुतः उसकी ढिल–मिल नीति का ही परिणाम था कि उसे अपना सर्वस्व खोकर दुर्दिन देखने पड़े।

डॉ. आर.एस. त्रिपाठी हुमायूं की असफलता के लिये उपर्युक्त कारणों को स्वीकार नहीं करते। उनका मानना है कि हुमायूं की असफलताओं का प्रमुख कारण उसका दुर्भाग्य था। लेकिन इस दुर्भाग्य का कारण उसकी मूर्खता और अदुरदर्शिता थी। युद्ध के समय वर्षा होना, केवल हुमायूं का दुर्भाग्य कैसे मान सकते हैं। वर्षा तो दोनों के लिये समान थी। वह तो हुमायूं की अदूरदर्शिता थी कि प्रथम तो उसने अपने शिविर के लिये नीचा स्थान चुना, और दूसरा युद्ध क्षेत्र में पहुंचते ही शेरखां पर आक्रमण न करने की भूल थी। यदि वह युद्ध क्षेत्र में पहुंचकर तुरंत आक्रमण कर देता तो अपनी तोपों का प्रयोग भी भली भांति कर सकता था। लेकिन मूर्खतावश उसने आक्रमण नहीं किया और शेरखां भी वर्षा होने का इंतजार करता रहा। इस प्रकार कठिन परिस्थितियां और दुर्भाग्य का निर्माण को स्वयं उसी ने किया था।

14.16. हुमायूं का चरित्र :

लेनपूल के अनुसार, "हुमायूं के चरित्र में आकर्षण तो है, परन्तु प्रभाव नहीं।" हुमायूं के चरित्र में जहां कई गुण थे, वहीं उसके दोषों की भी लम्बी कतार थी।

14.16.1. परिवार प्रेमी – हुमायूं एक आज्ञापालक पुत्र, हितैषी भाई एवं स्नेही मित्र था। उसने अपने पिता की आज्ञानुसार सदैव अपने भाइयों के साथ अच्छा व्यवहार किया तथा उनकी गलतियों को क्षमा कर दिया, चाहे इसके लिए उसे स्वयं ही हानि क्यों न उठानी पड़ी हो। वह दयालु, विनम्र एवं धैर्यवान था। गुलबदन बेगम ने उसकी दयालुता एवं प्यार की प्रशंसा करते हुए लिखा है "माहम की मृत्यु के पश्चात् हुमायूं के प्रेम के कारण ही वह अपने को अनाथ नहीं समझती थी।"

14.16.2. उदारचित्त – हुमायूं बड़ा उदार तथा दानी था। उसने उपहारों तथा दावतों पर काफी धन व्यय किया था। निजामुद्दीन के अनुसार, "मुगल बादशाह इतना दानी था कि हिन्दुस्तान का समस्त धन भी उसकी दानशीलता के सम्मुख काफी नहीं था।" बदायूंनी लिखता है "वह इतना बड़ा दानी था कि सम्पूर्ण भारत का राजस्व भी उसके दान देने के लिये पूरा नहीं था।"

14.16.3. विद्वान तथा साहित्य प्रेमी – हुमायूं विद्वान तथा साहित्य प्रेमी था। वह गणित, ज्योतिष तथा फारसी भाषा का पूर्ण ज्ञाता था। मिर्जा हैदर के अनुसार, "मैंने बहुत ही कम राजकुमार देखे हैं, जिनमें हुमायूं जैसी प्रतिभा और योग्यता विद्यमान हों" उसके दरबार में खुदामीर, अब्दुल लतीफ शेख हस्न आदि विद्वान रहते थे। हुमायूं पुस्तकों के अध्ययन का शौकीन था। वह ज्योतिष शास्त्र का भी ज्ञाता था। अबुल फजल के अनुसार, "हुमायूं एक वेधशाला का निर्माण करना चाहता था। इसके लिये उसने बहुत से यंत्रों की व्यवस्था भी कर ली तथा कई स्थानों को वेधशाला के लिये चुना था।" वह भाषण देने में प्रवीण था। अब्दुल लतीफ के अनुसार, "यद्यपि वह शासन कार्य में उलझा रहा, तथापि भाषण देने में उसने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। अपने विचारों को वह संक्षेप में तथा सुन्दर ढंग से व्यक्त करता था। चित्रकला से भी उसे अच्छा अनुराग था। उसके दरबार में ख्वाजा अब्दुल समद जैसे कलाकार थे।"

14.16.4. सच्चा मुसलमान – हुमायूं धर्मपरायण मुसलमान था। वह कुरान के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करता था। वह हिन्दुओं के प्रति असहनशील था। कालिंजर के मंदिरों का विनाश कर उसने धार्मिक संकीर्णता का परिचय दिया। हुमायूं के धार्मिक विचार अस्थिर थे। उसने ईरान के शासक से सहायता प्राप्त करने हेतु शिया मत स्वीकार किया तथा उसके प्रसार का वचन भी दिया था। उसने सुन्नी होते हुए भी शिया हमीदा बानू से विवाह किया।

14.16.5. आत्मविश्वासी तथा धैर्यवान – हुमायूं आत्मविश्वासी तथा धैर्यवान होने के साथ–साथ सिद्धान्तहीन तथा अविवेकपूर्ण भी था। मेलीसन के अनुसार, "वह चंचल, विचारहीन और अस्थिर था, जिसमें कर्त्तव्य की ओर झुकने की कोई बलवती भावना नहीं थी।" हुमायूं शराब एवं अफीम का प्रेमी था। वह रेगरेलियों में डूबकर अपना कर्त्तव्य भी भूल जाता था। यही विलासिता तथा आलस उसकी असफलता का कारण सिद्ध हुआ। डॉ.ए.एल. श्रीवास्तव के अनुसार, "अपने हरम में रंगरेलियां मनाने और आराम करने का उसका यह स्वभाव उसकी असफलताओं का प्रमुख कारण समझा जाना चाहिये।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लेनपूल ने लिखा है, "एक सम्राट के रूप में वह असफल रहा। उसके नाम का अर्थ है सौभाग्यशाली, परन्तु कोई भी दुर्भाग्यशाली व्यक्ति इतने गलत नाम से नहीं पुकारा गया है।

14.16.6. योग्य सेनानायक – हुमायूं साहसी, वीर, धैर्यवान तथा योग्य सैनिक था। निजामुद्दीन के अनुसार, "उत्साह और वीरता की दृष्टि से हुमायूं पानीपत, खानवा, कन्नौज तथा चौसा के युद्ध में अपने अदभुत रणकौशल का परिचय दे चुका था।" अब्बास खां के अनुसार, "कन्नौज के युद्ध क्षेत्र में हुमायूं पहाड़ की भांति अचल रहा और उसने वीरता के ऐसे जौहर दिखाये, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।"

हुमायूं वीर होते हुए भी सैनिक दांव–पेचों में अकुशल था। उसमें अभियानों को संगठित करने की तथा युद्ध संचालन की योग्यता नहीं थी। अतः उसने भारी भूलें की तथा उसे भारत से निर्वासित होना पड़ा। हुमायूं दूरदर्शिता तथा कूटनीतिज्ञ नहीं था। वह शत्रुओं की चालाकी को समझ नहीं पाता था और उनकी बातों में आ जाता था। वह चापलूसी पसन्द करता था। अतः शेरखां एवं बहादुरशाह ने उसकी इस कमजोरी का पूरा लाभ उठाया।

14.16.7. शासन–प्रबंधक – हुमायूं कुशल शासक–प्रबंधक नहीं था। शासन सम्बन्धी कार्यों में उसने रूचि नहीं ली। उसमें निर्णय क्षमता का अभाव था। अतः वह अपने दरबारियों के परामर्श पर निर्भर रहता था। वह न्याय–प्रेमी था। उसने निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था की। उसने महल के निकट एक बड़ा ढोल रखवा दिया, जिसे बजाकर फरियादी सम्राट से न्याय की फरियाद कर सकता था।

14.17. सारांश

डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, "हुमायूं के चरित्र की सबसे प्रमुख कसौटी अध्यवसाय अर्थात् निरन्तर उद्योग करते रहने की प्रवृत्ति की थी और उसके जीवन में आदि से अंत तक यह एक ईश्वरीय वरदान के रूप में स्थिर रही। इसके अभाव में उसके लिए फिर से भारत के साम्राज्य को विजय करना असंभव ही था।" अबुल फजल के अनुसार, "सम्राट की बुद्धिमत्ता तथा निपुणता के इतने अधिक प्रमाण हैं कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती।" हुमायूं के चाचा मिर्जा हैदर लिखते हैं, "हुमायूं बादशाह बाबर के पुत्रों में ज्येष्ठ, सबसे अधिक योग्य तथा सबसे अधिक प्रतिष्ठित था तथा मैंने उसके जैसी प्रतिभा एवं योग्यता विरले मनुष्यों में ही देखी है।" अतः कहा जा सकता है कि चारित्रिक दोषों के बावजूद हुमायूं अच्छा सम्राट था।

14.18 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 हुमायु का जन्म कहाँ हुआ?

अ. पेशावर   ब. सिन्ध

स. काबुल   द. पंजाब

उत्तर – ....

प्रश्न 2 'सरहिन्द का युद्ध' पर टिप्पणी लिखिए। (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 "हुमायु जीवन भर ठोकरें खाता रहा और अंत में ठोकर खाकर ही इस दुनिया से विदा हो गया" सिद्ध कीजिये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई—15
शेरशाह सूरी

संरचना

15.0 उद्देश्य –
15.1 शेरशाह सूरी : भूमिका
15.2 आरम्भिक जीवन
15.3 शेरशाह का साम्राज्य विस्तार
    15.3.1 बिहार पर अधिकार
    15.3.2 बंगाल विजय
    15.3.3 हुमायु पर विजय
    15.3.4 चौसा का युद्ध (1539 ई.)
    15.3.5 कन्नौज का युद्ध (1540 ई.)
    15.3.6 गक्खर प्रदेश की विजय
    15.3.7 बंगाल में व्यवस्था स्थापित करना
    15.3.8 मालवा की विजय
    15.3.9 रायसिन की विजय
    15.3.10 मुलतान और सिन्ध की विजय
    15.3.11 मारवाड़ पर विजय
    15.3.12 कालिंजर की विजय
15.4 शोरशाह का प्रशासन
15.5 केन्द्रीय शासन व्यवस्था
    15.5.1 मन्त्री
    15.5.2 दीवाने वजारत
    15.5.3 दीवाने आरिज
    15.5.4 दीवाने रसालत
    15.5.5 दीवाने इंशा
    15.5.6 दीवाने कजा
    15.5.7 दीवाने बरीद
15.6 प्रान्तीय शासन व्यवस्था
    15.6.1 मुख्य शिकदार
    15.6.2 मुख्य मुन्सिफ
15.7 परगना की शासन व्यवस्था
    15.7.1 शिकदार
    15.7.2 मुन्सिफ
    15.7.3 खजांची और कारकुन
15.8 ग्रामीण शासन व्यवस्था
15.9 भूमि प्रबन्ध
15.10 सैन्य प्रबन्ध
15.11 पुलिस प्रबन्ध
15.12 मुद्रा व्यवस्था

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.13 व्यापार वाणिज्य

15.14 न्याय व्यवस्था

15.15 सार्वजनिक सुधार

    15.15.1 सड़के

    15.15.2 सराये

15.16 शेरशाह का मूल्यांकन

15.17 सारांश

15.18 अभ्यास प्रश्नावली

15.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में सूरवंशीय शेरशाह सूरी द्वारा भरत में सूर वंश की स्थापना तथा उसके प्रशासन पर विस्तार से विवेचन किया गया है। शेरशाह सूरी ने अपने सैनिक बल से न केवल हुमायं को हराया और उसे निर्वासित जीवन जीने को मजबूर किया बल्कि एक कुशल प्रशासक के रूप में उसने अपने साम्राज्य में अनेक सुधार किये जो उसे इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाते हैं। इस इकाई से पाठको शेरशाह सूरी के कार्यों व योगदान से परिचित कराना है।

15.1. शेरशाह सूरी : भूमिका

हुमायूं को परास्त कर शेरखां 1540 ई. में शासक बना तथा उसने 1545 ई. तक शासन किया। उसके उत्तराधिकारियों ने 1545 ई. से लेकर 1555 ई. तक शासक किया। 1555 ई. नें हुमायूं ने अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। शेरखां का पांच वर्ष का अल्प शासन भी भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्व रखता है।

15.2. आरम्भिक जीवन :

शेरखां का मूल नाम फरीद था। उसका जन्म 1472 ई. में होशियारपुर के पास बजवाड़ा नामक गांव में हसन खां के यहां हुआ था। डॉ. श्रीवास्तव में अनुसार उसका जन्म 1472 ई. में हुआ था, जबकि डॉ. कानूनगो के अनुसार उसका जन्म 1486 ई. में हिसार फिरोजा में हुआ था। फरीद के जन्म के बाद हसन खां जौनपुर के शासक जमाल खां के पास नौकरी करने लगा, जिसकी सिफारिश पर सिकन्दर लोदी ने हसन खां को सहसराम, खसपुर तथा टांडा के परगने जागीर में दे दिये। फरीद का बचपन सहसराम में बीता।

हसन के चार पत्नियां तथा आठ पुत्र थे। फरीद सबसे बड़ी पत्नी का पुत्र था, जिससे हसन प्रेम नहीं करता था। वह अपनी सबसे छोटी पत्नी से प्रेम करता था। अपनी सौतेली मां से तंग आकर फरीद जौनपुर चला गया, जहां उसने अरबी व फारसी की शिक्षा प्राप्त की एवं गुलिस्तां, बोस्तां, सिकन्दरनामा आदि ग्रंथों का अध्ययन किया। वह अपनी योग्यता से जौनपुर में प्रसिद्ध हो गया। उससे प्रभावित होकर जमाल खां ने पिता–पुत्र में समझौता करवा दिया।

हसन ने फरीद को सहसराम, ख्वासपुर तथा टांडा का प्रबंधक बनाया। फरीद ने वर्तमान शाहाबाद (दक्षिणी बिहार) में स्थित इन जागीरों का बहुत अच्छा प्रबंध किया। उसने उन जागीरदारों को समृद्ध बना दिया। उसकी सफलता से जल–भुनकर उसकी सौतेली माता ने उसे जागीरों से निकलवा दिया। अब फरीद के सूबेदार दरिया खां लोहानी के पुत्र बहार खां लोहानी के पास नौकरी करने लगा। बहार खां उसकी योग्यता से बहुत प्रभावित हुआ। ''एक बार जब फरीद बहार खां के साथ शिकार खेलने गया, तो उसने तलवार के एक ही वार से शेर को मार डाला। उसकी बहादुरी से प्रसन्न होकर बहार खां ने उसको शेरखां की उपाधि प्रदान की।'' उसके बढ़ते प्रभाव से असंतुष्ट होकर अफगान सरदारों ने बहार खां को शेरखां के विरूद्ध भड़का दिया। अतः वह आगरा जाकर 1527 ई. में बाबर की सेना में भर्ती हो गया। बाबर की सेना में रहकर वह मुगल सैन्य संगठन की विशेषताओं तथा दोषों से परिचित हो गया था। 1528 ई. में वह बाबर की नौकरी छोड़कर बिहार चला गया।

15.3. शेरशाह का साम्राज्य विस्तार

15.3.1. बिहार पर अधिकार – शेरखां पुनः बहार खां की सेवा में आ गया। कुछ समय बाद बहार खां की मृत्यु होने पर उसकी बेगम दूदू बीबी ने उसे बिहार का नायब सूबेदार नियुक्त किया, क्योंकि उसका पुत्र जलाल खां अभी वयस्क नहीं था। अब शेरखां अपनी शक्ति बढ़ाने लगा। उसने उच्च पदों पर अपने विश्वास–पात्र अफगान सरदारों को नियुक्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

किया तथा सेना को अपने विश्वास में ले लिया। लोहानी सरदारों ने उसे बिहार से भगाने का असफल प्रयत्न किया परन्तु उन्हें असफलता हाथ लगी। इसके बाद वह सम्पूर्ण बिहार का शासक बन गया। उसने चुनार के सूबेदार ताजखां की विधवा बेगम लाड मलिका से विवाह कर चुनार का दुर्ग तथा बहुत–सा धन प्राप्त किया।

15.3.2. बंगाल विजय – बंगाल का शासक महमूदशाह शेरखां की बढ़ती शक्ति से आशंकित था। बिहार से भागकर आये लोहानी सरदारों ने उसे शेरखां के विरूद्ध भड़काया। अतः जब हुमायूं ने शेरखां को चुनार के दुर्ग में घेर लिया था, तो उसने शेरखां को तंग किया था। अतः शेरखां ने बंगाल पर आक्रमण कर सूरजगढ़ नामक स्थान पर महमूदशाह को परास्त किया। उसे लूटमार में अपार धन मिला। डॉ. कानूनगो के अनुसार, "यदि सूरजगढ़ के युद्ध क्षेत्र में शेरखां को विजय प्राप्त न हुई होती, तो वह कभी भी भारतवर्ष के राजनीतिक क्षेत्र में न आता और न ही उसे बहादुरशाह और हुमायूं जैसे बादशाहों के साथ राज्य स्थापना की दौड़ में भाग लेने का अवसर मिलता।" महमूदशाह ने शेरखां पर आक्रमण कर दिया, किन्तु शेरखां ने उसे तेलियागढ़ी तथा सीकरीगढ़ी नामक स्थानों पर परास्त किया। शेरखां ने बंगाल की राजधानी गौड़ को घेर लिया। अतः महमूदशाह की सहायता की प्रार्थना कर हुमायूं ने बंगाल की तरफ कूच किया, किन्तु मार्ग में वह चुनार दुर्ग पर विजय प्राप्त करने में लग गया। इसी बीच शेरखां ने गौड़ पर अधिकार कर सारे धन व परिवार को रोहतासगढ़ के दुर्ग में भेज दिया।

15.3.3. हुमायूं पर विजय – अब शेरखां ने हुमायूं से निपटने का निश्चय किया। उसने बनारस नामक स्थान पर एक समझौता किया, जो सिर्फ तीन दिन चला। समझौते का वर्णन पूर्ववर्ती इकाई में किया जा चुका है।

हुमायूं ने समझौता भंग करते हुए बंगाल पर आक्रमण कर दिया। शेरखां ने इसे बिना रोक–टोक बंगाल पर अधिकार करने दिया। हुमायूं, शेरखां की चालाकी को नहीं समझ सका। वह गौड़ में रंगरेलियों में डूब गया। इसी दौरान शेरखां ने बिहार से मुगल सेना को खदेड़ दिया एवं मुगलों के आवागमन के मार्ग काट दिये। अब वह हुमायूं से खुले युद्ध के लिए तैयार हो गया।

15.3.4. चौसा का युद्ध (1539 ई.) – हुमायूं की जब आंखें खुली, तब तक वह चारों तरफ से कठिनाइयों से घिर चुका था। उसने शेरखां से संधि करने का असफल प्रयत्न किया। शेरखां ने 26 जून, 1539 ई. को हुमायूं को चौसा के मैदान में बुरी तरह परास्त किया। हुमायूं जान बचाने हेतु घोड़े सहित गंगा नदी में कूद पड़ा, जहां एक भिश्ती ने उसकी प्राणरक्षा की। वह बड़ी मुश्किल से आगरा पहुंचा। डॉ. कानूनगो के अनुसार, "चौसा के युद्ध से पूर्व यदि शेरखां से बंगाल में छेड़छाड़ न की जाती, तो वह मुगलों के अधीन रहने में संतुष्ट रहता। एक ही झटके में उसने बंगाल और बिहार के साथ जौनपुर को भी अपनी स्वतंत्र राजसत्ता में कर लिया और अब वह मुगल बादशाह से भी बराबरी का दावा कर सकता था।" अब शेरखां ने शेरशाह की उपाधि धारण की और बंगाल व बिहार का स्वतंत्र शासक बन गया।

15.3.5. कन्नौज का युद्ध (1540 ई.) – हुमायूं सेना एकत्रित करके 17 मई, 1540 ई. को शेरखां से युद्ध करने के लिये कन्नौज पहुंचा, किन्तु वह पुनः परास्त हुआ। कन्नौज विजय के बाद शेरशाह ने हुमायूं को भारत से खदेड़ दिया एवं आगरा, दिल्ली एवं पंजाब पर अधिकार कर लिया। इस तरह मुगल वंश के स्थान पर सूर वंश की स्थापना हुई।

15.3.6. गक्खर प्रदेश की विजय – सिन्धु और झेलम नदी के उत्तर में स्थित गक्खर प्रदेश सामरिक महत्व का प्रदेश था, क्योंकि भारत पर उत्तर–पश्चिम से होने वाले आक्रमण इसी मार्ग से होते थे। अतः शेरशाह इस प्रदेश को अधिकृत करना चाहता था। रायसारंग और आदमखां जैस गक्खर सरदारों ने शेरशाह का विरोध किया। फलस्वरूप शेरखाह और गक्खर सरदारों के बीच भीषण युद्ध हुआ। यद्यपि शेरशाह ने पूरे प्रदेश को रौंद डाला, लेकिन गक्खर सरदारों पर पूरा नियंत्रण स्थापित न कर सका। शेरशाह ने इस सीमा की रक्षा के लिये झेलम से 10 मील उत्तर की ओर एक विशाल दुर्ग बनवाया जिसका नाम भी रोहतास दुर्ग रखा। इस दुर्ग में उसने 50,000 सैनिक तैनात कर दिये। इसी काल में उसे टोडरमल जैसा योग्य अधिकारी मिला, जिसकी देखरेख में रोहतास दुर्ग का न्र्मिाण कार्य प्रारम्भ करवाया गया। यह दुर्ग शेरशाह के उत्तराधिकारी इस्लामशाह के काल में पूरा हुआ था। शेरशाह को इसी प्रदेश में सूचना मिली कि बंगाल के गवर्नर खिज्रखां ने विद्रोह कर दिया है। अतः गक्खर सरदारों को नियंत्रण में लाने का कार्य अपने सरदारों पर छोड़कर मार्च, 1541 ई. में शेरशाह बंगाल की तरफ चला गया।

15.3.7. बंगाल में व्यवस्था स्थापित करना – बंगाल से शेरशाह कल लम्बी अनुपस्थिति का लाभ उठाते हुए बंगाल का गवर्रन खिज्रखां स्वतं. होने का प्रयास करने लगा। शेरशाह को इसकी सूचना मिलने पर वह तुरन्त 1541 ई.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की वर्षा ऋतु में अचानक ससैन्य गढ़ के पास आ धमका। शेरशाह के अचानक आ धमकने से खिज्रखां स्तम्भित रह गया और विवशतः शेरशाह का स्वागत करने आगे आया। लेकिन शेरशाह ने उसे बन्दी बनाने की आज्ञा दे दी। भविष्य में ऐसे विद्रोह की पुनरावृत्ति रोकने हेतु उसने सैनिक गवर्नर का पद समाप्त कर दिया। उसने समस्त प्रान्त को अनेक सरकारों (जिलों) में विभाजन कर प्रत्येक सरकार में एक फौजी शिकदार की नियुक्ति कर दी, जो अपने क्षेत्र में शांति एवं व्यवस्था बनाये रखता था। प्रान्त के अधिकारियों पर कड़ी दृष्टि रखने तथा आपस की झगड़ों को निपटाने के लिये उसने एक काजी फजीलत नामक अधिकारी की नियुक्ति कर दी। इससे प्रान्तीय शासन का स्वरूप बिलकुल बदल गया।

15.3.8. मालवा की विजय – उत्तर भारत से दक्षिण की ओर जाने वाले मार्ग मालवा प्रान्त में होने के कारण तथा दिल्ली के पड़ोस में होने के कारण दिल्ली के शासक मालवा की राजनीति पर दृष्टि लगाये रहते थे। मालवा पर शेरशाह के आक्रमण के मुख्य चार कारण थे। प्रथम तो, चौसा की विजय के बाद शेरशाह ने अपनी बादशाहत की घोषणा का शाही फरमान मालवा के शासक कादिरशाह के पास भेजा तो कादिरशाह ने अपने को स्वतंत्र शासक बताते हुए उस शाही फरमान को ठुकरा दिया था। दूसरा यह कि जब कालपी के पास शेरशाह का पुत्र कुतुबखां मुगल सेना से लड़ रहा था, तब कादिरशाह ने उसकी कोई सहायता नहीं की जिसके फलस्वरूप वह पराजित होकर मारा गया था। तीसरा यह कि हुमायूं अभी भी सिन्ध ा में भटक रहा था और मालवा की निर्बलता का वह लाभ उठा सकता था। चौथा यह कि मारवाड़ का शासक मालदेव मालवा पर अधिकार करने को उत्सुक था। अतः शेरशाह, मालदेव के प्हुंचने के पहले ही मालवा अधिकृत कर लेना चाहता था। 1541 ई. में शेरशाह बंगाल से मालवा की ओर रवाना हुआ। उसने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया और गागरौन पहुंचा जहां रायसीन के शक्तिशाली शासक पूरणमल ने पहुंचकर शेरशाह की अधीनता स्वीकार कर ली। यहां से शेरशाह सारंगपुर की ओर बढ़ा। अब कादिरशाह उज्जैन से निकला, लेकिन उसके निकलने के पहले ही शेरशाह ने सारंगपुर पर अधिकार कर लिया। कादिरशाह भयभीत होकर अपनी राजधानी माण्डू की तरफ आया। लेकिन ज्योंही शेरशाह ने मालवा पर धावा बोला, कादिरशाह का साहस टूट गया और उसने सारंगपुर पहुंचकर मालवा की सल्तनत शेरशाह को समर्पित कर दी। कादिरशाह को मालवा के बदले अन्य जागीर दी गई, लेकिन उसे यह जागीर पसन्द न होने के कारण एक रात वह अपने परिवार सहित गुजरात की तरफ भाग गया। इस प्रकार मालवा में साहसहीन व निर्बल कादिरशाह की सत्ता क्षण भर में समाप्त हो गयी। मालवा से शेरशाह रणथम्भौर की ओर बढ़ा, जहां के किलेदार उस्मानखां ने रणथम्भौर का दुर्ग बिना किसी प्रतिरोध के शेरशाह को समर्पित कर दिया।

15.3.9. रायसिन की विजय – मध्य भारत में रायसीन नामक रियासत का शासक पूरनमल ने हुमायूं के काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर ली थी। उसने चन्देरी पर विजय प्राप्त कर ली थी तथा प्राचीन सामन्ती मुस्लिम परिवारों को बेघरबार कर उनकी स्त्रियों को नर्तकियों का पेशा अपनाने को विवश कर दिया था। मालवा के सैयदों की स्त्रियों को अपनी रखैले बना लिया था। यद्यपि 1542 ई. में पूरनमल ने शोहरशाह की अधीनता स्वीकार कर ली थी, लेकिन मुसलमानों के प्रति पूरनमल के व्यवहार को देखते हुए शेरशाह उसे सजा देना चाहता था। 1543 ई. में शेरशाह ने रायसीन को घेर लिया और यह घेरा कई दिनों तक चलता रहा। शेरशाह ने किले की रसद को रोक लिया, लेकिन राजपूत राजा और उसके आदमियों की जान–माल की सुरक्षा का आश्वासन दिया तो पूरनमल ने आत्मसमर्पण कर दिया और उसे शेरशाह ने समीप ही एक खेमें में ठहरा दिया गया। शेरशाह अपने वचन का पालन करना चाहता था, लेकिन चन्देरी की उन मुस्लिम विधवाओं की प्रार्थना पर, जिन्हें पूरनमल ने कष्ट दिये थे, उसने अपना वचन भंग कर दिया और राजपूत खेमे के चारों ओर सेनाएं तैनात कर दी। जब दिन निकला तो पूरनमल स्थिति समझ गया और उसने अपनी स्त्रियों को अपने ही हाथों से कत्ल कर दिया। जब राजपूत अपनी स्त्रियों की हत्या में लगे हुए थे, अफगान उन पर टूट पड़े। राजपूत बड़ी वीरता से लड़े, लेकिन उनका एक भी आदमी जीवित नहीं बचा। जो राजपूत स्त्रियां व बच्चे जीवित बच गये थे उन्हें गुलाम बना लिया गया। राजपूतों के प्रति यह विश्वासघात शेरशाह के उज्ज्वल चरित्र को कलंकित करने वाला एक धब्बा है।

15.3.10. मुल्तान और सिन्ध की विजय – शेरशाह ने गक्खर प्रदेश में खवासखां और हैबातखां को तैनात किया था, लेकिन इनमें आपस में मनमुटाव होने के कारण खवासखां को वहां से हटा दिया और हैबातखां को प्रान्त का गवर्नर बना दिया। हैबातखां को फतहखां जाट और फतहखां देदई से सामना करना पड़ा। इन दोनों विद्रोही सरदारों का दमन करने 1543 ई. की शरद ऋतु में हैबातखां, लाहौर होता हुआ सतगढ़ा नामक स्थान पर पहुंचा। भयभीत होकर फतहखां जाट अपने कुटुम्ब को लेकर भागा ओर फतहपुर के पास एक मिट्टी के दुर्ग में शरण ली। यहां से उसने सन्धि का प्रस्ताव भेजा। हैबातखां

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ने उसे सुरक्षा का आश्वासन दिया, लेकिन ज्योंही उसे हैबातखां के पास लाया गया, हैबातखां ने उसे बन्दी बना लिया। किन्तु उसका एक साथी सीदू बलूच वहां से भाग और फतहखां दोदई व उसके आदमियों को इसकी सूचना दे दी। फतहखां के आदमी अपने स्त्री बच्चों को कत्ल कर सीदू बलोच के नेतृत्व में अफगान सेना को चीरते हुए निकले, लेकिन वे पकड़े गये। इस प्रकार हैबातखां ने मुल्तान को पूरी तरह जीत लिया।

सिन्ध में भक्खर और सेहवान के दुर्ग प्रसिद्ध थे। शाह हुसैन अरघून ने महमूद भक्खरी को भक्खर दुर्ग पर तैनात किया था। 1542 ई. के अंत में हुमायूं ने थट्टा पर आक्रमण किया था, तब शाह हुसैन ने महमूद भक्खरी को ठठ्टा बुला लिया। जब अफगानों को इसकी सूचना मिली तब हैबातखां ने भक्खर पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। सिन्ध विजय शेरशाह के लिये महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। अब शेरशाह को मारवाड़ में घुसने का मार्ग मिल गया था।

15.3.11. मारवाड़ पर विजय — मारवाड़ का शासक मालदेव में केवल मध्य भारत का प्रमुख राजा था बल्कि श्रेष्ठ सैनिक और कुशल कूटनीतिज्ञ भी था। उसने मारवाड़ के आसपास के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया तथा बीकानेर के राव कल्याणमल को पराजित कर उसके आधे से अधिक राज्य पर अधिकार कर लिया था। 1541 ई. में उसने हुमायूं को भी सहायता देने की पेशकश की थी, लेकिन हुमायूं ने मालदेव से उस समय सहायता मांगी जब शेरशाह ने उत्तरी भारत के अधिकांश भूभागों पर अधिकार कर लिया था। इस समय शेरशाह ने भी मालदेव को कहलवाया कि वह हुमायूं को शरण अथवा सहायता न दे तथा उसे बन्दी बनाकर शेरशाह को सौंप दे। मालदेव ने तात्कालिक परिस्थितियों में तटस्थ रहना ही उचित समझा। अतः उसने हुमायूं को सैनिक सहायता का कोई वचन नहीं दिया। इधर जब हुमायूं के दूत ने जोधपुर में शेरशाह के दूत को देखा तो उसे किसी षड़यंत्र की योजना समझ कर हुमायूं को सूचित कर दिया। फलस्वरूप हुमायूं सिन्ध की तरफ चला गया। चूंकि मालदेव ने हुमायूं को बंदी नहीं बनाया, इसलिए शेरशाह मालदेव से नाराज हो गया। इधर बीकानेर का राव कल्याणमल, जो मालदेव से पराजित हो चुका था, शेरशाह से जा मिला और उसे मालदेव पर आक्रमण करने हेतु प्रोत्साहित करता रहा। फिर मालदेव जैसा शक्तिशाली शासक शेरशाह के लिए असहनीय था। अतः दोनों में संघर्ष अवश्यंभावी था।

1543 ई. के अंत में रायसीन विजय के बाद शेरशाह ने मारवाड़ को जीतने का निश्चय कर 80 हजार सैनिकों के साथ मारवाड़ पर चढ़ाई कर दी। जब शेरशाह मेवाड़ नामक स्थान पर पहुंचा तब मालदेव भी अपने 40 हजार सैनिक लेकर शेरशाह का मुकाबला करने चल पड़ा। दोनों की सेनायें जैतारण के पास सुमेल नामक स्थान पर एक माह आमने—सामने पडी रही। मारवाड़ जैसे बंजर क्षेत्र में शेरशाह के लिए रसद आदि एकत्र करना कठिन हो गया। ऐसी विकट परिस्थितियों में शेरशाह ने एक कूटनीतिक चाल चली। उसने राठौड़ सरदारों की ओर से एक जाली पत्र लिखवाया कि राठौड़ सरदार अपने राजा को बंदी बनाने का वचन देते हैं, और यह पत्र मालदेव के शिविर में डलवा दिया। इस पत्र को देखते ही मालदेव को अपने ही सरदारों से विश्वासघात की आशंका हुई और उसने युद्ध न करने का निश्चय किया। लेकिन जैता और कूंपा नामक राठौड़ सरदारों ने अपने 12 हजार आदमियों को लेकर अफगान सेना पर टूट पड़े ताकि उनके विश्वासघाती होने का कलंक मिट सके। यद्यपि राठौड़ राजपूतों ने अपनी अद्भुत वीरता का परिचय दिया किन्तु मुट्ठी भर राजपूत 80 हजार अफगानों के सामने न टिक सके। एक—एक राजपूत लड़ते—लड़ते कट मरा। यद्यपि मालदेव के सामने सच्चाई आ गयी, किन्तु तब तक राजपूत सेना पूरी तरह बिखर चुकी थी। शेरशाह राजपूतों के शौर्य को देखकर दंग रह गया, क्योंकि मुट्ठी भर राठौड़ों ने भी उसे काफी क्षति पहुंचायी थी। उसे विवश होकर कहना पड़ा कि, "एक मुट्ठी—भर बाजरे के लिए वह अपना साम्राज्य खो बैठा था।" मालदेव यहां से सिवाना चला गया। अजमेर से आबू तक का क्षेत्र शेरशाह के अधिकार में आ गया। मारवाड़ की व्यवस्था का दायित्व खवासखां व ईसा खां को सौंपकर शेरशाह चित्तौड़ की ओर चला गया।

मारवाड़ पर अफगानों का अधिकार अधिक समय तक नहीं रह सका। शेरशाह की मृत्यु के दो महीने के अंदर ही मालदेव ने जुलाई 1545 ई. में पुनः मारवाड़ पर अधिकार कर लिया।

मेवाड़ विजय और राजस्थान पर नियंत्रण

राणा सांगा की मृत्यु के बाद मेवाड़ में अव्यवस्था और अराजकता फैल गई थी। इसी अव्यवस्था के काल में बनवीर अपने पुत्र की बलि देकर राजकुमार को बचा लिया था। 1542 ई. में शिशु उदयसिंह मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठा। 1544 ई. की वर्षा ऋतु में शेरशाह ने मेवाड़ पर चढाई कर दी। राणा उदयसिंह अल्पवयस्क था तथा उसके सरदारों में अफगानों का सामना करने का साहस नहीं था। अतः जब शेरशाह चित्तौड़ से केवल 24 मील दूर था, दूर्ग—रक्षक दुर्ग की चाबियां लेकर शेरशाह के पास गया और चाबियां उसे सौंप दी। अब शेरशाह कुम्भलगढ़ की ओर गया और बिना किसी विरोध के उस पर

अधिकार कर लिया। इस प्रकार बीकानेर और जैसलमेर को छोड़कर राजस्थान का अधिकांश भाग अफगान सत्ता के अधीन आ गया।

कानूनगो ने लिखा है कि शेरशाह ने राजस्थान के शासकों की स्वतंत्रता को पूर्णतः समाप्त नहीं किया, बल्कि उनके राज्यों को उन्हीं के अधिकार में रहने दिया। शेरशाह की यह नीति थी कि राजस्थान की रियासतों का राजनैतिक पृथक्कीकरण रहे ताकि वे अफगानों के विरूद्ध संगठिन न हो सके। अतः राजस्थान के महत्वपूर्ण मार्गों पर नियंत्रण रखने के लिए शेरशाह ने राजस्थान के महत्वपूर्ण स्थानों पर अपनी चौकियां स्थापित कर दी।

15.3.12. कालिंजर की विजय – शेरशाह ने रींवा के राजा वीरभान बघेला को दरबार में बुलाया था, लेकिन वह शेरशाह ने भयभीत होकर कालिंजर के राजा कीरतसिंह के यहां शरण ले ली। शेरशाह ने कीरतसिंह से मांग की कि वह वीरभान को उसे सौंप दे, लेकिन कीरतसिंह ने इस मांग को ठुकरा दिया। अतः राजस्थान अभियान के बाद नवम्बर 1544 ई. में शेरशाह कालिंजर गया और दुर्ग को घेर लिया। यह घेरा लगभग एक वर्ष तक चलता रहा, किन्तु दुर्ग पर अधिकार न हो सका। अंत में दुर्ग की दीवारों को बारूद से उड़ाने का जाल बिछा दिया और इतना ऊंचा दुर्ग तैयार किया कि दुर्ग का भीतरी भाग स्पष्ट दिखाई दे। 22 मई 1544 को आक्रमण की आज्ञा दे दी गई। शेरशाह स्वयं बुर्ज पर चढ़ गया और बारूद का एक पतीला दुर्ग के भीतर फेंका, किन्तु वह पतीला दुर्ग की दीवारों से टकरा गया और बारूद के ढेर में, जहां शेरशाह खड़ा था, आ गिरा जिससे भयंकर विस्फोट हुआ। इस विस्फोट में शेरशाह बुरी तरह जल गया, अतः उसे शिविर में लाया गया। शेरशाह ने आक्रमण जारी रखने का आदेश दिया। अफगानों का आक्रमण सफल रहा और उन्होंने दुर्ग पर अधिकार कर लिया। जब इस विजय की सूचना शेरशाह को दी गई तो उसका चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। इसके तुरन्त बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

15.4. शेरशाह का प्रशासन :

15.5. केन्द्रीय शासन व्यवस्था :

शेरशाह के समय में केन्द्रीय सरकार भली प्रकार से संगठित थी। राजा तथा मंत्री केन्द्रीय सरकार के संचालक थे। कार्य कुशलता के लिए केन्द्रीय सरकार को कुछ विभागों में बांट दिया गया था ताकि शासन ठीक प्रकार से चल सके। शेरशाह एक निरंकुश सम्राट था। वह असीम शक्तियों का स्वामी था। सच तो यह है कि वह स्वयं ही कानून बनाता और लागू करता था। निःसंदेह उसके पास मंत्री थे, परन्तु वह मंत्री आजकल के मंत्रियों की भांति नहीं थे। न तो वे कोई कानून बनाने की सलाह दे सकते थे न किसी कानून को लागू करने का परामर्श। वह प्रायः राजा से आज्ञा मांगते थे। शेरशाह, फ्रांस की क्रांति से पूर्व राजाओं की भांति एक सम्राट था। वह वास्तव में 'पृथ्वी पर ईश्वर की छाया था और किसी भी मानवीय शक्ति के प्रति उत्तरदायी नहीं था।' इतना होते हुए भी वह अपने से पूर्व राजाओं की भांति निरंकुशता नहीं करता था। ईश्वरीप्रसाद के शब्दों में, 'यद्यपि शेरशाह की सरकार निरंकुश थी तथापि प्रबल व्यवहार पक्षपात से विमुक्त थी।' श्रीवास्तव भी इस बात की पुष्टि करते हैं। वह एक परोपकारी राजा था। वह अपनी प्रजा के सुख-सुरक्षा में रूचि रखता था। वह लोगों के हित सम्बन्धी कार्यों में रूचि लेता था। वह स्वयं कहा करता था, 'महापुरुषों को सदैव सक्रिय रहना ही शोभा देता है वह अपनी महानता को अपनी पदवी से प्रकट न करके लोगों की भलाई से प्रगट करें।' शेरशाह रात्रि के तीसरे पहर उठता था। स्नान तथा नमाज से निवृत्त होकर, राज्य कार्य में व्यस्त हो जाता था। कहा जाता है कि तीन घण्टे तक कार्य करने के पश्चात वह सुबह की नमाज पढ़ता था।तत्पश्चात् वह सेना का निरीक्षण करता इसके बाद दरबार लगाता था जिसमें वह लोगों की शिकायतें सुनना और अपना निर्णय देता था। दोपहर में थोड़ा विश्राम करता इसके पश्चात् वह स्वयं कुरान का पाठ करता था। संध्या के समय विद्वानों के साथ रहता। रात को पुनः कार्य में व्यस्त हो जाता था। यदि हम उनकी दिनचर्या को देखें तो भली भांति ज्ञात हो जाएगा कि वह एक कठोर परिश्रमी तथा प्रजा हितैषी तथा अपने से पूर्व राजाओं से भिन्न शासक था।

15.5.1. मंत्री – एक विशाल साम्राज्य का शासन करने के लिए मंत्रियों की सहायता लेना अनिवार्य होता है। कोई भी व्यक्ति कितना भी महान हो उसका अकेले कार्य करना दुष्कर है। शेरशाह ने भी राज्य कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए मंत्री नियुक्त किए हुए थे। उनका मुख्य कार्य राजा की आज्ञाओं का पालन करना था उनके पास किसी प्रकार के अधिकार नहीं थे। शेरशाह के पास चार मुख्य तथा दो गौण विभाग थे–मुख्य विभाग में 1. दीवाने वजारत 2. दिवाने आरिज 15. दिवाने रसातल 4. दिवाने इंशा थे जो दीवान (मंत्री) के द्वारा चलते थे।शेरशाह के गौण विभागों में दिवाने कज़ा तथा दिवाने बरीद के नाम मिलते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.5.2. दिवाने वजारत – के मंत्री को वजीर कहा जाता था। यह राजस्व तथा वित्त–सम्बन्धी विभाग था। वजीर राज्य की आमदनी तथा व्यय का लेखा–जोखा रखता था वजीर दूसरे विभागों का निरीक्षण भी कर सकता था। कभी–कभी शेरशाह स्वयं आमदनी तथा व्यय के हिसाब को देखता था।

15.5.3. दिवाने आरिज – यह विभाग सैनिक–मंत्री के अधीन था। यद्यपि हम इस विभाग के मंत्री को सेनापति नहीं कह सकते, तथापि वह सेना की भरती करता था। सेना का संगठन तथा उसे नियमपूर्वक चलाना भी उसी का ही काम था। सेना को वेतन देने का कार्य भी इसी विभाग का था। शेरशह स्वयं एक महान सैनिक था अतः वह इस विभाग का निरीक्षण किया करता था। कानूनगो कहते हैं, 'शेरशाह स्वयं ही कमान्डरल्इन–चीफ तथा पे–मास्टर–जनरल था।'

15.5.4. दीवाने रसातल – यह विदेश मंत्री के अधीन होता था। वह राजा के निर्देश के अनुसार दूसरे देशों में दूत भेजता था वह अन्य देशों के साथ कूटनीतिज्ञ सम्बन्ध स्थापित करता था। कभी–कभी दान विभाग भी इसी के संरक्षक में रहता था। वह बाहर से आने–जाने वाले विदेशी व्यक्तियों पर भी नियंत्रण रखता था।

15.5.5. दीवाने इंशा – यह विभाग भी मंत्री के अधीन होता था। इसकी कार्यवाही घोषणा की रूपरेखा तैयार करना, शेरशह की ओर से पत्र लिखना और सरकारी आलेखों को संभालना तथा भेजना होता था। यही मंत्री सरकार की ओर से किए गए निर्णयों को प्रान्तीय शासकों तक भिजवाता था।

15.5.6. दीवाने कज़ा – इस विभाग को भी मंत्रालय समझा जाता था। यह मुख्य काजी के अधिकार में था। वह न्याय करने के साथ, छोटी अदालतों से आए हुए प्रार्थना पत्रों को भी देखता था और अपना निर्णय देता था। न्याय विभाग उसी के नियंत्रण में कार्य करता था।

15.5.7. दीवाने बरीद – यह गुप्तचर विभाग का मुखिया था। राज्य में प्रत्येक महत्वपूर्ण घअनाओं से राजा को सूचित करना इसी विभाग का काम था। इस विभाग के अंतर्गत बहुत से गुप्तचर तथा गुप्त सिपाही थे। यह सभी महत्वपूर्ण स्थानों पर नियुक्त किए हुए थे। डाक का कार्यभार भी इसी को सौंपा गया था।

इन विभागों के अतिरिक्त शाही महल में खाने–सामान भी नियुक्त था। इसे मंत्री की पदवी नहीं दी गई थी। शाही कारखाने भी इसके आधीन थे। महल में नौकरों की देख–रेख करना भी इसी का कार्य था। राजा के साथ अधिक समीप रहने के कारण इसका सम्मान किसी मंत्री के कम नहीं था।

15.6. प्रान्तीय शासन :

शेरशाह ने राज्य प्रबंध की कुशलता के लिए राज्य को भागों तथा उपभागों में बांटा हुआ था। इतिहासकारों में शेरशाह के राज्य के बटवारे के विषय में अनेक मत हैं। कानूनगो कहते हैं कि शेरशाह ने राज्य को प्रान्तों में बटवाने की नीति का त्याग कर दिया गया। उसने प्रान्तों के बजाय राज्य को सरकारों में बांटा था। राज्य को प्रान्तों में बटवाने का श्रेय अकबर को ही है। सर–वूल्जले हैग भी इसी मत की पुष्टि करते हैं जब वह कहते हैं, 'प्रत्येक सरकार या राजस्व–जिले में मुख्य–शिकदार नियुक्त थे।' परन्तु डॉ. परमात्मा शरण इसके बिल्कुल विपरीत मत प्रकट करते हैं। उनका विचार है कि शेरशाह के राज्य की सबसे बड़ी शासकीय इकाई प्रान्त थी और उसका राज्य ऐसी बारह इकाइयों में विभक्त था। यह प्रान्त सैनिक गवर्नर के अधीन थे। ईश्वरी प्रसाद का विचार है 'शेरशाह ने अपने राज्य को 47 भागों में बांटा हुआ था। प्रत्येक भाग बहुत से परगनों को मिलाकर बनाया गया था।' अबुलफजल का कहना है कि बंगाल की 19 सरकारों को मिलाकर शेरशाह के राज्य में सरकारों की कुल संख्या 66 थी। श्रीवास्तव अपना अलग ही मत प्रकट करते हैं। वह कहते हैं 'सल्तनत काल से लेकर, शेरशह तथा उसके पुत्र इस्लाम शाह के राज्यकाल में, प्रशासकीय भाग थे जिनका रूप एक समान नहीं था। इन्हें सूबा अथवा प्रान्त नहीं कहते थे बल्कि इक्ता के नाम से पुकारते थे। इनके राज्यपाल बादशाह के या तो निकट के रिश्तेदार या फिर बहुत ही अधिक विश्वास पात्र अधिकारी होते थे। प्रान्त की सब तरह की सैनिक अथवा असैनिक व्यवस्था राज्यपाल के द्वारा की जाती थी।'

15.6.1. मुख्य शिकदार – 'सरकार' का सैनिक अधिकारी था जिसके अधीन दो हजार से लेकर पांच हजार तक सैनिक होते थे। वह कानून–व्यवस्था बनाए रखने का जिम्मेदार समझा जाता था। शांति बनाए रखना, विद्रोहों का कुचलना, सड़कों और जनपथों पर चौकसी रखना स्थानीय अधिकारियें की सहायता करना, परगनों में शिकदारों की कार्य–व्यवस्था देखना इसी का काम होता था। फौजदारी मुकदमों का फैसला भी यही करता था। यह पद किसी विश्वसनीय व्यक्ति को दिया जाता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

15.6.2. मुख्य मुन्सिफ – तारीखे शेरशाही के लेखक अब्बासखां के अनुसार 'सरकार' में एक असैनिक मुख्य मुन्सिफ अधिकारी भी नियुक्त किया जाता था। अब्बासखां के अनुसार मुख्य–मन्सिफ मुख्य शिकदार से कम महत्वपूर्ण था। शेरशाह मसनदऐ–अली–ईसा खां सारवानी को सम्मान की दृष्टि से देखता था। शेरशाह ने उसे 5,000 सवार की पदवी दी बाद में उसे सम्भल का मुन्सिफ नियुक्त कर दिया।

यदि हम अब्बासखां के कथन को देखें तो हमें यह मानना पड़ेगा कि सारवानी, नासिरखां, जो कि सम्भल का फौजदार था, के अधीन था। परन्तु अन्य स्थान पर अब्बासखां स्वयं ही लिखता है कि सारवानी को नासिरखां के अधीन नहीं लगाया गया था क्योंकि शेरशाह नासिरखां की क्रूर नीति से रूष्ट था। फिर शेरशाह जो कि परोपकारी था, लोगों की प्रार्थना को दबा नहीं सकता था। सारवानी के अनुसार शेरशाह स्वयं मुख्य–मुन्सिफ और मुख्य–शिकदार अधिकारियों की सीमा निर्धारित करता था।

उपरोक्त तथ्यों से यह विदित होता है कि मुख्य–शिकदार के पास सैनिक शक्ति होती थी। उसका कार्य राज–विद्रोहों को, जमींदारों को परगावों के शिकदरों के व्यवहार की निगरानी करना दण्ड देना तथा मुख्य–मुन्सिफ द्वारा घोषित अपराधियों को दण्ड देता था। जबकि मुख्य–मुन्सिफ का कार्य शांति बनाये रखना था। संभवतः मुख्य शिकदार मुख्य–मुन्सिफ के साथ अदालत में स्थान ग्रहण करता था।

मुख्य–शिकदार तथा मुख्य–मुन्सिफ के कार्य में सहायता के लिये बहुत से कर्लक तथा अन्य व्यक्ति हुआ करते थे। ये अपना वेतन तथा भत्ते प्रान्त की वार्षिक आय से लेते थे।

शेरशाह ने मुख्य–शिकदार तथा मुख्य–मुन्सिफ दोनों को ही संयुक्त रूप से सरकार के प्रति उत्तरदायी नियुक्त किया हुआ था। उन दोनों का कर्त्तव्य था कि वह परस्पर सहयोग की भावना से, सरकार में शांति व्यवस्था बनाये रखें।

15.7. परगना की शासन व्यवस्था :

अब्बासखां के अनुसार प्रत्येक सरकार, परगनों में विभक्त थी। परगना राज्य की सबसे छोटी शासकीय इकाई थी। राज्य में कुल 1,13,000 परगनें थे। (दाउदी) के अनुसार न तो यह परगने थे और न ही गांव बल्कि यह संख्या सारे परगने जो खालसा जमीन के आधीन थे, सवारों की थी। कानूनगो का मत है कि यह संख्या गांवों की है। ईश्वरी प्रसाद भी इसी कथन से सहमत हैं। परगनों का शासन–प्रबंध मुख्यतः शिकदार तथा मुन्सिफ चलाते थे परन्तु उनके कार्य में सहायता के लिये अन्य कर्मचारी भी होते थे।

15.7.1. शिकदार – शिकदार का मुख्य काम था शाही फरमानों को कार्यान्वित करना, परगने में शांति व्यवस्था को बनाए रखना, चोरों, डाकुओं और विद्रोहियों को सख्ती से कुचलना। अपराधियों के मुकदमों का निर्णय करना मुन्सिफ के कार्य में सहायता करना। यह पद किसी कुलीन वंश के शिक्षित व्यक्ति को ही दिया जाता था।

15.7.2. मुन्सिफ – इक्तेदार हुसैन सिद्दकी के अनुसार मुन्सिफ सम्मानीय वंश से होते थे। उन्हें मुस्लिम शिक्षाओं का पूर्ण ज्ञान होता था। मुस्ताकी कहता है कि प्रत्येक परगने में एक मुन्सिफ नियुक्त किया जाता था। अब्बासखां लिखता है कि मुन्सिफ राजस्व विभाग का अध्यक्ष होता था। वह सरकार के मुख्य–मुन्सिफ के आधीन कार्य करता था। वह किसानों से सीधा सम्पर्क रखता था। वह भूमि की पैदाइश भी करवाता था। कृषकों को समय पर ही अपने परगने का कर स्थानीय कोष में जमा करवाना पड़ता था। यदि वह समय पर कर न दे पाते तो, मुन्सिफ उन्हें दण्ड भी दे सकता था। वह अपने अधीन कर्मचारियों के कार्य का निरीक्षण करता था।

15.7.3. खजाँची और कारकुन – परगनें में एक खजांची भी होता था। उसका मुख्य कार्य रकमें वसूल करना तथा एकत्रित धनराशि के सम्बन्ध में शिकदार को सूचित करना था। यही खजाने का अध्यक्ष होता था। उसके फोतेदार भी कहते थे। शेरशाह ने प्रत्येक परगने में दो कारकुन अर्थात् लिपिक नियुक्त किए थे। उनमें से एक हिन्दी में तथा दूसरा फारसी भाषाओं में रिकार्ड रखता था ताकि किसानों को असुविधा न हो। फसलों के रिकार्ड भी यही बनाते थे। मुन्सिफ के कार्य में भी यही सहायता करते थे। तात्पर्य तो यह है कि भूमि तथा भूमि के सम्बन्ध में लेखा–जोखा इन्हीं के पास होता था।

15.8. ग्रामीण शासन व्यवस्था :

कुछ एक का कहना है कि परगना और ग्राम में कोई अन्तर नहीं था। परन्तु आर.पी. त्रिपाठी के अनुसार, 'परगना और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ग्राम बिलकुल भिन्न हैं' ग्राम और परगना को यदि एक दूसरे के समीप लायें तो हमें विदित होगा कि गांव ही शासन व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई है। प्रत्येक गांव में मुकदमा होता था। ताराचंद के अनुसार इन्हें मुख्य या पटेल भी कहते थे। यह कृषकों से राजस्व एकत्रित करके राज्य के खजाने में जमा करवा देते थे। इसके अतिरिक्त ग्राम में पटवारी तथा चौकीदार भी नियुक्त होते थे। पटवारी भूमि–आय का लेखा–जोखा रखता था। चैकीदार इसकी सहायता के लिये होता था।

सच तो यह है कि शेरशाह ने ग्रामों की आंतरिक स्वतंत्रता बनाये रखने की चेष्टा की। उसने ग्रामों को पंचायतों के आधीन ही रहने दिया। पंचायतों में ग्राम के वृद्ध साहूकार, शास्त्री आदि व्यक्ति होते थे। पंचायतों का कार्य गांव की सुरक्षा, सफाई आदि का प्रबंध करना होता था। यही झगड़ों आदि पर अपना निर्णय देते थे। तभी तो ताराचंद ने भी कहा है कि 'वह स्वयं ही पुलिस तथा जज होते थे।' उसने ग्रामीण जनता को अपनी उपज बेचने तथा आवश्यकता की वस्तुओं का क्रय करने के लिए प्रत्येक दस गांवों का एक मण्डल बनाया था। इन गांवों के लिए सप्ताह में एक दिन बाजार लगता था जहां सभी ग्रामीण क्रय–विक्रय के लिए आते थे।

15.9. भूमि–प्रबंध :

शेरशाह के शासक बनने से पूर्व भूमि–प्रबंध अव्यवस्थित था। भूमि की पैमाइश तथा वर्गीकरण के बारे में निश्चित नियम का अभाव था। लगान की दर भी नियत नहीं थी। डॉ. एस.आर. शर्मा के अनुसार, "प्रत्येक परगने में एक कानूनगों होता था, जिससे परगने की पूर्व, वर्तमान और भावी स्थिति का परिचय मिल जाता था।" मुस्लिम सम्राटों एवं हिन्दू मुकद्दमों के शोषण से किसानों की स्थिति शोचनीय थी। शेरशाह ने इन दोषों को दूर करते हुए भूमि–प्रबंध को प्रजा हितैषी, कुशल एवं सुदृढ़ बनाया। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "शेरशाह का भूमि–प्रबंध मुगलों के लिये एक बहुमूल्य बपौती थी।"

भूमि–प्रबंध की विशेषताएं

शेरशाह के भूमि–प्रबंध की प्रमुख विशेषताएं निम्न थीं–

1. शेरशाह ने अपने साम्राज्य में प्रत्येक किसान की कृषि योग्य भूमि की पैमाइश करवा कर उसका रिकार्ड रखा। भूमि की पैमाइश करने वालों को पर्याप्त वेतन दिया जाता था, ताकि वे किसानों का शोषण न कर ईमानदारी से कार्य करें।

.2. शेरशाह ने भूमि को तीन श्रेणियों–उत्तम, मध्यम तथा निम्न में विभाजित किया था। डॉ. पी. सरन के अनुसार, "भूमि–कर उपज का 1/3 भाग तथा डॉ. कानूनगों के अनुसार 1/4 भाग लिया जाता था। इसके अतिरिक्त कृषकों से जरीबाना (पैमाइश करने वालों की फीस) तथा महसीलाना (कर इकट्ठा करने वालों की फीस) के रूप में भूमि कर का 2 1/2 से 5 प्रतिशत तक लिया जाता था।

15. भूमि कर नकद तथा जिंस (अनाज) दोनों रूपों में चुकाया जा सकता था।

4. किसानों की सुविधा हेतु दो सरकारी–पत्र तैयार लिये जाते थे–पट्टा एवं कबूलियत। पट्टे पर किसान की भूमि का माप, खेतों की स्थिति एवं भूमि–कर का वर्णन होता था। यह पत्र किसानों को दे दिया जाता था तथा उनसे कबूलियत नामक पत्र पर हस्ताक्षर करवा लिए जाते थे।

5. शेरशाह ने भूमि–कर की बटाई या गल्ला बख्शी, कनकूत तथा जब्ती प्रणाली को अपनाया। बटाई प्रणाली में कुल उपज को चौधरी एवं सरकारी कर्मचारियों के समक्ष तीन भागों में विभक्त किया जाता था। एक भाग सरकार को एवं दो भाग किसान को मिलते थे। कनकूत प्रणाली में फसल की कटाई से पहले अनुमान द्वारा कर नियत कर दिया जाता था और फसल की कटाई के बाद वह ले लिया जाता था। जब्ती प्रणाली (ठेका व्यवस्था) में किसान सरकार को प्रति बीघा की दर से कुछ वर्षो के लिए कर देता था। उपज के कम या अधिक होने पर भी कर की दर में परिवर्तन नहीं होता था।

6. शेरशाह ने किसानों की भलाई के लिए कुछ नियम भी बनाये। उसने राजस्व कर्मचारियों को किसानों के साथ अच्छा व्यवहार करने तथा उन पर अधिक कर न लगाने का आदेश दिया, किन्तु साथ ही साथ वसूली में नरमी न दिखाने की भी आज्ञा दी। सैनिकों को अभियान के दौरान फसलों को नुकसान न पहुंचाने का आदेश दिया। इन आदेशों का उल्लंघन करने वाले को दण्डित किया जाता था। प्राकृतिक विपदा से फसलों को हानि पहुंचने पर कृषकों को सहायता दी जाती थी। कृषकों की सुविधा हेतु फरमान फारसी के साथ हिन्दी में भी जारी किए जाते थे। डॉ. कानूनगो के अनुसार, "यदि शेरशाह एक या दो दशाब्दी और जीवित रहा होता तो यहां जमींदारों की जमात समाप्त हो गयी होती और हिन्दुस्तान अथक परिश्रमी किसानों द्वारा जोते जाने वाला झाड़ी, घास–विहीन एक विस्तृत उपजाऊ भू–प्रदेश होता।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस भूमि प्रबंध में भी कुछ दोष अवश्य थे। कृषकों को उपज का काफी भाग कर के रूप में चुकाना पड़ता था। राजस्व कर्मचारी रिश्वतखोर होते थे। राज्य के कई हिस्सों में जागीरदारी–प्रथा का भी प्रचलन था। उपज से कम या अधिक कर लेने की शिकायतें अक्सर सम्राट् के पास आती थीं।

15.10. सैन्य–प्रबंध :

शेरशाह एक योग्य शासक था। वह सैन्य–संगठन की महत्ता जानता था। अतः उसने अपने सुधारों द्वारा सैन्य संगठन को अत्यन्त कुशल बना दिया। डॉ. कानूनगो के अनुसार, ''शेरशाह ने अलाउद्दीन की सैनिक प्रणाली को पुनर्जीवित करके वास्तविक रूप में सेना को शाही संस्था बना दिया।'' शेरशाह ने कुछ ऐसे सैन्य सुधार भी किये थे, जिन्हें अलाउद्दीन नहीं कर पाया था।

शेरशाह की सेना के सम्बन्ध में निश्चितता के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। समकालीन लेखकों के अनुसार उसकी सेना में 1 1/2 लाख घुड़सवार, 25 हजार प्यादे (पैदल) एवं पांच सौ हाथी थे। इसके अलावा सूबेदारों एवं स्थानीय अधिकारियों के पास एक लाख घुड़सवार तथा पांच हजार प्यादे थे। सेना कई भागों में विभाजित थी। प्रत्येक भाग का प्रधान एक सेनापति होता था। शेरशाह के पास कुशल तोपखाना भी था। सैनिक धनुष तथा तोड़ेदार बन्दूक से लड़ते थे।

सैनिकों की भर्ती स्वयं सम्राट करता था। उन्हें योग्यतानुसार वेतन दिया जाता था। शेरशाह ने भी अलाउद्दीन के समान प्रत्येक घोड़े को दागने तथा प्रत्येक सैनिक का हुलिया सरकारी रिकार्ड में रखे जाने की प्रथा को पुनः प्रचलित किया। शेरशाह ने अपनी सेना में कड़ा अनुशासन स्थापित किया। डॉ. कानूनगो के अनुसार, ''शेरशाह के शिविर का अनुशासन इतना कड़ा था कि केवल एक ही अभियान में भाग लेने वाला एक अनाड़ी सैनिक कुशल योद्धा बन जाता था।''

फसलों को नुकसान पहुंचाने पर सैनिकों को दण्डित किया जाता था। सैनिकों को वेतन नकद दिया जाता था। अधिकारियों को वेतन के बदले जागीरें दी जाती थीं। शेरशाह द्वरा सैनिकों को योग्यता के आधार पर पदोन्नति दी जाती थी, किन्तु अफसरों की सिफारिश का भी महत्व था।

15.11. पुलिस–प्रबंध :

शेरशाह का पुलिस–प्रबंध भी बड़ा कुशल था। उसने पुलिस–प्रबंध द्वारा राज्य में व्यवस्था स्थापित की। उसके पुलिस–प्रबंध की आज भी प्रशंसा की जाती है। उसके पुलिस–प्रबंध की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित थीं–

1. डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव के अनुसार, शेरशाह के समय सेना ही पुलिस का कार्य भी करती थी। परगने में शिकदार एवं केन्द्र में मुख्य शिकदार द्वारा पुलिस सम्बन्धी कार्य किया जाता था। वे अपराधियों को दण्डित करते थे।

2. गांव में पुलिस सम्बन्धी कार्य मुखिया द्वारा किया जाता था। यदि मुखिया निश्चित अवधि के भीतर चोरी या हत्या के अपराधियों को नहीं पकड़ पाता था, तो उसे दण्डित होना पड़ता था।

15. शेरशाह का दण्ड–विधान प्रबंध की प्रशंसा करते हुए अब्बास खां लिखते हैं, ''शेरशाह के शासन काल में एक बुढ़िया अपने सिर पर आभूषणों की गठरी रखकर बिना किसी के भय के सफर कर सकती थी, क्योंकि शेरशाह की ओर से दिए जाने वाले दण्ड का इतना भय था कि कोई भी चोर अथवा डाकू उसके समीप आने का साहस नहीं कर सकता था।'' डॉ. कानूनगो के अनुसार, ''शेरशाह की पुलिस–प्रणाली उस समय की परिस्थितियों के अनुकूल थी।''

15.12. मुद्रा–व्यवस्था :

शेरशाह का दूसरा बड़ा काम मुद्रा सम्बन्धी सुधारों का श्रीगणेश करना था। राज्य–प्राप्ति के पश्चात उसको ज्ञान हुआ कि धातु की कमीं, प्रचलित सिक्कों की घिसावट और खोटापन तथा विभिन्न धातुओं के सिक्कों के बीच कोई निश्चित अनुपात न होने के कारण मुद्रा–प्रणाली एकदम बिगड़ चुकी है। एक दूसरी कठिनाई यह भी थी कि सभी युगों के सिक्के–गत शासकों के सिक्के भी–उन दिनों चल रहे थे। शेरशाह ने चांदी के बहुत–से नये सिक्के निकलवाये जो 'दाम' कहलाते थे। चांदी के रुपये और तांबे के दाम के आधे, चौथाई, आठवें और सोलहवें भाग के सिक्के भी निकलवाये थे। इसके बाद उसने सब प्रकार के पुराने सिक्कों तथा मिश्रित धातु की मुद्रा–प्रणाली को समाप्त कर दिया। चांदी और तांबे के सिक्कों में उसने अनुपात निश्चित कर दिया। चांदी का रुपया 180 ग्रेन का था जिसमें 175 ग्रेन विशुद्ध चांदी थी। यदि शेरशाह की अंकित छाप का ध्यान न रखें, तो हम कह सकते हैं कि उसका सिक्का मुगलकाल में भी चलता था और 1835 ई. तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भी चालू माना गया। इतिहासकार वी.ए. स्मिथ ने ठीक ही लिखा है कि ''यह रुपया वर्तमान ब्रिटिश मुद्रा–प्रणाली का आधार है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शेरशाह का नाम, उसकी पदवी और टकसाल का स्थान भी अरबी लिपि में सिक्कों के ऊपर अंकित रहता था। कुछ सिक्के ऐसे भी थे जिन पर बादशाह के नाम के अतिरिक्त प्रथम चार खलीफाओं के नाम भी अंकित रहते थे। विशुद्ध धातु के सोने के सिक्के भी विभिन्न तोल के–166.4 ग्रेन, 167 ग्रेन और 168.5 ग्रेन–ढाले जाते थे। रुपया और दाम में 1 और 64 का अनुपात था। सोने और चांदी के भिन्न–भिन्न सिक्कों के बीच स्थायी आधार पर अनुपात स्थिर किया गया था। मुद्रा सम्बन्धी ये सुध ाार बड़े लाभदायक ओर सुविधाजनक सिद्ध हुए। इनसे जनसाधारण, विशेषकर व्यापारी–वर्ग, की अनेक असुविधाएं दूर हो गयीं। आधुनिक मुद्राशास्त्रियों ने शेरशाह के इन सुधारों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उदाहरणतः एडवर्ड टॉमस ने लिखा है कि ''शेरशाह के राज्यकाल ने भारतीय मुद्रा इतिहास में एक प्रमुख स्थान केवल टकसालों के लिये गये सुधारों द्वारा ही प्राप्त नहीं किया, बल्कि पूर्वकालीन राजाओं की मुद्रा–व्यवस्था के उत्तरोत्तर ह्रास को रोककर उन सुधारों में से बहुतों को जारी करते हुए प्राप्त किया जिन्हें आने वाले मुगल शासकों ने अपना बताया।''

15.13. व्यापार–वाणिज्य :

शेरशाह ने उन बहुत–से महसूलों को जिन्हें प्रत्येक प्रान्त और जिले की सीमा पर तथा प्रत्येक घाट पर प्रत्येक प्रमुख मार्ग पर वसूल किया जाता था, हटाकर व्यापार और वाणिज्य को बहुत प्रोत्साहन दिया। उसने यह तय कर दिया कि बिक्री के लिए आने–जाने वाली वस्तुओं पर केवल दो चुंगियां लगायी जायेंगी। एक चुंगी तो तब वसूल की जाती थी जबकि व्यापारिक वस्तुएं उसके राज्य की सीमा में पूर्वी बंगाल के सोनारगांव नामक स्थान अथवा पंजाब के रोहतासगढ़ या अन्य किसी प्रान्त की सीमा से प्रवेश करती थीं और दूसरी चुंगी इन वस्तुओं की बिक्री के स्थानपर लगायी जाती थी। यह चुंगी कितनी लगती थी, इसका कोई निश्चित पता नहीं है। ऐसा अनुमान है कि यह महसूल वस्तु के मूल्य का 2.5 प्रतिशत होता था। राज्य के अंदर चुंगी वसूल करने के शेष सभी स्थान उसने बंद कर दिये थे। इन सुधारों से देश के अंदर व्यापार–वाणिज्य को बहुत प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और यथेष्ट व्यापारिक समृद्धि हुई।

15.14. न्याय–व्यवस्था :

शेरशाह मध्ययुग का अत्यन्त न्यायप्रिय शासक समझा जाता है। अपनी प्रजा की भलाई करते रहने के उसके व्यक्तिगत गुण और विशेषताओं पर ही उसकी प्रतिष्ठा आधारित नहीं थी, बल्कि एक श्रेष्ठ न्याय–व्यवस्था की स्थापना द्वारा भी उसने लोगों के दिलों में ऊंचा स्थान प्राप्त किया था। सुदीर्घकाल से प्रचलित प्रथा के अनुसार वह साधारण मुकदमे भी सुनता था और उनकी अपीलें भी सुनता था। बुधवार के दिन संध्या के समय उसकी कचहरी लगती थी। उसके नीचे प्रमुख काजी होता था, जो न्याय विभाग का प्रधान था और न्याय–व्यवस्था के सुप्रबंध की जिम्मेदारी भी इसी के ऊपर होती थी। प्रमुख काजी की कचहरी मुख्य रूप से अपील सुनवाई की कचहरी थी, किन्तु पहले–पहल के मुकदमों के भी यहां फैसले किये जाते थे। प्रत्येक जिले में और संभवतः प्रत्येक प्रमुख नगर में काजी होता था। प्रमुख मुन्सिफ के ऊपर जिले में दीवानी न्याय–व्यवस्था का सुचारू रूप से प्रबंध करने का उत्तरदायित्व था और परगनों में यही कार्य 'अमीन' करते थे। संभवतः काजी फौजदारी के मुकदमे करता था और मुन्सिफ तथा अमीन दीवानी के मुकदमे। एक अन्य न्याय अधिकारी भी था, जो मीर–आदिल कहलाता था।

शेरशाह की न्याय–व्यवस्था उच्च आदर्शों पर अवलम्बित थी। निर्धन और निर्बलों को अनाचार एवं अन्याय से बचाने में वह विशेष रूचि लेता था। अधिकतर वह इस सिद्धान्त का पलन करता था कि निर्धन और निकृष्ट जनों की अपेक्षा सरकारी अफसरों और सम्मान–प्राप्त व्यक्तियों के प्रति ही अधिक कटोरता का व्यवहार किया जाय। यहां तक कि न्याय–सम्पादन के समय वह अपने निकट सम्बन्धियों को भी कोई महत्व नहीं देता था। इस सम्बन्ध में लिखे हुए एक चुटकुले से ज्ञात होता है कि एक सुनार की पत्नी पर अपने घर में स्नान करते हुए पान का पत्ता फेंकने के अपराध में शेरशाह ने अपने भतीजे को दण्ड दिया था। जब शहजादा अपने हाथी पर घर के पास से गुजर रहा था, उसी समय यह घटना घटी थी। सरदारों द्वारा उक्त दण्ड का विरोध किये जाने पर भी शेरशाह अपने न्यायपूर्ण निर्णय से विचलित नहीं हुआ। शेरशाह के सतर्क और निष्पक्ष मालवा के गवर्नर शुजातखां ने अन्यायपूर्वक 2,000 सैनिकों की जागीरों के एक भाग पर अपना अधिकार कर लिया था। जब शेरशाह ने यह बात सुनी तो उसने उचित दण्ड की आज्ञा निकाल दी, यद्यपि इसी बीच जागीरें वापस देकर शुजातखां ने अपनी भूल का सुधार कर लिया था। हम पहले ही लिख चुके हैं कि किसानों की भलाई के निमित्त शेरशाह विशेष रूप से उदार था। युद्धकाल में वह सेना द्वारा रौंदी हुई फसलों की क्षतिपूर्ति भी करता था। न्यायप्रिय बादशाह होने के नाते शेरशाह की पूर्ति उसकी मृत्यु तथा उसके वंश के पतनोपरान्त भी बनी रही। तबकाते अकबरी के लेखक निजामुद्दीन अहमद ने सोलहवीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शताब्दी के अंतिम वर्षों में लिखा था कि शेरशाह के शासनकाल में कोई भी सौदागर रेगिस्तान में यात्रा करते हुए जा सकता था और लुटेरों द्वारा माल–असबाब के लूटे जाने का उसे कोई भय नहीं था। शेरशाह के भय और न्याय प्रेम के कारण चोर और लुटेरे तक सौदागरों के माल की निगरानी करते थे।

15.15. सार्वजनिक सुधार :

शेरशाह का नाम उसके सार्वजनिक कार्यों के लिए चिरस्मरणीय है। उसने शासन सम्बन्धी अनेक सुधार किये, परन्तु साधारण जनता में अपना नाम अपने कार्यों से प्राप्त किया। सड़कें, सरायें अब भी उसकी कीर्ति तथा महानता के अमिट स्मारक हैं।

15.15.1. सड़कें — शेरशाह जानता था कि सड़कों के बिना देश में व्यापार आदि की वृद्धि असंभव है। राष्ट्र का निर्माण करना दुश्वार है। अतः उसने अपनी दूरदर्शिता का परिचय अनेक प्रजाहित कार्य करके दिया। सबसे पहली तथा प्रसिद्ध सड़क वर्तमान जर्नेली सड़क ही है। इसे 'सड़के आजम' के नाम से पुकारा जाता था। यह सोनार गांव (बंगाल) से लेकर रोहतास (पंजाब) तक 1500 कोस लम्बी सड़क थी। दूसरी सड़क आगरा से बुरहानपुर तक जाती थी। तीसरी सड़क आगरा से जोधपुर तक जाती थी और चौथी लाहौर से मुलतान तक।

सड़कें बहुत नियमपूर्वक ढंग से बनाई गई थी। सभी महत्वपूर्ण स्थानों से गुजरती थी। इन सड़कों के दोनों किनारों पर फलदायक वृक्ष लगाये गये थे। यात्रियों को सफर करने में सुविधा मिल गयी थी, वहां चोर डाकू तथा अन्य विद्रोहियों का सामना बड़ी सरलतापूर्वक किया जा सकता था। शांति व्यवस्था स्थापित करना सरल बन गया । पी.सरन के मतानुसार 'सड़कों का सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह हुआ कि लोगों में एकता की भावना प्रबल हुई जिससे राष्ट्र विभाग के कार्यों को प्रोत्साहन मिला।'

15.15.2. सरायें — सड़कों के किनारे लगभग 1700 सरायें बनवाई। हिन्दुओं तथा मुसलमानों के लिए पृथक–पृथक कमरे होते थे। इन सरायों पर घोड़े भी रखे जाते थे, जो डाक पहुंचाने के काम आते थे। उनके खाने का प्रबंध भी सरायों पर किया जाता था। प्रत्येक सराय के साथ एक कुंआ तथा एक मस्जिद बनवाई गई थी मस्जिदों में इमाम रहा करते थे। शांति व्यवस्था बनाने के लिए शिकदार भी आकर रहा करते थे। सरायों के साथ डाक चौकी भी जोड़ दी गई और डाकिए भी वहां पर नियुक्त किए गए थे। शाही आज्ञाओं को आगे पहुंचाने का कार्य करते थे।

सराय साधारण जनता के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई। सामान्य यात्री आते जाते यहां आकर रूकते और विश्राम करते थे। सरकारी कर्मचारियों को भी अत्यधिक लाभ हुआ। गव वालों को भी इन सरायों का लाभ पहुंचा, उनको अब दर्शकों आदि का अधिक बोझ नहीं उठाना पड़ता था। शेरशाह परोपकारी कार्यों से अत्यधिक प्रसिद्ध हो गया। कानूनगों के कथनानुसार, 'सरायों ने साम्रज्य की धमनियों का सा रूप ले लिया और अब तक के अर्ध–जीवित अंगों में नए जीवन का संचार करने लगी।'

यदि हम शेरशाह के ऊपर लिखित कार्य का मूल्यांकन करें तो हमें एस.आर. शर्मा के प्रश्नों से सहमत होना ही पड़ेगा। शर्मा का मत है कि शेरशाह में अनेक गुण थे। वह एक अद्भुत प्रतिभा का स्वामी था। उसका जागीरदारों से व्यवहार हमें इंग्लैंड के राजा हेनरी सप्तम की याद दिलाता है। उसका सैनिक तथ असैनिक प्रशासन तथा उसका संगठन एशिया के महान फैडरिक प्रथम के प्रशासन के कम नहीं था उसके राजनीति के नियम कौटिल्य तथा मैक्यावली के नियमों जैसे थे। शेरशाह का प्रजा के प्रति हित अशोक सम्राट की याद दिलाता है। वास्तव में शेरशाह, बाबर और फैडरिक महान का मिश्रण था। अरिस्कन के अनुसार 'शेरशाह असाधारण व्यक्तियों में वह एक मानव था जिसका नाम भारतीय इतिहास में लिखा गया है।' कानूनगो के कथनानुसार शेरशाह एक महान प्रशासकीय तथा सैनिक बुद्धि का स्वामी था। शर्मा कानूनगो से सहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'शेरशाह की शासन प्रणाली और उनके परिणामों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि कानूनगो के शब्दों में कोई अतिश्योक्ति नहीं है। शेरशाह के कार्यो ने बाबर के विजय की कीर्ति को कम कर दिया। दोनों का समय लगभग एक जैसा ही है परन्तु बाबर ने जहां भारत को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा, शेरशाह ने उसी के नव–निर्माण में अपना जीवन लगा दिया। शेरशाह के कार्य से, बाबर के समर्थकों को कि बाबर के पास समय का अभाव था, स्वयं ही उत्तर मिल जाता है। शेरशाह वास्तव में एक महान सुयोग्य कूटनीतिज्ञ सम्राट था।

15.16. शेरशाह का मूल्यांकन :

उत्तरी भारत के मुसलमान शासकों में मात्र शेरशाह एक ऐसा व्यक्ति था जिसका राज परिवार से कोई सम्बन्ध नहीं था और साधारण परिवार में जन्म लेकर भी वह इतने ऊंचे राजपद पर पहुंच गया था। यह उसकी उच्चकोटि की बुद्धिमत्ता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और योग्यता का प्रमाण है। यद्यपि वह 68 वर्ष की आयु में शासक बना था, किन्तु उसका उत्साह और महत्वाकांक्षा असीमित थी। वह कठोर परिश्रमी था। वह प्रतिदिन सोलह घंटे राज कार्य में लगाता था। रात्रि के तीसरे पहर में उठकर स्नान और नमाज से निवृत होकर वह राज्य कार्य में व्यस्त हो जाता था। तीन घंटे तक कार्य करने के पश्चात सुबह की नमाज पढ़ता था। तत्पश्चात वह सेना का निरीक्षण करता, फिर दरबार लगाता, जिसमें लोगों की शिकायतें सुनकर अपना निर्णय लेता था। दोपहर को थोड़ा विश्राम करके कुरान का पाठ करता था। संध्या के समय वह विद्वानों के साथ रहता था और रात को पुनः कार्य में व्यस्त हो जाता था। इस दिनचर्या से स्पष्ट है कि शेरशाह कठोर परिश्रमी और प्रजा हितैषी शासक था।

शेरशाह में किसी अभिजात पुरुष की–सी सुसंस्कृति नहीं थी और न उसमें व्यक्तिगत आकर्षण था। उसे एक आज्ञाकारी पुत्र भी नहीं कह सकते। इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं मिलता कि वह अपने बच्चों के प्रति विशेष प्रेम रखता था। यद्यपि शेरशाह अरबी और फारसी का अच्छा ज्ञाता तथा इतिहास के प्रति रूचि रखता था, तथापि उसे विद्वान नहीं कहा जा सकता। इतिहास का अध्ययन तो उसने व्यवहारिक उपयोगिता के कारण किया था। वह प्रतिदिन कुरान इसलिए पढ़ता था क्योंकि एक धार्मिक मुसलमान के लिए इसका पढ़ना जरूरी है। यद्यपि वह विद्वानों का आदर करता था, किन्तु उसके राज्यकाल में किसी विद्वान ने कोई विशिष्ट रचना तैयार नहीं की। लेकिन वह एक वीर सैनिक, चतुर सेनानायक और कुशल कूटनीतिज्ञ अवश्य था। वह केवल विजय करने के विचार से युद्ध करता था और उसका विश्वास था अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भले–बुरे सभी साधनों को व्यवहार में लाना उचित है। वह न केवल सफल विजेता ही था बल्कि शासन प्रबंध में भी उसने अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया था। शासन प्रबंध में पटुता, चारित्रिक दृढ़ता और सम्पन्न किये गये कार्यों की दृष्टि से शेरशाह मध्यकालीन भारतीय शासकों में एक विशेष स्थान रखता है।

उसकी धार्मिक नीति के सम्बन्ध में डॉ. कानूनगो ने उसे धार्मिक सहिष्णुता वाला बताया है जबकि डॉ. श्रीराम शर्मा ने उसे इस्लाम का कट्टर अनुभवी बताया है। वस्तुतः वह इस्लाम का प्रबल समर्थक था। रायसीन के राजा पूरनमल के विरूद्ध उसने जिहाद घोषित किया था तथा मारवाड़ विजय के बाद जोधपुर के किले में मंदिर ध्वस्त करवा कर उसके स्थान पर मस्जिद बनवायी थी। उसके ये कार्य उसकी धार्मिक कट्टरता को प्रदर्शित करते हैं। लेकिन उसने दिल्ली के सुल्तानों की भांति हिन्दुओं के प्रति अत्याचारपूर्ण नीति नहीं अपनायी थी। उसकी पैदल सेना में अधिकांश सैनिक हिन्दू थे। जहां तक संभव होता, वह राजनीति को धर्म से पृथक ही रखता था।

15.17. सारांश :

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि शेरशाह अपने पूर्ववर्ती सम्राटों से श्रेष्ठ था। किन्तु बुल्जले हेग का यह कथन कि, ''वह भारत के मुसलमान शासकों में सबसे महान था'' अतिशयोक्तिपूर्ण है। सफल विजेता और शासन प्रबंधक के रूप में वह निश्चय ही अलाउद्दीन खिलजी से श्रेष्ठ था, किन्तु रचनात्मक राजनीतिज्ञता में वह उससे घटिया था। अकबर के साथ भी शेरशाह की तुलना करना अनुपयुक्त है क्योंकि एक व्यक्ति के रूप में अथवा एक शासक के रूप में अकबर उससे कहीं अधिक श्रेष्ठ था। डॉ. कानूनगो के इस मत से हम सहमत हैं कि इतिहास में अकबर का स्थान शेरशाह के स्थान से अधिक ऊंचा है।

15.18 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 मालदेव ने रायसिन पर कब विजय प्राप्त की थी?

अ. 1540 ई. ब. 1542 ई.

स. 1544 ई. द. 1545 ई.

उत्तर – ....

प्रश्न 2 शेरशाह सूरी की मुद्रा प्रणाली पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर – ....

प्रश्न 3 ''शेरशाह साम्राज्य निर्माता के साथ–साथ कुशल प्रशासक भी था।'' सिद्ध कीजिए।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 16
सम्राट अकबर

संरचना

16.0 उद्देश्य –

–अकबर का साम्राज्य विस्तार

–अकबर की राजपूत नीति

–अकबर की धार्मिक नीति

–प्रशासनिक, शैक्षिक, कलात्मक, साहित्यिक एवं अन्य सुधार

16.1 आरम्भिक जीवन

16.1.1 राज्यारोहण

16.2 अकबर की समस्याएं

16.3 कठिनाइयों पर विजय

16.4 पानीपत का द्वितीय युद्ध (5 नव. 1556 ई.)

16.5 दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार

16.6 बैरम खां का पतन

16.7 अकबर का विजय अभियान

16.7.1 मालवा की विजय

16.7.2 जौनपुर–विद्रोह का दमन

16.7.3 राजपूतों से प्रथम सम्पर्क

16.7.4 मेड़ता पर विजय

16.7.5 गौडवाना पर विजय

16.7.6 चितौड़ पर विजय

16.7.7 रणथम्भौर पर विजय

16.7.8 कालिंजर पर विजय

16.7.9 राजपूताना पर विजय

16.7.10 गुजरात पर विजय

16.7.11 बिहार और बंगाल पर विजय

16.7.12 मेवाड़ अभियान

16.7.13 कश्मीर पर विजय (1585 ई.)

16.7.14 सिन्ध पर विजय (1591 ई.)

16.7.15 बिलोचिस्तान पर विजय (1595 ई.)

16.7.16 दक्षिण पर विजय

16.7.17 अहमदनगर और अकबर

16.7.18 अकबर के जीवन की अन्तिम लड़ाई

16.7.19 बीजापुर

16.7.20 गोलकुण्डा

16.7.21 महाराणा अमरसिंह और अकबर (1507–1620 ई.)

16.8 अकबर की राजपूत नीति

16.8.1 राजपूत नीति की विशेषताएँ

16.8.2 राजपूत नीति के परिणाम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.9 हिन्दुओं के प्रति नीति

16.9.1 तीर्थयात्रा कर समाप्त करना (1563 ई.)

16.9.2 जजिया कर समाप्त करना (1564 ई.)

16.9.3 उच्च पदों पर नियुक्ति

16.9.4 धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान करना

16.9.5 हिन्दू रिवाजों को अपनाना

16.9.6 गो वध निषेध

16.9.7 हिन्दू साहित्य का संरक्षण

16.9.8 सामाजिक सुधार

16.10 अकबर की धार्मिक नीति

16.11 धार्मिक परिवर्तन के कारण

16.11.1 शिया–सुन्नी के पारस्परिक झगड़े

16.11.2 हिन्दू स्त्रियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना

16.11.3 वंशानुगत प्रभाव

16.11.4 अकबर पर अन्य धर्मों का प्रभाव

16.12 अकबर की धार्मिक नीति के चरण

16.13 उदारता की नति (1560–1575 ई.)

16.14 इबादतखाने की स्थापनाऔर महान परिवर्तन (1575–1580 ई.)

16.14.1 इबादतखाने में वाद–विवाद

16.14.2 अकबर द्वारा खुतबा पढ़ना

16.14.3 मजहर–पत्र की घोषणा

16.15 दीन–ए–इलाही (1581 ई.)

16.15.1 दीन–ए– इलाही के सिद्धान्त

16.15.2 सदस्य बनने की विधि

16.15.3 अनुयायियों के चार पद

16.15.4 प्रसार

16.15.5 दीन–ए–इलाही की विफलता के कारण

16.15.6 निष्कर्ष

16.16 अकबर की मृत्यु

16.17 राष्ट्रिय शासक के रूप में अकबर

16.17.1 विशाल साम्राज्य का संस्थापक

16.17.2 कुशल शासन प्रबन्धक

16.17.3 समान नागरिकता

16.17.4 धार्मिक स्वतन्त्रता तथा सहिष्णुता

16.17.5 सामाजिक समन्वय

16.17.6 योग्यता के आधार पर नौकरी

16.17.7 समान शासन–व्यवस्था

16.17.8 हिन्दू समाज में सुधार

16.17.9 शैक्षिक सुधार

16.17.10 साहित्यिक विकास

16.17.11 दीन–ए–इलाही द्वारा प्रयत्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.17.12 कला में समन्वय
16.17.13 निष्कर्ष
16.18 अकबर का शासन प्रबन्ध
16.18.1 शासन–प्रबन्ध के सिद्धान्त
16.19 केन्द्रीय शासन
16.19.1 वकील अथवा प्रधानमन्त्री
16.19.2 दीवान
16.19.3 मीरबख्शी
16.19.4 मुख्य सदर
16.19.5 खान–ए–सामान
16.19.6 मुहतसिब
16.19.7 मीर आतिश
16.19.8 काजी–उल–कुजात
16.19.8 दरोगा–ए–डाक चौकी
16.20 मनसबदारी प्रथा
16.21 प्रान्तीय शासन
16.21.1 सूबेदार
16.21.2 दीवान
16.21.3 सदर एवं काजी
16.21.4 बख्शी
16.21.5 अन्य पदाधिकारी
16.22 स्थानीय शासन
16.23 सैन्य–प्रबन्ध
16.24 भू–प्रबन्ध एवं राजस्व
16.25 न्याय व्यवस्था
16.26 कला के क्षेत्र में उन्नति
16.27 अकबर का मूल्यांकन और सारांश
16.28 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.0 उद्देश्य :

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य मुगल सम्राट अकबर के विषय में पाठकों को विस्तृत जानकारी देना। मुगल साम्राज्य की स्थापना बाबर ने की लेकिन उसके पास समय बहुत अल्प था और इन चार वर्ष के दौरान वह चार महत्त्वपूर्ण युद्धों में व्यस्त रहा अतः प्रशासन की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सका। हुमायु के सामने अनेक समस्याएं थी परिणामस्वरूप अधिकांश इतिहास अकबर को ही मुगल प्रशासन का वास्तविक संस्थापक मानते है क्योकि उसके समय में मुगल साम्राज्य का चहुमुखी विकास हुआ। प्रस्तुत इकाई में मुगल सम्राट अकबर की सभी विशेषताओं को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझाया जायेगा –

–अकबर का साम्राज्य विस्तार
–अकबर की राजपूत नीति
–अकबर की धार्मिक नीति
–प्रशासनिक, शैक्षिक, कलात्मक, साहित्यिक एवं अन्य सुधार

16.1. आरम्भिक जीवन :

अकबर का जन्म 15 अक्टूबर, 1542 ई. (रविवार) को अमरकोट में राणा वीरसाल के यहां हुआ था। उसके पिता का

नाम हुमायूं एवं माता का नाम हमीदाबानू था। हुमायूं इस समय निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहा था। अकबर के जन्म के उपलक्ष में हुमायूं ने कस्तूरी के टुकड़े अपने साथियों को बांटते हुए कहा था''अपने पुत्र–जन्म के इस अवसर पर केवल यही भेट मैं आप लोगों को दे सकता हूं। मैं आशा और कामना करता हूं कि जिस तरह इस खेमें में इस कस्तूरी की सुगन्ध फैल रही है, उसी तरह मेरे पुत्र का यश–सौरभ किसी दिन संसार में फैलेगा।'' हुमायूं ने अपने पुत्र का नाम 'अकबर' रखा, जिसका तात्पर्य है अत्यन्त महान् अथवा श्रेष्ठ। अकबर शिक्षा के प्रति उदासीन था। डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव के अनुसार, ''एक को बदलकर दूसरा, इस प्रकार कई शिक्षक नियुक्त किये गये, किन्तु वे सभी उसे पढ़ाने में असमर्थ रहे, क्योंकि वह तो पढ़ने–लिखने की अपेक्षा खेल–कूद की ओर व ऊंट, घोड़े, कुत्ते और कबूतर इत्यादि जानवरों के प्रेम में अधिक निमग्न रहता था।'' अबुल फजल के अनुसार, ''उसका पवित्र हृदय और पवित्रता कभी बाह्य ज्ञान की ओर उन्मुख नहीं हुई।''

16.1.1. राज्यारोहण — हुमायं की मृत्यु के समय अकबर बैरम खां के साथ कलानौर नामक स्थान पर था। बैरम खां ने उसे 14 फरवरी, 1556 ई. को कलानौर के चबूतरे पर बैठाकर उसका राज्याभिषेक किया। इसके बाद 17 फरवरी को उसको दिल्ली के सिंहासन पर बैठाया तथा भव्य उत्सव मनाया गया। अहमद यादगार के अनुसार, ''बैरम खां ने बहुत बड़ा जलसा किया और एक बहुत बड़ा शामियाना रेशम से सजाया गया, जो ऐसा मालूम होता था कि मानों स्वर्ग में बसन्त के प्रारम्भ होने पर वाटिका में सुंदर फूल खिले हुए हैं।'' चुगताई काम के सरदारों को बहुमूल्य खिलअतें देकर प्रसन्न किया गया और भविष्य में शाही तोहफो तथा कृपा के वचन दिये गये। फिर बैरम खां ने घोषणा की, ''यह बादशाह सलामत के शासन का आरम्भ है।'' अकबर के अल्पायु होने के कारण बैरम खां उसका संरक्षक बन गया।

16.2. अकबर की समस्याएं :

गद्दी पर बैठते समय अकबर समस्याओं से घिरा हुआ था। निजामुद्दीन अहमद के अनुसार, ''जब अकबर कलानौर में गद्दी पर बैठा, तो यह नहीं कहा जा सकता था कि उसके पास कोई राज्य था। बैरम खां के पास एक छोटी–सी सेना थी, उसका कुछ डगमगाता हुआ–सा अधिकार पंजाब के जिलों पर था और वह सेना भी ऐसी नहीं थी, जिस पर विश्वास किया जा सके। अतः स्पष्ट है कि जब अकबर सम्राट बना, उस समय दिल्ली की गद्दी संकटपूर्ण थी।'' वी.ए. स्मिथ के अनुसार, ''अकबर के राज्याभिषेक के समय भारत में राजनीतिक एकता का अभाव था।''

स्मिथ के अनुसार, ''उस समय तो उसे किसी निश्चित राज्य का स्वामी भी नहीं कहा जा सकता था। उसकी छोटी–सी सेना का पंजाब के केवल कुछ जिलों पर शिथिल–सा अधिकार था और दुर्भाग्य से इस सेना पर भी पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता था। वास्तविक रूप में सम्राट बनने के लिए अकबर को अपने आपको राज्य के दूसरे दावेदारों से अधिक बलवान सिद्ध करना था और अपने पिता द्वारा छोड़े हुए राज्य को पुनः अधिकार में लाना था।'' अकबर की मुख्य समस्याएं इस प्रकार थीं–

1. मुगल साम्राज्य अव्यवस्थित था तथा कई दावेदार राज्य हड़पना चाहते थे।

2. पंजाब पर सिकन्दर सूर, आगरा पर हेमू तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश पर मुहम्मद आदिलशाह सूर का अधिकार था। अहमद यादगार के अनुसार, ''आगरा से मालवा तक के देश तथा जौनपुर की सीमाओं पर आदिलशाह की राजसत्ता थी, दिल्ली से छोटे रोहतास तक, जो काबुल के मार्ग पर था, शाह सिकन्दर के हाथों में था तथा पहाड़ियों के किनारे से गुजरात की सीमा तक इब्राहीम खां के अधीन था।''

3. अकबर का सौतेला भाई हकीम तथा चचेरा भाई सुलेमान मिर्जा उसका राज्य हड़पना चाहते थे।

4. दिल्ली तथा आगरा के पास अकाल पड़ने से स्थिति और बिगड़ गई थी।

इस समय बैरम खां ने अपनी वीरता तथा योग्यता द्वारा इन कठिनाइयों को दूर किया।

16.3. कठिनाइयों पर विजय :

कलानौर में राज्याभिषेक के पश्चात् बैरम खां ने अकबर के साथ दिल्ली की तरफ कूच कियां मार्ग में उन्हें सूचना मिली कि हेमू ने मुगल सूबेदार तारदी बेग को पराजित करके दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार कर लिया है एवं वह पंजाब की तरफ बढ़ रहा है। बैरम खां ने सरहिन्दी नामक स्थान पर शत्रु का मुकाबला करने का निश्चय किया तथा तारदी बेग को कायर ठहराकर उसे मृत्यु दण्ड दिया। बदायूंनी के अनुसार, ''बैरम खां ने तारदी बेग का विश्वासघात प्रमाणित करने के लिए खानजमां तथा उसके साथियों को प्रस्तुत किया और इस प्रकार उसने अल्पवयस्क सम्राट अकबर को विश्वास दिलाकर तारदी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बेग को प्राणदण्ड देने की अनुमति प्राप्त कर ली।'' वी.ए. स्मिथ के अनुसार, यह दण्ड बिना मुकदमा चलाये दिया गया था, परन्तु यह आवश्यक था और मूल रूप से न्यायसंगत था।'' स्मिथ आगे लिखते हैं, ''इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यदि तारदी बेग को दंड नहीं दिया जाता, तो अकबर का जीवन और राज्य दोनों नष्ट हो जाते।'' फरिश्ता के अनुसार, ''उस समय मुगल सेना की दशा इतनी खराब थी कि तारदी बेग को उदाहरण के तौर पर मृत्यु दण्ड न दिया जाता, तो इस बार भी मुगलों की वही दशा हो जाती, जो शेरशाह से युद्ध के समय हुमायूं की हुई थी।'' इसके बाद मुगल सेना दिल्ली की तरफ बढ़ी।

16.4. पानीपत का द्वितीय युद्ध (5 नवम्बर, 1556 ई.) :

आदिल खां के मंत्री हेमू ने तारदी बेग को खदेड़कर दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार कर लिया था। वह विक्रमादित्य की उपाधि धारण करके गद्दी पर बैठा। मुगल सेना के पानीपत के मैदान में पहुंचने पर वह भी उसका सामना करने के लिए एक लाख सैनिकों सहित वहां आ डटा। 5 नवम्बर, 1556 ई. को हेमू तथा अकबर के बीच पानीपत का द्वितीय युद्ध हुआ। हेमू 'हवाई' नामक हाथी पर युद्ध कर रहा था। उसने एक ही हमले में मुगल सेना को अस्त–व्यस्त कर दिया था, किन्तु आंख में तीर लगने से वह अचेत होकर गिर पड़ा। वी.ए. स्मिथ के अनुसार, ''संभवतः विजय हेमू की होती, किन्तु आकस्मिक घटनावश उसे परास्त होना पड़ा। एक तीर उसकी आंख में आ लगा, जिसने उसका मस्तिष्क छेदकर उसे अचेत कर दिया।''

हेमू के घायल होने से अफगान सेना में भगदड़ मच गई तथा मुगल विजयी रहे। डॉ.आर.पी. त्रिपाठी ने लिखा है, ''उसकी (हेमू की) पराजय दुर्घटना थी और अकबर की विजय दैवी संयोग से थी।।'' हेमू को बंदी बना लिया गया। डॉ. एस. आर. शर्मा के अनुसार, ''बैरम खां ने अपनी तलवार निकाली और एक ही बार में हेमू का सिर धड़ से अलग कर दिया।'' बदायूंनी तथा अबुल फजल यही मानते हैं। अहमद यादगार के अनुसार, ''हेमू का सिर काटकर काबुल भेज दिया गया और उसके धड़ को दिल्ली के एक दरवाजे पर लटका दिया गया।''

पानीपत का द्वितीय युद्ध इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। इससे भारत में पुनः हिन्दू राज्य अथवा पठान राज्य स्थापित होने की संभावना समाप्त हो गई।

16.5. दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार :

पानीपत की विजय से अकबर का दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार हो गया। मेवात भी उसके अधिकार में आ गया। अब अकबर ने स्वयं को भारत का सम्राट घोषित किया। अब अकबर ने सिकन्दर सूर को मानकोट के किले में घेरकर अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया। इसके बाद अकबर ने मालवा, गुजरात एवं जौनपुर पर अधिकार कर लिया। 1560 ई. तक उसने हुमायूं द्वारा विरासत में छोड़े गये राज्य पर अधिकार कर लिया था। एलफिन्स्टन के अनुसार, ''शासनकाल के पहले वर्षों में अकबर का राज्य पंजाब, आगरा और दिल्ली के आस–पास के प्रदेशों तक सीमित था। तीसरे वर्ष में उसने बिना युद्ध लड़े ही अजमेर पर अधिकार कर लिया। चौथे वर्ष के आरम्भ में उसने ग्वालियर का दुर्ग प्राप्त कर लिया और बैरम खां के पतन के कुछ समय पूर्व उसने अफगानों को लखनऊ तथा गंगा के साथ–साथ पूर्व में जौनपुर तक के समस्त प्रदेश से निकाल दिया।''

16.6. बैरम खां का पतन :

बैरम खां का पतन अकबर के राज्यकाल की दुःखद घटना है। यह ईरानी शिया मुसलमान था और बाबर के समय भारत आया था। उसने हुमायूं की बहुत सेवा की। एस.आर. शर्मा के अनुसार, ''उसने सुख और दुःख में हुमायूं का साथ दिया और बहुत कम लोग उसकी स्वामिभक्ति की बराबरी कर सकते हैं।'' उसने हुमायूं को राज्य प्राप्ति में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। अकबर ने उसे 'सरहिन्दी' की जागीर दी। वह उसे 'खानबाबा' कहा करता था। बैरम खां ने अकबर के प्रति भी स्वामिभक्ति का परिचय देते हुए उसे गद्दी पर बैठाया तथा उसे प्रारम्भिक कठिनाइयों पर विजय दिलवाई। बैरम खां ने हेमू को परास्त कर भारत में मुगल साम्राज्य को समाप्त होने से बचाया। उसने सिकन्दर सूर को पराजित करने तथा ग्वालियर, अजमेर व जौनपुर विजय में महत्वपूर्ण सहयोग दिया।

बैरम खां 1556 ई. तक अकबर का संरक्षक रहा। 1560 ई. तक अकबर शासन संभालने के योग्य हो चुका था। अतः उसने स्वतंत्र शासक बनने का निश्चय किया। उसने अब्दुल लतीफ के साथ बैरम खां के पास संदेश भोजा कि, ''मुझे आपकी ईमानदारी और राज्य–भक्ति पर पूरा–पूरा भरोसा था। इसलिए मैंने राज्य का सब काम आपके सुपुर्द कर दिया था। और मैं केवल आनंद करता था। अब मैंने निश्चय कर लिया है कि शासन सूत्र अपने हाथ में ले लूं। इसलिए मैं चाहता हूं कि आप

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मक्का की यात्रा करें। एक अर्से से आपका यह विचार भी था।'' स्पीयर के अनुसार, ''अकबर ने बैरम खां को उसी तरह हटा दिया, जैसे कैसर विलियम द्वितीय ने बिस्मार्क को हटा दिया था।''

अकबर ने बैरम खां के मक्का में ठहरने का प्रबंध कर दिया। बैरम खां ने इसे स्वीकार कर लिया, किन्तु अकबर द्वारा उसे शीघ्रता से भेजने की बात पर उसने विद्रोह कर दिया। अकबर ने उसे जालंधर नामक स्थान पर परास्त किया और उसे क्षमा कर दिया। अकबर ने उसे उपहार देकर मक्का जाने की आज्ञा दी। बैरम खां मक्का के लिये रवाना हुआ, किन्तु मार्ग में पाटन नामक स्थान पर मुबारक खां नामक पठान ने उसकी हत्या कर दी। इस तरह एकवीर व स्वामिभक्त व्यक्ति का दुःखद अंत हुआ। उसके पुत्र का पालन–पोषण शाही देखरेख में हुआ, जो आगे चलकर अब्दुर्रहीम खानखाना के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

16.7. अकबर का विजय अभियान :

अकबर की आरम्भिक विजय नीति का उद्देश्य राज्य विस्तार और धन–दौलत प्राप्त करना था। जब उसका अधिकांश उत्तर भारत पर अधिकार हो गया तब उसकी विजय नीति का उद्देश्य देश को राजनैतिक एकता प्रदान कर प्रजा को सुख, शांति और सुरक्षा प्रदान करना हो गया। अकबर के राज्य काल के उत्तरार्द्ध में उसकी विजय नीति मानववादी भावनाओं पर आधारित थी।

16.7.1. मालवा की विजय – मालवा का शासक बाजबहादुर काव्य, संगीत और स्त्रियों के साहचर्य में लीन रहने वाला कामुक पुरुष था। उनके हरम में सैकड़ों सुन्दर वेश्याएं थी, जिनमें उसकी प्रेयसी रूपमती अपनी सुन्दरता के लिये विख्यात थी। उसकी विलासिता के कारण प्रशासन शिथिल हो चुका था। अतः अकबर मालवा विजय के लिये लालायित हो उठा। माहम अनगा के कहने पर उसने मालवा अभियान की सेना का नेतृत्व आधमखां को सौंपा और पीर मोहम्मद को भी उसके साथ भेजा। 29 मार्च, 1561 को बाजबहादुर व मुगल सेना के बीच भीषण युद्ध हुआ, किन्तु बाजबहादुर पराजित होकर भाग खड़ा हुआ। आधमखां ने उसके कोष व हरम पर अधिकार कर लिया तथा प्रजा पर भीषण अत्याचार किये, उसने मालवा से प्राप्त सारी सम्पत्ति और हरम अपने पास रख लिये और कुछ हाथी अकबर के पास भेज दिये। अकबर को आधमखां के अत्याचारों का पता लग चुका था, अतः अप्रैल 1561 में वह आधमखां के विरूद्ध रवाना हुआ। आधमखां ने भयभीत होकर सारी सम्पति और हरम सम्राट के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। माहम का लिहाज रखते हुए अकबर ने उसे क्षमा कर उसे मालवा का गवर्नर बना कर स्वयं वापिस लौट आया।

जब अकबर ने अतकाखां को प्रधान मंत्री बनाया तब उसकी सलाह से उसने आधमखां को मालवा से बुला लिया और पीर मोहम्मद को मालवा का गवर्नर नियुक्त किया। पीर मोहम्मद ने समीपस्थ क्षेत्रों पर अधिकार कर वहां के निवासियों, यहां तक कि मुल्ला–मौलवियों को भी मौत के घाट उतार दिया। इसी बीच बाजबहादुर ने असीरगढ़ व बुरहानपुर से सैनिक सहायता प्राप्त कर उस पर आक्रमण किया और मालवा पर अधिकार कर लिया। पीर मोहम्मद वहां से भाग गया। इसकी सूचना मिलने पर 1562 ई. में अकबर ने अब्दुल्लाखां उजबेक को मालवा की ओर भेजा। बाजबहादुर परास्त होकर गुजरात की ओर चला गया और अकबर को आत्मसमर्पण कर दिया। अकबर ने उसे क्षमा कर दो हजार का मन्सबदार बना दिया, लेकिन कुछ ही दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गयी। अकबर ने अब्दुल्लाखां को मलवा का गवर्नर बना दिया। लेकिन दंभ में आकर उसने स्वतंत्र शासक होने का प्रयास किया। अतः अकबर स्वयं सेना लेकर मालवा की ओर गया। अब्दुल्लाखां गुजरात की तरफ भाग खड़ा हुआ और 1565 ई. में खानजमां के विद्रोह में मारा गया। अकबर ने बहादुरखां को मालवा का गवर्नर बना दिया।

16.7.2. जौनपुर–विद्रोह का दमन – जिस समय आधमखां शाही सेना के साथ मालवा उलझा हुआ था, उसी समय मुहम्मद आदिलशाह के पुत्र शेरखां ने जौनपुर पर आक्रमण कर दिया, किन्तु वहां के गवर्नर अलीकुलीखां खानजमां ने उसे परास्त कर दिया। खानजमां इस विजय से दंभी हो गया और मुगल सम्राट के विरूद्ध विद्रोह करने की सोचने लगा। जब अकबर को इसकी सूचना मिली तब वह शिकार के बहाने जौनपुर की ओर आया। खानजमां ने भयभीत होकर कड़ा नामक स्थान पर अकबर से भेंट की और उसे बहुमूल्य भेंट देते हुए क्षमा याचना की। उदार सम्राट ने उसे क्षमा कर दिया।

16.7.3. राजपूतों से प्रथम सम्पर्क – 14 जनवरी 1562 को अकबर मोहनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के दीदार हेतु अजमेर की ओर रवाना हुआ। मार्ग में आमेर के निकट सांगानेर नामक स्थान पर आमेर के शासक भारमल कछवाहा ने अकबर से भेंट कर अपनी स्वामीभक्ति प्रदर्शित की और अपनी ज्येष्ठ कन्या का विवाह सम्राट से करने का प्रस्ताव किया।

Jain Vishva Bharati Institute, Deemed University, Ladnun

अकबर ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर अजमेर से लौटते समय सांभर में भारमल की कन्या से विवाह कर लिया। इस राजपूत कन्या को शाही हरम में उच्च स्थान दिया गया और इसी ने जहांगीर को जन्म दिया था। अकबर, भारमल के पुत्र भगवानदास और पौत्र मानसिंह को भी अपने साथ आगरा लाया और दरबार में उन्हें सम्मानजनक स्थान प्रदान किया। भारमल की इस नीति का अनुसरण अन्य राजपूत शासकों ने भी किया।

मुगल–राजपूत सम्बन्धों के इतिहास में इस विवाह का असाधारण महत्व है। इससे दोनों के बीच न केवल दृढ़ सम्बन्धों का सूत्रपात हुआ, बल्कि मुगलों को शक्तिशाली राजपूतों को ठोस समर्थन और सहयोग भी प्राप्त हुआ। डॉ. बेनीप्रसाद ने लिखा है ''यह विवाह भारत की राजनीति में नवयुग के उदय का प्रतीक था। इससे देश में उत्तम शासकों की पीढ़ियां चली और मुगल सम्राटों को पुश्तों तक मध्यकालीन भारत के सर्वोच्च सेनानायक और कूटनीतिज्ञों की सेवाएं प्राप्त हो सकी।'' वास्तव में राजपूतों का समर्थन एवं सहयोग मुगल साम्राज्य के स्थायित्व में सहायक सिद्ध हुआ। राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्धों ने न केवल अकबर की नीतियों को प्रभावित किया बल्कि अकबर के व्यक्तिगत जीवन को भी प्रभावित किया।

16.7.4. मेड़ता पर विजय – इस समय मेड़ता पर जयमल राठौड़ का अधिकार था, जो मारवाड़ के शासक राव मालदेव का सामन्त एवं सेनानायक था। अकबर ने मिर्जा शरफुद्दीन को मेड़ता के दुर्ग पर अधिकार करने भेजा। शरफुद्दीन ने दुर्ग को घेर लिया। जयमल राठौड़ और उसके राजपूत सहयोगियों ने बड़ी वीरता से मुगलों का सामना किया, किन्तु वे पराजित हुए और दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया। जयमल राठौड़ मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह की शरण में चला गया।

16.7.5. गोडवाना पर विजय – मध्यप्रदेश में स्थित गोंडवाना पर इस समय रानी दुर्गावती अपने पुत्र वीरनारायण की संरक्षिका के रूप में शासन कर रही थी। अकबर ने अपनी विजय नीति का अनुसरण करते हुए 1564 ई. में आसफखां को गोंडवाना पर अधिकार करने भेजा। रानी दुर्गावती अपनी विशाल सेना लेकर मुगलों से युद्ध करने आगे बढ़ी। उसने बड़ी वीरता और साहस से शत्रु का सामना किया, किन्तु आंख में तीर लगने से वह घायल हो गयी। शत्रु द्वारा पकड़े जाने तथा अपमानित किये जाने की आशंका से रानी ने आत्महत्या कर ली। अब मुगल सेना चौरागढ़ की ओर गई, जहां वीर नारायण ने बड़ी वीरता से मुगलों का सामना किया, किन्तु वह परास्त होकर मारा गया। गोंडवाना पर मुगलों का अधिकार हो गया। अनेक इतिहासकारों ने अकबर की गोंडवाना विजय की निन्दा की है, क्योंकि उसने एक असहाय नारी पर बिना किसी कारण के आक्रमण किया था। किन्तु डॉ. त्रिपाठी ने इन आलोचनाओं का उत्तर देते हुए लिखा है कि अकबर का झगड़ा एक स्त्री से न होकर एक राज्य से था और यह तो एक संयोग की बात है कि उस समय उस राज्य पर एक स्त्री का शासन था। चाहे कुछ भी हो, अकबर का यह कार्य उसके मानवतावादी दृष्टिकोण पर एक प्रश्नचिह्न अवश्य लगा देता है।

16.7.6. चित्तौड़ पर विजय – मेवाड़ का राणा उदयसिंह मुगल सम्राट को 'म्लेच्छ' समझता था तथा आमेर के कछवाहा शासक को भी घृणा की दृष्टि से देखता था, क्योंकि उसने एक 'म्लेच्छ विदेशी' के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे। मेवाड़ के सिसोदिया राणाओं के त्याग और बलिदान के कारण भारत के राजपूत शासक उन्हें अपना सिरमौर मानते थे। अतः जब तक अकबर मेवाड़ को अपनी अधीनता में नहीं ले लेता, तब तक उसकी उत्तर भारत विजय पूर्ण नहीं हो सकती थी। अतः सितम्बर 1567 ई. में उसने चित्तौड़ विजय का निश्चय कर 23 अक्टूबर को वह इस विशाल दुर्ग पर आ धमका। अकबर ने दुर्ग का घेरा डाल दिया। राजपूत सरदारों ने राणा उदयसिंह को अरावली की पहाड़ियों में सुरक्षित भेजकर दुर्ग की रक्षा का भार जयमल राठौड़ को सौंप दिया। दुर्ग का घेरा काफी लम्बे समय तक चलते रहने के कारण मुगलों को काफी हानि उठानी पड़ रही थी। 23 फरवरी 1568 ई. को अकबर ने दुर्ग की प्राचीर पर चढ़े जयमल को देख लिया, जो दुर्ग की मरम्मत करवा रहा था। अकबर ने बन्दूक से निशाना मारा, जिससे जयमल घायल हो गया। इस पर रात्रि में स्त्रियों ने जौहर किया और दूसरे दिन प्रातः राजपूत केसरिया वस्त्र धारण कर मुगल सेना से भिड़ गये। जयमल की मृत्यु के पश्चात् राजपूत सेना का नेतृत्व केलवा के सरदार पत्ता ने संभाला। मुट्ठी भर राजपूत असंख्य मुगल सेना के सामने कब तक टिकते। एक–एक राजपूत अपनी मातृभूमि के लिये कट मरा। दूसरे दिन अकबर दुर्ग में गया जहां लगभग तीस हजार राजपूत कत्ल कर दिये गये। जयमल और पत्ता की वीरता से अकबर इतना प्रभावित हुआ कि उनकी स्मृति में आगरे के किले के द्वार पर उनकी प्रस्तर मूर्तियां स्थापित करवायी। चित्तौड़ विजय के बाद अकबर ने आसफखां को चित्तौड़ का गवर्नर नियुक्त कर स्वयं आगरा आ गया। अभी तक मेवाड़ का अधिकांश भाग राजपूतों के ही अधिकार में था।

16.7.7. रणथम्भौर पर विजय – इस समय रणथम्भौर बूंदी के हाड़ा राजपूत सुरजनराय के अधिकार में था, जो मेवाड़ के अधीन थ। अप्रैल 1568 ई. में अकबर ने रणथम्भौर पर सेना भेज दी। किन्तु मालवा पर विद्रोही मिर्जा के आक्रमण के कारण सेना को वापस बुला लिया गया। इसके बाद 1569 ई. में मुगल सेनाओं ने रणथम्भौर दुर्ग को घेर लिय। घेरा लम्बे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समय तक चलते रहने के कारण दोनों पक्षों को क्षति उठानी पड़ी। अंत में विवश होकर सुरजनराय ने अपने दो पुत्रों को अकबर की सेवा में भेजकर आत्मसमर्पण कर दिया। 22 मार्च 1569 ई. को रणथम्भौर पर मुगलों का अधिकार हो गया।

16.7.8. कालिंजर की विजय – कालिंजर का दुर्ग उत्तर भारत के अभेद्य दुर्गों में समझा जाता था, जो वर्तमान उत्तर प्रदेश में स्थित है। इस समय इस दुर्ग पर रीवा के राजा रामचन्द का अधिकार था। अगस्त 1569 ई. में मजनूखां को इस दुर्ग पर अधिकार करने भेजा। राजचंद चित्तौड़ व रणथम्भौर के पतन से परिचित था। अतः उसने मजनूखां का कोई विशेष विरोध किये बिना ही आत्मसमर्पण कर दिया। रामचंद को इलाहाबाद में कोई जागीर दे दी गई और कालिंजर पर मुगलों का अधिकार हो गया।

16.7.9. राजपूताना पर विजय – 1570 ई. में अकबर नागौर की तरफ आया जहां मारवाड़ के शासक चन्द्रसेन ने आकर अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। बीकानेर के राव कल्याणमल और उसका पुत्र रायसिंह भी अकबर की सेवा में उपस्थित हुए और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। अकबर ने बीकानेर और जैसलमेर के राजघरानों से भी वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। इस प्रकार 1570 ई. तक राजपूताने के लगभ्ग सभी राज्यों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली। केवल मेवाड़ और उसके अधीनस्थ राज्य बांसवाड़ा, डूंगरपुर और प्रतापगढ़ अभी भी अपने वंश परम्परा पालन करते हुए मुगलों की अधीनता से मुक्त थे।

16.7.10. गुजरात पर विजय – गुजरात न केवल अन्तर्राज्यी व्यापार का केन्द्र था, बल्कि एशिया एवं यूरोपीय देशों का भी यहां व्यापार होता था। गुजरात, मक्का जाने के मार्ग में पड़ता था। प्रान्त की समृद्धि और हज यात्रियों की सुरक्षित मार्ग प्रदान करने की दृष्टि से अकबर इस प्रान्त को अपने राज्य में मिलाना चाहता था। इसके अतिरिक्त अकबर के विद्रोहियों का यह शरणस्थल भी बना हुआ था। अतः अकबर के लिये गुजरात–विजय आवश्यक हो गयी थी। संयोग से 1572 ई. में वहां गृह युद्ध छिड़ गया तथा इतमादखां और उसके दल ने अकबर से सहायता मांगी। अतः अकबर ने एक सेना भेजकर स्वयं भी गुजरात आया। यहां के शक्तिहीन शासक मुजफ्फरखां तृतीय ने मुगलों का कोई विशेष सामना नहीं किया और नवम्बर 1572 ई. में अहमदाबाद पर मुगलों का अधिकार हो गया। मुजफ्फरखां को बंदी बनाकर अकबर ने खान आजम मिर्जा अजीत कोका को गुजरात का गवर्नर नियुक्त किया और स्वयं केम्बे के लिये रवाना हो गया। किन्तु अकबर के जाती ही मुहम्मद हुसैन मिर्जा लौट आया तथा असंतुष्ट अमीरों को साथ लेकर खान आजम को घेर लिया। खान आजम उसका सामना करने में असमर्थ था, अतः 2 सितम्बर 1573 ई. को स्वयं अकबर आ धमका। विद्रोहियों को पराजित कर 5 अक्टूबर 1573 ई. को अकबर फतहपुर सीकरी लौट आया। इस विजय के फलस्वरूप मुगल साम्राज्य की पश्चिमी सीमा सतुद्र तक पहुंच गई जिससे पुर्तगाली समपर्क में आये।

16.7.11. बिहार और बंगाल पर विजय – सुलेमान करारानी शेरशाह के काल में बिहार का गवर्नर था, किन्तु सूर–वंश के पतन के बाद उसने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। उसने उड़ीसा और बंगाल को भी अधिकृत कर लिया। 1568 ई. में उसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। 1572 ई. में उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र दाऊद ने पुनः अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी तथा मुगल क्षेत्र जमानिया पर आक्रमण कर दिया। अतः 1574 ई. में अकबर ने उस पर आक्रमण कर उसे बिहार से भगा दिया और प्रान्त को अपने साम्राज्य में मिला लिया। दाऊद उड़ीसा की ओर चला गया। अकबर ने मार्च, 1575 ई. में दाऊद को पुनः पराजित किया, फिर भी बंगाल का कुछ भाग उसके अधिकार में रह गया। अक्टूबर 1575 ई. में दाऊद ने बंगाल के खोये हुए क्षेत्र पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न किया। दाऊद युद्ध में मारा गया। बंगाल को भी अब मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। लेकिन कुछ स्थानीय सरदार अगले कुछ वर्षों तक बराबर उपद्रव मचाते रहे।

16.7.12. मेवाड़ अभियान – चित्तौड़ पतन के चार वर्ष बाद 1572 ई. में राणा उदयसिंह की मृत्यु हो गयी और उसका पराक्रमी पुत्र राणा प्रताप मेवाड़ का शासक बना। स्मिथ महोदय ने लिखा है, "प्रताप को उत्तराधिकार में एक तेजस्वी वंश का यश तथा उपाधियां प्राप्त हुई थी, किन्तु न उसके पास राजधानी थी और न साधन; उसके जाति–बिरादरी वाले पराजयों से हतोत्साहित हो चुके थे, किन्तु अपनी जाति का श्रेष्ठ सूरत्व उसमें अभी भी विद्यमान था।" ऐसी निराशाजनक परिस्थितियों में भी प्रताप ने चित्तौड़ को पुनः जीतने और अपने वंश के सम्मान की रक्षा करने का दृढ़ संकल्प किया। इधर अकबर भी मेवाड़ के राणा को नतमस्कत करने का संकल्प कर चुका था। इस समय लगभग सभी राजपूत शासक अकबर का साथ दे रहे थे। यहां तक कि प्रताप का भाई शक्तिसिंह भी अकबर के साथ था। अप्रैल 1576 ई. में अकबर ने आमेर के कुंवर मानसिंह और आसफखां के नेतृत्व में एक विशाल सेना प्रताप के विरूद्ध भेज दी। इधर प्रताप भी तीर हजार घुड़सवार और कई सौ मील

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्यादों को लेकर आगे बढ़ा। इधर मानसिंह शाही सेना को लेकर बनास नदी के दक्षिणी तीर पर स्थित खमनौर नामक गांव और अरावलीपर्वत की हल्दीघाटी शाखा के मध्य मैदान में पहुंचकर डेरा डाल दिया।

18 जून, 1576 को प्रातः राणा हल्दी घाटी के एक मुहाने से बाहर निकला और मुगल सेना पर धावा बोल दिया। राणा का यह आक्रमण इतना भीषण था कि मुगल सेना में खलबली मच गई। चूंकि राणा के पास बहुत ही छोटी सेना थी, इसलिये वह अपनी इस आरंभिक सफलता का लाभ न उठा सका। अब राणा ने शत्रु दल के मध्य हाथियों पर हमला कियां दोनों पक्षों ने अब आमने सामने युद्ध आरंभ कर दिया था। कुछ ही समय बाद यह अफवाह फैल गयी कि स्वयं अकबर, मानसिंह की सहायता हेतु आ रहा है। अतः शाही सेना दुगने जोश से लड़ने लगी और राणा को चारों ओर से घेर लिया। ऐसी संकटापन्न स्थिति में प्रताप के स्वामी भक्त सरदारों ने राणा के घोडे की लगाम पकड़कर युद्ध क्षेत्र से बाहर सुरक्षित स्थान पर ले आये। मेवाड़ी सेना का नेतृत्व बीदा झाला ने किया, लेकिन अब उनकी हिम्मत टूट चुकी थी। अतः राणा के सैनिक युद्ध क्षेत्र से भाग निकले, जिसमें से अनेक मारे गये। विजयश्री शाही सेना को प्राप्त हुई। मुगल सेना इतनी थक चुकी थी कि उसने राणा और उसकी सेना का पीछा तक नहीं किया। विजय प्राप्त होने के बावजूद मानसिंह, राणा के अधिकृत क्षेत्रों पर अधिकार नहीं कर सका।

युद्ध का महत्व–यद्यपि हल्दी घाटी के युद्ध में अकबर की सेना विजयी हुई थी, तथापि अकबर की मेवाड़ को अधीन करने की चिर अभिलाषा, कभी पूरी नहीं हुई। मुगल सेना को स्थानीय लोगों की शत्रुता के कारण मार्ग में असहनीय कष्ट उठाने पड़े। मानसिंह के लिये भी यह विजय निष्फल सिद्ध हुई, क्योंकि न तो वह राणा प्रताप को मृत या जीवित पकड़ सका और न मेवाड़ को अधीन कर सका। मेवाड़ में असफल होने के कारण मानसिंह को अकबर की कृपा दृष्टि से वंचित होना पड़ा। कुछ इतिहासकारों ने भाटों और चारणों द्वारा रचित साहित्यिक कृतियों के आधार पर लिखा है कि अकबर ने अपने महान प्रतिद्वन्द्वी राणा के प्रबल पराक्रम के प्रति श्रद्धावनत होकर शेष जीवन के लिये उसके साथ छेड़छाड़ बंद कर दी। लेकिन इस कथन में लेश मात्र भी सत्यता नहीं है। सत्य तो यह है कि अकबर ने राणा को अधीन करने के प्रयत्नों में कभी कोई ढील न आने दी, लेकिन ये सारे प्रयत्न असफल रहे। हाँ, 1585 ई. के बाद अकबर ने मेवाड़ की ओर कोई सेनापति नहीं भेजा, लेकिन इसका कारण यह था कि अकबर उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रान्तों की रक्षा में उलझा हुआ था। राणा प्रताप ने अकबर की इस व्यस्तता का लाभ उठाते हुए अपने राज्य के अधिकांश भाग पर पुनः अधिकार कर लिया। जनवरी 1597 में राणा प्रताप की मृत्यु के बाद अकबर ने प्रताप के उत्तराधिकारी अमरसिंह के विरूद्ध कई बार सेनाएं भेजी, किन्तु वह मेवाड़ को अधीन न कर सका। डॉ. त्रिपाठी का कहना है कि अकबर द्वारा भारत की एकता स्थापित करने के महान कार्य में प्रताप ने शामिल होना अस्वीकार कर वास्तव में गलती की थी। किन्तु आधुनिक काल के विचारों को अकबर और प्रताप के काल में ढूंढना इतिहास के प्रति अन्याय करना होगा। राणा प्रताप के प्रति अकबर का उद्देश्य अनुचित था। राणा प्रताप अपने उद्देश्य में सफल हुआ।

16.7.13. कश्मीर विजय (1585 ई.) – प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण जो स्थान स्विट्जरलैण्ड का यूरोप में है, वहीं स्थान कश्मीर का भारत में है और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से वह विश्व विख्यात है। अकबर की साम्राज्यवादी दृष्टि से कश्मीर भी नहीं बचा। 1581 ई. में कश्मीर के सुल्तान यूसुफ खां ने अपने तीसरे पुत्र व 1585 ई. में अपने ज्येष्ठ पुत्र को अकबर के दरबार में भेजा था पर वह स्वयं हाजिर नहीं हुआ था। अतः अकबर कश्मीर के सुल्तान का मान–मर्दन करने तथा कश्मीर को मुगल साम्राज्य का अंग बनाने हेतु 1585 ई. के पतझड़ के मौसम में लाहौर के लिए रवाना हो गया और भगवानदास कछवाहा को सेना सहित कश्मीर के लिए रवाना कर दिया। वह आमेर नरेश यूसुफ को परास्त नहीं कर सका और उसके साथ संधि कर ली। अकबर संधि से संतुष्ट नहीं हुआ। 1586 ई. में जब यूसुफ अकबर के समाने उपस्थित हुआ तो अकबर ने उसे बंदी बना लिया परन्तु सुल्तान का ज्येष्ठ पुत्र याकूब जेल से भाग गया। कश्मीर जाकर उसने मुगलों को तंग करना आरंभ किया। परन्तु वह भी अकबर की सेना के आगे टिक नहीं सका और 1588 ई. में उसने समर्पण कर दिया। कश्मीर को मुगल साम्राज्य का अंग बना लिया और याकूब को उसके पिता के पास भेज दिया जो इस समय बिहार में बंदी का जीवन व्यतीत कर रहा था। परन्तु बाद में अकबर ने पिता व पुत्र को स्वतंत्र कर दिया और अपनी सेना में उनको उच्च स्थान प्रदान कर दिया। अकबर के जीवन पर कश्मीर नरेश को बंदी बनाना एक दाग नहीं समझा जाता है।

16.7.14. सिन्ध की विजय (1591 ई.) – 1591 ई. में अकबर की दृष्टि कन्धार पर पड़ी क्योंकि उत्तरी–पश्चिमी भारत को विजित करने व उस पर स्थायी व सुदृढ़ प्रभाव बनाये रखने हेतु कन्धार पर अधिकार होना परम आवश्यक था। परन्तु इस महत्वपूर्ण विजय के लिए दक्षिण सिंध की विजय आवश्यक थी। इसके कई कारण थे–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1. भक्खर (Bakhar) पर अकबर ने 1574 ई. में ही अधिकार कर लिया था। इस पर अधिकार बनाये रखने हेतु दक्षिण सिन्ध व सिन्धु नदी के मुहाने पर विजय पाना आवश्यक था।

2. सिन्ध व्यापार की दृष्टि से उतना ही महत्वपूर्ण थ जितना कि गुजरा था।

3. सिन्ध ही भारत को समुद्र से मिलाता था।

16. अकबर सिन्ध को भारत में मिलाना परम आवश्यक समझता था क्योंकि वह कन्धार विजय के लिए उसे सैनिक अड्डा बनाना चाहता था।

मुल्तान अकबर के प्रभुत्व में पहले ही आ चुका था और मुल्तान से दक्षिण–सिन्ध पर आसानी से आक्रमण किया जा सकता था। अतः 1590 ई. में अकबर ने बैरामखां के पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना को, जो मुल्तान का गवर्नर था, सिन्ध पर आक्रमण करने का आदेश दिया। इस समय सिन्ध का शासक मिर्जा जानी बेग था। उसने मुगल सेना का दो स्थानों पर मुकाबला किया और वह दोनों स्थलों पर ही परास्त हो गया। अंत में उसने आत्मसमर्पण कर दिया और थट्टा और सेहवान के महत्वपूर्ण दुर्ग भी अकबर के हवाले कर दिए। इस प्रकार 1591 ई. में सिन्ध भी अकबर की अधीनता में आ गया। अकबर ने मिर्जा जानी बेग के साथ उदारता बताई और उसे 3,000 का मनसब बना दिया। कहते हैं कि अकबर ने बाद में थट्टा का दुर्ग भी जानी बेग को लौटा दिया था। जानी बेग भी 'दीन–ए–इलाही' सम्प्रदाय का सदस्य बन गया था।

16.7.15. बिलोचिस्तान की विजय (1595 ई.) – सिन्ध विजय के उपरान्त अकबर ने बिलोचिस्तान पर ध्यान दिया। उसको विजित करने 1595 ई. में अकबर ने मीर मासूम को भेजा। बिलोचिस्तान ने भी अभी तक अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। मीर मासूम नामक सेनापति ने क्वेटा के उत्तर–पूर्व में सीबी के दुर्ग पर आक्रमण किया और उसे अपने अधिकार में कर लिया। बिलोचिस्तान के अफगान भी बड़े वीर थे। वे वीरता से लड़े; परन्तु परास्त हो गये और अपने देश बिलोचिस्तान को अकबर के हवाले कर दिया।

कन्धार पर अधिकार करना–कन्धार फारस के शाह के अधीन था। भारत के शासक को इस पर अधिकार करना परम आवश्यक था। काबुल के स्वामी व भारत के मुगल सम्राट को भारत की सुरक्षा के लिए अपने अधिकार में करना अत्यन्त आवश्यक था। इसके अलावा यह व्यापार का केन्द्र था। एशिया के विभिन्न देशों के व्यापारी यहां एकत्रित होते थे और अपने माल की अदला–बदली करते थे।

इस समय कन्धार का गवर्नर मुज्जफ्फर हुसैन मिर्जा था। परन्तु गवर्नर मुजफ्फर हुसैन और शाह के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। यह बात अकबर को ज्ञात थी। अतः अकबर ने शाहबेग को कन्धार पर अधिकार करने भेजा। गवर्नर ने कन्धार शाहबेग को समर्पित कर दिया। इसके पुरस्कार स्वरूप अकबर ने मुजफ्फर हुसैन को अपने दरबार में सम्मानपूर्वक आमंत्रित किया और उसे उच्च पद पर नियुक्त कर दिया। कुछ समय के उपरान्त उसे संभल की जागीर प्रदान कर दी।

इस प्रकार काबुल, कन्धार और बिलोचिस्तान पर अधिकार कर अकबर ने भारत को उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र में पूर्णतः सुरक्षित बना लिया। और इन विजय अभियानों में सम्राट ने उत्तर में काबुल–कन्धार से दक्षिण में नर्मदा नदी तक तथा पश्चिम में सिन्ध से पूर्व में बिहार तक अपना मुगल साम्राज्य सुदृढ़ता से स्थापित कर लिया।

उजबेगों का अंत–1560 ई. से लेकर 1567 ई. तक अकबर अपने ही अनुयायियों, जो विद्रोही बन गये थे, को दबाने में व्यस्त रहा। अकबर के दरबार व उसकी सेना में उजबेग जाति के लोग भी थे, जो अकबर के उदार विचारों व उसकी राजपूत नीति के कट्टर विरोधी थे। वे लोग कट्टर सुन्नी थे। अतः उनको अकबर की हिन्दुओं के प्रति उदार नीति अखरती थी। उनका प्रमुख नेता खाँ जमान था। इनका एक नेता अब्दुला खां भी था। वह मालवा में अकबर की सेवा में नियुक्त था। इसी ने विद्रोह का आरंभ किया। अकबर ने माण्डू पर धावा बोलकर उसे परास्त किया। परास्त होकर वह जौनपुर भाग गया और विद्रोही नेता खां जमान से जा मिला। अकबर ने विश्वास कर खान जमान को अफगानों को परास्त करने जौनपुर भेजा था। खां ने अफगानों को परास्त अवश्य कर दिया, परन्तु उसने स्वयं को स्वतंत्र शासक बनाने का प्रयास किया। ऐसे में अकबर स्वयं ने उस पर आक्रमण किया। कड़ा का सुबेदार आसफ खां भी अकबर से आ मिला। उन्होंने उजबेगों को खदेड़ दिया। इस प्रकार जौनपुर पर भी अकबर का अधिकार हो गया। खां जमान ने अकबर से क्षमा याचना कर ली। अकबर ने उसे क्षमा कर जौनपुर में ही रख लिया। परन्तु वह अपनी बागी नीति से बाज नहीं आया और 1566 ई. में वह पुनः बगावत कर बैठा। इस पर अकबर को 1567 ई. में उजबेगों पर पुनः आक्रमण करना पड़ा। लड़ाई में उजबेग परास्त हुए और खां जमान लड़ाई में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

काम आ गया। खां जमान का भ्राता बहादुर बंदी बना लिया गया। कुछ समय बाद उसको मौत के घाट उतार दिया। उजबेग जाति के कई नेताओं को निर्दयता से हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा दिया। इसी अर्से में अब्दुल खां की मृत्यु हो गई और उजबेगों के तीसरे नेता सिकन्दर खां को अवध से खदेड़ दिया गया। इस प्रकार अकबर ने उजबेगों का खात्मा कर दिया।

16.7.16. दक्षिण विजय – उत्तर भारत और उत्तर–पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों में अपनी सामरिक स्थिति सुदृढ़ कर लेने के उपरान्त अकबर ने दक्षिण भारत के राज्यों की ओर ध्यान दिया। इनको विजित न करने पर उसकी विजय यात्रा अधूरी ही रह जाती और वह समस्त भारत का एकछत्र सम्राट नहीं बन पाता। दिल्ली सल्तनत के समय दक्षिण में कई महत्वपूर्ण व उल्लेखनीय विजयनगर और बहमनी राज्य थे। बहमनी राज्य को निरन्तर अपने अस्तित्व के लिए विजयनगर से संघर्ष करना पड़ा। परिणामतः उसकी केन्द्रीय सरकार निर्बल हो गई और उसके प्रान्तीय गवर्नर अपने–अपने क्षेत्र में पूर्णरूपेण शक्तिशाली हो गये और वे स्वतंत्र रूप से शासन करने लगे इसका परिणाम यह हुआ कि बहमनी राज्य पांच स्वशासी राज्यों में विभक्त हो गया। उन पांचों स्वशासी राज्यों के नाम थे–बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमद नगर, बीदर और बरार। बीजापुर में आदिलशाही, गोलकुण्डा में कुतुबशाही, अहमदनगर में निजामशाही, बीदर में बीदरशाही और बरार में इमादशाही हुकूमतें स्थापित हुईं। कालान्तर में बरार और बीदर को क्रमशः उनके शक्तिशाली पड़ोसियों अहमदनगर और बीजापुर ने अपने में विलीन कर लिया। शेष तीन राज्यों में से बीजापुर और अहमदनगर ने दक्षिण में उल्लेखनीय भूमिका निभाई और दीर्घकाल तक नर्मदा के दक्षिणी क्षेत्र के इतिहास का निर्माण किया। जदुनाथ सरकार के शब्दों में, "बहमनी राज्य की विरासत निजाम और आदिल के योग्य हाथों में आई। अहमदनगर और बीजापुर इस राज्य में इस्लामी संस्कृति के केन्द्र बन गये।

इन दक्षिण के राज्यों की राजनीति की विशेषता यह रही कि ये दक्षिण में अपनी प्रभुता स्थापित करने हेतु निरन्तर संघर्ष करते रहे। इस संघर्ष में बरार और बीदर भी सम्मिलित होते रहते थे। हालांकि इन राज्यों ने समय–समय पर आपस में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर आपसी मतभेदों को समाप्त करने का भी प्रयास किया, परन्तु इन प्रयत्नों से इन राज्यों के बीच स्थायी शांति स्थापित नहीं हो सकी। आपसी संघर्षों में विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से कभी–कभी अपने शत्रु राज्य विजयनगर से भी सहायता ले लिया करते थे। ऐसे अवसर इतिहास में बिरले ही दृष्टिगत होते हैं जबकि ये पांचों राज्य एक ही प्रयोजन के लिए संयुक्त रूप से लड़े हों। 1565 में तालीकोट के स्थान पर पहली बार बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा और बीदर ने मिलकर युद्ध किया था। इस युद्ध के उपरान्त इन राज्यों में पुनः अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष आरम्भ हुए। अकबर की साम्राज्यवादी क्षुधा को शांत करने के लिए यह एक उपयुक्त अवसर था।

दक्षिणी भारत पर अकबर द्वारा आक्रमण करने के कारण

1. उत्तरी भारत व दक्षिणी भारत भौगोलिक परिस्थितियों से विलग थे और अकबर उनमें चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्राट अशोक, सम्राट समुद्रगुप्त, सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी व मुहम्मद तुगलक की भांति राजनीतिक एकता स्थापित करना चाहता था। विंध्याचल पर्वत उत्तर व दक्षिण के मध्य एक दीवार बना हुआ था चाहे हिमालय के समकक्ष न हो। बेनी प्रसाद के मतानुसार उत्तरी भारत ही सदा आक्रामक रहा है।

2. मुगल साम्राज्य की सीमा खानदेश से टकराने लगी थी। मालवा, गुजरात व आसाम मुगल साम्राज्य के अंग बन चुके थे। उत्तर भारत व दक्षिण भारत के मध्य सीमावर्ती झगड़े चला करते थे। अकबर इस विवाद को समाप्त करना चाहता था।

3. आर्थिक महत्त्व–अलाउद्दीन खलजी की विजय–यात्रा ने स्पष्ट कर दिया था कि दक्षिण भारत सोना, चांदी व हीरे–जवाहरात से परिपूर्ण हैं। अकबर के शासनकाल में भी उत्तरी भारत की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। चार वर्षीय अकाल, प्लेग तथा उत्तर भारत में निरन्तर विजय यात्रा से शाहीकोष की आर्थिक अवस्था दयनीय हो गई थी। अलाउद्दीन खिलजी की भांति अकबर भी दक्षिण से धन प्राप्त करना चाहता था।

4. अकबर अपनी सेना को युद्ध–रत रखना चाहता था। उत्तरी भारत को विजित करने के उपरान्त तथा उजबेगों का भय समाप्त हो जाने पर उत्तर में युद्ध व लड़ाइयों की संभावनाएं कम हो गई थीं और अकबर अपनी सेना को सदा युद्ध–स्थल में देखना चाहता था। युद्ध–भूमि को ही अकबर सेना की परेड के उपयुक्त समझता था। इसके अलावा युद्ध में सैनिकों को लूट में अच्छा पैसा मिल जाता था जिससे सैनिक आर्थिक दृष्टि से संतुष्ट हो जाते थे। इसके साथ ही शाही कोष को भी धन मिल जाता था। इन उद्देश्यों की पूर्ति अकबर दक्षिण विजय से करना चाहता था।

5. अकबर अपने पड़ोस में स्वतंत्र राज्य नहीं देख सकता था–अकबर यह जानता था कि अवसर आने पर स्वतंत्र राज्य आक्रमण कर सकता है। अपने शत्रुओं को शरण दे सकता है। देश की राजनीति में हस्तक्षेप कर सकता है। इस कारण दक्षिण में अपनी सीमा पर वह स्वतंत्र राज्यों को समाप्त करना चाहता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. राजनीतिक एकता स्थापित करना चाहता था–अकबर धर्म के क्षेत्र में उदार बन गया था। वह शिया–सुन्नी का ही भेद मिटाना नहीं चाहता था वरन् जातियों व वर्गों को एकता के सूत्र में बांधकर रखना चाहता था। यह कार्य बिना राजनीतिक एकीकरण के संभव नहीं था। इसीलिए डॉ. आर.पी. त्रिपाठी ने कहा है कि दक्षिण की विजय अकबर की व्यक्तिगत आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ही नहीं बल्कि एक प्रबुद्ध एवं महान शासक के आदर्शों के अनुकूल भी थी।

7. दक्षिण राज्यों का निर्बल होना–उत्तर भारत में तो अकबर ने अपनी विजय नीति से राजनीतिक एकता स्थापित कर ली थी, परन्तु दक्षिण के राज्य पास्परिक झगड़ों से अपनी शक्ति खोते जा रहे थे। ऐसी स्थिति में इस बात की पूरी संभावना थी कि उत्तर की ओर से दक्षिण पर आक्रमण हो।

8. अकबर की साम्राज्यवादी नीति–दक्षिण भारत पर अकबर द्वारा इसी नीति के कारण आक्रमण किया गया था। जैसा कि बताया जा चुका था कि अकबर जन्म–जात साम्राज्यवादी था। वह अपने साम्राज्य को बढ़ाना चाहता था। अब दक्षिण का क्षेत्र ही ऐसा बचा था जहां कि अकबर अपनी विजय–यात्रा सफल बना सकता था।

9. दक्षिण में पुर्तगालियों का बढ़ता हुआ प्रभाव–इस समय दक्षिण भारत में पुर्तगालियों का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। गुजरात को विजित करने के उपरान्त भी दमन और द्वीव में उन्होंने अपनी कोठियां स्थापित कर ली थी। दिन पर दिन वे अपनी सामुद्रिक शक्ति बढ़ा रहे थे। यहां तक कि वे दक्षिण राज्यों की राजनीति में हस्तक्षेप भी करने लग गये थे। अकबर जैसे गूढ़ राजनीतिज्ञ को यह सब अखर रहा था। अतः इनके प्रभाव को समाप्त कर अकबर अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता था। गोवा लेने को अधिक उत्कंठित था।

उपर्युक्त कारणों से स्पष्ट है कि अकबर की दक्षिण नीति शाहजहां व औरंगजेब की भांति शिया–सुन्नी के मध्य धार्मिक लड़ाई नहीं वरन् विशुद्ध राजनीतिक थी जिसका मूल उद्देश्य दक्षिण में साम्राज्य बढ़ाना था।

अकबर और खानदेश–अकबर ने सर्वप्रथम खानदेश की ओर अपना ध्यान दिया, क्योंकि वह दक्षिण का प्रवेश द्वार समझा जाता था। 1564 ई. में ही खानदेश के शासक मुबारक शाह ने अकबर के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपने राज्य की मुगल–आक्रमणों से सुरक्षा प्राप्त कर ली थी। परन्तु 1577 ई. में अकबर ने इस राज्य पर अपना अधिक प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया। उसने तत्कालीन खानदेश के शासक अली खां पर मुगल प्रभुता स्वीकार करने का दबाव डाला। अली खां अकबर की शक्ति जानता था। अतः उसने बिना युद्ध किये अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली।

16.7.17. अहमदनगर और अकबर – 1572 ई. में अकबर ने गुजरात को मुगल साम्राज्य का अंग बना लिया था। इस विजय ने अकबर की दक्षिण विजय को सुगम बना दिया। 1591 ई. में अहमदनगर का सुल्तान बुरहान–उल–मुल्क था। अकबर ने उसके पास अपनी अधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव भेजा, जो उसने स्वीकार नहीं किया। 1593 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। राज्य की दशा बिगड़ गई और गृह–युद्ध की परिस्थिति बन गई। अहमदनगर के प्रमुख अमीर मंझू ने अकबर के पुत्र मुराद और अब्दुर्रहीम खानखाना के पास सहायता की अपील की। मुराद ने 1593 ई. में अहमदनगर पर आक्रमण कर दिया। उस समय अहमदनगर चांदबीबी के अधिकार में था। वह एक साहसी तथा वीर महिला थी। उसने सुरक्षा का उचित प्रबंध किया। घेरा लंबा चला। मुराद के विजय की संभावना अधिक नहीं थी। उसने सुल्ताना से संधि की बात चलाई। वह भी दुर्ग का घेरा लंबा नहीं चलाना चाहती थी। उसने मुगल सम्राट को बरार देना स्वीकार कर संधि कर ली।

परन्तु यह संधि स्थायी सिद्ध नहीं हुई। अहमदनगर के कतिपय अमीरों को यह संधि खटकने लगी। उन्हें यह अखरने लगा कि बरार मुगल साम्राज्य का अंग रहे। अतः 1597 में अकबर ने पुनः अपने शाहजादा मुराद और अब्दुर्रहीम खानखाना को आक्रमण करने भेजा। परन्तु दोनों सेना नायकों में एकता न होने से सैनिक अभियान को विशेष सफलता नहीं मिली। मुराद अष्ठी के समीप सुपा में परास्त हुआ और 1599 ई. में शराबी मुराद इस जहां से विदा हो गया। अब अकबर स्वयं ने दक्षिण की ओर जाने का इरादा किया। 1600 ई. में बिना किसी मुकाबले के अकबर ने बुरहानपुर पर अधिकार कर लिया। अब अहमदनगर को विजित करने का उत्तरदायित्व राजकुमार दानियाल और खानखाना को सौंपा। चांद बीबी को मौत के घाट उतार दिया गया था। खान–खाना और दानियाल अहमदनगर में प्रवेश कर गये। अगस्त 1600 ई. की इस विजय ने अहमदनगर के 15,000 वासियों को मुगलों के हाथों मरने को विवश कर दिया। परन्तु युवा सुल्तान बहादुर को बंदी बनाकर ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया। बालाघाट को भी मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। लेकिन मलिक अम्बर के प्रयासों से अहमदनगर पुनः मुगलों का विरोधी हो गया। अहमदनगरवासी मुगल सेना से लोहा लेते रहे। इस प्रकार मुगल सेना को अहमदनगर की लड़ाई में काफी समय और धन लगाना पड़ा। अभाग्यवश इसी अंतराल में खानदेश में विद्रोह हो गया और अकबर को उधर ध्यान देना पड़ा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.7.18. अकबर के जीवन की अंतिम लड़ाई – (आसीरगढ़ की विजय) अकबर का अंतिम युद्ध खानदेश के साथ हुआ। खानदेश का सुल्तान अली खां था। उसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। जब खानखाना और दानियाल ने अहमदनगर पर विजय प्राप्त की तो उस लड़ाई में अलीखां भी मुगलों की तरफ से युद्ध करने गया था और वह अपने प्राण गंवा बैठा था। परन्तु उसके पुत्र मीरन बहादुर ने अकबर की अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। उसे अपने असीरगढ़ दुर्ग की दृढ़ता पर बड़ा विश्वास था। उसने अपने को उस दुर्ग में बंद करके अकबर का मुकाबला करने का संकल्प किया। यह दुर्ग सतपुड़ा पहाड़ी पर 900 फीट की ऊंचाई पर निर्मित था। दक्षिण भारत का यह प्रवेश द्वार था और सोलहवीं सदी में यह विश्व का एक आश्चर्य माना जाता था। इसकी चोटी का क्षेत्रफल 60 एकड़ था। पानी के स्रोत व खाद्य–सामग्री से परिपूर्ण था। इस दुर्ग की हवा भी स्वास्थ्यवर्द्धक थी। इस दुर्ग में प्रवेश केवल दो दर्रों से किया जा सकता था। चारों तरफ चट्टानों से घिरे होने के कारण इसमें पहुंचना असंभव प्रतीत होता था। चट्टानों की ऊंचाई 80 फीट से 120 फीट तक थी। सामरिक सामग्री से भरपुर था। तब भी अकबर ने दुर्ग को विजित करने की ठानीं मीरन बहादुर को दुर्ग की सुदृढ़ता के कारण मुगल सेना का सफलतापूर्वक सामना करने की आशा थी।

अप्रेल 1600 ई. से अकबर ने इस दुर्ग को जीतने की तैयारी की। अबुल फजल और मुर्तुजा खां की निगरानी में दुर्ग–विजय की तैयारी की गई। फिर भी यह घेरा कई मास चला और अकबर इसे विजित नहीं कर सका। उसकी भारी तोपें दुर्ग को नष्ट करने में लाभदायक सिद्ध नहीं हुई। उधर घेरा लम्बा चलने के कारण मीरन बहादुर ने अपनी माता व पुत्र को 60 हाथियों के साथ अकबर से संधि करने भेजा परन्तु सम्राट दुर्ग का बिना किसी शर्त के पूर्ण समर्पण चाहता था। इसी अंतराल में अकबर के पुत्र सलीम ने बगावत कर दी और स्वयं को 1601 ई. में सम्राट घोषित कर दिया। अतः अकबर का इलाहाबाद जाना आवश्यक हो गया, परन्तु वह दुर्ग विजय के बिना नहीं जा सकता था। इधर जब उसने देख लिया कि वह दुर्ग को तोप–तलवार व सेना की वीरता से विजित नहीं कर सकता तो उसने धूर्त के रूप में दुर्ग के किलेदार व सैनिकों को अपार धन देकर खरीदने के प्रयास प्रारंभ कर दिए। इस प्रकार के कार्यों में भी वह प्रवीण था। अपने प्रयास में वह सफल रहा। उसने सुल्तान मीरन बहादुर को उसके जीवन की सुरक्षा का आश्वासन देकर मिलने बुलाया। सम्राट के वचनों पर विश्वास कर वह सम्राट के पास आया। सम्राट अपने शब्दों पर कायम नहीं रहा और उसे धोखे से बंदी बना लिया। फिर भी अकबर अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सका, क्योंकि मीरन बहादुर के बंदी बनाये जाने पर दुर्ग–रक्षकों ने वीरता से सम्राट की सेना का सामना किया। इस पर अकबर ने दुर्ग–रक्षकों में पैसा पानी की तरह बहाना प्रारम्भ कर दिया। रक्षक धन के प्रलोभन में आ गये। दुर्ग का रक्षक अबेसिनिया का था और पुर्तगाली चतुर तोपची थे। घूसखोर दुर्ग–रक्षकों ने दुर्ग का फाटक खोल दिया। इस प्रकार असीरगढ़ दुर्ग को 6 जनवरी 1601 ई को अकबर ने अपने अधिकार में कर लिया।

अकबर की यह अंतिम विजय थी। लेकिन इस दुर्ग को पराजित करने में जो उपाय अकबर ने अपनायेख वे नैतिक दृष्टि से निन्दनीय थे और अकबर की वीरता पर एक धब्बा है। इसके अलावा दुर्ग के कमार्ण्डर के पुत्र मुकर्रब का बिना किसी अपराध के कत्ल करवा देना भी अकबर के चरित्र की आलोचना का ही विषय है।अकबर ने नव विजित प्रदेशों के तीन (अहमदनगर, बरार और खानदेश) सूबे बना दिए और इनका सूबेदार राजकुमार दानियाल को बना दिया था। स्मिथ का यह भी कहना है कि सलीम की बगावत देखकर ही अकबर ने सलीम और दानियाल के मध्य शक्ति–संतुलन बनाये रखने की दृष्टि से दानियाल को इतना महान (मालवा, गुजरात, खानदेश, बरार व अहमदनगर का) सूबेदार बनाया था। मीरन बहादुर को बंदी बनाकर ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया और जीवन निर्वाह के लिए 4,000 अशर्फियां वार्षिक बतौर भत्ते के स्वीकार कर दी गई। असीरगढ़ की विजय का उल्लेख बुलन्ददरवाजा और फतेहपुर सीकरी की मस्जिद पर भी किया गया है।

अकबर और दक्षिण के अन्य राज्य

गुजरात विजय के उपरान्त 1573 में दक्षिण के अन्य राज्यों में अकबर ने प्रथम दूत भेते थे। उन्होंने वहां के सुल्तानों को अकबर की दासता स्वीकार करने को समझाया।

16.7.19. बीजापुर – अकबर के एक विद्रोही मुहम्मद हुसैन मिर्जा ने बीजापुर के सुल्तान की शरण ले ली थी। अकबर ने अपना दूत भेजकर उसकी वापसी चाही परन्तु बीजापुर के सुल्तान का इनकार हो गया। 1579 ई. में अकबर ने पुनः बीजापुर अपना दूत भेजकर बीजापुर को अपने अधीन करना चाहा, परन्तु बीजापुर सुल्तान का फिर इनकार हो गया। 1593 ई. में वहां फैजी को भेजा, वह भी अपने उद्देश्य में असफल होकर आ गया।

16.7.20. गोलकुण्डा – इसी समय अकबर ने गोलकुण्डा अपना दूत भेजा। गोलकुण्डा के सुल्तान ने भी अध ीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया और विवाह में अपनी पुत्री देने से भी इनकार कर दिया। परन्तु सम्राट को संतुष्ट

करने हेतु उसने अमूल्य वस्तुएं भेंट में अवश्य भेज दीं। इसके उपरान्त अकबर बीजापुर व गोलकुण्डा की राजनीति में नहीं उलझा, क्योंकि वह अहमदनगर और खानदेश के युद्धों में फंस गया था। 1601 के उपरान्त सलीम के विद्रोह के कारण इनका विजित करने की सोच नहीं सका। उसको अपने साम्राज्य को बनाये रखने की ही चिन्ता हो गई। सलीम के विद्रोहों ने अकबर को बड़ा हताश कर दिया था।

16.7.21. महाराणा अमरसिंह और अकबर (1507 ई.–1620 ई.) – महाराणा प्रताप के ग्यारह रानियां थी। उनसे 17 पुत्र उत्पन्न हुए थे। राणा प्रताप के उत्तराधिकारी अमर सिंह बने। महाराणा प्रताप अपनी मृत्यु (19 जनवरी 1597 ई.) से पूर्व सिवाय चित्तौड़गढ़ माण्डलगढ़ और अजमेर के करीब–करीब सारा मेवाड़ अपने अधिकार में कर चुके थे। पर सारा मेवाड़ वीरान हो चुका था। अकबर ने राजकुमार सलीम और मानसिंह के नेतृत्व में पुनः एक सेना मेवाड़ भेजी। परन्तु बागी–भावना से उत्पीड़ित सलीम ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। अतः सलीम से समझौता हो जाने पर अकबर ने दशहरा के दिवस 1603 ई. में फिर सलीम के नेतृत्व में ही आगरा से सेना भेजी। परन्तु फतेहपुर सीकरी पहुंचते ही सलीम ने अपनी मांगे बढ़ाना आरंभ कर दिया। अतः अकबर को यह सैनिक अभियान छोड़ना पड़ा। परन्तु उसने मेवाड़ को विजित करने का इरादा नहीं छोड़ा। अपने शासन के अंतिम दिनों में उदयसिंह के एक पुत्र सागर को राणा की पदवी से विभूषित कर एकसेना अमर के विरूद्ध और भेजी। जब सागर भी कुछ नहीं कर सका तो अकबर ने अपने पौत्र खुसरो को यह भार सौंपना चाहा था पर इसी अंतराल में 1605 ई. में वह स्वयं इस दुनियां से विदा ले गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि अकबर अपनी मृत्यु के समय तक मेवाड़ नहीं भूला था। वह इसे हर कीमत पर अपने अधीन करना चाहता था पर वह अपने उद्देश्य में अंत तक असफल रहा। तभी तो हर सिसोदिया आज भी उन्हें आदर से स्मरण करता है।

16.8. अकबर की राजपूत नीति :

अकबर एक कुशल राजनीतिज्ञ तथा दूरदर्शी सम्राट था। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "अकबर से पूर्व के शासकों ने जिन शासकों पर विजय प्राप्त की, उनका बुरी तरह से निरादर किया था और उनके राज्यों में लूटमार मचायी थी। अकबर राजनीति के श्रेष्ठ गुणों से पूर्ण था और उसने अपने साम्राज्य को हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों की सद्भावना का आधार प्रदान करने का निश्चय कियां उसने शांति और सांत्वना की नीति अपनायी और हिन्दुओं को मूर्ति पूजा और इस्लाम में आस्था न रखने के कारण अपने से नीचा मानने से इन्कार कर दिया। उसने उनके विरूद्ध भीषण युद्ध किये, परन्तु उनके अधीनता स्वीकार करने पर उसने प्रसन्नतापूर्व युद्ध समाप्त करके शांति–व्यवस्था स्थापित की।"

कर्नल टॉड के अनुसार, "मुगल साम्राज्य का अकबर ही वास्तविक संस्थापक था। वही प्रथम सफल विजेता था, जिसने राजपूतों की स्वतंत्रता नष्ट कर दी। उसने लोगों को जंजीरो में जकड़ा, किन्तु उनके ऊपर सोने का मुलम्मा चढ़ा दिया। इन जंजीरों की राजाओं को आदत पड़ गयी, क्योंकि बादशाह ने अपनी शक्ति का उपयोग ऐसे ढंग से किया कि राजपूतों का जातिय अभिमान बना रहा और कभी–कभी उनके अकीर्तिकर राग–द्वेष भी चलते रहे, परन्तु उसकी विजयों के पूर्ण रूप से दृढ़ होने से पूर्व उसकी तलवार ने इन सैनिक कौमों की कई पुश्तें काट दीं और उनकी चमक–दमक और कीर्ति खत्म कर दी। उसकी गणना शहाबुद्दीन, अलाउद्दीन और दूसरे विनाशक विजेताओं में हो गयी। लाखों लाखों लोग उसकी ऐसी प्रशंसा करने लगे, जैसे उसकी जाति के किसी पुरुष की नहीं की गई थी।"

अकबर जानता था कि राजपूतों की शत्रुता से स्थायी मुगल साम्राज्य स्थापित नहीं हो सकता, बल्कि यह तो उनकी सहायता एवं सहयोग से ही हो सकता है। अकबर जानता था कि राजपूतों के सहयोग से ही राजनीतिक एवं सामाजिक एकता स्थापित हो सकती है तथा वह विरोधी मुस्लिम अमीरों एवं सरदारों पर नियंत्रण रख सकता है। अतः उसने राजपूतों को अपना विश्वासपात्र एवं मित्र बनाने का प्रयत्न किया। उसने अपनी अधीनता स्वीकार न करने वाले राजपूत शासकों से युद्ध किया तथा अपनी अधीनता स्वीकार करने पर उन्हें क्षमा कर दिया। इस तरह उसने राष्ट्रीय राज्य की स्थापना की।

16.8.1. राजपूत नीति की विशेषतायें – अकबर की राजपूत नीति की विशेषताये इस प्रकार थी–

1. अकबर ने राजपूतों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। उसने आमेर, बीकानेर तथा जैसलमेर के राजपूत शासकों की पुत्रियों से विवाह किया। अकबर ने इन राजपूत शसकों को उच्च मनसबदार बना दिया। आमेर नरेश बिहारीमल ने अपनी पुत्री जोधाबाई का विवाह अकबर के साथ कर दिया। डॉ. बेनीप्रसाद के अनुसार, "इन विवाह–सम्बन्धों से भारतीय राजनीति में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। देश को कुछ महान शासक प्राप्त हुए ओर मुगल सम्राटों की चार पीढ़ियों को मध्यकालीन भारत के कुछ महान सेनानायकों तथा कूटनीतिज्ञों की सेवाये उपलब्ध हुई।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. अकबर ने अपनी अधीनता स्वीकार करने वाले राजपूत शासकों को उच्च पद प्रदान किए। अबुल फजल के अनुसार अकबर के राज्य के 51 महत्वपूर्ण मनसबदारों में 17 राजपूत थे। भगवानदास को पंजाब का एवं मानसिंह को अफगानिस्तान का सूबेदार बनाया गया। मानसिंह को 7,000 का मनसब दिया गया, जो शाही परिवार के व्यक्ति को साधारणतः दिया जाता था।

3. अकबर ने अपनी अधीनता स्वीकार करने वाले राजपूत राजाओं को आंतरिक स्वतंत्रता दी। डॉ. त्रिपाठी के अनुसार, ''अकबर ने अन्य राजपूत राजाओं के प्रति अपने व्यवहार से सिद्ध कर दिया कि न तो वह उनके राज्य पर अधिकार करना चाहता है और न उनके सामाजिक धार्मिक और आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप करता है। वह तो इतना चाहता था कि वे नवीन साम्राज्य संघ का प्रभुत्व मान लें।''

4. अकबर ने अधीनता स्वीकार करने वाले राजपूतों के साथ उदार एवं संघर्ष करने वाले राजपूतों के साथ कठोर व्यवहार किया। मेवाड़ के राणाओं ने मुगलों से संघर्ष किया था, जिसके कारण अकबर सम्पूर्ण मेवाड़ का स्वामी नहीं बन सका। प्रताप ने अपनी मृत्यु से पहले चित्तौड़, अजमेर तथा मांडलगढ़ को छोड़कर पूरे मेवाड़ को मुक्त करा लिया था।

16.8.2. राजपूत नीति के परिणाम

1. अकबर की राजपूत नीति से राजपूत उसके मित्र व हितैषी बन गये। इससे मुगल साम्राज्य का विस्तार हुआ तथा शांति एवं व्यवस्था स्थापित हुई।

2. इस नीति से भारत में नया युग प्रारम्भ हुआ। अब हिन्दुओं ने मुगलों को विदेशी समझना छोड़ दिया। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, ''राजपूतों के माध्यम से उत्तरी भारत के लाखों हिन्दु मुगल साम्राज्य के शुभचिंतक बन गये और उसकी उन्नति तथा सफलता के लिये प्रार्थना करने लगे।''

3. अकबर ने अपनी राजपूत पत्नियों को भी धार्मिक स्वतंत्रता दी। अबुल फजल के अनुसार, ''राजपूत राजकुमारियां देवी–देवताओं की पूजा तथा हवन करती थीं, जिससे धर्म निरपेक्षता को प्रोत्साहन मिला।'' जे.एम. शैलट के अनुसार, ''अकबर की राजपूत नीति ने मुगल सरकार को धर्म–निरपेक्ष राज्य बनाने में बहुमूल्य सहायता दी।''

4. राजपूतों ने भी अकबर के संरक्षण में कुछ ऐसे कार्य किये, जिससे उनको बहुत प्रसिद्धि मिली।

5. अकबर की राजपूत नीति से हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति का विकास हुआ तथा स्थापत्य कला, चित्र कला, संगीत कला, साहित्य आदि क्षेत्रों में दोनों जातियों में समन्वय हुआ। अकबर द्वारा निर्मित अनेक भवनों पर राजपूती कला का प्रभाव दिखता है। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, ''जहांगीरी महल पर तो हिन्दू कला का इतना प्रभाव है कि वह भवन किसी राजपूत राजकुमार द्वारा बनवाया हुआ प्रतीत होता है।'' इसी तरह हिन्दू–मुस्लिम समन्वय की प्रतीक अन्य अनेक कलाकृतियां हैं।

6. अकबर की राजपूत नीति से साम्राज्य की उन्नति हुई, साम्राज्य का विस्तार हुआ, देश समृद्धिशाली हुआ तथा राष्ट्र–निर्माण के कार्य में सहयोग मिला।

16.9. हिन्दुओं के प्रति नीति :

अकबर ने हिन्दुओं के साथ समन्वय की नीति अपनायी तथा उन्हें मुस्लिमों के समान राजनीतिक व नागरिक अधिकार प्रदान किये। इससे हिन्दू राजभक्त बन गये। अकबर की हिन्दू नीति की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार थीं–

16.9.1. तीर्थयात्रा कर समाप्त करना (1563 ई.) – पहले हिन्दुओं को अपने तीर्थस्थानों की यात्रा के लिए राज्य को कर देना पड़ता था, किन्तु अकबर ने इसे समाप्त कर दिया। उसने हिन्दुओं को मंदिर निर्माण की भी आज्ञा दे दी।

16.9.2. जजिया कर समाप्त करना (1564 ई) – जजिया कर हिन्दुओं को अपमानित करके लिया जाता था, ताकि वे इस्लाम स्वीकार कर लें। अकबर ने 1564 ई. में इसे समाप्त कर दिया, जिससे हिन्दुओं के मन में उसके प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। अबुल फजल के अनुसार, ''अकबर प्रथम मुस्लिम शासक था, जिसने जजिया कर हटा दिया था।'' डॉ. एस. आर. शर्मा के अनुसार, ''इस कर की समाप्ति राज्य की नीति में एक भारी परिवर्तन की सूचक थी। हिन्दू तथा मुसलमान राज्य के एक समान नागरिक बन गये।'' डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव के अनुसार, अकबर की इस्लाम के प्रति धारणा और गैर–इस्लामी धर्मों तथा उनके अनुयायियों के प्रति उसका दृष्टिकोण ही वह धुरी थी, जिस पर उसके दरबार और सरकार के सभी कामकाज घूमते थे।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.9.3. उच्च पदों पर नियुक्ति – पहले हिन्दू निम्न पदों पर ही नियुक्त किये जाते थे। अकबर ने उन्हें योग्यतानुसार उच्च पदों पर भी नियुक्त किया।

16.9.4. धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करना – अकबर ने हिन्दुओं को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता दे दी। उसने हिन्दुओं को मूर्तिपूजा करने एवं होली, दीपावली आदि त्यौहार धूम–धाम से मनाने की छूट दे दी। वह स्वयं भी इन त्यौहारों में भाग लेता था। यहां तक कि उसने जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये लोगों को हिन्दू धर्म ग्रहण करने की छूट दे दी।

16.9.5. हिन्दू रिवाजों को अपनाना – अकबर ने कुछ हिन्दू रीति–रिवाजों को भी अपना लिया था। डॉ. एस.आर शर्मा के अनुसार, "उसने सूर्य को नमस्कार करना तथा तिलक लगाना शुरू कर दिया। उसने कई अन्य हिन्दू रीतियां अपनाई।" उसने अपनी राजपूत बेगमों को शिव, विष्णु आदि की उपासना करने की छूट दे दी। वह हिन्दुओं के समान तिलक लगाता था तथा हिन्दू वेश–भूषा भी धारण करता था।

16.9.6. गो वध निषेध – चूंकि हिन्दू गाय की पूजा करते हैं, अतः अकबर ने हिन्दुओं का दिल जीतने के लिए गोवध निषध कर दिया। 1590 ई. के बाद उसने बैलों, भैंसो एवं भेड़ों के मांस का प्रयोग भी बंद कर दिया। कुछ समय के लिए मछलियां पकड़ना भी निषेध कर दिया गया।

16.9.7. हिन्दू साहित्य का संरक्षण – अकबर ने हिन्दी तथा संस्कृत के विद्वानों को भी संरक्षण दिया तथा हिन्दू साहित्य को प्रोत्साहित किया। उसने हिन्दू ग्रंथों को अनुवादित करने हेतु पृथक् विभाग स्थापित किया। उसने बीरबल, मानसिंह, भगवानदास, अब्दुर्रहीम खानखाना आदि हिन्दी कवियों को संरक्षण दिया। अबुल फजल के अनुसार अकबर के दरबार के विख्यात 21 विद्वानों में 9 हिन्दू थे।

16.9.8. सामाजिक सुधार – अकबर ने हिन्दू धर्म में सुधार का भी प्रयास किया। उसने सती–प्रथा, बाल विवाह, कन्या–वध आदि कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया एवं विधवा–विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित किया।

हिन्दू नीति के परिणाम–अकबर की उदार हिन्दू नीति से हिन्दु मुगलों से प्रेम करने लगे तथा मुगल साम्राज्य के प्रति उनमें राजभक्ति की भावना उत्पन्न हुई। वे अकबर को अपना हितैषी तथा शुभचिंतक मानने लगे। अकबर की उदार हिन्दू नीति से हिन्दुओं तथा मुसलमानों में समन्वय स्थापित हुआ, जिससे स्थायी साम्राज्य की स्थापना हुई और राष्ट्रनिर्माण का कार्य हुआ। डॉ. पी.एन. सरन के अनुसार, "धर्म, वर्ग तथा जाति के मतभेदों को दूर करके अकबर ने एक ऐसे राज्य की स्थापना की, जो समस्त प्रजा की इच्छा पर आधारित था और जिसे बिना किसी संकोच के राष्ट्रीय राज्य कहा जा सकता था।"

16.10. अकबर की धार्मिक नीति :

अकबर प्रथम मुस्लिम शासक था, जिसकी गणना भारतीय इतिहास में एक राष्ट्रीय शासक के रूप में की जाती है। उसका एक प्रमुख कारण उसकी धार्मिक सहिष्णुता है। उसे पिता हुमायूं का रहस्यवाद तथा अपनी माता की धार्मिक भावना विरासत में मिली थी। वह धार्मिक एवं सांस्कृतिक मामलों में तलवार का सहारा लेना नहीं चाहता था। बैरामखां व अपनी शिया धर्मावलम्बी माता हमीदा बानू के प्रभाव में रहने से उसमें धार्मिक कट्टरता घर नहीं कर सकी थी। अतः उसने भारत में प्रचलित समस्त धर्मों को सम्मान व समानता की दृष्टि से देखा। उसके शासन–काल में धर्म के नाम पर न तो किसी प्रकार का अत्याचार ही किया गया और न किसी सरकारी सेवा से वंचित ही किया गया। इसीलिए अतर अली का कहना है कि अकबर अपनी इस नीति से धर्म–निरपेक्ष राज्य की स्थापना करना चाहता था। परन्तु इसका यह आशय नहीं कि वह मुसलमान नहीं था। अपने शासन के प्रारम्भ में वह एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। सुन्नी धर्म के समस्त नियमों का वह पालन करता था। दिन में वह पांच बार नमाज पढ़ता तथा मुल्ला–मौलवियों के प्रभाव में आकर हिन्दुओं पर अत्याचार भी करता था। राज्य के अलावा काजी अब्दुन्नबी खां का बड़ा आदर करता था। एक अवसर पर अकबर ने उसकी चप्पलें भी उठाई थी। परन्तु 1573 ई. के उपरान्त उसके धार्मिक विचारों में महान परिवर्तन आया। जब 1573 में अकबर गुजरात विजय करके सीकरी लौटा तब शेख मुबारक ने सम्राट से कहा था कि वे धार्मिक मामलों में भी नेतृत्व करें। हालांकि शेख मुबारक के सुझाव का सम्राट ने कुछ उत्तर नहीं दिया, परन्तु धार्मिक विषयों की विवेचना करने में अपने को योग्य बनाने हेतु अकबर ने भारत में प्रचलित सभी धर्मों के सिद्धान्तों पर मनन करना आरम्भ कर दिया। उसने धार्मिक कट्टरता का परित्याग कर सब धर्मों का आदर करना आरम्भ किया। अपने धार्मिक जीवन में भी वह केवल सुन्नी धर्म का ही अनुयायी नहीं रहा, वरन् अन्य धर्मों की परम्पराओं को भी उसने अपनाना आरम्भ किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अकबर के धार्मिक विचारों का अध्ययन करने के उपरान्त यह कहना कठिन हो जाता है कि वह सच्चे अर्थ में किस धर्म का अनुयायी था? जन्म से कट्टर सुन्नी मुसलमान होते हुए उसने हिन्दुओं पर अत्याचार करने वाले कानून समाप्त कर दिये। धर्मान्धता 1573 ई. के उपरान्त उसे अप्रिय हो गई। यह उसकी धार्मिक सहिष्णुता का ही परिणाम था कि हिन्दुओं को अपने ढंग से जीवन व्यतीत करने, पूजा–पाठ करने, और मंदिर बनवाने व उनकी मरम्मत कराने की छूट मिल गई थी। इसी उलझन के कारण कुछ विद्वान् उसे पाखण्डी और ढोगी कहते हैं। इसके साथ ही कतिपय इतिहासकार उसे सत्य की खोज करने वाला सम्राट बताते हैं। अतः निम्नलिखित अवतरणों में हम यही बताने का प्रयास करेंगे कि उसके धार्मिक विचारों में यह परिवर्तन किस प्रकार आया, किन कारणों से आया और इसका क्या प्रभाव पड़ा?

16.11. धार्मिक परिवर्तन के कारण :

16.11.1. शिया–सुन्नी के पारस्परिक झगड़े – उसने धार्मिक सिद्धान्तों का मनन इस्लाम धर्म से ही प्रारम्भ किया। 1575 ई. में धर्म का पर्यवेक्षण करने की दृष्टि से उसने फतेहपुर सीकरी में एक इबादतखाना बनवाया। वहां वह शिया व सुन्नी दोनों सम्प्रदायों के धर्माधिकारियों को आमंत्रित करता था। वहां उनमें धार्मिक प्रश्नों पर वाद–विवाद होता था। यह वाद–विवाद कभी–कभी उग्र हो जाता था कि दोनों सम्प्रदायों के धर्माधिकारी आपस में गाली–गलौज पर उतर आते थे। यह देखकर अकबर को महान् दुःख होता था। उनके इस प्रकार के वाद–विवाद ने अकबर को अन्य धर्मों की जानकार प्राप्त करने को बाध्य किया। इसका परिणाम यह निकला कि उसने अपने धर्म के अन्धविश्वासों का परित्याग करना आरम्भ किया। शुक्रवार को उसने मांस–भक्षण बंद कर दिया तथा वह पशु–वध को भी हेय समझने लगा। उसने अब्दुलनबी को 'सदर–उस–सुदूर' (धर्माचार्य) पद से हटा दिया। फैजी ने खुतबा तैयार किया और अकबर स्वयं ने खुतबा पढ़ने का निश्चय किया। खुतबे के अंत में 'अल्लाह अकबर' लिखा गया। कट्टर पंथियों ने इसका यह अर्थ लिया कि अकबर पैगम्बर बनने का प्रयास कर रहा है। अतः कट्टर सुन्नी मुसलमानों ने उसका घोर विरोध किया। इस श्रेणी में हम वी.ए. स्मिथ और ए.के. निजामी को ले सकते हैं। उनका कहना था कि अकबर पैगम्बर का रुतवा (पद) प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा था।

16.11.2. हिन्दू स्त्रियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना – आमेर के राजा भरमल की पुत्री से विवाह कर अकबर ने एक नवीन इकाई का श्रीगणेश किया। इसके उपरान्त उसने कई राजपूत कन्याओं से विवाह किये और उनके प्रति उसने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनायी। उनके प्रभाव में आने पर उसने मांस–मदिरा का प्रयोग समाप्त कर दिया तथा उन बेगमों के धार्मिक विचारों के प्रति भी वह उदार बना रहा। राजकुमार सलीम का विवाह भी आमेर नरेश भगवानदास की पुत्री मानबाई से हुआ। सलीम उसका बहुत आदर करता था और उसे शाह बेगम कहता था। अकबर उस शादी व हिन्दू रीति रिवाजों से बहुत प्रभावित हुआ।

16.11.3. वंशानुगत प्रभाव – अकबर को सुन्नी धर्म की कट्टरता बचाने में उसकी वंश परम्पराओं ने भी बड़ी भूमिका निभाई। स्वयं सुन्नी मुसलमान होते हुए हुमायूं ने सूफी मतावलम्बी हमीदा बानू बेगम से विवाह किया। अकबर का जन्म ही हिन्दू राजा के घर हुआ था। उसके जन्म का एक मास थट्टा में ही व्यतीत हुआ था। उसके पिता हुमायूं को सुन्नी होते हुए ईरान के शाह से शिया धर्म पर समझौता करना पड़ा था। हुमायूं ने अकबर का संरक्षक बैरामखां को बनाया तथा जो शिया तथा उदार विचारों का था। अकबर का गुरु अब्दुल लतीफ था। उसकी नियुक्ति हुमायूं ने ही की थी। वह शिया व उदार विचारों का था।

16.11.4. अकबर पर अन्य धर्मों का प्रभाव – अकबर ने अपने धार्मिक विचार केवल सुन्नी धर्म तक ही सीमित नहीं रखे। वह संप्रभुता के एक ऐसे सिद्धान्त की स्थापना का प्रयास कर रहा था जिसमें भारत की धार्मिक तथा जातिगत विषमताओं का पूरा ध्यान रखा गया था। अकबर के धार्मिक सिद्धान्तों का विकास वास्तव में 1575 ई. से आरंभ हुआ। इसका श्रेय उसके द्वारा निर्मित इबादतखाने को जाता है जो धार्मिक विषयों पर वाद–विवाद के उद्देश्य से बनवाया गया था। इस वाद–विवाद में अबुल फजल ने प्रमुख भूमिका निभाई। परम्परावादी सुन्नी उलेमा के विषय में विभिन्न वर्गों को सक्रिय करने का श्रेय उसी को जाता है। इबादतखाने में होने वाले वाद–विवाद ने अकबर के धार्मिक विचारों के विकास में गहरी भूमिका निभाई। कट्टर सुन्नी सम्प्रदाय के नेता मखदूम–उल–मुल्क और शेख अब्दुल नबी थे। उनके पारस्परिक झगड़ों और विचारों का संघर्ष उग्र रूप में देखने का अवसर अकबर को इबादतखाने में ही मिला। उनकी असहिष्णुता तथा कट्टरता का अकबर के जीवन पर भारी प्रभाव पड़ा और धर्म का सच्चा स्वरूप जानने की अभिलाषा ने अकबर को अन्य धर्मों के विषय में जानकारी प्राप्त करने को विवश कर दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.12. अकबर की धार्मिक नीति के चरण :

अकबर की धार्मिक नीति को तीन चरणों में विभक्त किया जा सकता है–

अ. उदारता की नीति (1560–1575 ई.)

ब. इबादतखाने की स्थापना और महान परिवर्तन (1575–1580 ई.)

स. दीन–ए–इलाही (1581 ई.)

16.13. उदारता की नीति (1560–1575 ई.) :

अकबर आरम्भ में पूर्ववर्ती शासकों की भांति कट्टर था, अतः उसने मखदूम–उल–मुल्क एवं अब्दुन्नबी आदि कट्टर मुल्लाओं के कहने पर कुछ गैर–इस्लामिक व्यक्तियों को मरवा दिया। आमेर की राजकुमारी जोधाबाई से 1562 ई. में विवाह करने के पश्चात् उसकी धार्मिक नीति में परिवर्तन हुआ, जो निम्न तथ्यों से प्रमाणित होता है–

1. अकबर ने 1562 ई. में युद्धबंदियों को गुलाम तथा बलपूर्वक मुसलमान बनाए जाने पर प्रतिबंध लगा दिया। उसने आदेश दिया कि बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये लोग हिन्दू धर्म ग्रहण कर सकते हैं।

2. हिन्दुओं को अपने तीर्थस्थानों की यात्रा के लिए कर्मी नामक कर देना पड़ता था, जिसे अकबर ने 1563 ई. में समाप्त कर दिया।

3. अकबर ने 1564 ई. में हिन्दुओं से वसूल किया जाने वाला जजिया कर समाप्त कर दिया। इससे हिन्दुओं को भी समान नागरिकता का अधिकार प्राप्त हुआ। जजिया कर समाप्त करने वाला अकबर पहला मुस्लिम शासक था।

4. अकबर ने अपनी राजपूत रानियों को उनका धर्म मानने तथा उसका पालन करने की स्वीकृति दे दी। उसने समस्त प्रजा को धार्मिक स्वतंत्रता दे दी तथा मंदिरों के निर्माण पर लगी रोक हटा दी। मानसिंह ने वृंदावन तथा काशी में मंदिर बनवाये। एस.आर. शर्मा के अनुसार, "उस समय उज्जैन में कई मंदिर बने। ईसाइयों ने भी आगरा तथा लाहौर में गिरजाघर बनवाये।

इन उदार कदमों के बावजूद अकबर व्यक्तिगत धार्मिक जीवन में कट्टर रहा। उसने मुख्य सदर अब्दुन्नबी के परामर्श पर 1569 ई. में मिर्जा मुकीम एवं मीर याकूब खां को प्राणदण्ड दिया। 1572 ई. में उसने नगरकोट के विख्यात मंदिर महानदी को तथा बनारस के प्राचीन मंदिर को ध्वस्त किया। उसके द्वारा टोडरमल को वजीर बनाने पर कट्टर मुस्लिम धार्मिक लोगों ने इसकी कटु आलोचना की। एस.एम. जफर के अनुसार, "1575 ई. तक अकबर कट्टर सुन्नी मुसलमान रहा और इस्लाम के नियमों का पालन दृढ़ता से करता रहा।"

बदायूंनी के अनुसार, 1575 ई. तक नमाज पढ़ता रहा, मुस्लिम धार्मिक नेताओं का सम्मान करता रहा, पीरों के मकबरों के दर्शन करता रहा, किन्तु इसके बाद अबुल फजल तथा फैजी के प्रभाव से उसकी कट्टरता समाप्त होने लगी।

16.14. इबादतखाने की स्थापना और महान् परिवर्तन (1575–1580 ई.) :

16.14.1. इबादतखाने में वाद–विवाद – अकबर ने 1575 ई. में फतेहपुर सीकरी में एक इबादतखाना बनवाया, जिसमें प्रत्येक गुरुवार को धार्मिक विषयों पर शिया तथा सुन्नी विद्वानों में वाद–विवाद होता था। कभी–कभी तो इन दोनों में इस्लाम के सिद्धान्तों को लेकर गाली–गलौज तक हो जाती थी। उलेमाओं के इस व्यवहार से अकबर का उन पर से विश्वास उठ गया और उसे यह अनुभव हुआ कि केवल इस्लाम ही सच्चा धर्म नहीं है। अतः उसने 1579 ई. में हिन्दू, ईसाई, पारसी, जैन तथा सिख विद्वानों को भी धार्मिक चर्चा के लिए इबादतखाने में बुलवाया। इन विभिन्न धर्मों के विद्वानों के विचार सुनने से अकबर का दृष्टिकोण और व्यापक हो गया। उसने मुस्लिम धार्मिक वर्ग के कुप्रभाव को रोकने का निश्चय किया। अकबर ने विभिन्न धर्मों की अच्छी बातें अपनायीं। अकबर पर विभिन्न धर्मों का इस प्रकार प्रभाव पड़ा–

जैन धर्म का प्रभाव–अकबर ने हीर विजय सूरी, जिनचन्द्र सूरी, भानुचन्द्र शांतिचन्द्र आदि जैन संतों को इबादतखाने में वाद–विवाद के लिए आमंत्रित किया। उसने हीर विजय सूरी की विद्वत्ता से प्रभावित होकर उन्हें 'जगतगुरु' की उपाधि दी। उसने जैन धर्म से प्रभावित होकर शिकार खेलना एवं मांस भक्षण लगभग समाप्त कर दिया, गौवध निषेध कर दिया एवं वर्ष में 180 दिन पशु–पक्षियों के शिकार पर प्रतिबंध लगा दिया।

हिन्दू धर्म का प्रभाव–अकबर ने पुरुषोत्तम, दैवी आदि हिन्दू विद्वानों को इबादतखाने में आमंत्रित किया तथा वह इनके विचारों से बहुत प्रभावित हुआ। उसने कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया। वह हिन्दुओं के समान प्रतिदिन झरोखा–दर्शन देता था एवं जन्मदिन पर तुलादान करवाता था। वह सिर पर पगड़ी पहनता था तथा माथे पर तिलक लगाता था। वह दरबार में दीपावली, होली, रक्षाबंधन आदि त्यौहारों को धूमधाम से मनाता था। अपनी माता की मृत्यु होने पर उसने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हिन्दुओं के समान मुंडन करवाया। उसने हिन्दुओं के परस्पर विवादों के निपटारे हेतु ब्राह्मण न्यायाधीश नियुक्त किये। उसने हिन्दुओं को भी उच्च पदों पर नियुक्त किया। उसने टोडरमल को वजीर तथा भगवानदास को पंजाब का सूबेदार बनाया। उसने मानसिंह को सात हजार का मनसब देकर काबुल का सूबेदार बनाया, जो साधारणतः शहजादों को ही दिया जाता था।

पारसी धर्म का प्रभाव–पारसी धर्मगुरु दस्तूरजी मेहरजी राणा से प्रभावित होकर अकबर ने सूर्य एवं अग्नि की पूजा करना तथा पारसी त्यौहार मनाना आरम्भ कर दिया।

ईसाई धर्म का प्रभाव–अकबर ने गोआ से ईसाई मिशनरियों को आमंत्रित किया। उनसे प्रभावित होकर अकबर ने उन्हें गिरजाघर बनाने, सार्वजनिक ढंग से पूजा–पाठ करने, अपने त्यौहार मनाने तथा भारत में ईसाई धर्म का प्रसार करने की अनुमति दे दी। वह स्वयं भी कभी–कभी गिरजाघर जाता था।

16.14.2. अकबर द्वारा खुतबा पढ़ना (22 जून, 1579 ई.) – अकबर ने उलेमाओं का प्रभाव कम करने के लिए पहले मुख्य इमाम का पद ग्रहण किया तथा तत्पश्चात् 22 जून, 1579 ई. को राजकवि फैजी द्वारा रचित खुतबा जामा मस्जिद में पढ़ा। इसकी अंतिम पंक्ति 'अल्लाह–हू–अकबर' से उलेमा घबरा गये और उन्होंने इसका अर्थ लगाया कि अकबर स्वयं पैगम्बर बनना चाहता है। बदायूंनी के अनुसार अकबर खुतबे की तीन पंक्तियां पढ़कर घबरा गया, किन्तु यह कथन असत्य है, क्योंकि निमाजुद्दीन ने इसकी पुष्टि नहीं की है तथा अबुल फजल ने लिखा है, "अकबर ने खुतबा पढ़ने के बाद जामा मस्जिद में एकत्र लोगों को सम्बोधित किया।"

16.14.3. मज़हर–पत्र की घोषणा (सितम्बर, 1579 ई.) – अकबर ने मुल्लाओं को कट्टरता छोड़कर इस्लाम के नियमों की नवीन व्याख्या प्रस्तुत करने हेतु समझाने का प्रयास किया, किन्तु असफल रहा। इसके बाद सितम्बर 1579 ई. में अकबर ने शेख मुबारक द्वारा तैयार 'मजहर' नामक पत्र की घोषणा कर दी, जिसके द्वारा अकबर इस्लाम का प्रधान नेता बन गया। अब इस्लामी नियमों की व्याख्या की सर्वोच्च शक्ति उसके हाथ में आ गई। अब्दुन्नबी, मखदूम–उल–मुल्क तथा अन्य मुल्लाओं ने इस पत्र पर हस्ताक्षर कर निम्न बातों की स्वीकृति दे दी–

1. जनता को ईश्वर, उसके पैगम्बर तथा मुगल सम्राट अकबर के आदेश का पालन करना चाहिए।
2. अकबर की आज्ञा की अवहेलना ईश्वर का विरोध है।
3. अकबर सबसे बड़ा तथा श्रेष्ठ धार्मिक नेता है।
4. अकबर को ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त है।
5. इस्लाम सम्बन्धी विवादों पर मुस्लिम धार्मिक नेताओं में मतभेद होने पर अकबर का निर्णय अंतिम तथा अनिवार्य माना जायेगा, किन्तु वह कुरान के अनुसार तथा राष्ट्रहित में हो।

आलोचना–मजहर घोषणा–पत्र से उलेमा निराश हो गये। यह अकबर का एक साहसिक कदम था। बदायूंनी के अनुसार, "इस पत्र के द्वारा धार्मिक झगड़ों को निपटाने की शक्ति अकबर के अधिकार में आ गई और किसी भी व्यक्ति के लिए उसके फरमान का विरोध करना संभव नहीं।" बदायूंनी के ही अनुसार, अकबर ने मुल्लाओं को इस पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया था। कुछ आधुनिक इतिहासकार भी बदायूंनी के मत का समर्थ करते हैं। मैलसन के अनुसार, "इस पत्र की घोषणा ने सम्राट के जीवन तथा राज्य को एक नवीन दिशा प्रदान की।" मुल्लाओं के अनुचित प्रभाव से बादशाह मुक्त हो गया और उसे अपने सहनशील विचारों का प्रचार तथा प्रसार की खुली छूट मिल गई।" वी.ए. स्मिथ इस पत्र की तुलना इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ के प्रसिद्ध ऐक्ट 'ऐक्ट ऑफ सुपरमेसी' के साथ करते हुए कहते हैं कि इस पत्र से अकबर धार्मिक नेता भी बन गया।

वस्तुतः इस पत्र से अकबर को असीम धार्मिक शक्ति नहीं मिली थी। यह इस पत्र की धाराओं से स्पष्ट होता है। उसे धार्मिक विवादों पर उलेमाओं द्वारा प्रस्तुत मतों में से किसी एक को स्वीकार करने का अधिकार था। उसे धार्मिक विषयों पर व्याख्या करने तथा कुरान के विरूद्ध आदेश जारी करने का अधिकार नहीं था। मुस्लिम उलेमा उससे इसलिए असंतुष्ट थे, क्योंकि उनका कुप्रभाव समाप्त हो गया था। बदायूंनी का यह कथन भी गलत है कि अकबर ने इस पत्र पर मुल्लाओं से जबर्दस्ती हस्ताक्षर करवाये थे।

16.15. दीन–ए–इलाही (1581 ई.) :

इबादतखाने के वाद–विवादों से अकबर का दृष्टिकोण व्यापक हुआ। अकबर देश में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए एक साझा धर्म चलाना चाहता था। अतः उसने विभिन्न धर्मों के अच्छे–अच्छे सिद्धान्त लेकर 1581 ई. में दीन–ए–इलाही

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

नामक नवीन मत की स्थापना की। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, ''दीन–ए–इलाही सर्वेश्वरवाद था, जिसमें सभी धर्मों की अच्छी–अच्छी बातें सम्मिलित थीं।'' लेनपूल के अनुसार, ''अकबर का यह मत दर्शन, रहस्यवाद और प्रकृति की उपासना का मिश्रण था।'' डॉ. रायचौधरी इसकी तुलना सूफी मत से करते हैं। एस.आर. शर्मा ने इसे धर्म नहीं माना है, क्योंकि इसका कोई पैगम्बर, देवालय, पुरोहित वर्ग, पृथक धार्मिक ग्रंथ या धार्मिक सिद्धान्त नहीं थे। डॉ. शर्मा इसे कट्टर मुसलमानों का विरोध करने वाली एक सभा मानते हैं। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि अकबर इस मत से हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित करना चाहता था।

16.15.1. दीन–ए–इलाही के सिद्धान्त – दीन–ए–इलाही का राजकीय नाम 'तोहीदे इलाही' अथवा दैवी एकेश्वरवाद था। इसका कोई उपासनागृह या पुरोहित वर्ग नहीं था। आईन–ए–अकबरी की 77वीं धारा के अनुसार दीन–ए–इलाही के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित थे–

1. इस मत के सदस्य ईश्वर को दिव्य शक्ति वाला मानते थे अथा अकबर को उसका इमाम मानते थे।

2. इस मत के सदस्य जहां तक संभव हो, मांस नहीं खाते थे तथा परोपकार की शपथ लेते थे। वे अपने जन्मदिन वाले महीने मांस नहीं खाते थे।

3. इस मत के सदस्य वृद्धाओं तथा कम उम्र की कन्याओं से विवाह नहीं कर सकते थे।

16. इसके सदस्य कसाई, चिड़ीमारों तथा शिकारियो से कोई सम्बन्ध नहीं रख सकते थे।

5. इस मत के अनुयायी 'अल्ला–हो–अकबर' तथा 'जलले जलाल हूं' कह कर परस्पर अभिवादन करते थे।

6. इसके सदस्य अकबर को सिजदा (साष्टांग) करते थे तथा उसका जन्मदिन मिलकर मनाते थे।

7. वे अन्य धर्मावम्बियों के प्रति सहनशील होते थे।

8. इसके सदस्य सूर्य तथा अग्नि की पूजा करते थे।

9. इसके अनुयायी जीवनकाल में ही मृत्यु भोज देते थे तथा अपना जन्मदिन मनाते थे। इस अवसर पर वे भोज तथा दान देते थे।

16.15.2. सदस्य बनने की विधि – इस मत का सदस्य बनने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति रविवार के दिन दरबार में जाता था। वहां इस धर्म का मुख्य पुरोहित अबुल फजल सम्राट के समक्ष उसका परिचय देता था। तत्पश्चात् वह व्यक्ति पगड़ी अपने हाथ में रखकर अपना सिर सम्राट के कदमों में रख देता था। सम्राट उसे उठाकर उसकी पगड़ी उसके सिर पर रख देता था और 'अल्ला–हू–अकबर' खुदा हुआ एक शिस्त देता था और इस तरह वह व्यक्ति दीन–ए–इलाही का अनुयायी बन जाता था। एम.आर. चौधरी के अनुसार, ''शिस्त एक प्रकार की अंगूठी होती थी, जो हीरे–जवाहरात से जड़े एक सुन्दर वस्त्र में लपेटी हुई होती थी। दीन–ए–इलाही का सदस्य इसे अपनी पगड़ी के सिर पर पहनता था।''

16.15.3. अनुयायियों के चार पद – दीन–ए–इलाही के अनुयायियों को सम्राट के प्रति त्याग करने एवं भक्ति प्रदर्शित करने हेतु तैयार रहना पड़ता था। इसके सदस्य सम्राट के लिए धन–सम्पत्ति, मान–मर्यादा, जीवन, धर्म आदि का त्याग करने हेतु तैयार रहते थे। इनका बलिदान करने वालों को भक्ति के पद मिलते थे। संभवतः अकबर राजभक्तों की श्रेणी बनाना चाहता था। अबुल फजल इस धर्म का मुख्य पुरोहित था।

16.15.16. प्रसार – दीन–ए–इलाही का अधिक प्रसार न हो सका। हिन्दुओं ने इसे इस्लाम का नया रूप समझकर तथा मुसलमानों ने इसे अपने धर्म के विरूद्ध समझकर स्वीकार नहीं किया। अतः इसकी सदस्य संख्या सिर्फ कुछ हजार ही पहुंच पायी, जिसमें उच्च वर्ग के सिर्फ 18 व्यक्ति थे, जिसमें अबुल फजल, फैजी, शेख मुबारक, बीरबल आदि प्रमुख थे। अकबर ने इस धर्म के प्रसार के लिए प्रलोभन या शक्ति का सहारा नहीं लिया। उसने भगवानदास तथा मानसिंह द्वारा यह धर्म ग्रहण न करने पर उन को कोई दबाव नहीं डाला। अतः बदायूंनी का यह कथन सही नहीं माना जा सकता कि सभी दरबारी एक साथ दीन–ए–इलाही के अनुयायी बन गये थे। अकबर की मृत्यु के साथ यह धर्म भी समाप्त हो गया।

आलोचना – बदायूंनी के अनुसार अकबर ने दीन–ए–इलाही की स्थापना इस्लाम का दमन किया। उसके अनुसार–

1. उसने सामूहिक नजाज पढ़ने पर प्रतिबंध लगा दिया था।

2. नमाज के समय रेशमी कपड़े तथा आभूषण पहनना अनिवार्य कर दिया।

3. हज पर जाने पर प्रतिबंध लगा दिया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

किन्तु बदायूंनी के ये आरोप निराधार हैं। उसका दूसरा आरोप है उसके पहले आरोप का खंडन करता है। उसने 1575 ई. में अपनी गुआ बुलबदन बेगम को हज पर जाने की अनुमति दे दी। वस्तुतः कट्टर सुन्नी बदायूंनी ने अकबर की उदार धार्मिक नीति को इस्लाम के प्रति अन्याय समझा था। डॉ. वी.ए. स्मिथ ने भी बदायूंनी का मत अपनाते हुए निम्न तर्कों द्वारा दीन–ए–इलाही की आलोचना की है–

1. अकबर ने पैगम्बर बनने के लिए यह धर्म चलाया था।

2. अकबर चाहता था कि जनता उसकी पूजा करे। उसने अपने दर्शन करने को ईश्वर का स्मरण कहा।

3. व्यक्ति को सम्राट के कदमों में साष्टांग करना पड़ता था, सम्राट के प्रति भक्ति प्रदर्शित करनी पड़ती थी एवं उसके प्रति त्याग करने के लिए तैयार रहना पड़ता था।

स्मिथ के अनुसार, धन–दौलत से अकबर का सिर फिर गया था। अतः उसने पैगम्बर बनने के लिए यह धर्म चलाया, किन्तु उसे निराशा हाथ लगी। स्मिथ आगे लिखता है, "दीन–ए–इलाही सम्राट के मिथ्या अभिमान का परिणाम था और बुद्धिमत्ता का नहीं, अपितु उसकी मूर्खता का प्रमाण था।"

डॉ. ईश्वरीप्रसाद, एस.एम. जफर, एस.आर. शर्मा आदि इतिहासकार इन मतों का खंडन करते हुए कहते हैं कि इस मत को चलाने के पीछे अकबर का कोई धार्मिक उद्देश्य नहीं था और न ही वह अपनी पूजा करवाना चाहता था। यदि ऐसा होता तो, इस मत के प्रसार के लिए वह प्रलोभन तथा शक्ति का सहारा लेता तथा भगवानदास, मानसिंह तथा टोडरमल पर इसे स्वीकार करने के लिए दबाव डालता। वस्तुतः दीन–ए–इलाही मत के पीछे अकबर का राजनीतिक उद्देश्य था। वह इसके द्वारा हिन्दू–मुस्लिम समन्वय स्थापित कर भारत में राष्ट्रीय एकता स्थापित करना चाहता था, अतः यह उसकी बुद्धिमत्ता का प्रमाण था। प्रो.एस.आर. शर्मा के शब्दों में, "दीन–ए–इलाही सम्राट के राष्ट्रीय आदर्श की उच्चकोटि की अभिव्यंजना थी।"

16.15.5. दीन–ए–इलाही की विफलता के कारण – दीन–ए–इलाही मत निम्न कारणों से विफल रहा–

1. अकबर यह नहीं समझ सका कि धर्म कभी निर्मित नहीं किया जाता है। महावीर, गौतम बुद्ध, ईसा आदि ने धर्म निर्माण का प्रयास न करके जनता में अपने विचारों का प्रसार किया था तथा उनकी मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों ने भिन्न–भिन्न सम्प्रदाय बनाये। अकबर ने पहले धर्म की स्थापना की तथा फिर उसके सदस्य बनाये, जबकि उसे चाहिए था कि वह पहले जनता को अपने विचारों से अवगत कराता। इस तरह उसने उल्टा मार्ग अपनाया।

2. दीन–ए–इलाही में विशेष आकर्षण नहीं था। इस धर्म के अनुयायियों में अधिकांश ने इसे अकबर को प्रसन्न करने के लिए अथवा उसके भय से अपनाया। इसे दिल से स्वीकार करने वाले बहुत कम थे। अकबर की मृत्यु के साथ यह समाप्त हो गया।

3. लारैन्स बिनयन के अनुसार, "दीन–ए–इलाही की उदारता तथा सरलता भी उसकी असफलता का कारण सिद्ध हुई। बदायूंनी जैसे कट्टर आलोचक द्वारा इस मत की घोर निन्दा करने पर किसी प्रकार का दण्ड नहीं दिया गया।"

4. अकबर ने इसके प्रसार के विशेष प्रयत्न नहीं किये। अकबर ने इस धर्म के सिद्धान्तों से जनता को परिचित करवाने के लिए अधिकारी नियुक्त नहीं किये। इस मत के बहुत सारे अनुयायी अकबर के जीवन काल में ही मर गये और बहुतों ने इससे उसकी मृत्यु के साथ छोड़ दिया।

5. जहांगीर ने इस मत में कोई रूचि नहीं ली, अतः यह लुप्त हो गया।

16.15.6. निष्कर्ष – अकबर ने उलेमाओं तथा मुल्लाओं के कुप्रभाव को समाप्त कर दिया तथा इस्लाम की श्रेष्ठता के दावे को समाप्त कर अन्य धर्मों को भी उसके बराबर माना। यह अकबर की सहिष्णुता का प्रतीक है, क्योंकि सल्तनतकाल में किसी भी व्यक्ति द्वारा अपने धर्म को इस्लाम धर्म के बराबर कहने पर उसे मृत्यु दण्ड दिया जाता था। अकबर ने सभी धर्मों का समान आदर किया। उसने इस मत द्वारा भारत में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसका यह प्रयास असफल होते हुए भी सराहनीय है।

16.16. अकबर की मृत्यु :

ऊपर की घटनाओं से स्पष्ट है कि अकबर के अंतिम दिन अत्यन्त दुःखद व्यतीत हुए। उसे मानसिक शांति नहीं थी। अतः वह 3 अक्टूबर, 1605 ई. को बीमार पड़ा। उसे पेचिश तथा अतिसार की शिकायत हो गई। हकीम अली सम्राट का उपचार नहीं कर सका। उधर सलीम व खुसरो राज्य–प्राप्ति के लिए षड्यंत्र रच रहे थे। इससे भी अकबर को हार्दिक वेदना हुई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इन सबका परिणाम यह हुआ कि उसका रोग दिन पर दिन बढ़ता गया और हकीम उसका उपचार नहीं कर सका। 11 अक्टूबर को रात्रि को सम्राट की अवस्था और भी दयनीय हो गई और 25–26 अक्टूबर की रात्रि को वह इस लोक से बिदा हो गया। उसे सिकन्दरा में दफना दिया गया। इसकी बोली चार दिन तक बंद रही। इस कारण वह अपनी अंतिम इच्छा व्यक्त नहीं कर सका और साथ में यह भी नहीं बता सका कि उसे कहां दफनाया जावे। लेकिन आगरा से 6 मील दूर सिकन्दरा में उसने अपने जीवन–काल में ही अपना मकबरा आरंभ कर दिया था।

वाल्टेयर ने उसकी उपमा कैथेराइन द्वितीय से करते हुए कहा कि वह अपने समकालीन सम्राटों व शासकों (एलिजाबेथ प्रथम–इंग्लैण्ड), फ्रांस हेनरी, चतुर्थ, टर्की के महान सुलेमान व फारस के शाह अब्बास) में एक महान सम्राट था। शरीर से वह बलिष्ठ था। उसके कन्धे चौड़े, आवाज बुलन्द तथा हाजिर जवाब सम्राट था। वह वास्तव में सम्राट था और एकत्रित मनुष्यों में वह आसानी से एक सम्राट के रूप में पहचाना जा सकता था। प्रकृति से वह दयालु व नेक था। अवसर पड़ने पर वह निर्दयी भी बन जाता था।

16.17. राष्ट्रीय शासक के रूप में अकबर :

अकबर ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की, उसमें सुव्यवस्थित शासन अपनाया तथा जनकल्याणकारी नीतियों को अपनाया। उसने सभी जाति के व्यक्तियों को योग्यता के आधार पर उच्च पदों पर नियुक्त किया तथा संपूर्ण साम्राज्य में एक समान कानून, सिक्के तथा नाप–तोल की व्यवस्था की। उसने सभी व्यक्तियों को धार्मिक स्वतंत्रता दी तथा दीन–ए–इलाही द्वारा राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसने हिन्दू–मुस्लिम संस्कृति के समन्वय का प्रयास किया। डॉ. परमात्माशरण के शब्दों में, ''अकबर का राज्य एक ऐसा राज्य था, जो एक संस्कृति, एक परम्परा और एक ही राष्ट्र के सिद्धान्त पर आधारित था और वह राज्य वास्तव में राष्ट्रीय राज्य था।''

यद्यपि राष्ट्र निर्माण के क्षेत्र में शेरशाह, अकबर का अग्रगामी था, तथापि अकबर उससे भी महान् था। अकबर द्वारा किये गये कार्यों (जजिया कर समाप्त करना, गोवध निषेध, हिन्दी साहित्य को संरक्षण, हिन्दू समाज में सुधार) को करने का साहस शेरशाह भी नहीं कर सका था। जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, ''अकबर भारतीय राष्ट्रवाद का पिता था।''

16.17.1. विशाल साम्राज्य का संस्थापक – अकबर एक सफल विजेता था। उसका मानना था, ''एक सम्राट को विजय के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए, नही तो उसके पडोसी शासक उसके विरूद्ध शस्त्र उठा लेते हैं'' अतः अकबर ने विशाल साम्राज्य स्थापित किया। उसने मालवा, गोंडवाना, मेवाड़, रणथम्भौर, कालिंजर, गुजरात, बंगाल, काबुल, कन्धार, कश्मीर, सिन्ध, बिलोचिस्तान, खानदेश, अहमदनगर, बरार आदि प्रदेशों पर विजय प्राप्त कर देश को राजनीतिक एकता के सूत्र में बांध दिया। के.एम. मुंशी के शब्दों में, ''अकबर एक सफल विजेता था, जो यह भली प्रकार जानता था कि उसे एक शत्रु के साथ कब और कैसे निपटना है। वह जहां शत्रुओं के साथ क्रूर व्यवहार करता था, वहां उन्हें उदारतापूर्वक क्षमा भी कर देता था।''

16.17.2. कुशल शासन प्रबंध – अकबर एक जनकल्याणकारी शासक था। वह कुशल शासन–प्रबंधक था। उसने विशाल साम्राज्य में सुदृढ शासन–प्रबंध स्थापित किया, जो दो सदियों तक बना रहा। उसने केन्द्रीय तथा प्रांतीय शासन की वैज्ञानिक ढंग से स्थापना की। उसने भूमि कर–प्रबंध में अनेक सुधार किये, जिनमें दहसाला पद्धति मुख्य है। मनसबदारी व्यवस्था से कर्मचारियों की कुशलता बढी एवं उनमें अनुशासन स्थापित हुआ। उसने जजिया कर समाप्त किया एवं कई दुर्गों का निर्माण करवाया। अकबर ने निष्पक्ष न्याय तथा धार्मिक स्वतंत्रता की व्यवस्था की। वह कुशल वित्त–प्रबंधक था। उसने विभिन्न मदों के लिए व्यय की राशि निश्चित कर रखी थी। उसने फिजूलखर्ची तथा रिश्वतखोरी समाप्त करने का प्रयत्न किया। अतः उसका राज्य समृद्ध था।

16.17.3. समान नागरिकता – जजिया कर हिन्दुओं से लिया जाता था। इससे वे द्वितीय श्रेणी के नागरिक हो गये थे। अतः अकबर ने हिन्दुओं को समान नागरिकता प्रदान करने हेतु एवं हिन्दू–मुस्लिम भेदभाव मिटाने के लिए 1564 ई. में जजिया कर समाप्त कर दिया। अकबर ने हिन्दुओं से लिया जाने वाला तीर्थयात्रा कर भी समाप्त कर दिया। इससे हिन्दू मुगल साम्राज्य के हितैषी बन गये तथा राष्ट्रीय राज्य की स्थापना हुई।

16.17.4. धार्मिक स्वतंत्रता तथा सहिष्णुता – अकबर ने सभी व्यक्तियों को अपनी इच्छानुसार धर्म मानने तथा उसके पालन करने की छूट दे दी। उसने आदेश जारी किया कि जिन लोगों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया है, वे अपने पहले वाले धर्म को ग्रहण कर सकते हैं। वह सभी धर्मों का सम्मान करता था। वह सभी धर्मों को समान मानता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.17.5. सामाजिक समन्वय – अकबर ने राजपूत राजकुमारियों से विवाह कर सामाजिक समन्वय स्थापित करने का यत्न किया। उसने अपनी राजपूत रानियों को हरम में मूर्तिपूजा व हवन करने की छूट दे दी। अतः राजपूत मुगल साम्राज्य के हितैषी बन गये तथा अब हिन्दू मुगलों को विदेशी न मानकर उनसे प्रेम करने लगे। अकबर ने झरोखा दर्शन, तुलादान आदि हिन्दू प्रथाएं अपना लीं। वह सिर पर पगड़ी पहनता था तथा माथें पर तिलक लगाता था। उसके दरबार में होली, दीपावली, रक्षाबंधन आदि त्यौहार धूमधाम से मनाये जाने लगे।

16.17.6. योग्यता के आधार पर नौकरी – अकबर से पहले हिन्दुओं को उच्च पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता था, किन्तु अकबर ने उन्हें भी योग्यता के आधार पर उच्च पदों पर नियुक्त किया। उसने टोडरमल को वजीर एवं मानसिंह को काबुल का सूबेदार बना दिया तथा बीरबल, भगवानदास, रायसिंह आदि को भी उच्च पदों पर नियुक्त किया। इन्होंने साम्राज्य की महत्वपूर्ण सेवा की। इससे कर्मचारी वर्ग की कार्यकुशलता बढ़ी तथा राष्ट्र निर्माण को प्रोत्साहन मिला।

16.17.7. समान शासन–व्यवस्था – अकबर ने समस्त राज्य में एक राजभाषा, एक प्रकार के नियम, एक प्रकार के पदाधिकारी, एक प्रकार के नाप–तौल तथा एक प्रकार के कानून की व्यवस्था की। उसने राज्य में एक समान सिक्के प्रचलित किये। इससे उद्योग तथा व्यापार काफी उन्नत हो गये। उसने जाति, धर्म तथा वर्ग सम्बन्धी भेदभावों को मिटा दिया तथा समस्त जनता को समान सुविधाएं दी। इससे राष्ट्र–निर्माण को प्रोत्साहन मिला।

16.17.8. हिन्दू समाज में सुधार – अकबर ने हिन्दू समाज की निम्न कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया–

1. सती प्रथा पर प्रतिबंध–उस समय हिन्दू समाज में सती–प्रथा का व्यापक प्रचलन था। अकबर ने आदेश दिया कि किसी भी स्त्री को बलपूर्वक सती न किया जाए। उसने शाही फरमान जारी किया कि उस हिन्दू कन्या को, जिसके पति की मृत्यु विवाह से पहले ही हो जाए, सती न किया जाए। यदि कोई हिन्दू नारी अपने पति के साथ सती होना चाहे, तो उसे रोका न जाए, परन्तु सती होने के लिए किसी विधवा को विवश नहीं किया जाना चाहिए।

2. विवाह के कुछ नियम–अकबर ने विवाह के कुछ नियम बनाये। उसने निकट सम्बन्धियों में विवाह पर प्रतिबंध लगा दिया तथा बाल–विवाह निषेध कर दिया। विवाह के समय लड़के की आयु सोलह वर्ष तथा लड़की की चौदह वर्ष निश्चित की गयी। विधवा विवाह को मान्यता दी गयी तथा युवक पुरुषों के वृद्ध स्त्रियों से विवाह पर प्रतिबंध लगा दिया गया। अकबर ने उन व्यक्तियों को दूसरा विवाह करने की आज्ञा दे दी जिनकी पहली पत्नी से बच्चा न था।

3. मद्यपान निषेध–अकबर ने मद्यपान पर प्रतिबंध लगा दिया। अब मदिरा का प्रयोग वैद्य की सिफारिश पर सिर्फ दवा के रूप में किया जा सकता था। शाही महल के पास मदिरा की दुकान थी, जिसमें मदिरा लेने वाले व्यक्तियों को अपना नाम तथा पता दर्ज करवाना पड़ता था। यह रोक–टोक सिर्फ राजधानी में थी, साम्राज्य के अन्य भागों में नहीं।

4. वेश्याओं की स्थिति में सुधार–अकबर ने वेश्याओं का एक अलग मोहल्ला निश्चित कर दिया। उसने वेश्याओं की देख–रेख के लिये एक इन्स्पेक्टर तथा एक क्लर्क को नियुक्त किया। अकबर ने आदेश जारी किया कि कोई व्यक्ति सरकारी आदेश प्राप्त करके वेश्या से विवाह कर सकता है।

5. कन्या वध निषेध–उस समय साम्राज्य के कुछ भागों में कन्या–वध का प्रचलन था। अकबर ने नियम बनाकर कन्या–वध करने वाले व्यक्ति के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था की।

6. भिखारियों के लिए मुफ्त भोजन–अकबर ने खैरपुर नामक केन्द्र पर मुस्लिम भिखारियों के लिए, धर्मपुर नामक केन्द्र पर हिन्दू भिखारियों के लिए तथा योगीपुर नामक केन्द्र पर रोगियों के लिए मुफ्त भोजन की व्यवस्था की।

16.17.9. शैक्षिक सुधार – डॉ. पी. सरन के अनुसार, "साहित्य तथा शिक्षा को प्रोत्साहन देना अकबर अपनी सरकार का मुख्य उद्देश्य समझता था।" अकबर ने निम्न शैक्षिक सुधार किये–

1. मदरसों की स्थापना–उस समय हिन्दू विद्यार्थी मंदिरों में तथा मुस्लिम विद्यार्थी मस्जिदों में शिक्षा प्राप्त करते थे। अकबर ने इन मकतबों व पाठशालाओं को संरक्षण दिया। इसके अलावा उसने दिल्ली, आगरा तथा फतेहपुर सीकरी में नये मदरसों की स्थापना की। सियालकोट शिक्षा का विख्यात केन्द्र था। उसने सरकारी मदरसों में हिन्दू विद्यार्थियों को भी प्रवेश दिया। इससे हिन्दू तथा मुस्लिम विद्यार्थी साथ–साथ बैठकर समान विषयों का अध्ययन करने लगे, जिससे राष्ट्र निर्माण के कार्य को प्रोत्साहन मिला।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. मुस्लिम विद्यार्थी तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र आदि विषयों की एवं हिन्दू विद्यार्थी संस्कृत, व्याकरण, गणित ज्योतिष आदि विषयों की शिक्षा प्राप्त करते थे। अकबर ने इतिहास, सामाजिक विज्ञान आदि विषय भी पाठ्यक्रम में जोड़ दिये।

3. अनुवाद विभाग की स्थापना–अकबर ने फारसी तथा संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद हेतु एक अनुवाद विभाग की स्थापना कर उसमें हिन्दू तथा मुस्लिम विद्वानों को नियुक्त किया। रामायण तथा महाभारत का फारसी में अनुवाद हुआ। इससे हिन्दू एवं मुस्लिम साहित्य का विकास हुआ एवं वे परस्पर निकट आये।

4. पुस्तकालयों की स्थापना–अकबर ने राजधानी में एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना की, जिसमें अरबी, फारसी, संस्कृत तथा अन्य भाषाओं की हजारों पुस्तकें थीं। इन पुस्तकों का उचित वर्गीकरण किया गया था। फैजी के पुस्तकालय की 46 हजार पुस्तकें भी उसकी मृत्यु के बाद इस पुस्तकालय में रख दी गयी। अकबर ने गुजरात से भी बहुत–सी पुस्तकें प्राप्त की।

16.17.10. साहित्यिक विकास – अकबर के शासनकाल में फारसी, संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य का आश्चर्यजनक विकास हुआ। उसने अशिक्षित होते हुए भी विद्वानों को उदारतापूर्वक संरक्षण दिया। उसने फारसी को राजभाषा बनाया तथा संस्कृत ग्रंथों को फारसी में अनूदित करवाया। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, "अकबर का समय भारतीय मुस्लिम कला तथा साहित्य का स्वर्ण युग था।"

1. फारसी साहित्य की उन्नति–अकबर के समय में फारसी साहित्य का बहुत विकास हुआ। अबुल फजल ने 'अकबर–नामा' तथा 'आइने–अकबरी', फैजीने 'अकबरनामा', निजामुद्दीन ने 'तबकात–ए–अकबरी', बदायूंनी ने 'मुन्तखाब–उत–तवारीख' तथा हाजी मोहम्मद कन्धणारी ने 'तारीख–ए–अकबरशाही' की रचना की। अकबर ने संस्कृत ग्रंथों के फारसी अनुवाद हेतु एक अनुवाद विभाग स्थापित किया। उसके समय में निम्न ग्रंथों का अनुवाद हुआ–

अ. नकीब खां, अब्दुल कादिर बदायूंनी तथा शेख सुल्तान ने रामायण एवं महाभारत का फारसी, अनुवाद किया एवं महाभारत का नाम 'रज्जनामा' (युद्धों की पुस्तक) रखा।

ब. हाजी इब्राहीम सरहदी ने अथर्ववेद का, मुल्लाशाह मोहम्मद ने राजतरंगिणी का, अबुल फजल ने पंचतंत्र का तथा अब्दुर्रहीम खानखाना ने 'तुजुक–ए–बाबरी' का फारसी में अनुवाद किया।

स. फैजी ने लीलावती का अनुवाद किया। उसने नल दमयन्ती (सूरदास द्वारा रचित) कथा का अनुवाद कर उसका नाम 'सहेली' रखा।

2. संस्कृत साहित्य का विकास–अकबर ने संस्कृत साहित्य को भी प्रोत्साहन दिया। उसने फारसी–संस्कृत शब्दकोश का संकलन करवाया। दरभंगा के महेश ठाकुर ने संस्कृत में अकबर का इतिहास लिखा। जैन विद्वान पद्म सुन्दर ने 'अकबरशाही श्रृंगार' नामक ग्रंथ लिखा।

3. हिन्दी साहित्य का विकास–अकबर का शासनकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग था। तुलसीदास, सूरदास, बीरबल एवं अब्दुर्रहीम खानखाना आदि उस समय के प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान थे। तुलसीदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। उन्होंने 25 ग्रंथों की रचना की। इसमें से 'रामचरितमानस' सबसे विख्यात है। इसमें भगवान राम की कथा सात खंडों में है। विनयपत्रिका, गीतावली, दोहावली, कवितावली आदि उनके अन्य प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। सूरदास ने 'सूरसागर' एवं 'नल दमयन्ती' नामक ग्रंथ लिखे। अब्दुर्रहीम खानखाना ने 'रहीम सतसई' की रचना की, जो 700 दोहों का संकलन है। कृष्णभक्त रसखान ने 'प्रेमवाटिका' तथा 'सुजान रसखान' नामक ग्रंथों में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया। संभवतः अकबर स्वयं भी हिन्दी कवि था।

16.17.11. दीन–ए–इलाही द्वारा प्रयत्न – अकबर ने 1581 ई. में दीन–ए–इलाही धर्म चलाकर हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रयत्न किया। उसका यह प्रयत्न असफल होते हुए भी सराहनीय था।

16.17.12. कला में समन्वय – अकबर ने स्थापत्य कला, चित्रकला, संगीत कला आदि क्षेत्रों में भी समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया।

16.17.13. निष्कर्ष – अकबर एक राष्ट्रीय शासक था, जिसने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, शिक्षा, साहित्य तथा कला आदि क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। इससे हिन्दू तथा मुसलमान परस्पर निकट आये तथा राष्ट्रीय एकता स्थापित हुई। अतः इतिहासकार उसे राष्ट्रीय सम्राट मानते हैं। डॉ.ए.एल. श्रीवास्तव के अनुसार, "अकबर मध्यकालीन भारत का सबसे महान् सम्राट था और वास्तव में इस देश का सम्पूर्ण इतिहास के सर्वश्रेष्ठ शासकों में से एक था। वह वास्तव में हमारा राष्ट्रीय सम्राट था।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.18. अकबर का शासन प्रबंध :

16.18.1. शासन–प्रबंध के सिद्धान्त – अकबर के शासन–प्रबंध के प्रमुख सिद्धान्त इस प्रकार थे–

1. अकबर ने लौकिक शासन स्थापित करते हुए राजनीति को धर्म से अलग रखा। उसने उलेमाओं तथा मुल्लाओं को शासन में हस्तक्षेप नहीं करने दिया।

2. अकबर ने धार्मिक सहिष्णुता तथा स्वतंत्रता की नीति को अपनाया। उसने सभी व्यक्तियों को धार्मिक मामलों में स्वतंत्रता दे दी। उसने अपने हरम में हिन्दू रानियों को भी मूर्ति पूजा तथा हवन करने की आज्ञा दे दी।

3. अकबर ने सभी जाति के व्यक्तियों को योग्यतानुसार उच्च पदों पर नियुक्त किया।

4. अकबर निरंकुश शासक था, किन्तु उसने जन–कल्याण को महत्व दिया, क्योंकि वह जानता था कि जनता के सुखी रहने पर ही शांति व व्यवस्था रह सकेगी तथा स्थायी मुगल साम्राज्य स्थापित हो सकेगा।

5. अकबर ने सैनिक तथा प्रशासकीय विभाग के अधिकारियों को अलग–अलग नहीं रखा। उसने उच्च प्रशासकीय अधिकारियों जैसे भगवानदास, टोडरमल, मानसिंह आदि को सेनापति बनाकर युद्ध में भेजा। इस नीति से सैनिक तथा प्रशासकीय अधिकारी परस्पर एक दूसरे के विभाग में स्थानान्तरित हो सकते थे। वह रणक्षेत्र में दो सेनापतियों को भेजता था, जिससे विश्वासघात की संभावना बहुत कम रहती थी।

6. अकबर के शासन–प्रबंध का एक सिद्धान्त यह था कि राजा तथा प्रजा में अत्यधिक प्रेम तथा सहानुभूति होनी चाहिए। उसने प्रजा को प्यार दिया तथा उससे प्यार पाया। उसने हिन्दू रिवाजों तथा वेशभूषा को भी अपनाया। उसने स्वयं को राष्ट्रीय शासक सिद्ध करने का प्रयत्न किया।

इन सिद्धान्तों पर चलते हुए अकबर ने सुदृढ़ शासन–प्रबंध की स्थापना की।

16.19. केन्द्रीय शासन :

केन्द्रीय शासन में सम्राट तथा उसके मंत्री आते थे।

सम्राट–शासन की समस्त शक्तियां सम्राट के हाथों में निहित होती थी। वह निरंकुश होता था तथा अधिकारियों व मंत्रियों को नियुक्त एवं पदच्युत करता था। वह दैवी शक्ति सम्पन्न माना जाता था। वह प्रजा को प्रतिदिन झरोखे से दर्शन देता था। अकबर निरंकुश होते हुए भी जनकल्याणकारी प्रवृत्ति का था। वह प्रजा की भलाई के लिए सदैव विचारमग्न रहता था।

अकबर भी शेरशाह के समान यह मानता था कि राजपद–आराम की वस्तु नहीं है। राजा को शासन कार्य में पूर्ण रूचि लेनी चाहिए एवं साम्राज्य की हर घटना के प्रति जागरूक रहना चाहिए। वह राजकार्य हेतु दिन में तीन बार महल से बाहर आता था तथा रात को भी पदाधिकारियों से विचार–विमर्श करता था। वह निश्चित समय में न्याय करने तथा पदोन्नति देने का कार्य करता था। अकबर प्रतिदिन अपने मंत्रियों तथा सचिवों के विभागों की रिपोर्ट देखता था। वह प्रातः काल से रात्रि तक राजकार्य में जुटा रहता था।

मंत्रिमण्डल तथा विभागीय व्यवस्था – राजकार्य में सम्राट की सहायता के लिए कई मंत्री होते थे, जिनके अधीन विभिन्न विभाग होते थे। ये सम्राट के प्रति उत्तरदायी होते थे। ये शासन कार्यों में सम्राट को परामर्श देते थे, किन्तु सम्राट उनके परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं था। केन्द्रीय स्तर पर प्रमुख मंत्रियों की संख्या चार थी तथा अन्य कई निम्नस्तरीय मंत्री भी थे। ये महत्वपूर्ण मंत्री इस प्रकार थे–

16.19.1. वकील अथवा प्रधानमंत्री – प्रधानमंत्री सबसे महत्वपूर्ण मंत्री होता था, जिसे वकील कहा जाता था। वह सभी विभागों तथा प्रांतीय सरकारों पर नियंत्रण रखता था। बैराम खां अकबर का पहला प्रधानमंत्री था। डॉ. पी.एन. सरन के शब्दों में, "बैराम खां के अधीन इस पद की शक्ति वजीरे–आजम की उस शक्ति से भी अधिक थी, जिसकी व्याख्या इस्लामी कानून में की गई है।" उसकी मृत्यु के बाद वकील के पद की शक्ति घटती गई। 1564 ई. में वित्त–विभाग वकील से लेकर नये मंत्री 'दीवान' को दे दिया गया। वकील अन्य सब मंत्रियों से ऊचा था तथा महत्वपूर्ण विषयों पर सम्राट को परामर्श देता था।

16.19.2. दीवान – दीवान का पद भी काफी महत्वपूर्ण था। इसके पास वित्त–विभाग होता था। इसका कार्य राज्य की आय–व्यय का हिसाब रखना तथा राजकोष को समृद्ध बनाये रखना था। उसके कार्यालय में भूमिकर सम्बन्ध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ी विभिन्न पत्र आते थे। भुगतान–सम्बन्धी आदेश वही जारी करता था। इस पद पर योग्य व्यक्ति ही नियुक्त किये जाते थे। टोडरमल, शाहबुद्दीन आदि प्रसिद्ध दीवान थे। अकबर की भी इस विभाग में काफी रूचि थी।

16.19.3. मीरबख्शी – यह सैन्यमंत्री था, जिसका प्रधान कार्य सैनिकों की भर्ती एवं अनुशासित करना, सैनिक परीक्षाओं तथा युद्ध–अभियानों की व्यवस्था करना, घोड़ों का निरीक्षण करना आदि था।

16.19.4. मुख्य सदर – यह धर्मार्थ–विभाग का अध्यक्ष होता था, जो सदरे–जहां अथवा सदरे कुल भी कहलाता था। यह पद उदार विचारों वाले व्यक्ति को दिया जाता था। इसका प्रमुख कार्य इस्लामी शिक्षा को प्रोत्साहित करना, मुस्लिम, विद्वानों व महात्माओं को आर्थिक अनुदान देना, शिक्षालयों को धर्मार्थ भूमि दिलवाना व उनका रिकार्ड रखना, इस्लामी कानूनों की व्याख्या करना व कर्मचारियों को उसके अनुसार चलाना, प्रांतीय सदरों पर नियंत्रण रखना, धार्मिक सलाह देना आदि था।

16.19.5. खान–ए–सामान – यह राजपरिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति करता था एवं शाही भू–दान का प्रबंधक होता था।

16.19.6. मुहतसिब – यह पदाधिकारियों के आचरण पर निगरानी रखता था तथा जनता का नैतिक स्तर ऊंचा उठाता था।

16.19.7. मीर आतिश – यह तोपखाना–विभाग का प्रमुख होता था।

16.19.8. काजी–उल–कुजात – यह सम्राट के बाद सबसे बड़ा न्यायाधीश होता था। यह न्याय का समुचित प्रबंध करता था व स्थानीय काजियों को नियुक्त करता था।

16.19.9. दरोगा–ए–डाक चौकी – इसका प्रमुख कार्य डाक भेजना तथा प्राप्त करना था। यह साम्राज्य के विभिन्न भागों की घटनाओं की सूचना रखता था।

इसके अतिरिक्त मीरे–अदल, मीरे–तौजक, मीरे–मंजिल आदि भिन्न पदाधिकारी होते थे। टकसाल की समुचित व्यवस्था करने के लिए एक दरोगा होता था। विभिन्न कारखानों की देख–भाल हेतु अलग–अलग दरोगा होते थे।

16.20. मनसबदारी प्रथा :

'मनसब' शब्द का अर्थ है पद अथवा दर्जा। इसी तरह मनसबदार का तात्पर्य है–पदों में क्रम स्थापित कर उसके अनुसार वेतन निश्चित करना। अकबर ने नागरिक एवं सैनिक विभागों में मनसबदार नियुक्त किये। केवल उच्च पदाधिकारी ही मनसबदार कहलाते थे। इन पदों पर योग्य तथा विश्वासपात्र व्यक्तियों को ही नियुक्त किया जाता था। मनसबदार संख्या में 33 थे। सबसे छोटे मनसबदार के पास 10 तथा सबसे बड़े मनसबदार के पास 12,000 तक सैनिक होते थे। 5,000 से ऊपर के मनसबों पर साधारणतः शहजादों को ही नियुक्त किया जाता था। मनसबदारों को ऊंचे वेतन दिये जाते थे।

16.21. प्रांतीय शासन :

अकबर ने अपने साम्राज्य को अनेक प्रांतों में बांट रखा था। प्रांतीय शासन केन्द्रीय शासन के समान ही था। डॉ.एस. आर. शर्मा प्रांतीय प्रबंध को अकबर की देन मानते हैं, जबकि डॉ.पी. सरन सहमत नहीं हैं। अकबर का प्रांतीय शसन भी बड़ा सुसंगठित था।

16.21.1. सूबेदार – प्रांतीय शासन का प्रमुख सूबेदार अथवा सिपहसालार होता था। वह सम्राट द्वारा नियुक्त तथा पदच्युत किया जाता था तथा उसके प्रतिनिधि के रूप में ही शासन करता था। उनका कार्य सम्राट के आदेशों का पालन करना, प्रांत में शांति व व्यवस्था बनाये रखना, न्याय करना, कृषि, उद्योग व शिक्षा को प्रोत्साहन देना आदि था। उसे संधि–विग्रह करने तथा किसी को मृत्यु दण्ड देने का अधिकार नहीं था।

16.21.2. दीवान – दीवान प्रांतीय वित्तीय विभाग का प्रमुख अधिकारी होता था। उसे सम्राट केन्द्रीय दीवान के परामर्श से नियुक्त करता था। दीवान का कार्य प्रांतीय आय–व्यय का हिसाब रखना, प्रांतीय कोष का प्रबंध करना, भूमि–कर निर्धारित कर उसकी वसूली का प्रबंध करना, प्रांतीय विभागों की देख–भाल करना, दीवानी मुकदमों का फैसला करना, कृषि की उन्नति के प्रयास करना व कृषकों को ऋण देना आदि थे। प्रांतीय दीवान पर सूबेदार का नियंत्रण नहीं था। वस्तुतः वे दोनों एक–दूसरे पर नियंत्रण रखते थे, जिससे विद्रोह की संभावना कम हो जाती थी। दीवान का सीधा सम्पर्क केन्द्रीय दीवान के साथ होता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.21.3. सदर एवं काजी – सदर अथवा सद्र केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त धार्मिक विभाग का प्रधान होता था, जिसका प्रमुख कार्य दीन–दुखियों, विद्वानों व निर्धनों को सहायता देना था। इस पद पर विद्वान तथा उच्च चरित्र वाले व्यक्ति ही नियुक्त किये जाते थे। ये सूबेदार अथवा दीवान के नियंत्रण से मुक्त होते थे। काजी प्रांत का मुख्य न्यायाधीश होता था। वह फौजदारी मुकदमों का निर्णय करता था तथा अपने अधीन काजियों पर नियंत्रण रखता था।

16.21.4. बख्शी – इसे सम्राट मीरबख्शी की सिफारिश पर नियुक्त करता था। इसका प्रमुख कार्य सैनिकों की भर्ती करना, उनमें अनुशासन स्थापित करना, सैनिक अभियानों में भाग लेना तथा घोड़ों का निरीक्षण करना था। वह गुप्तचर विभाग के मुखिया के रूप में भी कभी–कभी काम करता था।

16.21.5. अन्य पदाधिकारी – अन्य प्रांतीय अधिकारियों में आमिल, वितिक्ची, पोतदार, कोतवाल, सूचनावाहक आदि प्रमुख थे। आमिल का कार्य मालगुजारी वसूल करना, वितिक्ची का कार्य लगान का हिसाब रखना, पोतदार का कार्य लगान वसूल करना तथा कोतवाल का कार्य नगरों में शांति व व्यवस्था बनाये रखना तथा अपराधों का पता लगाना था। सूचनावाहक सूचना ले जाते थे, जो चार भागों में विभक्त होते थे–वाक–ए–नवीस, सवानह–निगार, खुफिया–नवीस एवं हरकारह। ये सूचनावाहक दरोगा के नियंत्रण में होते थे। करोड़ी, कानूनगों, अमीन आदि कर्मचारी लगान वसूल करते थे। करोड़ी लगान वसूल करके पोतदार के पास भेजताथा। अमीन लगान निश्चित करता था एवं कानूनगो भूमि के लगान का विवरण रखता था।

16.22 प्रान्तीय शासन :

स्थानीय प्रशासन भी बड़ा सुदृढ़ था। प्रांत कई सरकारों अथवा जिलों में विभक्त था। सरकार का प्रमुख हाकिम फौजदार कहलाता था, जिसका प्रमुख कार्य सम्राट के आदेशों को लागू करना, शांति व व्यवस्था बनाये रखना, छोटी सैनिक टुकड़ी रखना, पुलिस व्यवस्था करना एवं भूमि–कर वसूली में सहयोग करना आदि था।

दूसरा प्रमुख अधिकारी अमल–गुजार था, जिसका प्रमुख कार्य भूमि की पैमाइश करवाना, किसानों को सुविधाएं उपलब्ध करवाना, मुकदमों तथा पटवारियों के रजिस्टरों की जांच करना, कृषि की अवस्था में सुधार करना एवं पदाधिकारियों को कृषि–अवस्था से सूचित करना आदि था। वितिक्ची नामक कर्मचारी लगान का रिकार्ड रखता था तथा लगान–वसूली में अमल गुजार की सहायता करता था। लगान से प्राप्त धन को एक खजानेदार सरकारी कोष में सुरक्षित रखता था।

परगना सरकार से छोटी प्रशासकीय इकाई थी। शिकदार परगने का मुख्य अधिकारी होता था, जिसका कार्य परगने में शांति–व्यवस्था बनाये रखना, फौजदारी मुकदमों का निर्णय करना, चोरों को दंडित करना, उच्च अधिकारियों के आदेश लागू करना तथा भूमि कर वसूली में सहयोग देना था। आमिल का कार्य लगान वसूल करना तथा भूमि की पैमाइश करना था। वह दीवानी मुकदमों का निर्णय भी करता था। कानूनगों भूमि–कर का रिकॉर्ड रखता था। फोतदार खजांची होता था। इसके अतिरिक्त कारकुन भी होता था।

परगना गांवों में विभक्त था। गांव शासन की सबसे छोटी इकाई थे। इसका प्रमुख अधिकारी मुदकद्दम लगान वसूली एवं शांति व व्यवस्था बनाये रखने में सहयोग करता था। पटवारी लगान एवं भूमि का विवरण रखता था। पंचायतें सफाई, शिक्षा एवं सिंचाई आदि का प्रबंध करती थी तथा छोटे–छोटे मुकदमों का निर्णय करती थी।

16.23. सैन्य–प्रबंध :

अकबर ने अपने विशाल साम्राज्य की रक्षा हेतु एक सुसंगठित, शक्तिशाली, आदर्श एवं सुव्यवस्थित सेना की व्यवस्था की।

1. अकबर ने सैनिक अधिकारियों को नकद वेतन देने की व्यवस्था की।
2. अकबर ने घोड़े दागने की प्रथा पुनः प्रचलित की तथा प्रत्येक अधिकारी की सेना के अलग–अलग निशान तय कर दिये।
3. अकबर के अधीन पांच सेनाएं थी–

1. अधीन राजाओं की सेना–यह सेना अकबर की अधीनता स्वीकार करने वाले राजाओं की थी, जिसका संगठन भी उन्हीं के द्वारा किया जाता था। इस सेना के लिए आर्थिक सहायता नहीं दी जाती थी। यह निश्चित था कि राजा आवश्यकता पड़ने पर सम्राट को कितने सैनिक सहायता देंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. मनसबदारों की सेना–इस सेना पर अकबर को पूरा भरोसा था। सबसे छोटे मनसबदार के पास 10 एवं सबसे बड़े मनसबदार के पास 12 हजार तक सैनिक होते थे। 500 से 2500 सैनिक तक के मनसबदार अमीर एवं 2500 से अधिक सैनिक वाले अमीर आजम कहलाते थे। पांच हजार के ऊपर शाही व्यक्तियों को ही मनसबदार बनाया जाता था।

3. दाखिली सेना–यह आंतरिक शांति एवं व्यवस्था बनाये रखती थी।

4. अहदी सेना–इस सेना में सम्राट के अत्यन्त विश्वसनीय सैनिक होते थे। इसमें प्रायः कुलीन वर्ग के लोग होते थे, जो ऊंचा वेतन प्राप्त करते थे। ये सीधे सम्राट के प्रति उत्तरदायी होते थे तथा उसके अंगरक्षक का कार्य भी करते थे।

16. अकबर की सेना छः भागों में विभक्त थी–

1. अश्वारोही सेना–यह सेना सबसे महत्वपूर्ण थी तथा समतल मैदानों में युद्ध के लिए बड़ी उपयोगी थी।

2. पैदल सेना–यह ऊबड़–खाबड़ एवं पर्वतीय प्रदेशों में युद्ध के लिए उपयोगी थी। इसमें बन्दूकची तथा शमशेरबाज आते थे। 12000 बन्दुकची 'दरोगा तोपचियान' के नेतृत्व में बन्दूकों से युद्ध करते थे। शमशेरबाज तलवार, कटार, चाकू, कोड़े आदि से लड़ते थे।

3. हस्ति सेना–इस सेना में 5000 प्रशिक्षित हाथी थे, जो रणक्षेत्र में काफी उपयोगी होते थे। इसका प्रयोग सावधानी से करना पड़ता था, क्योंकि हाथी उल्टे भी पड़ सकते थे। इनका प्रयोग सामान ढोने के लिए भी किया जाता था।

4. तोपखाना–अकबर का तोपखाना बड़ा शक्तिशाली था। उसने ऐसी तोपें बनवायी, जो आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जा सकती थी।

5. नौसेना–इस क्षेत्र में अकबर ने विशेष ध्यान नहीं दिया, फिर भी उसने नदियों के युद्ध हेतु विशालकाय नावें बनवाई, जिनका बंगाल, बिहार एवं सिन्ध में प्रयोग होता था।

6. शाही खेमा–अभियान के समय अकबर के साथ पांच से बीस मील लम्बा विशाल शाही खेमा चलता था। इसमें 1 लाख से 2 लाख तक व्यक्ति होते थे। इस शाही खेमें में वस्तुओं की आपूर्ति का उत्तम प्रबंध था।

इस प्रकार अकबर का सैन्य–प्रबंध बड़ा सुसंगठित एवं उत्तम था।

16.24. भू–प्रबंध एवं राजस्व :

भू–प्रबंध तथा राजस्व व्यवस्था के क्षेत्र में भी अकबर ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। उसके शासक बनते समय भूमि–प्रबंध में निम्न दोष थे–

1. शेरशाह द्वारा स्थापित भूमि–प्रबंध अस्त–व्यस्त हो चुका था। अमीरों तथा अफसरों में विशाल प्रदेश बांट दिये गये थे। राजकीय भूमि तथा जागीर की भूमि को निश्चित ढंग से पृथक् नहीं किया गया था।

2. लगान केन्द्र सरकार द्वारा हर साल उपज एवं परगने में प्रचलित मूल्यों के आधार पर निश्चित किया जाता था। इस तरह प्रतिवर्ष सरकारी मांग की दर में परिवर्तन होता रहता था। यह अनिश्चियपूर्ण दशा थी। केन्द्र से दर निर्धारित न होने तक लगान वसूल नहीं हो पाता था।

3. लगान वसूली में बहुत विलम्ब होता था और बहुत अधिक रकम बकाया हो जाती थी, जो सरकार तथा जनता दोनों के लिए नुकसानदेह था।

4. उपज और मूल्य का हर साल पता लगाने में काफी खर्चा होता था।

5. एकत्रित सूचनाओं का मूल्यांकन अविश्वसनीय होता था।

अकबर के सुधार–अकबर ने शासक बनने के बाद भू–प्रबंध तथा राजस्व व्यवस्था में सुधार करने का निश्चय किया। बैराम खां के समय तक इस क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। दीवान ख्वाजा अब्दुल मजीद खां ने अनुमान द्वारा भूमि–कर निश्चित किया। 1570–71 ई. में मुजफ्फर खां तुरबती ने भूमि की माप करने के लिए सरकारी अधिकारियों को निर्देश दिये। इसके बाद टोडरमल ने भूमि की पैमाइश करवाकर उपज के आधार पर लगान निश्चित कर दिया। इस व्यवस्था को 1575–76 ई. में बंगाल तथा बिहार को छोड़कर संपूर्ण साम्राज्य में लागू किया गया। इसके अनुसार साम्राज्य को 182 परगनों में बांटकर प्रत्येक परगने में 'करोड़ी' नामक अधिकारी नियुक्त किया गया। प्रत्येक परगने की आय एक करोड़ दाम थी। करोड़ी का मुख्य कार्य राजस्व एकत्रित करना था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इन सुधारों का विशेष लाभ नहीं हुआ। उसने कुछ ऐसे कार्य किये, जिसने इस क्षेत्र में अकबर का नाम अमर कर दिया–

1. उनसे भूमि की पैमाइश करवाई। 40 अंगुल का एक गज तथा 3600 वर्ग गज का एक बीघा निश्चित किया गया। नपाई के लिए बांस की जरीब प्रयोग में लाई गई। रिश्वत लेने वालों के लिए कठोर दंड की व्यवस्था की गई।

2. राजस्व निर्धारण करने हेतु भूमि को चार भागों में बांटा गया–

1. पोलज–यह सबसे उत्तम भूमि थी। इसमें वर्ष में दो बार फसलें काटी जाती थी व राज्य को प्रति वर्ष लगान मिलता था।

2. परौती–यह द्वितीय श्रेणी की भूमि थी। इसे कुछ दिनों खाली छोड़ दिया जाता था, ताकि उर्वरा शक्ति पुनः प्राप्त कर सके।

3. चाचर या छच्छर–यह तृतीय श्रेणी की भूमि थी तथा इसे तीन–चार वर्ष खाली रखा जाता था।

4. बंजर–यह सबसे घटिया भूमि थी और इसे पांच वर्ष से भी अधिक समय के लिए खाली छोड़ना पड़ता था।

आइने–अकबरी से पता चलता है कि पोलज एवं परौती भूमि तीन भागों में विभक्त थी–उत्तम, मध्यम तथा निम्न। इन भागों की उपज के आधार पर लगान निश्चित किया जाता था, जो नकद एवं अनाज दोनों रूपों में दिया जा सकता था।

3. लगान वसूल करने की तीन व्यवस्थाएं थी–

1. गल्ला बख्शी–इसमें फसल का कुछ भाग सरकार द्वारा ले लिया जाता था।

2. नसक–यह व्यवस्था बंगाल में थी। इसमें खड़ी फसल के आधार पर लगान का अनुमान लगाकर फसल कटने पर उसे ले लिया जाता था।

3. जब्ती–यह सबसे महत्वपूर्ण प्रणाली तथा अकबर व टोडरमल की विशेष देन थी। इसमें बोई गई फसल के आधार पर लगान का निश्चय किया जाता था, जो नकद लिया जाता था।

4. अकबर का एक महत्वपूर्ण सुधार छह सालह या दस वर्षीय प्रबंध था। सूबों में समान उपज वाले परगनों को मिलाकर एक क्षेत्र बना दिया गया। इसका लगान उपज का 3/4 भाग नियत किया गया, किन्तु लगान चुकाने की दृष्टि से 1580 ई. के पहले दस वर्षों के मूल्य का औसत निकालकर नगद लगान निर्धारित किया गया।

इस व्यवस्था से किसान निश्चित लगान देने लगे। यह प्रबंध किसानों तथा अफसरों दोनों के लिए लाभदायक था। सरकारी अफसर इसे आसानी से लागू कर सकते थे और अब उन्हें उपज तथा मूल्य का पता नहीं लगाना पड़ता था या केन्द्र सरकार के आदेशों की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती थी। किसान को भी पता चल जाता था कि उसे कितना लगान देना है। इससे रिश्वतखोरी की संभावना कम हो गई। इसके अलावा किसानों को प्राकृतिक विपदा की स्थिति में लगान में कमी का आश्वासन दिया गया।

समीक्षा–आलोचकों के अनुसार–

1. भू–प्रबंध का उद्देश्य किसानों की सहायता न होकर किसानों व सरकारी कर्मचारियों की चालों से राजकीय आय को सुरक्षित करना था।

2. भूमि–कर बहुत अधिक वसूल किया जाता था, जिससे किसान बड़ी कठिनता से जीवन निर्वाह करते थे।

आलोचकों का कथन अन्यायसंगत है। तत्कालीन स्रोत इस बात की पुष्टि करते हैं कि अकबर की भू–प्रबंध एवं राजस्व–प्रणाली के सुन्दर परिणाम निकले व किसान सुखी हो गये। इतिहासकार मोरलैण्ड के अनुसार, सोलहवीं सदी के अंत में किसान सुखी थे एवं खाद्य पदार्थ बड़े सस्ते थे। लगान दर निश्चित हो जाने एवं प्राकृतिक विपदा के समय लगान में छूट के सरकार के वायदे से किसान संतुष्ट हो गये। किसानों की भूमि के सम्बन्ध में पट्टा तथा कबूलियत नामक दो पत्रों की व्यवस्था की गयी, जिससे सरकारी कर्मचारी उन्हें खोखा नहीं दे सकते थे। तकाबी ऋण देने की व्यवस्था की गयी। भूमि की पैमाइश करने वालों को घूसखोरी से बचाने हेतु उनके वेतन बढ़ा दिये गये। सैनिकों को अभियान के दौरान फसलों को नुकसान न पहुंचाने का आदेश दिया गया। कर्मचारियों को किसानों के साथ सद्व्यवहार करने का आदेश दिया गया। घूसखोरों को कड़ा दंड दिया गया।वस्तुतः इन सुधारों से किसानों तथा कृषि की स्थिति में बहुत सुधार हुआ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

16.25. न्याय–व्यवस्था :

अकबर राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश था। उसने निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था की। अकबर के बाद काजी–उल–कजात तथा उसके बाद अनेक काजी आते थे। प्रत्येक न्यायालय में काजी, मुफ्ती तथा मीर अदल तीन पदाधिकारी होते थे, जिनका कार्य क्रमशः मुदद्मे की जांच करना, कानून की व्याख्या करना तथा निर्णय देना था। न्याय कुरान के नियमो के अनुसार दिया जाता था। हिन्दू मुकदमो का निर्णय उनके रीति–रिवाजों के अनुसार किया जाता था। दण्ड विधान कठोर था। राजद्रोह तथा हत्या करने पर प्राणदण्ड, गंभीर अपराधों के लिए अंग–भंग तथा साधारण अपराधों के लिए जुर्माना तथा कठोर दंड दिये जाते थे।

सामाजिक सुधार एवं शैक्षिक सुधार – अकबर के सामाजिक सुधारों का विस्तृत वर्णन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है।

16.26. कला के क्षेत्र में उन्नति :

अकबर के शासनकाल में कला के क्षेत्र में बहुत उन्नति हुई। उसने कला को बहुत प्रोत्साहन दिया। अकबर ने अनेक चित्रकारों को संरक्षण दिया। उसने राजधानी में प्रसिद्ध चित्रकार ख्वाजा अब्दुल समद की अध्यक्षता में एक चित्रकला विभाग स्थापित किया। कलाकारों को शाही कर्मचारी माना गया। सम्राट ने उन्हें पुरस्कृत कर प्रोत्साहित किया। अकबर के दरबार के प्रसिद्ध 17 चित्रकारों में 13 हिन्दू थे।

अकबर ने लेखन कला को भी प्रोत्साहित किया। उसके शासनकाल में प्रचलित लेखन कलाओं में 'नशतालीक नायक' लेखन कला मुख्य थी। यह टेढ़ी पंक्तियों में लिखी होती थी।

अकबर संगीत प्रेमी भी था। अकबर के दरबार में 36 संगीतज्ञ थे, जिनमें तानसेन, बाबा रामदास, बैजू बावरा तथा सूरदास प्रमुख थे।

अकबर की स्थापत्यकला में भी बहुत रूचि थी। उसके राज्यकाल में हिन्दू–मुस्लिम शैली का सम्मिश्रण हुआ तथा भवनों में लाल पत्थर का प्रयोग किया जाने लगा। उसने आगरा, लाहौर तथा इलाहाबाद के किले बनवाये। फतहपुर सीकरी में उसके द्वारा बनवाये गये भवन अपनी सुन्दर डिजाइनों तथा कोमल सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध हैं। शेख सलीम चिश्ती की समाधि, जो संगमरमर से बनी है, स्थापत्यकला का बेजोड़ नमूना है। अकबर ने नक्काशी पर विशेष ध्यान दिया।

इस प्रकार अकबर के शासनकाल में सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व विकास हुआ।

16.27. अकबर का मूल्यांकन और सारांश :

अकबर का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था, जैसाकि मान्सरेट ने, जिसने 1580 ई. में 38 वर्षीय अकबर को देखा था, लिखा है कि, "शाही गौरव के अनुकूल बादशाह का कद और चेहरा ऐसा है कि पहली दृष्टि में ही उसे कोई पहचान लेगा कि वह शासक है।" उसकी आवाज बड़ी रोबीली थी, किन्तु भाषण के समय उसमें एक विशेष माधुर्य आ जाता था। वह स्वभाव से मानवीय, सज्जन और दयालु था। वह विदेशियों से विशेष सौजन्यता और स्नेह से बर्ताव करता था। वह दिन में केवल एक बार दोपहर में अच्छा भोजन लेता था। वह केवल तीन घंटे सोता था और फिर निरन्तर व्यस्त रहता था। वह शिकार का अनन्य प्रेमी था तथा पशुओं की लड़ाइयों को वह बेशौक से देखता था। किन्तु आमोद–प्रमोद के समय भी उसका मस्तिष्क राजकाज के मसलों में लिप्त रहता था। वह अपने परिजनों के प्रति स्नेहशील था। मध्ययुगीन शासकों की भांति बहुपत्नीधारी होते हुए भी वह सभी को समान प्यार एवं समान आदर देता था। वह अपने माता–पिता का तो सम्मान करता ही था, साथ ही अपनी धाय तथा उनके पुत्रों के प्रति भी सदैव कृपालु रहा। वह एक स्नेही पिता भी था। सलीम के विद्रोह करने पर भी उसने उसे क्षमा कर अपना उत्तराधिकारी बनाया। मानव मात्र के प्रति उसके मन में सम्मान था। वह मनुष्य के प्राणों की कीमत समझता था और कहता था कि "प्राण लेने का अधिकार उसे होना चाहिये जो जीवन दे सकता है।" यद्यपि वह न लिख सकता था और न पढ़ सकता था, लेकिन विद्वानों के साथ चर्चा करके उसने इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि कोई नहीं जानता था कि वह अनपढ़ है। अपने राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये कूटनीति का भी सहारा लेता था। राजपूत नरेशों के साथ उसके सम्बन्ध उसकी कूटनीति के ही परिणाम थे। एक सैनिक के रूप में अकबर कुशल बन्दुकची, तेज शमशीरबाज, निपुण धनुर्धर तथा दक्ष घुड़सवार था। सेनापति के रूप में उसकी प्रतिभा असाधारण थी और इसी प्रतिभा के कारण उसे निरन्तर सफलताएं प्राप्त हुई थी। वह कहा करता था कि, "सम्राट को सदैव सामरिक सफलताओं के लिये तत्पर रहना चाहिये अन्यथा उसके पड़ौसी उसके विरूद्ध शस्त्र उठा लेंगे।" ईश्वर के प्रति उसकी गहरी आस्था थी। अबुल फजल ने लिखा है, "वह अपने जीवन का प्रत्येक पल आत्म निरीक्षण में या ईश्वर की आराधना में व्यतीत करता है।" वह कहा करता था कि व्यक्ति की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

श्रेष्ठता विवेक पर आधारित है। विवेक के महत्व और उसके प्रते आस्था ने ही उसे अन्धविश्वासों से मुक्त रखा, जो मध्यकाल में बहुत सामान्य थे।

वह एक कुशल प्रशासक था और प्रशासन की दैनिक समस्याओं में गहरी रूचि लेता था। अपनी व्यस्वताओं के मध्य वह प्रशासकीय मामलों के निराकरण के लिये समय निकाल लेता था। किसी महत्वपूर्ण बात को कार्यान्वित करने से पूर्व अपने दरबार के सदस्यों से परामर्श करता था, किन्तु निर्णय वह स्वयं लेता था। निर्धारित नियमों का पालन बड़ी कठोरता से करता था। अकबर एक न्यायी सम्राट के रूप में भी प्रसिद्ध है। उसके दण्ड सामान्यतः क्रूर नहीं होते थे, खासकर वह मृत्यु दण्ड देते समय बहुत सचेत रहता था। उसके शासन की उपलब्धियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि वह राजनीतिज्ञता में महारानी एलिजाबेथ, शासन प्रबंध में फ्रेडरिक, महान रणकौशल में नेपोलियन और धर्मपरायणता में अशोक के समकक्ष था। स्मिथ ने यह कहकर अकबर के साथ न्याय नहीं किया कि उस्के सारे सुधारों का एक ही उद्देश्य था–शक्ति, यश तथा सम्पत्ति में वृद्धि। स्मिथ ने यह भी कहा है कि उसके प्रशासकीय सुधारों का जनसामान्य पर कोई वास्तविक प्रभाव नहीं पड़ा। स्मिथ का यह विश्लेषण द्वेषपूर्ण प्रतीत होता है। लेनपूल का यह कथन उचित है कि ''अकबर भारत के शासकों में सर्वोत्तम शासक हुआ है–वह साम्राज्य का सच्चा संस्थापक और व्यवस्थापक था। ... उसका समय मुगल साम्राज्य का स्वर्ण काल है।'' उसने राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक एकता के लिये जो प्रयास किये, उससे वह एक राष्ट्रीय शासक प्रमाणित होता है। डॉ. बी.एल. श्रीवास्तव ने लिखा है, ''अकबर मध्ययुगीन भारत का सबसे महान सम्राट था और वास्तव में इस देश के सम्पूर्ण इतिहास में सर्वश्रेष्ठ शासकों में था, वह वास्तव में हमारा राष्ट्रीय सम्राट था।'' वस्तुतः वह एक भाग्यशाली शासक था। वह जो चाहता था, उसे उपलब्ध हो जाता था। एक विदेशी नस्ल और संस्कृति का होने पर भी उसने भारतीय जनता का हृदय जीतने में सफलता प्राप्त की। स्मिथ ने भी उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, ''वह मनुष्यों का जन्मजात सम्राट था और उसे इतिहास में ज्ञात शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली होने का अधिकार है। उसका यह दावा (स्मिथ का) उसकी असाधारण प्रतिभा, मौलिक विचारों और शानदार उपलब्धियों पर आधारित है।''

16.28 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 अकबर की मालवा विजय के समय मालवा का शासक कौन था?

अ. राव मालदेव ब. बाज बहादुर

स. सुरजनराय द. राणा उदयसिंह

उत्तर – ....

प्रश्न 2 अकबर की धार्मिक नीति बताइये। (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 अकबर की राजपूत नीति का सविस्तार वर्णन करिये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई 4 : मुगल काल–II

इकाई–17

मुगल दरबार में नूरजहां की भूमिका

संरचना

17.0 उद्देश्य
17.1 भूमिका
17.2 नूरजहाँ का शासन में उत्कर्ष (1611–1627 ई.)
17.3 नूरजहाँ और जहाँगीर का सम्बन्ध
17.4 नूरजहाँ का चरित्र
17.5 जहाँगीर के साथ शादी
17.6 नूरजहाँ के प्रभुत्त्व का विकास
17.7 नूरजहाँ के प्रभुत्त्व का प्रभाव
    17.7.1 बुरे प्रभाव
    17.7.2 अच्छे प्रभाव
17.8 नूरजहाँ का मूल्यांकन
17.9 अभ्यास प्रश्नावली

17.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में जहाँगीर के शासनकाल की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से किया जायेगा।

–नूरजहाँ का शासन पर प्रभाव

–नूरजहाँ का जहाँगीर पर प्रभाव

17.1 भूमिका :

अकबर की अनेक मनौतियों, अनेक संतों के आशीर्वाद और ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की नंगे पैर पैदल यात्रा के फलस्वरूप 13 अगस्त 1569 ई. को अकबर की कछवाहा रानी मरियम उज्जमानी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम शेख मुहम्मद सलीम रखा गया। अकबर उसे शेखू बाबा ही कहता था। अकबर के अन्य सभी पुत्र युवावस्था में ही चल बसे थे, अतः सलीम का बड़े लाड़–प्यार से पालन–पोषण हुआ। सलीम को फारसी, तुर्की, अरबी, गणित, हिन्दी, इतिहास, भूगोल तथा अन्य उपयोगी शास्त्रों का सम्यक् ज्ञान देने के लिए अनेक योग्य आचार्य नियुक्त किये गये, परन्तु इन सभी आचार्यों में अब्दुर्रहीम खानखाना ने उसके मस्तिष्क पर अमिट छाप लगायी। साथ ही उसकी सैनिक शिक्षा पर भी ध्यान दिया गया। 1581 ई. में उसे काबुल अभियान का नेतृत्व भी सौंपा गया था और उसे शासन प्रबंध की भी शिक्षा दी गई। सोलह वर्ष की आयु में उसका विवाह आमेर के राजा भगवानदास की पुत्री मानबाई से कर दिया, जो उसकी ममेरी बहन भी थी। राजकुमार खुसरो इसी दाम्पत्य की देन था। खुसरों के पितृ–भक्ति विहीन व्यवहार से दुखी होकर मानबाई ने 1604 ई. में आत्महत्या कर ली थी। मानबाई के जीवनकाल में ही सलीम ने अन्य रमणियों से विवाह कर लिया था जिसमें जोधपुर के मोटा राजा उदयसिंह की पुत्री जोधाबाई का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

अल्पायु में ही उसने सुरापान आरम्भ कर दिया तथा पिता के लाड़–प्यार ने उसे अत्यधिक विलासी भी बना दिया था। सलीम ने अपने पिता की मृत्यु के पूर्व ही राजसत्ता प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। अतः अकबर ने खुसरो को अपना उत्तराधिकारी बनाने पर विचार करने लगा। इससे दरबार में दो दल बन गये–खुसरों के मामा मानसिंह और ससुर मिर्जा अजीज कोका ने खुसरो का समर्थन किया, किन्तु उनके अनुयायी अल्प संख्या में थे। अतः उनकी योजना असफल हो गयी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सलीम–पक्ष के अमीर सलीम के अवास पर एकत्र हुए और उन्होंने सलीम से आश्वासन लिया कि वह इस्लाम की रक्षा करेगा और खुसरों एवं उसके समर्थकों को क्षमा कर देगा। सलीम ने इन अमीरों की बात स्वीकार कर ली। इस प्रकार सलीम का सिंहासनारोण सुनिश्चित हो गया। तत्पश्चात् अकबर की मृत्यु के आठवें दिन 3 नवम्बर 1605 को सलीम, नुरुद्दीन मुहम्मद जहांगीर बादशाह गाजी की उपाधि धारण कर मुगल तख्त पर बैठा। इस अवसर पर अनेक कैदी मुक्त किये गये और उसके नाम के सिक्के ढलवाये गये। उसने अपने विरोधियों को भी क्षमा कर दिया।

जहांगीर की शासन–नीति–जहांगीर ने खुसरों के समर्थकों को क्षमा कर दिया था। अतः उसने अधिकांश अधिकारियों को उनके पदों पर बनाये रखा और अपने कृपा–पात्रों को भी ऊंचे–ऊंचे पद दिये। उसने निम्न बारह नियमों द्वारा अपनी शासन–नीति घोषित की–17. तमगा नामक महसूल जिसमें मीर बहरी (नदी मार्ग की चुंगी) तथा जकात महसूल सम्मिलित थे, समाप्त कर दिये गये। 2. उसने सड़कों के किनारे सराय, मस्जिद और कुओं के निर्माण के आदेश दिये। 3. व्यवसायियों की जानकारी और स्वीकृति के बिना उनके सामान की गांठें खोलना बंद कर दिया गया। 4. मृत्यु के पश्चात् किसी व्यक्ति की सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारी को प्राप्त होने की व्यवस्था की। यदि उसका कोई उत्तराधिकारी न हो तो वह सम्पत्ति राज्य पदाधिकारियों के संरक्षण में जमा कर उसका प्रयोग सार्वजनिक भवनों के निर्माण और जीर्णोद्धार के लिये की जाय। 5. मद्य तथा अन्य मादक वस्तुओं का निर्माण एवं क्रय निषिद्ध कर दिया गया। 6. राजकीय कर्मचारियों को किसी के घर पर बलपूर्वक अधिकार करने की मनाही कर दी गई। 7. नाक या कान काटने के दण्ड को अवैध कर दिया। 8. किसानों की भूमि बलपूर्वक लेने की मनाही कर दी गई। 9. सम्राट की आज्ञा के बिना कोई जागीरदार अथवा परगनाधीश अपने ही क्षेत्र में किसी व्यक्ति के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित न करें। 10. दीनों और असहायों की चिकित्सा के लिए सरकारी औषधालयों की स्थापना की गई। 117. साल के कुछ दिनों में पशु हत्या अवैध मानी गई। सप्ताह के दो दिनों भी–गुरुवार को, जब जहांगीर का राज्याभिषेक हुआ था और रविवार को, जो अकबर का जन्म दिन था, पशु–हत्या बंद रखी जाती थी। 12. अकबर के समय के समस्त कर्मचारी, जागीरदार और मनसबदार अपने अपने पदों पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिये।

यमुना तट पर एक स्थान से आगरे के किले के शाह बुर्ज तक घण्टियां लगी हुई एक स्वर्ण जंजीर लगा दी गई, जिससे कोई फरियादी बिना किसी मध्यस्थ के सीधा सम्राट से फरियाद कर सकता था।

जहांगीर ने मानसिंह और अजीत कोका को भी क्षमा कर, उन्हें अपने पद से नहीं हटाया। परन्तु उनकी सत्ता अकबर के समय जैसी नहीं रही। अपने कृपा–पात्रों को, जिनमें कोई विशेष योग्यता नहीं थी, अच्छे–अच्छे पद प्रदान किये। मुहम्मद शरीफखां को प्रधानमंत्री बनाया गया तथा ओरछा के वीरसिंह बुंदेला को तीन हजारी मनसब और राजा की पदवी प्रदान की। नवनियुक्त पदाधिकारियों में दो विशेष रूप से योग्य पात्र थे। एक था नूरजहां का पिता ग्यासबेग, जो दीवान के पद पर नियुक्त हुआ और उसे इतमादउद्दौला की उपाधि दी गई। दूसरा जमानबेग को महावत खां की उपाधि व डेढ़–हजारी मनसब दी गई।

खुसरो का विद्रोह–जहांगीर के राज्यारोहण के कुछ महीनों के भीतर ही उसके ज्येष्ठ पुत्र खुसरों ने अपने पिता के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। अकबर के अंतिम दिनों में खुसरों को बादशाह बनाने का असफल षड़यंत्र रचा गया था। अतः जहांगीर के राज्यारोहण के बाद भी खुसरों के मन में बादशाह बनने की लालसा बनी रही। जहांगीर ने भी उसके गत व्यवहार के लिए, यद्यपि क्षमा कर दिया था, किन्तु उसके मामा मानसिंह के बंगाल जाते ही जहांगीर ने उसे बंदी बना लिया। अपने पिता के इस व्यवहार से वह क्रुद्ध हो उठा और उसने राजसत्ता हथियाने का निश्चय किया। 6 अप्रैल 1606 ई. को संध्या के समय सिकन्दरे में अकबर की दरगाह देखने के बहाने वह अपने 350 अश्वारोहियों के साथ आगरा से निकल आया। रास्ते में हुसैनबेग बदख्शी अपने 300 सवारों के साथ उससे आ मिला। धीरे–धीरे उसके अनुयायियों की संख्या 12,000 तक पहुंच गई। तदनन्तर उसने एक राजकीय रक्षा दल पर आक्रमण कर एक लाख रुपये लूट लिये। दिल्ली होते हुए वह लाहौर पहुंचा, जहां इस प्रांत का दीवान अब्दुर्रहमान भी उससे आ मिला। तरनतारन में उसने सिक्खों के पांचवे गुरु अर्जुनसिंह का आशीर्वाद प्राप्त कर लाहौर पहुंचा। खुसरो ने लाहौर लेने का भी असफल प्रयास किया। इसी समय जहांगीर एक सेना लेकर लाहौर आ पहुंचा। खुसरों ने अपनी सेना की एक टुकड़ी लाहौर के घेरने में छोड़ स्वयं दस हजार सेना लेकर शाही सेना का मुकाबला करने आगे बढ़ा। जहांगीर ने शांतिपूर्ण उपायों द्वारा अपने पुत्र को अनुकूल लाना चाहा, लेकिन विफल रहने पर भैरोवाल के मैदान में दोनों के बीच युद्ध हुआ। खुसरो बुरी तरह पराजित होकर भाग खडा हुआ। चिनाव नदी पार करते समय खुसरो अपने साथियों सहित पकड़ लिया गया। 1 मई 1607 ई. को हथकड़ी डालकर पहले खुसरों को सम्राट के समक्ष लाया गया। विद्रोही शहजादे की सम्राट ने कटु भर्त्सना की और उसे बंदीगृह में डालने का आदेश दे दिया। उसके साथियों को कठोर यंत्रणाएं देकर मार डाला गया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

खुसरो को लाहौर जाते समय गुरु अर्जुनसिंह ने आशीर्वाद दिया था, अतः सम्राट की दृष्टि में वह भी अपराधी था। किवदंती है कि सम्राट ने गुरु अर्जुन पर दो लाख रुपये का दण्ड लगाया, जिसे गुरु ने देने से इंकार कर दिया। अतः उन्हें मृत्यु दण्ड दे दिया गया। जहांगीर का यह कार्य सर्वथा अनुचित था, क्योंकि उसने गुरु अर्जुनसिंह जैसे धार्मिक व्यक्ति के साथ साधारण अपराधी जैसा व्यवहार किया था। सिक्ख विचार परम्परा के अनुसार जहांगीर ने अपने हटधर्मी के आवेश में आकर ही यह दुष्कृत्य किया था। सम्राट ने एक माह के अन्दर समस्त उपद्रव को शांत कर दिया। परन्तु इस विद्रोह के परिणाम अच्छे नहीं हुए। इससे दूसरे विद्रोहों को प्रोत्साहन मिला। बीकानेर का राजा रायसिंह ने राजकीय सत्ता का उल्लंघन कर विद्रोह कर दिया। सम्राट ने जगन्नाथ कछवाहा को उसके विरूद्ध भेजा, जिसने रायसिंह को परास्त कर उसे दरबार में पेश किया। जहांगीर ने उसे क्षमा कर दियां इसी प्रकार बिहार के एक जागीरदार संग्राम ने भी अपना सिर उठाया, लेकिन बिहार के सूबेदार जहांगीर कुलीखां ने उसे परास्त कर दिया। खुसरों के विद्रोह से देश की अशांति का सर्वाधिक प्रभाव फारस के शाह पर पड़ा, जिसने कन्धार विजय हेतु अपने कदम बढ़ये थे।

17.2 नूरजहां का शासन में उत्कर्ष (1611–1627 ई.) :

प्रारम्भिक जीवन–जहांगीर के शासनकाल की सबसे महत्वपूर्ण घटना उसकी नूरजहां से शादी तथा नूरजहां का शासन में उत्कर्ष समझा जाता है। नूरजहां, जिसका बचपन का नाम मेहरुन्निसा था, एक फारसी सरदार ग्यासबेग की लड़की थी। उसके जन्म एवं बचपन के दिनों का इतिहास मतभेदों से पूर्ण है। सामान्यतः कहा जाता है कि ग्यासबेग के दिन जब कठिनाई से घिरे हुए थे, तो वह अपने परिवार के लिए अपनी आजीविका की खोज में भारत की ओर बढ़ा। इसी यात्रा के बीच मेहर का जन्म कन्धार में हुआ। दिल्ली आने पर उसका परिचय अकबर से हुआ और अकबर ने उसे एक साधारण–सी नौकरी दे दी। अपनी योग्यता, स्वामिभक्ति एवं बुद्धि के बल पर वह धीरे–धीरे पदोन्नति करता गया और अंत में 1595 ई. में काबुल का दीवान बन बैठा। इन्ही दिनों मेहर अपने यौवनावस्था में पहुंच रही थी। वह एक अपूर्व सुन्दरी एवं स्त्री–सुलभ गुणों से सम्पन्न नवयौवना थी जो आसानी से शाहजादा सलीम के दिल को जीतने में सफल रही। कहा जाता है कि सलीम ने उसके साथ शादी करने की इच्छा अकबर से व्यक्त की। किन्तु, अकबर एक साधारण लड़की के साथ सलीम की शादी कर अपने शाही खानदान के ऊपर धब्बा नहीं लगाना चाहता था। बात को बढ़ते देख उसने मेहर की शादी एक फारसी युवक अली कुली खा (शेर अफगान) से करवा दी। बाद में अली कुली खां को बंगाल का फौजदार बना दिया गया। सलीम के मस्तिष्क से मेहर का नशा नहीं उतर पाया था और जब वह दिल्ली का सम्राट बना तो उसने शेर अफगान की हत्या करवा दी और मेहरुन्निसा से शादी कर ली।

17.3 नूरजहां और जहांगीर का सम्बन्ध :

नूरजहां और जहांगीर के आपसी सम्बन्धों को लेकर इतिहासकारों के बीच काफी मतभेद रहा है। डॉ. बेनी प्रसाद के मत में नूरजहां और जहांगीर के बीच किसी तरह का पूर्व प्रणय सम्बन्ध नहीं था और शादी के पहले जहांगीर ने नूरजहां को देखा भी नहीं था। वे इस तथ्य को भी मानने से इंकार करते हैं कि शेर अफगान की हत्या में जहांगीर का कोई हाथ था। अपने विचारों के पक्ष में वे कुछ तर्क उपस्थित करते हैं–तत्कालीन फारसी साहित्य में सलीम और मेहर की शादी के पूर्व प्रणय–सम्बन्धों का जिक्र नहीं किया गया है, विदेशी वृत्तान्तों में इसका जिक्र नहीं मिलता है कि जहांगीर का हाथ शेर अफगान की हत्या में था; नूरजहां एक श्रेष्ठात्मा एवं चरित्रनिष्ठा नारी थी, अतः वह अपने पति के हत्यारे से शादी नहीं कर सकती थी, आदि। इस तरह से डॉ. प्रसादअन्यान्य तर्क प्रस्तुत करते हैं यह साबित करने के लिए कि जहांगीर और नूरजहां के बीच किसी तरह का पूर्व–प्रणय सम्बन्ध नहीं था और जहांगीर ने शेर अफगान की हत्या नहीं करवायी थी। उनके विचार में सारी बातें अभिरंजित करके कही गयी हैं। इसके विपरीत डॉ. ईश्वरी प्रसद का मत है कि इन दोनों के बीच शादी के पूर्व प्रणय–सम्बन्ध ा रहा था और शेर अफगान की हत्या में निश्चित रूप से जहांगीर का हाथ था। अपने मत की पुष्टि में वे भी अनेक तर्क पेश करते हैं, यथा शेर अफगान के ऊपर राजद्रोह का कोई गंभीर आरोप न होने पर भी उसके विरूद्ध कुतुबुद्दीन को भेजा जाना और उसे मौत की नींद सुलाना, जहांगीर की अनैतिक लिप्सा का प्रतीक है, जहांगीर जानबूझ कर अपनी आत्मकथा में शादी के तीन वर्ष बाद नूरजहां का जिक्र करता है, शेर अफगान कीं हत्या के बाद नुरजहां और उसकी लड़की को शाही महल में रखने का कोई औचित्य नहीं है जब कि नूरजहां के पिता एवं भाई मुगल दरबार में शक्तिशाली अधिकारी थे, अतः नूरजहां को अपने पिता अथवा भाई के घर भेजा जाना चाहिए था। डच लेखक डी–लायट के वर्णन के द्वारा इस मत की पुष्टि, आदि। इन तर्कों तथा आधुनिक शोधों के आधार पर सारी घटनाओं का एक निष्पक्ष अवलोकन करने पर हमारा झुकाव डॉ. ईश्वरी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसाद की ओर होता है, डॉ. बेनी प्रसाद की ओर नहीं। यह ठीक है कि तत्कालीन फारसी ग्रंथों में हम इस घटना का कोई वर्णन नहीं पाते हैं, किन्तु प्रसिद्ध डच लेखक डी–लायट ने अपनी रचनाएं 'भारत वर्णन ' एवं 'भारतीय इतिहास के कुछ अंश' में जहांगीर के शहजादा काल में नूरजहां के प्रति आसक्त होने का उल्लेख किया है और शेर अफगान की हत्या में भी उसके हाथ पाये हैं यह एक महत्वपूर्ण तर्क है जिसके आधार पर हम डॉ. ईश्वरी प्रसाद का समर्थन कर सकते हैं। एक विदेशी लेखक की उक्तियों को जिसका सम्राट के प्रति किसी प्रकार का पक्षपाती होने का प्रश्न नहीं उठता, इस संदर्भ में आसानी से आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता है। जहांगीर के व्यक्तित्व के ऊपर एक नजर डालने से भी इसकी सत्यता की पुष्टि हो जाती है। सम्राट बनने के पूर्व का सलीम एक कोमल हृदय का व्यक्ति था और तीन चार अवसरों पर उसने प्रणय–लीला का परिचय दिया है। अतः उसकी नूरजहां की ओर झुकाव, जो निश्चित रूप से एक अति आकर्षक व्यक्तित्व एवं अति सुन्दर रूप से स्वामिनी थी, अस्वाभाविक नहीं लगता है। इस प्रकार यह बात आसानी से मान ली जा सकती है कि जहांगीर एवं नूरजहां के बीच पूर्व प्रणय–सम्बन्ध था, और तब इस बात को मान लेना भी आसान हो जाता है कि शेर अफगान की हत्या में जहांगीर का सक्रिय हाथ रहा होगा।

17.4 नूरजहां का चरित्र :

शेर अफगान की हत्या के बाद नूरजहां एवं उसकी बेटी लाडली बेगम को 1607 ई. में शाही महल में लाया गया था और उसे जहांगीर की विमाता सलीम सुल्तान को देखभाल का काम सौंपा गया। जहांगीर ने 1611 ई. में उसके साथ विधिावत शादी कर ली। अब तक जहांगीर की अवस्था 42 वर्ष की और नूरजहां की अवस्था 34 वर्ष की हो चुकी थी। किन्तु अभी भी वह असीम सौन्दर्य की प्रतिमा–सी प्रतीत होती थी और भविष्य में भी उसने अपने इस लावण्य को सुरक्षित रखा। उसका स्वास्थ्य अत्यन्त उत्कृष्ट था और उसमें प्रचूर मात्रा में शारीरिक शक्ति थी। श्रृंगार, आभूषण एवं भड़कीले वस्त्रों में उसकी आभा और भी अधिक निखर उठती थी। शारीरिक सौन्दर्य के अतिरिक्त उसमें हृदय एवं मस्तिष्क का आकर्षण भी पर्याप्त मात्रा में था। वह तीक्ष्ण मेधावी एवं चतुर महिला थी। शिक्षा में भी वह अपनी सानी रखती थी और कविता, संगीत एवं चित्रकला में उसे विशेष अभिरूचि थी। वह फारसी में कविताओं की रचना भी करती थी। उसमें असाधारण आविष्कार की क्षमता भी विद्यमान थी। फलतः वेशभूषा, साज–सज्जा, आभूषण तथा श्रृंगार के क्षेत्र में उसने नये–नये अनुसंधान किये। उसके द्वारा प्रचलित वेशभूषा, श्रृंगार–प्रसाधन अलंकार आदि का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से औरंगजेब के काल तक मुगल दरबार में बना रहा। उसके पुस्तकालय में अनुपम एवं अमूल्य पुस्तकों का संग्रह था, जिसमें से एक –दो आज भी पटना के खुदाबख्श खां (ओरिएंटल) लाइब्रेरी में संग्रहित है। स्वभाव से वह एक अच्छी प्रकृति की महिला थी और उसके हृदय में असीम उदारता थी। निर्धनों, यतीमों, परित्यक्ताओं, विधवाओं और विद्वानों के प्रति उसके हृदय में विशेष अनुराग था और समय–समय पर वह उन्हें आर्थिक अनुदार आदि भी दिया करती थी। जहांगीर की आत्मकथा में हमें इस बात की अनुभूति होती है कि अनाथ कन्याओं के विवाह का व्यय तथा प्रतिदिन प्रचुर मात्रा में दान देने का उसने नियम बना रखा था। उसके इन चारित्रिक गुणों का प्रभाव देश और समाज के लिए निश्चित रूप से हितकर साबित हुआ था। किन्तु, उसके चरित्र में कुछ अन्य महत्वपूर्ण विशेषताएं भी थीं। उसमें पुरुषोचित मेधा, असीम महत्वाकांक्षा एवं शक्ति के प्रति लिप्सा थी जिसका प्रभाव तत्कालीन राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्थाओं के ऊपर अहितकर साबित हुए। वह एक अत्यन्त महात्वाकांक्षी महिला थी और उसमें शासन के सारे अधिकारों को अपने हाथों में केन्द्रीभूत करने की उत्कृष्ट लिप्सा थी। वह शक्ति–प्रिया थी तथा किसी भी व्यक्ति के यहां तक कि अपने पति की सत्ता से भी पराभूत नहीं होना चाहती थी। ठीक इसके विपरीत उसके संसर्ग में जितने भी लोग आते वह अपनी सत्ता से पराभूत करने की इच्छा रखती थी। राजनीति एवं शासन की गंभीर समस्याओं के साथ निबटना उसे खुब आता था। उसमें शौर्य एवं धैर्यनिष्ठा की भी कमी नहीं थी तथा गंभीर–से–गंभीर परिस्थितियों में भी उसने अपना संतुलन नहीं खोया।

17.5 जहांगीर के साथ शादी :

प्रारम्भ में नूरजहां जहांगीर की हृदयेश्वरी बनी रही। शादी के बाद जहांगीर ने ही उसे नूरजहां (Light of the world) की उपाधि से विभूषित किया। जहांगीर के ऊपर उसका असीम प्रभुत्व था। जहांगीर के द्वारा 1613 ई. में उसे उसका दबदबा कायम हो गया। शक्ति की उपासिका नूरजहां ने न सिर्फ सभी राजकीय मामलों में हाथ बंटाना प्रारम्भ किया, वरन् सम्पूर्ण राजसत्ता को अपने हाथों में लेने के लिए वह मचल उठी। परिस्थितियों ने, जहांगीर के गिरते हुए स्वास्थ्य एवं उसकी विलास–प्रियता ने नूरजहां को एक अच्छा मौका दिया। नूरजहां अब साम्राज्य की संयुक्त शासिका बन गयी थी। कुछ सिक्कों पर तो उसका नाम भी खुदा जाने लगा। शाही फरमानों पर भी उसका नाम जहांगीर के नाम के साथ आने लगा। सरकारी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दस्तावेजों पर भी वह हस्ताक्षर करने लगी। यही नूरजहां का प्रमुख काल था। इसे हम सुविधा के लिए दो भागों में विभाजित कर सकते हैं–प्रथम 1611 ई. से लेकर 1622 ई. तक तथा दूसरा 1622 ई. से 1627 ई. तक का काल जब शासन में नूरजहां की एकमात्र तूती बोलती थी।

17.6 नूरजहां के प्रभुत्व का विकास :

सामान्यतः ऐसा विश्वास किया जाता है कि अपने विवाह के कुछ वर्षों के भीतर नूरजहां ने जहांगीर को अपने हाथें की कठपुतली बना लिया और उसने एक दल का संगठन किया तथा राज्य शासन की पूरी बागडोर अपने हाथों में ले ली। नूरजहां के इस दल को नूरजहां गुट अथवा Nuriahan Junta के नाम से पुकारा गया। इस दल में उसके अतिरिक्त उसके पिता, भाई, माता, उसकी भतीजी का पति, शाहजादा खुर्रम (शाहजहां) एवं अन्य विश्वासपात्र सम्मिलित थे। उसने अपने पिता गयासुद्दीन को प्रधानमंत्री एवं भाई आसफ खां को अर्थमंत्री के पद पर आरूढ़ किया। आसफ खां का दामाद खुर्रम को ऊंचे मनसबदारी दिये गये और उसे अनेक अभियानों में मुगल सेना के नेतृत्व का भार सौंपा गया। नूरजहां की माता अस्मत बेग को राज्य का प्रधान परामर्शदात्री नियुक्त किया। नूरजहां के राजनीतिक दल के आधर स्तम्भ यह ही व्यक्ति थे और इन्हीं के सहयोग से उसने मनमाने ढंग से अपने प्रभुत्व काल में प्रारंभिक वर्षों में शासन किया। अपने प्रभुत्व के दूसरे चरण में जबकि नूरजहां शासन में शक्तिशालिनी रही, उसके गुट में दरार पैदा हो गया। नूरजहां की लड़की लाडली बेगम की शादी जहांगीर के छोटे लड़के शहरयार से हो गयी थी और अब वह खुर्रम के स्थान पर उसे मुगल गद्दी पर बिठाना चाहती थी। किन्तु शहरयार एक अयोग्य और चरित्रहीन व्यक्ति था जिसे लोग 'नाशुदनी' कहकर संबोधित किया करते थे। नूरजहां के इस रूख से खुर्रम का विचलित होना स्वाभाविक था। इन्हीं कारणों से आसफ खां जो खुर्रम का श्वसुर था, ने भी नूरजहां के गुट का बहिष्कार कर दिया। उसकी माता और पिता की भी मृत्यु हो चुकी थी। इस तरह से अब नूरजहां का गुट बिखर गया था। अतः इस काल में नूरजहां की शक्ति में ह्रास भी हुआ।

उल्लेखित तत्वों को आज के इतिहासकार पूर्णरूपेण स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। उनकी मान्यता है कि राजनीति एवं प्रशासन के संदर्भ में नूरजहां के नाम का अनुचित लाभ उठाया गया है। उसने केवल एक बार महावत खां के विद्रोह के विरूद्ध युद्ध में सक्रिय भाग लिया था और वह भी अपने पति को छुड़ाने के उद्देश्य से। डॉ. आर.पी. त्रिपाठी के शब्दों में, "खुर्रम अथवा महावत खा के विद्रोह या तथाकथित उत्तराधिकार के संघर्ष में नूरजहां का उत्तरदायित्व कल्पना की उड़ान तथा लोकप्रिय पौराणिकता है और यह उसी प्रकार काल्पनिक है जैसाकि शेर अफगान की मृत्यु में जहांगीर का उत्तरदायित्व।" अनजाने ही वह जहांगीर के काल की राजनीतिक हलचल का साझेदार बन गयी। अपने परिवार के सदस्यों के प्रति उसमें कमजोरी थी। इसका लाभ उठाकर उसके भाई आसफ खां ने शासन पर अपना प्रभाव काफी बढ़ा लिया। उसने स्वयं अपने तथा अपने दामाद शाहजहां (खुर्रम) के स्वार्थों के लिए उसके नाम का गलत लाभ उठाया। चूंकि शहरयार उसका दामाद था अतः उसे लेकर नूरजहां पर गलत आरोप लगाये गये। यह मानना अनुचित होगा कि नूरजहां के पिता तथा भाई का प्रभाव केवल उसके चलते बढ़ा। वस्तुतः उनके उत्कर्ष में उनकी व्यक्तिगत योग्यता का अधिक महत्व था। खुर्रम एवं महावत खां के विद्रोह भी नूरजहां के कारण नहीं हुए थे। इनके पीछे आसफ खां के हाथ थे। पुनः जहांगीर प्रशासन में कभी निष्क्रिय नहीं हुआ। ऐसी हालत में जहांगीर के शासन काल की राजनीतिक हलचलों के लिए नूरजहां को दोषी ठहराना अनुचित होगा।

17.7 नूरजहां के प्रभुत्व का प्रभाव :

नूरजहां के प्रभुत्व के प्रभाव अच्छे और बुरे दोनों हुए। उसके प्रभाव जहांगीर के ऊपर तथा तत्कालीन समाज एवं संस्कृति के ऊपर अच्छे कहे जा सकते हैं। 17. यह नूरजहां के प्रभाव का ही फल था कि जहांगीर ने शराब तथा अफीम की मात्रा में कटौती कर दी ओर उनके घातक परिणामों से बच सका, जिसके चलते उसके दो छोटे भाई अपने प्राणों से हाथ ध ोा बैठे थे। 2. इसके अतिरिक्त राज्य की सारी व्यवस्थाओं को अच्छे ढंग से संभाल कर उसने जहांगीर को शासन की कठिनाइयों और चिंताओं से मुक्त किया। फलस्वरूप उसे अपनी आत्मकथा को लिखने का अवकाश मिल गया। जहांगीर की यह रचना अपनी सूक्ष्म विस्तारों के कारण तत्कालीन भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण स्रोत समझा जाता है। यह कृति उसकी साहित्यिक महानता का एक अद्वितीय नमूना है। 3. नूरजहां ने जहांगीर का ध्यान चित्रकारी जैसी ललित कलाओं की ओर भी आकृष्ट किया, जिसके फलस्वरूप उसका शासनकाल चित्रकला के क्षेत्र में काफी विकास हुआ। नूरजहां ने अनेक विद्वानों एवं शिक्षकों को शाही संरक्षण दिया, नये स्कूलों को प्रारम्भ किया तथा अनेक पुराने स्कूलों को आर्थिक अनुदान दिया। 5. साम्राज्य की जनता के लिए इसके परिणाम अवश्य ही हितकर साबित हुए होंगे। उसकी उदारता एवं सहृदयता भी समाज

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के लिए हितकर साबित हुए होंगे। दीन–दुःखियों, निर्धनों, यतीमों, परित्यक्ताओं एवं विधवाओं को वह प्रतिदिन दान देती थी और गरीब कन्याओं का विवाह भी सम्पन्न करवाती थी। उसके ये कार्य निश्चित रूप से सराहनीय कहे जा सकते हैं। 6. वह अपने काल की सिर्फ असीम सुन्दरी ही नहीं, वरन् साम्राज्य की पूजारिन थी। इन क्षेत्रों में उसने तरह–तरह के आविष्कार किये। उसने जहांगीर के साथ अपनी शादी के अवसर पर एक अत्यन्त सुन्दर पोशाक का निर्माण करवाया, जिसे 'नूरमहली' के नाम से पुकारा जाता है। यह पोशाक मुगल हरम में वर्षों काफी लोकप्रिय रही। उसने एक नये प्रकार के इत्र का भी आविष्कार किया था। फैशन के क्षेत्र में नूरजहां की देन मौलिक एवं स्थायी साबित हुई। कुछ तत्कालीन मुसलमान लेखकों ने नूरजहां को अपने काल का सौन्दर्य–साम्राज्ञी की उपाधि से विभूषित किया है।

17.7.1 बुरे प्रभाव — समाज, सभ्यता एवं संस्कृति के ऊपर नूरजहां के जो भी प्रभाव हितकर प्रमाणित हुए राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में उसके प्रभाव अत्यन्त धातव्ळ साबित हुए। 17. नूरजहां के प्रभुत्व में विकास के फलस्वरूप मुगल राज्य एवं दरबार दल–बंदी का शिकार हो गया। इसका सूत्रपात स्वयं नूरजहां ने किया था। 1611 ई. से लेकर 1622 ई. तक वह प्रसिद्ध 'नूरजहां गुट' की अधिष्ठात्री रही और इसी गुट की सहायता से उसने शासन में अपना एकछत्र आधिपत्य स्थापित किया। अपने सगे–सम्बन्धियों, भाई–बन्धुओं एवं समर्थकों को उसने राज्य शासन में ऊंचे–ऊंचे पद दिये। ठीक इसके विपरीत जो उसके विरोधी थे अथवा जिनसे उसे भय था उन्हें उसने शासन से निकाल–बाहर किया। 2. नूरजहां की राज्य शासन में हस्तक्षेप करने की नीति के फलस्वरूप मुगल दरबार गृह–कलह का केन्द्र बन गया। प्रारम्भ में नूरजहां ने खुर्रम को संरक्षण दिया। हर एक तरह से वह उसकी मदद के लिए तैयार रही थी, किन्तु बाद में उसने अपनी लड़की लाडली बेगम की शादी शहरयार से कर दी तो वह शहरयार को जहांगीर का उत्तराधिकारी बनाने का षड़यंत्र करने लगी। परिणामस्वरूप खुर्रम ने आत्मरक्षा के उद्देश्य से जहांगीर के विरूद्ध बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया। खुर्रम के विद्रोह के लिए निश्चित रूप से नूरजहां उत्तरदायी थी। 1620 ई. में कन्धार का मुगल साम्राज्य की छत्रछाया से निकलकर ईरान के शाह के हाथों में चले जाने में भी नूरजहां की ही जिम्मेवारी थी। इसी तरह से नूरजहां की शक्तिप्रियता ने उच्च अधिकारियों को 'स्वामिभक्तिपूर्ण सेवाओं के प्रति भी उदासीन बना दिया। वह उन कर्मठ एवं स्वामीभक्ति मुगलसरदारों के प्रति भी संदेशहीन रहती थी, जिनका उसकी नीति से मतभेद रहता था। इसके फलस्वरूप आत्मसम्मानी एवं कर्मठ सरदारों और नूरजहां के बीच की खाई गहरी होती गयी और इसका एक भयंकर परिणाम यह हुआ कि महावत खां के राजभक्त, प्रतिष्ठित एवं कर्मठ व्यक्ति को भी शासन के विरूद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर जहांगीर तक को बंदी बनाने के लिए विवश होना पड़ा। 3. उस समय मुगल दरबार घुसखोरी एवं भ्रष्टाचार का अड्डा बन गया। 4. जहांगीर के व्यक्तित्व पर भी उसके कुछ अहितकर प्रभाव पड़े। उसने नूरजहां के रूप–रंगों में खोकर शासन की सारी जिम्मेदारी को तिलांजलि दे दी और अब वह ऐशो–आराम में मस्त होकर नूरजहां के इशारों पर नाचने लगा। उसके चरित्र में इस तरह के पतन के लिए अवश्य ही नूरजहां दोषी थी। 5. अंत में यह भी कहा जा सकता है कि अनेक गुणों से सम्पन्न होने के बावजूद नूरजहां एक स्त्री थी। अतः अपनी स्त्री–सुलभ कमजोरियों के कारण वह राज्य के सभी मामलों की देखभाल अच्छे ढंग से करने में असमर्थ थी। 1627 ई. में जहांगीर की मृत्यु के साथ ही उसकी प्रभुता का अंत हो गया।

17.7.2 अच्छे प्रभाव — नूरजहां के प्रभाव के कुछ अच्छे परिणाम भी पड़े, जो निम्न थे–

17. एलफिन्स्टन के अनुसार, "नूरजहां बड़ी कर्त्तव्यपरायण पत्नी थी। वह जहांगीर की देख–रेख में बड़ी रूचि लेती थी और शासन–प्रबंध का बहुत–सा काम स्वयं करती थी।" उसके प्रभाव से जहांगीर ने शराब पीना कम कर दिया था।

2. नूरजहां सौन्दर्यप्रेमी थी। उसने जरी, किनारी तथा लहंगों के नये फैशन का प्रचलन किया। खाफी खां के अनुसार, "नूरजहां के चलाये हुए फैशन उच्च वर्ग के लोगों में चिरकाल तक प्रचलित रहे, जबकि मलिका से पहले के फैशन केवल पिछड़ी हुई पठान जातियों में ही रह गये।"

3. नूरजहां ने 500 निर्धन एवं असहाय कन्याओं के विवाह हेतु राजकोष से दहेज दिया। वह निर्धन दासियों की सहायता भी करती थी।

17.8 नूरजहां का मूल्यांकन

नूरजहां अत्यन्त सुन्दर, साहसी, उदार तथा दयालु मलिका थी। वह अपने सौन्दर्य के कारण 35 वर्ष की आयु में भी 16 वर्ष की युवती दिखायी देती थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सुन्दर तथा कोमल होते हुए भी वह साहसी तथा परिश्रमी थी। वह घोड़े पर सवार, होकर शेर का शिकार करती थी तथा संकटकाल में भी साहस तथा धैर्य से काम करती थी। उसने चतुरता का परिचय देते हुए जहांगीर को महावत खां की कैद से मुक्त करवाया।

नूरजहां परिवार प्रेमी थी। वह जहांगीर से बहुत प्यार करती थी तथा जहांगीर भी उससे बहुत प्यार करता था। वस्तुतः जहांगीर तथा नूरजहां का प्रेम आदर्श था।

नूरजहां बड़ी दयालु थी। उसने निर्धनों, दुःखियों तथा अनाथों की सदैव सहायता की। उसने पांच सौ कन्याओं के विवाह के लिये राजकोष से दहेज दिया था। नूरजहां शिक्षित तथा बुद्धिमती थी। वह फारसी भाषा में सुन्दर कवितायें लिखती थी। उसमें समस्याओं को सुलझाने की अद्भुत क्षमता थी, अतः दरबारी उसकी बुद्धि का लोहा मानते थे। नूरजहां ने विद्वानों को भी उदारतापूर्वक संरक्षण दिया।

नूरजहां को संगीतकला तथा चित्रकला से बड़ा प्रेम था। उसने जरी, किनारी तथा लहंगे के नये फैशन प्रचलित किये, जो काफी समय तक लोकप्रिय रहे। उसके समय में कई प्रकार की सुगंधियों वाले इत्र भी तैयार किये गये।

नूरजहां के चरित्र गें कई दोष गी थे। उराके नारी–अगिगान, बदला लेने की प्रवृत्ति आदि के कई दुष्परिणाग निकले। वह अत्यधिक महत्वाकांक्षी थी तथा अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये षड़यंत्र रचने में भी हिचकती नहीं थी। वह विरोधियों एवं शत्रुओं के दमन के लिये किसी भी मार्ग को अपना लेती थी। निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि नूरजहां का प्रभाव साम्राज्य के लिये हानिकारक सिद्ध हुआ।

17.19 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 जहांगीर का राज्याभिषेक कब हुआ?

अ. 5 जनवरी 1604 ई.   ब. 3 नवम्बर 1605 ई.

स. 25 दिसम्बर 1604 ई.   द. 15 अक्टूबर 1604

उत्तर – ....

प्रश्न 2 नूरजहां के चरित्र का चित्रण कीजिए।

उत्तर – ....

प्रश्न 3 जहांगीर के काल में नूरजहां के प्रभाव पर निबन्ध लिखिए।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 18
शाहजहां

संरचना

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रारम्भिक जीवन (1592 – 1627 ई.)
18.2 सिंहासनारोहण (1628 ई.)
18.3 शाहजहाँ के शासनकाल की घटनाएं
    18.3.1 बुन्देलखण्ड का विद्रोह (1628 ई.)
    18.3.2 खानजहाँ लोदी का विद्रोह (1629–30 ई.)
    18.3.3 अकाल एवं महामारी (1630–32 ई.)
    18.3.4 मुमताज महल की मृत्यु
    18.3.5 पुर्तगालियों का दमन (1632 ई.)
    18.3.6 शाहजहाँ की दक्षिण नीति
    18.3.7 बीजापुर एवं गोलकुण्डा अभियान
    18.3.8 दक्षिण के सूबेदार के रूप में औरंगजेब की सफलताएँ
    18.3.9 मध्य एशिया विषयक नीति
    18.3.10 बलख व बदख्शा पर आक्रमण
    18.3.11 कन्धार पर आक्रमण
18.4 शाहजहाँ का शासनकाल मुगलकाल का स्वर्णकाल
    18.4.1 राजनैतिक दृष्टि से स्वर्णकाल
    18.4.2 प्रशासनिक दृष्टि से स्वर्णकाल
    18.4.3 आर्थिक दृष्टि से स्वर्णकाल
    18.4.4 सामाजिक दृष्टि से स्वर्णकाल
    18.4.5 सांस्कृतिक दृष्टि से स्वर्णकाल
    18.4.6 स्थापत्य कला दृष्टि से स्वर्णकाल
    18.4.7 चित्रकला दृष्टि से स्वर्णकाल
    18.4.8 संगीत कला दृष्टि से स्वर्णकाल
    18.4.9 साहित्य दृष्टि से स्वर्णकाल
18.5 स्वर्णकाल के विपक्ष में तर्क
18.6 उत्तराधिकार युद्ध के कारण
    18.6.1 शाहजहाँ का बिमार होना
    18.6.2 राजकुमारों का चरित्र
    18.6.3 उत्तराधिकार का निश्चित नियम न होना
    18.6.4 शहजादों के पास स्वतन्त्र साधन होना
    18.6.5 मुगल परम्परा
    18.6.6 शाहजहाँ की दुर्बलता
    18.6.7 युद्ध की घटनाएँ
    18.6.8 बहादुर का युद्ध (1658 ई.)
    18.6.9 धरमत का युद्ध (अप्रैल, 1658 ई.)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.6.10 सामूगढ़ का युद्ध (मई, 1658 ई.)

18.6.11 औरंगजेब का आगरा पर अधिकार (जून, 1658 ई.)

18.6.12 मुराद का वध

18.6.13 दारा व उसके पुत्रों का वध

18.6.14 शुजा का अंत

18.7 शाहजहाँ के अन्तिम दिन

18.8 शाहजहाँ का मूल्यांकन

18.9 अभ्यास प्रश्नावली

18.0 उद्देश्य :

इस इकाई में मुगल सम्राट शाहजहाँ के काल की महत्त्वपूर्ण – घटनाओं को निम्नलिखित बिन्दुओं से पाठकों को समझाया जायेगा।

– शाहजहाँ का विजय अभियान

– शाहजहाँ के काल में स्थापत्य कला का विकास

18.1 प्रारम्भिक जीवन (1592–1627 ई.) :

शाहजहां का जन्म 5 जनवरी, 1592 ई. को लाहौर में हुआ। उसकी माता सुप्रसिद्ध राजपूत रमणी 'जगत गोसाईं' मोटा राजा उदयसिंह की सुपुत्री थी। इसका बचपन का नाम खुर्रम था। कुशाग्रबुद्धि और चतुर खुर्रम में बचपन से ही बड़प्पन के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे, अतः वह अपने पितामह अकबर का सर्वप्रिय प्रपौत्र हो गया। अकबर ने उसकी शिक्षा–दीक्षा स्वयं अपनी देखरेख में करानी आरम्भ की और उसे मुगल शासक–वर्ग का सुयोग्य शासक बनाने में कोई कसर न उठा रखी। खुर्रम को प्रारम्भ से ही फारसी साहित्य में विशेष अभिरूचि थी, किन्तु तुर्की भाषा तथा साहित्य उसके चाव का विषय न था। उसने व्यावहारिक हिन्दी का भी यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया होगा। यद्यपि उसने अपने पिता की भांति अपनी आत्मकथा नहीं लिखी परन्तु फिर भी फारसी भाषा और साहित्य पर उसका अच्छा अधिकार था। इसके अलावा उसने इतिहास, राजनीति, भूगोल, धर्मशास्त्र आदि का भी अध्ययन किया। सैनिक–शिक्षा उसकी शिक्षा का आवश्यक अंग थी, अतः थोड़े ही समय में खुर्रम एक सुयोग्य सैनिक बन गया, जो आक्रमणात्मक तथा रचनात्मक शस्त्रों के प्रयोग में सिद्धहस्त हो गया। युद्ध–कला तथा सैन्य–संचालन में खुर्रम ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। युवावस्था में पूर्णरूप से पदार्पण करने से पहले ही खुर्रम समस्त साम्राज्य का श्रेष्ठ सेनानायक माना जाने लगा। ऐसी अभूतपूर्व थी उसकी प्रतिभा।

अपने पिता जहांगीर के राज्यकाल के आरम्भ में ही खुर्रम को उसका उत्तराधिकारी समझा जाने लगा क्योंकि उसका बड़ा भाई खुसरो पिता के प्रति अपने दुर्व्यवहार के कारण जहांगीर की दृष्टि में बराबर गिरता जा रहा था। 1607 ई. में जहांगीर ने इसे 8,000 जात और 5,000 सवार का मनसबदार बना दिया। 1608 ई. में हिसार फिरोजा की जागीर जो प्रायः मुगल युवराज को दी जाती थी, खुर्रम को दे दी गयी। 1610 ई. में उसका विवाह मुजफ्फरहुसैन सफवी की पुत्री से सम्पन्न कर दिया गया और अगले ही वर्ष उसे 10,000 जात और 5,000 सवार का मनसबदार बना दिया गया। 1612 ई. में जब वह बीस वर्ष का हुआ, उसका विवाह आसफखां की पुत्री अरजुमन्द बानो बेगम के साथ सम्पन्न हुआ। नूरजहां के बड़े भाई आसफखां के वंश से स्थापित इस विवाह सम्बन्ध में खुर्रम, नूरजहां, एतमादुद्दौला और आसफखां के बीच घनिष्ठ सम्बन्धों का सूत्रपात हुआ। 'नूरजहां गुट' ने दस वर्ष तक राज्य किया। इस अवधि में खुर्रम को भावी सम्राट समझा जाने लगा और उसका मनसब बढ़ाकर 30,000 जात और 20,000 सवार कर दिया गया।

जहांगीर के राज्यकाल में खुर्रम को अनेक प्रमुख युद्धों का संचालन करना पड़ा। उसका शासनकाल खुर्रम की ही विजय–कीर्ति का इतिहास है। मेवाड़ विजय उसकी प्रारम्भिक सफलता थी। 1614 ई. में एक सुसज्जित सेना सहित वह राणा के विरूद्ध मोर्चा लेने भेजा गया। सफलता का सेहरा इसी के ऊपर था, राणा अमरसिंह ने आत्मसमर्पण कर दिया। खुर्रम ने भी उसके साथ सम्मानपूर्वक बरताव किया। मेवाड़ विजय ने खुर्रम की कीर्ति को चार चांद लगा दिये और वह साम्राज्य का प्रमुख स्तम्भ समझा जाने लगा। इसके बाद उसे दक्षिण का गवर्नर नियुक्त कर 'शाह' की उपाधि से विभूषित किया गया। राजकुमार ने अपनी कूटनीति तथा अथक परिश्रम से मलिक अम्बर को बालाघाट लौटाने तथा अहमदनगर और दूसरे दुर्गों को समर्पित करने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के लिए सहमत कर लिया। इससे मुगल दरबार में राजकुमार की कूटनीति का सिक्का बैठ गया। जहांगीर की प्रसन्नता का पारावार न रहा। उसने मुक्तहस्त से खुर्रम पर सम्मान की वर्षा की और गुजरात प्रान्त भी उसे सौंप दिया।

'नूरजहां गुट' के साथ मिले खुर्रम को दस वर्ष ही बीते थे कि उसका भाग्य–सितारा अचानक झिलमिलाने लगा। नूरजहां अपने दामाद शहरयार को उत्तराधिकारी घोषित करना चाहती थी, अतः खुर्रम की कीर्ति में उसे अपने लक्ष्य की असफलता का आभास होने लगा, इसलिए वह उससे द्वेष करने लगी। अतः वह नित्यप्रति उसको आघात पहुंचाने का प्रयत्न करने लगी जिससे तंग आकर खुर्रम ने विद्रोह कर दिया। शिकार की भांति उसका जोरों से पीछा किया गया और उसे घोर कष्टों का सामना करना पड़ा। 1626 ई. में वह अपने पिता की शरण लेने को बाध्य हुआ। उसे क्षमा कर दिया गया और फिर वही सम्मान प्राप्त हुआ जो पहले था।

18.2. सिंहासनारोहण (1628 ई.) :

जहांगीर की मृत्यु के पश्चात् नूरजहां ने अपनी शक्ति को बनाये रखने का अंतिम प्रयास किया। उसने अपने भाई आसफखां को जो कि खुर्रम का श्वसुर और उसका पूर्ण समर्थक था, कैद करने का प्रयत्न किया। उसने अपने दामाद शहरयार को एकपत्र लिखा कि वह अपनी पार्टी को सुदृढ़ बनाने तथा अपनी सैनिक–शक्ति को बढ़ाने का पूर्ण प्रयत्न करे ताकि उत्तराधिकार–संघर्ष में विजय प्राप्त की जा सके। परन्तु आसफखां एक राजनीतिज्ञ था। वह एक क्षण में अपनी बहन के इरादों को भांप गया, इसलिए उसने साम्राज्ञी से मिलने से इंकार कर दिया। प्रत्युत्तर में उसने साम्राज्य के प्रमुख व्यक्तियों और सभासदों को खुर्रम की ओर कर खुसरो के पुत्र दावरबख्श को सम्राट घोषित कर दिया ताकि गद्दी खाली न रहे। साथ ही उसने दक्षिण में शाहजहां को सूचना दी कि वह शीघ्रातिशीघ्र दिल्ली पहुंचे। इसी बीच खुर्रम के प्रतिद्वन्द्वी शहरयार ने अपने आपको सम्राट घोषित कर दिया और लाहौर स्थित शाही खजाने पर अधिकार कर लिया तथा वहां के अमीरों की सम्पत्ति जब्त कर ली। खुले हाथों खजाना लुटाकर उसने शीघ्र ही एक विशाल सेना एकत्रित कर ली। आसफखां जो शाहजहां की ओर से युद्ध की तैयारी कर रहा था, लाहौर के पास शहरयार से जा जूझा। शहरयार परास्त हुआ। उसे बंदी बना लिया गया तथा उसकी आंखें निकलवा ली गयीं। इसी बीच शाहजहां भी तेजी से दिल्ली के लिए रवाना हुआ। मार्ग के प्रमुख सरदारों, विशेषतया मेवाड़ के राणा कर्ण, ने उसका भव्य स्वागत किया। रास्ते में से ही उसने अपने श्वसुर को गुप्त सूचना भेजी कि दावरबख्श सहित समस्त राजकुमारों को मौत के घाट उतार दिया जाये। शाहजहां के हृदयहीन श्वसुर ने इस आदेश का अक्षरशः पालन किया। 1628 ई. की फरवरी के आरम्भिक सप्ताह में वह आगरा के निकट आ पहुंचा और एक अत्यन्त शुभ घड़ी में शहर में प्रवेश किया तथा अत्यन्त हर्ष व उल्लास के साथ गद्दी पर बैठा। उसके नाम का खुतबा पढ़ा गया। आसफखां को 8,000 जात और 8,000 सवारों का मनसब प्रदान कर साम्राज्य का वजीर नियुक्त किया गया। महाबतखां का मनसब बढ़ाकर 7,000 जात और 7,000 सवार कर दिया गया और उसको 'खानखाना' की उपाधि से विभूषित किया गया। नूरजहां को एक उचित पेन्शन दे दी गयी और उसने लाहौर के निकट शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। यही उसने अपने मृत पति की यादगार में एक मकबरा बनवाया और दान–दक्षिणा के अनेक कार्य करने के उपरान्त 1645 ई. में मृत्यु को प्राप्त हुई।

18.3 शाहजहां के शासनकाल की घटनाएं :

3.18.1. बुन्देलखण्ड का विद्रोह (1628 ई.) – बुन्देलखण्ड नरेश जुझारसिंह ने 1628 ई. में मुगलों के विरूद्ध विद्रोह कर दिया, किन्तु सम्राट ने इसे दबा दिया। शाहजहां ने क्षतिपूर्ति के रूप में भारी रकम वसूल की तथा जुझारसिंह को दक्षिण में मनसबदार बनाकर भेज दिया गया। पांच वर्ष पश्चात् उसने पुनः विद्रोह किया, किन्तु वह भी असफल रहा। वह गोंडवाना भाग गया, जहां उसका वध कर दिया। 1639 ई. में चम्पतराय नामक सरदार का विद्रोह भी दबा दिया गया।

18.3.2. खानजहां लोदी का विद्रोह (1629–30 ई.) – मुगलों के दक्षिणी प्रान्त के सूबेदार खानजहां लोदी ने विद्रोह कर दिया, जिसे शाहजहां ने दबा दिया। उसे दरबार में भेज दिया गया, किन्तु कुछ समय पश्चात् वह मुगल दरबार से दक्षिण में भाग गया तथा अहमदनगर के शासक से सांठ–गांठ करने लगा। मुगलों ने उसे धौलपुर नामक स्थान पर परास्त किया। वह बुन्देलखण्ड की ओर भागा, किन्तु मार्ग में मारा गया।

18.3.3. अकाल एवं महामारी (1630–32 ई.) – 1630 ई. से 1632 ई. के मध्य गुजरात, खानदेश तथा दक्षिण के प्रदेशों में पड़े भीषण अकाल से हजारों लोग मारे गये तथा वस्तुओं के दाम अत्यधिक बढ़ गये। मिर्जा अमीर कजवीनी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के अनुसार, ''अकाल के दिनों में वस्तुओं के मूल्य सात गुना बढ़ गये। दुकानदार आटे में पिसी हुई हड्डियां मिलाकर बेचने लगे और लोग कुत्तों का मांस खाकर अपना पेट भरते थे।'' अब्दुल हमीद लाहौरी के अनुसार, ''भूख के कारण लोग एक–दूसरे को खाने लगे और उन्हें पुत्र के प्राणों की अपेक्षा उसका मांस अधिक प्रिय लगने लगा।''

अकाल के बाद फैली महामारी से हजारों लोग मारे गए एवं गांव के गांव उजड़ गए। शाहजहां ने इस समय भूमि–कर का 1/3 भाग माफ कर दिया तथा पीड़ितों को मुफ्त रोटी देने के लिए जगह–जगह भोजन भण्डार खोले गए।

18.3.4. मुमताज महल की मृत्यु – शाहजहां की सबसे प्रिय बेगम मुमताज अथवा अरजमन्द बानों बेगम की 1631 ई. में चौदहवें बच्चे को जन्म देने के बाद मृत्यु हो गयी। शाहजहां ने उसे दिए वचन के अनुसार जीवन भर दूसरा विवाह नहीं किया। उसने मुमताज की याद में ताजमहल बनवाया, जो दाम्पत्य प्रेम की अनुपम मिसाल है।

18.3.5. पुर्तगालियों का दमन (1632 ई.) – भारत के पश्चिमी तट पर बसे पुर्तगाली अपनी व्यापारिक सुविधाओं का दुरुपयोग करते हुए लोगों को बलपूर्वक ईसाई बना रहे थे। अतः शाहजहां ने 1632 ई. में सेना भेजकर उन्हें बुरी तरह परास्त किया। चार हजार पुर्तगालियों को बंदी बना लिया गया। बर्नियर के अनुसार, ''बादशाह ने पादरियों, साधुओं और बच्चों के प्रति क्रूरता का व्यवहार किया। विवाहित और अविवाहित सुन्दर स्त्रियों को शाही हरम में रख लिया और जो सुन्दर नहीं थी या जिनकी आयु अधिक थी, वे उमरावों को दे दी गयी। छोटे–छोटे बच्चों को खतना करवाकर उन्हें गुलाम बना लिया गया। प्रौढ़ों को भयभीत किया गया कि यदि वे इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं करेंगे तो उन्हें हाथी के पैरों से कुचलकर मार दिया जाएगा, अतः विवश होकर उन्होंने अपना धर्म छोड़ दिया।'' यह वर्णन अतिश्योक्तिपूर्ण है। शाहजहां की पुर्तगालियों के प्रति नीति न्यायसंगत थी।

अन्य विजयें–शाहजहां ने 1632 ई. में माओ तथा नूरपुर के विद्रोह में जागीरदारों का दमन किया तथा 1637–38 ई. में तिब्बत के शासक से विशाल धनराशि वसूल की।

18.3.6. शाहजहां की दक्षिण नीति – शाहजहां अपना साम्राज्य विस्तार करना चाहता था। वह सुन्नी होने के कारण दक्षिण के शिया मुसलमान राज्यों को नष्ट करना चाहता था। अतः उसने दक्षिण विजय का निश्चय किया।

अहमदनगर विजय–अहमदनगर में मलिक अम्बर का पुत्र फतेह खां मंत्री था। वह अहमदनगर के शासक को अपने रास्ते से हटाना चाहता था। शाहजहां ने उससे सांठ–गांठ कर ली। फतेह खां ने सुल्तान निजामशाह का वध करवा दिया तथा एक अवयस्क शहजादे को गद्दी पर बैठाकर उसने राज्य की शक्ति अपने हाथ में ले ली। अब मराठा सरदार शाहजी भौंसले तथा बीजापुर के शासक आदिल खां ने दौलताबाद के दुर्ग में उसे घेर लिया। फतेह खां ने शाहजहां द्वारा उसकी सहायता करने के लिए भेजी गई सेना पर ही आक्रमण कर दिया, किन्तु वह परास्त हुआ। फतेह खां ने साढ़े दस लाख रुपये में अहमदनगर का दुर्ग मुगलों को दे दिया एवं स्वयं मुगल मनसबदार बन गया। अहमदनगर के अवयस्क शासक को बंदी बनाकर ग्वालियर भेज दिया गया। अहमदनगर पर अधिकार करने के बाद भी मुगलों का बाहरी चौकियों पर नियंत्रण न था। शाहजी भौंसले ने आदिल खां की मदद से अहमदनगर को मुक्त कराने का असफल प्रयास किया। शाहजहां ने बीजापुर के शासक के साथ गठजोड़ कर अहमदनगर को आपस में बांट लिया।

18.3.7. बीजापुर एवं गोलकुण्डा अभियान – अहमदनगर विजय के बाद शाहजहां ने बीजापुर एवं गोलकुण्डा के शासकों को अपनी अधीनता स्वीकार करने व वार्षिक कर चुकाने के आदेश दिये।

गोलकुण्डा के शासक कुतुबशाह ने उसकी अधीनता मानते हुए वार्षिक कर चुकाने, उसके नाम का खुतबा पढ़ने तथा सिक्कों पर उसका नाम अंकित करने का वचन दिया, लेकिन बीजापुर के शासक आदिलशाह ने इससे इंकार कर दिया। अतः मुगलों ने बीजापुर को घेर लिया। लम्बे संघर्ष के बाद 1636 ई. में दोनों में संधि हो गयी, जिसके अनुसार–

1. बीजापुर के शासक आदिलशाह ने मुगल सत्ता को स्वीकार कर लिया तथा बीस लाख रुपए वार्षिक कर देने का वचन दिया।

2. उसने मुगलों की अधीनता वाले गोलकुण्डा के शासक को परेशान न करने का वचन दिया।

3. आदिलशाह को बीजापुर का शासक बनाए रखा तथा उसे पचास लाख रुपये आय वाले अहमदनगर के पचास परगने दिये गये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.3.8. दक्षिण के सूबेदार के रूप में औरंगजेब की सफलतायें – शाहजहां ने अपने दक्षिण के साम्राज्य, जिसमें खानदेश, बरार, तेलंगाना, दौलताबाद आदि शामिल थे, का औरंगजेब को सूबेदार बनाया। उसे दो बार सूबेदार बनाया गया। प्रथम, 1636–44 ई. तक तथा द्वितीय 1653–57 ई. तक।

अपनी सूबेदारी के पहले काल में औरंगजेब ने नासिक के निकटवर्ती प्रदेशों पर विजय प्राप्त की तथा शासन व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया। 1644 ई. में उसने सूबेदारी छोड़ दी, जब वह अपनी बीमार बहन को आगरा देखने आया।

1653 ई. में वह पुनः दक्षिण का सूबेदार बनाया गया। उसने वहां की खराब शासन–व्यवस्था एवं आर्थिक स्थिति को सुधारा। 1656 ई. में उसने गोलकुण्डा को वार्षिक कर न देने का आरोप लगाते हुए उस पर आक्रमण कर दिया। वस्तुतः वह इस शिया राज्य को नष्ट करना चाहता था, किन्तु सम्राट के आदेश से उसे घेरा उठाना पड़ा।

शाहजहां के आदेश पर औरंगजेब ने नवम्बर, 1656 ई. में बीजापुर पर आक्रमण कर दिया तथा बीदर व कल्याणी पर अधिकार कर लिया, किन्तु परिणाम निकलने से पहले ही सम्राट के आदेश पर युद्ध समाप्त हो गया। अतः दोनों पक्षों में संधि हो गयी, जिसके अनुसार–

1. बीजापुर के शासक ने मुगल आधिपत्य स्वीकार कर लिया एवं डेढ़ करोड़ रुपया क्षतिपूर्ति के रूप में देने का वचन दिया।
2. उसने कल्याणी व बीदर पर सम्राट का अधिकार स्वीकार कर लिया।

18.3.9. मध्य एशिया विषयक नीति – मध्य एशिया में ट्रान्स–आक्सियाना को मुगल अपनी मातृभूमि मानते हुए उस पर अधिकार बनाये रखना चाहते थे। बाबर ने अपने पूर्वज तैमूर की प्राचीन राजधानी समरचन्द पर अधिकार करने का कई बार प्रयत्न किया किन्तु विफल रहा। हुमायूं भी इस प्रयत्न में असफल रहा। अकबर और जहांगीर की भी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। शाहजहां ने भी अपने पिता व पितामह के स्वप्न को साकार करने हेतु अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

18.3.10. बलख व बदख्शा पर आक्रमण – बलख और बदख्शा बुखारा राज्य के प्रदेश थे और इमामकुली यहां का शासक था। 1639 ई. में इमामकुली के भाई नजर मुहम्मद ने गद्दी हथिया ली, किन्तु वह प्रजा में अलोकप्रिय होने के कारण ख्वारिज्म और खीवा में विद्रोह हो गया। इस विद्रोह का दमन करने इमामकुली ने अपने पुत्र अब्दुल अजीज को भेजा, किन्तु अब्दुल अजीज ने भी अपने पिता के विरूद्ध विद्रोह कर अपने आपको बुखारा का शासक घोषित कर दिया। इन आंतरिक झगड़ों का लाभ उठाने के लिये शाहजहां ने काबुल के गवर्नर को एक सेना भेजी जिसने काहमर्द दुर्ग पर अधिकार कर लिया, किन्तु इस पर मुगल अधिक समय तक अपना अधिकार बनाये नहीं रख सकें। मुगलों की इस कार्यवाही से आतंकित हो नजर मुहम्मद ने अपने पुत्र से समझौता कर लिया, किन्तु साथ ही वह शाहजहां से भी सहायता की प्रार्थना करता रहा। शाहजहां ने अनुकूल अवसर देखकर बलख, बुखारा व समरकंद पर अधिकार करने का निश्चय कर स्वयं काबुल गया। शाहजहां चाहता था कि पहले वह नजर मुहम्मद की सहायता करे और फिर उससे उसके प्रदेश छीन ले। नजर मुहम्मद शाहजहां की इस चाल को समझ गया और मुगल सेना की प्रगति रोकने का प्रयास करने लगा। 1646 ई. में शाहजादा मुराद ने बलख पर धावा बोल दिया। नजर मुहम्मद भागकर फारस चला गया और बलख पर मुगलों का अधिकार हो गया। किन्तु मुराद वहां की खुश्क जलवायु में अधिक न ठहर सका। अतः शाहजहां ने औरंगजेब को बलख की ओर भेजकर स्वयं काबुल आ गया। अब्दुल अजीज एक सेना लेकर औरंगजेब से जा भिड़ा, किन्तु परास्त हुआ। औरंगजेब के सैनिक भी इस प्रतिकूल जलवायु में लड़ना नहीं चाहते थे, अतः औरंगजेब आक्सस नदी से आगे न बढ़ सका। इधर नजर मुहम्मद फारस के शाह से सहायता लेकर आया और मुगल चौकियों पर आक्रमण कर दिये। विवश औरंगजेब को ट्रान्स आक्सियाना से अफगानिस्तान की ओर लौटना पड़ा। शाहजहां ने औरंगजेब को कहलवाया कि नजर मुहम्मद के क्षमायाचना करने पर उसे क्षमा प्रदान कर दी जाय। नजर मुहम्मद ने अपने पोते को क्षमा याचना के लिये भेजा। औरंगजेब ने बलख का दुर्ग व नजर उसके पोते को सौंप कर स्वयं स्वदेश लौट गया। मार्ग में औरंगजेब ने उसे खूब परेशान किया।

बलख और बदख्शा पर शाहजहां के आक्रमण पूर्णतः असफल रहे, क्योंकि अत्यधिक जन–धन की क्षति उठाकर भी वह इन पर अधिकार बनाये न रख सका। हां, इस क्षेत्र में मुगल शक्ति की धाक अवश्य जम गई थी।

18.3.11. कन्धार पर आक्रमण – जहांगीर के शासनकाल के अंतिम समय में फारस के शाह ने कन्धार पर अधिकार कर लिया था। अब शाहजहां ने पुनः उसे हस्तगत करने का निश्चय किया। 1629 ई. में फारस के शाह की मृत्यु के बाद फारस को गद्दी पर एक अल्पवयस्क बालक गद्दी पर बैठा। कन्धार में अलीमर्दानखां फारस के शाह की ओर से गवर्नर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

था। कुछ समय बाद फारस के मंत्री सारूतकी व अलीमर्दानखां की बीच तीव्र वैमनस्य हो गया। अतः अलीमर्दानखां ने कन्धार का दुर्ग मुगलों को समर्पित कर दिया। सम्राट ने अलीमर्दानखा को पुरस्कृत कर बाद में कश्मीर का गवर्नर बना दिया। उधर 1642 ई. में शाह अब्बास द्वितीय फारस का नया शासक बना। मध्य एशिया में मुगलों की असफलता से प्रोत्साहित होकर उसने कन्धार के निकट बिस्त के दुर्ग पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। इस पर शाहजहां ने औरंगजेब को ससैन्य कन्धार की तरफ भेजा। लेकिन औरंगजेब के पहुंचने से पूर्व ही फारस की सेनाओं ने कन्धार पर आक्रमण कर दिया और फरवरी 1649 ई. में दुर्गरक्षक दौलतखां ने आत्मसमर्पण कर दिया। मई 1649 ई. में औरंगजेब ने कन्धार पहुंच कर दुर्ग को घेर लिया। मुगल सेना को भीषण क्षति उठानी पड़ी, फिर भी उसे सफलता नहीं मिली। विवश होकर, सम्राट के आदेशानुसार औरंगजेब दुर्ग का घेरा उठाकर लाहौर की तरफ लौट गया। 1652 ई. में शाहजहां ने कन्धार विजय का एक और प्रयत्न करने की दृष्टि से पुनः औरंगजेब को भेजा। इस बार औरंगजेब अपनी पूर्व विफलता को धो डालने के लिये विशेष सैनिक तैयारी के साथ कन्धार आया और मई 1652 ई. में कन्धार को घेर लिया, लेकिन फारस की तोपों के सामने मुगलों की एक न चली। अतः शाहजहां ने औरंगजेब को घेरा उठाकर लौट आने का आदेश दे दिया। अतः औरंगजेब पुनः विफल होकर लौटा और सम्राट ने उसे दक्षिण की सूबेदारी दे दी।

निरन्तर विफलताओं के बावजूद शाहजहां हतोत्साहित नहीं हुआ और इस बार यह कार्य शाहजादा दारा को सौंपा गया। दारा औरंगजेब की विफलताओं से खुश था और वह औरंगजेब को बता देना चाहता था कि वह कितनी सरलता से यह कार्य सम्पन्न कर सकता है। दारा ने इस बार अपने तोपखाने पर अधिक ध्यान दिया तथा 1653 ई. में उसने कन्धार के आस–पास के क्षेत्रों पर आक्रमण कर उसे पूर्णतः उजाड़ दिया, ताकि इस ओर फारस से कोई सहायता न आ सके। तत्पश्चात कन्धार पर इतनी भीषण गोलाबारी की कि दुर्ग की प्राचीरें हिल उठी। लेकिन फारस की तोपों ने मुगलों के तोपखाने को भी कुण्ठित कर दिया। सात महीने के संघर्ष के बाद अक्टूबर 1653 ई. में असफल मुगल सेनाएं वापिस लौट गई। इन आक्रमणों के कारण मुगल साम्राज्य की आर्थिक स्थिति भी खराब हुई और साम्राज्य को इससे कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ। इससे शाहजहां की प्रतिष्ठा को गहरा आघात लगा, जबकि फारस के शाह का हौसला बढ़ गया।

18.4. शाहजहां का शासनकाल मुगलकाल का स्वर्णकाल :

शाहजहां का शासनकाल मुगलकाल का स्वर्णयुग कहलाता है। इस युग में सभी क्षेत्रों में उन्नति हुई।

18.4.1. राजनीतिक दृष्टि से स्वर्णकाल – राजनीतिक दृष्टि से शाहजहां का काल शांति तथा सुरक्षा का काल था एवं किसी प्रकार के विद्रोह का भय नहीं था। राजपूत मुगलों के हितैषी एवं मित्र थे एवं मेवाड़ भी उनकी अधीनता में था। कन्धार को छोड़कर सम्पूर्ण साम्राज्य सुरक्षित था। दक्षिणी भारत में भी मुगलों का वर्चस्व था। मराठे अभी शक्तिशाली नहीं बन पाये थे। पुर्तगालियों का दमन किया जा चुका था। इस प्रकार शाहजहां के काल में शांति व व्यवस्था थी तथा बाह्य आक्रगण व आंतरिक विद्रोह का भय नहीं था।

18.4.2. प्रशासनिक दृष्टि से स्वर्णकाल – शाहजहां का प्रशासन जनकल्याणकारी तथा अकबर के शासन–प्रबंध के नियमों पर आधारित था। शाहजहां ने प्रजा को सुखी बनाने का हर संभव प्रयत्न किया। फ्रांसीसी यात्री ट्रेवर्नियर के अनुसार, "सम्राट का शासन–प्रबंध पितृ–स्नेह से युक्त था और वह अपनी कार्यकुशलता के लिये विख्यात था।" विदेशी यात्री मनूची तथा खाफी खां ने उसके शासन–प्रबंध की बहुत प्रशंसा की है। वह योग्य व्यक्तियों को ही सरकारी पदों पर नियुक्त करता था तथा अपराधी अधिकारियों को दण्डित करता था। कुशल शासन–प्रबंध के कारण साम्राज्य की आर्थिक स्थिति अच्छी थी एवं प्रजा सुखी थी। तत्कालीन इतिहासकार खाफी खां ने लिखा है, "यद्यपि विजेता और व्यवस्थापक की दृष्टि से अकबर श्रेष्ठतम था, परन्तु अपनी भूमि और अर्थ–व्यवस्था, शांति और व्यवस्था और राज्य के प्रत्येक विभाग के अच्छे शासन–प्रबंध की दृष्टि से ऐसे किसी बादशाह ने भारत में शासन नहीं किया, जिसमें शाहजहां की तुलना की जा सके।"

18.4.3. आर्थिक दृष्टि से स्वर्णकाल – शाहजहां के समय व्यापार–वाणिज्य का बहुत विकास हुआ। उसने किसानों की स्थिति में सुधार किया। अतः जिस परगने की आय अकबर के समय तीन लाख रुपये थी, वह बढ़कर दस लाख रुपये हो गयी। मोरलैण्ड के अनुसार, "शाहजहां का शासनकाल कृषकों के लिए सुख और शांति का समय था और केवल राजस्व विभाग की वार्षिक आय 21 करोड़ रुपये थी।" बलख, बदख्शा एवं कन्धार के अभियानों तथा भवन निर्माण पर अत्यधिक खर्च करने के बावजूद मृत्यु के समय उसके राज–कोष में 400 लाख रुपये थे। विदेशी यात्री बर्नियर के अनुसार, "बंगाल में जीवन रक्षक वस्तुओं की बहुलता थी, जिसके कारण विदेशी यात्री इस राज्य में बसना चाहते थे। चीनी, कपास तथा रेशमी

कपड़े की कमी नहीं थी, बल्कि ये वस्तुएं विभिन्न देशों को निर्यात की जाती थी। विदेशी व्यापार साम्राज्य की आय का महत्वपूर्ण साधन था।''

18.4.4. सामाजिक दृष्टि से स्वर्णकाल — शाहजहां अपनी प्रजा को सुखी बनाने के लिये हर संभव प्रयत्न करता था। उसने दक्षिण के अकाल के समय किसानों का 1/3 भाग माफ कर दिया तथा पीड़ित व्यक्तियों के लिये मुफ्त भोजन की व्यवस्था की। वह निष्पक्ष न्याय का समर्थक था। ट्रेवर्नियर के अनुसार, ''शाहजहां अपनी प्रजा को अपनी संतान के समान समझता था और उस पर एक सम्राट के समान नहीं, वरन् एक पिता के समान राज्य करता था।'' उसने विदेशियों से भी अच्छा व्यवहार किया। एस.आर. शर्मा के अनुसार, ''यद्यपि साम्राज्य में धनवानों की अपेक्षा निर्धनों की संख्या कहीं अधिक थी, तथापि जनसाधारण के लिये जीवन रक्षक वस्तुओं का अभाव नहीं था।''

18.4.5. सांस्कृतिक दृष्टि से स्वर्णकाल — शाहजहां ने कला तथा साहित्य को उदारतापूर्वक संरक्षण दिया, जिससे इनका बहुत विकास हुआ। के.टी. शाह के अनुसार, ''शाहजहां के समय में असाधारण सांस्कृतिक उन्नति का मुख्य कारण यह था कि सम्राट बड़ी उदारता से प्रत्येक कलाकार को संरक्षण प्रदान करता था और समय–समय पर पुरस्कारों द्वारा उन्हें प्रोत्साहन भी देता था।''

18.4.6. स्थापत्य कला — शाहजहां महान भवन निर्माता था। उसने दिल्ली, आगरा आदि स्थानों पर अनेक भव्य भवन बनवाये। पहले भवन लाल पत्थर के बनते थे, जबकि शाहजहां के समय में अधिकतर भवन संगमरमर के बने। उसके द्वारा निर्मित भवन पूर्ववर्ती भवनों से भव्य तथा कलात्मक हैं। पर्सी ब्राउन के अनुसार, ''शाहजहां ने मुगल भवनों को लाल पत्थरों से निर्मित पाया और उन्हें संगमरमर के रूप में छोड़ा।''

शाहजहां ने अपनी बेगम मुमताजमहल की याद में आगरा में ताजमहल बनवाया, जो विश्व की सुन्दरतम इमारतों में गिना जाता है। लेखकों ने इसे 'दाम्पत्य प्रेम तथा अनुराग का द्वितीय स्मारक', 'काल के गाल पर अमिट आंसू', 'पत्थर द्वारा प्रेम की अभिव्यक्ति', 'संगमरमर में साकार स्वप्न' आदि कहकर इसकी प्रशंसा की जाती है। फ्रांसीसी यात्री ट्रेवर्नियर के अनुसार, ''ताजमहल 22 वर्षों में बनकर पूरा हुआ, तथा इस पर तीन करोड़ रुपये खर्चा आया। पर्सी ब्राउन के अनुसार, ''यमुना के तट पर, आकर्षक उद्यानों के मध्य स्थित इस द्वितीय भवन को देखकर ऐसी अनुभूति होती है, मानों प्रकृति और मानव ने मिलकर संजोया हो।'' शाहजहां ने आगरा में मोती मस्जिद बनवायी। निहालसिंह के अनुसार, ''मोती मस्जिद को बनाने वाले कलाकारों ने इसके पत्थरों द्वारा यह सूक्ष्म विचार प्रकट करने का प्रयत्न किया है, ''आत्मा सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने के लिये निरन्तर अभिलाषी है।'' शाहजहां ने दिल्ली में लालकिला, जामा मस्जिद, दीवाने खास आदि बनवाये। उसने नाचते हुए मोर की शक्ल में एक करोड़ रुपये की लागत का प्रसिद्ध तख्तेताऊस बनवाया। अब्दुल हमीद लाहौरी के अनुसार, ''इस सुनहरी तख्त में अस्सी लाख रुपये के हीरे जड़े हुए थे। उनमें एक ऐसा रत्न भी था, जिसका मूल्य एक लाख रुपये था।'' इसे नादिरशाह अपने साथ ले गया था।

18.4.7. चित्रकला — शाहजहां स्वयं एक श्रेष्ठ चित्रकार था। उसके दरबार में मीर हाशम, चित्रमणी, अनूपचित्र, फकीरउल्ला आदि चित्रकार शोभा बढ़ाते थे। उसके उदार संरक्षण के कारण चित्रकला का बहुत विकास हुआ।

18.4.8. संगीतकला — शाहजहां संगीत प्रेमी तथा अच्छा गायक था। उसने रामदास, महापात्र, जगन्नाथ, जनार्दन भट्ट, लाल खां, सुखसेन आदि संगीतज्ञों को अपने दरबार में आश्रय दिया था। सर जे.एन. सरकार के अनुसार, ''सम्राट स्वयं एक अच्छा गायक था। गाते समय उसकी आवाज इतनी मधुर होती थी कि श्रोतागण आनन्द–विभोर हो उठते थे। शाहजहां के दरबार में कुछ गायिकाएं भी थीं, जो अपने संगीत द्वारा सम्राट तथा उसके दरबारियों का मनोरंजन करती थी।''

18.4.9. साहित्य — शाहजहां के समय हिन्दी एवं फारसी साहित्य का बहुत विकास हुआ। उसके दरबारी विद्वान सुन्दरदास ने 'सुन्दर श्रृंगार' नामक ग्रंथ लिखा। उसे शाहजहां ने कविराय एवं महाकविराय की उपाधियां प्रदान की थी। सेनापति कविन्द्राचार्य ने 'कविता रत्नाकर' नामक ग्रंथ लिखा। उसके दरबार में अब्दुल कासिम, शेख नजीरी, शेख बहलोल कादिरी आदि फारसी विद्वान् थे। इस काल में अनेक फारसी ग्रंथ रचे गये, जिनमें अब्दुल हमीद लाहौरी कृत 'बादशाहनामा' प्रमुख है। डॉ. बी.पी. सक्सेना के अनुसार, ''शाहजहां का युग प्रायः उस समय से मिल जाता है, जिसे हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रगति का सबसे गौरवमय युग कहा जाता है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस प्रकार शाहजहां के शासनकाल में सभी क्षेत्रों में उन्नति हुई तथा साम्राज्य गौरव के चरम शिखर पर जा पहुंचा। एल.पी. शर्मा के अनुसार, ''शाहजहां के युग में बहुत कुछ ऐसा था, जो कीर्तिमय था तथा उसमें अद्वितीय सम्पन्नता के अनेक ऐसे संशयरहित चिन्ह थे, जिसके कारण उसे साम्राज्य का स्वर्णकाल कहना न्यायपूर्ण है।'' एलफिन्स्टन ने शाहजहां के काल के बारे में लिखा है, ''शाहजहां का काल भारतीय इतिहास में सर्वाधिक समृद्धि का काल था।'' विलियम हण्टर ने लिखा है, ''शाहजहां के समय में मुगल–साम्राज्य अपनी शक्ति और ऐश्वर्य की पराकाष्ठा पर पहुंच गया।'' सर रिचर्ड बर्न ने लिखा है, ''शाहजहां ने 31 वर्ष शासन किया था। उस समय उसके वंश का साम्राज्य प्रतिष्ठा और सम्पत्ति की चरम–सीमा पर पहुंच गया।''

18.5. स्वर्णकाल के विपक्ष में तर्क :

कुछ इतिहासकार शाहजहां के शासनकाल को स्वर्णयुग नहीं मानते हैं। एडवर्डस् एवं गैरेट के अनुसार, ''विदेशी यात्रियों तथा भारतीय इतिहासकारों ने शाहजहां के सुन्दर भवनों और मुगल दरबार की सज्जा से प्रभावित होकर ही उसके शासनकाल की प्रशंसा की है।'' बर्नियर के अनुसार, ''देश के प्रमुख व्यक्ति अच्छे कानूनों से अनभिज्ञ नहीं थे, लेकिन उच्च पदाधिकारी उनकी उपेक्षा करते थे। देश के प्रमुख व्यक्तियों में अवसर से लाभ उठाने की प्रवृत्ति थी। प्रान्तीय सूबेदार दुराचारी, अत्याचारी और महत्वाकांक्षी थे। प्रजा में निराशा व्याप्त थी और उसका उत्साह मर चुका था। किसानों की बुरी तरह दमन किया जाता था। दरबार की शान बनाये रखने के लिये और प्रजा के दमन के लिये रखी हुई विशाल सेना का खर्च उठाने के कारण देश बर्बाद हो गया था। प्रजा के जो कष्ट थे, उनका वर्णन करने के लिये काफी शब्द ही नहीं मिलते।''

एस.आर. शर्मा तथा डॉ. वी.ए. स्मिथ उसके शासनकाल को स्वर्णयुग मानकर अपशकुन का सूचक मानते हैं। शाहजहां के शासनकाल को स्वर्ण युग माने जाने के विपक्ष में निम्न तर्क दिये जाते हैं–

1. शाहजहां ने जहांगीर के शासनकाल में उसके विरूद्ध विद्रोह किया था।

2. शाहजहां द्वारा भवन निर्माण पर व्यय किये गये अपार धन से साम्राज्य की आर्थिक स्थिति दुर्बल हो गयी। एडवर्ड्स एवं गैरेट के अनुसार, ''इन भव्य भवनों के निर्माण में जो अपार सम्पत्ति व्यय की गयी थी, वह अमीरों के धर को छीनकर, लूटमार कर, प्रजा पर अत्यधिक कर लगाकर इकट्ठी की गयी थी। मजदूरों से प्रायः जबरदस्ती काम लिया जाता था। इस प्रकार राजसी शान–शौकत के लिये जनसाधारण का अत्यधिक शोषण किया गया था।''

3. शाहजहां के मध्य एशिया तथा कन्धार के असफल अभियानों से साम्राज्य के जन–धन की अपार क्षति हुई एवं मुगल गौरव को धक्का लगा।

4. शाहजहां के समय जनता की स्थिति खराब थी। उसके शासनकाल में पड़े अकाल में, ''मनुष्य एक दूसरे को खाने लगे थे और पुत्र प्रेम की अपेक्षा पुत्र के मांस को अधिक अच्छा समझने लगे थे।'' लाहौरी के अनुसार, ''अंत में निर्धनता इस हद तक पहुंच गयी कि मनुष्यों ने एक–दूसरे का भक्षण करना आरम्भ कर दिया। मृतकों की संख्या इतनी अधिक थी कि सड़कों का आवागमन रुक गया और वे मनुष्य, जिनकी यातनाएं मृत्यु के रूप में परिणत न हुई तथा जिनमें चलने–फिरने की शक्ति थी, वे अन्य कस्बों तथा गांवों में चले गये।''

5. शाहजहां ने भोग–विलास के लिये धन प्राप्त करने हेतु प्रजा पर अत्यधिक कर लगाये। वी.ए. स्मिथ के अनुसार, ''किसानों से उपज का आधा भाग कठोरता से वसूल किया जाता था। सड़कें बहुत सुरक्षित न थीं। प्रजा के सुख की दृष्टि से शाहजहां का शासन बहुत सराहनीय नहीं माना जा सकता।'' जे.एन. सरकार के अनुसार, 'शाहजहां ठाट–बाट का शौकीन तथा आमोद–प्रिय होते हुए भी अत्यन्त परिश्रमी सम्राट था, तो भी उसके राज्यकाल में मुगल वंश की अवनति का बीजारोपण हुआ।''

6. शाहजहां ने हिन्दू मंदिरों को ध्वस्त किया, यात्रा कर लगाया तथा हिन्दुओं के साथ भेद–भाव किये। उसने शियाओं के साथ भी खराब व्यवहार किया। डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव के अनुसार, ''उसके शासनकाल में प्रतिक्रियावादी भावना के बीज बोये जा चुके थे, जो फलस्वरूप मुगल वंश व साम्राज्य के पतन का मूल कारण बने। उसकी धार्मिक कट्टरता तथा असहिष्णुता ने ही औरंगजेब की प्रतिक्रियावादी शासन को जन्म दिया था।''

अतः इन दोषों के आधार पर हम शाहजहां के शासनकाल को मुगलकाल का स्वर्ण युग तो नहीं कह सकते, किन्तु उसके शासनकाल को शानदार युग मानने से भी इंकार नहीं किया जा सकता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शाहजहां के पुत्रों में उत्तराधिकार का संघर्ष – सितम्बर, 1657 ई. में शाहजहां गंभीर रूप से बीमार पड़ गया। ऐसे समय उसके चारों पुत्रों–दारा, शुजा, औरंगजेब तथा मुराद में हुए भयंकर उत्तराधिकार संघर्ष में औरंगजेब विजयी हुआ। उसने शाहजहां को कैद में डाल दिया तथा गद्दी सभी दावेदारों का सफाया कर गद्दी पर बैठ गया।

18.6. उत्तराधिकार युद्ध के कारण :

18.6.1. शाहजहां का बीमार होना – सितम्बर 1657 ई. में शाहजहां ऐसा बीमार पड़ा कि उसके बचने की कोई आशा नहीं रही। अतः चारों पुत्रों ने गद्दी पर बैठने के लिये परस्पर खूनी संघर्ष शुरू कर दिया।

18.6.2. राजकुमारों का चरित्र – शाहजहां के चारों पुत्र परस्पर विरोधी थे और उनमें कोई प्रेम नहीं था।

सबसे बड़ा शाहजादा दारा उदार विचारों वाला एवं शाहजहां की आंखों का तारा था। मनूची के अनुसार, "दारा शिकोह शानदार व्यक्तित्व और कुशल स्वभाव वाला पुरुष था। वह असाधारण, स्वतंत्र विचारवाला, उदार एवं दयालु था।" दारा के हिन्दू एवं ईसाईयों के प्रति उदार होने के कारण कट्टर–सुन्नी उसे पसंद नहीं करते थे। दारा को अपनी शक्ति पर बड़ा घमण्ड था।

शाहजहां के दूसरे नम्बर का पुत्र शुजा साहसी, वीर एवं बुद्धिमान था, किन्तु कूटनीतिज्ञ एवं चतुर नहीं था। वह विलास प्रेमी था। वह शिया होने के कारण सुन्नियों में अप्रिय था।

शाहजहां के तीसरे नम्बर का पुत्र औरंगजेब सबसे योग्य, वीर, साहसी, कूटनीतिज्ञ,चतुर एवं कुशल सेनानायक था। इरविन के अनुसार, "उसका जीवन सादा और परिश्रमी था। जीवन में उसने शायद ही कभी अवकाश मनाया हो। वह उन असाधारण मनुष्यों में एक था, जिनका विश्वास होता है कि उनके बुरे–से–बुरे और स्वार्थमय कार्य ईश्वरीय प्रेरणा से होते हैं।" उसने शहजादे के रूप में कई अभियानों पर अपनी वीरता का परिचय दिया। बर्नियर के अनुसार, "वह एक मंजा हुआ शासक और महान् सम्राट था, जिसमें अद्वितीय निपुणता और विद्वत्ता भरी थी।" औरंगजेब के कट्टर मुस्लिम होने के कारण मुस्लिम जनता उसे पसंद करती थी।

सबसे छोटा शहजादा मुराद वीर तथा साहसी था, किन्तु वह बहुत मूर्ख व अनाड़ी था और राजनीति के दांव–पेच नहीं समझता था। वह मद्यपान एवं विलासिता का प्रेमी था। लेनपूल के अनुसार, "मुराद एक वीर ववगुनक, सिंह की तरह वीर, कूटनीति में मूर्ख, शासन कार्यों में पूर्ण निराश और लोहे की धार पर अखण्ड विश्वास करने वाला व्यक्ति था। वह युद्ध क्षेत्र में साक्षातमय होता और शराबखाने में अपने साथियों में सबसे अधिक पीने वाला था।"

अतः चारों शहजादों के परस्पर विरोधी चरित्रों के कारण उनमें उत्तराधिकार युद्ध अनिवार्य था।

18.6.3. उत्तराधिकार का निश्चित नियम न होना – मुगलकाल में उत्तराधिकार का निश्चित नियम न होने के कारण पिता के विरूद्ध पुत्र का विद्रोह एक सामान्य बात हो गयी थी। सम्राट का सबसे शक्तिशाली तथा योग्य पुत्र तलवार के बल पर गद्दी पर बैठ जाता था। यद्यपि बड़े शहजादे की स्थिति दृढ़ होती थी, किन्तु अन्य शहजादों का भी गद्दी पर अधिकार होता था। अतः शाहजहां के पुत्रों में उत्तराधिकार युद्ध होना स्वाभाविक था।

18.6.4. शहजादों के पास स्वतंत्र साधन होना – उत्तराधिकार युद्ध से पहले दारा पंजाब एवं उत्तरी–पश्चिमी सीमाप्रांत का, शुजा बंगाल व उड़ीसा का, औरंगजेब दक्षिण एवं मुराद गुजरात का सूबेदार था। अतः ये शहजादे अपनी सेना एवं धन के बल पर युद्धलड़ सकते थे।

18.6.5. मुगल परम्परा – मुगल परम्परा में सत्ता प्राप्ति के लिए परिजनों का वध अनुचित नहीं माना जाता था। सफल शहजादा गद्दी के सभी दावेदारों, यहां तक कि अपने सगे भाइयों को भी मार देता था। अतः सभी शहजादे इस तरह मरने की अपेक्षा लड़कर मरना उचित समझते थे। शाहजहां के पुत्रों का भी यही विचार था।

दारा को उत्तराधिकारी नियुक्त करना तथा उसके अविवेकपूर्ण कार्य – शाहजहां ने दारा को अपना उत्तराधिकारी बना दिया। अपने पिता की बीमारी एवं अन्य महत्वपूर्ण समाचारों को गुप्तरखने के दारा ने प्रयास किये, क्योंकि उसे अपने भाइयों के विरोध का डर था। अतः उसने कुछ अविवेकपूर्ण कार्य किये। उसने आगरा से गुजरात, बंगाल तथा दक्षिण की ओर जाने वाले मार्ग बंद करवा दिए तथा दरबार में अपने भाइयों के प्रतिनिधियों को अपने पक्ष में कर लिया। उसके इन कार्यों से उसके भाई आशंकित हो गये और युद्ध की तैयारी करने लगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.6.6. शाहजहां की दुर्बलता – शाहजहां अपनी कमजोरी के कारण झरोखे में दर्शन नहीं दे सका, अपनी मृत्यु की अफवाह का खण्डन नहीं कर सका और अपने पुत्रों के उत्तराधिकार युद्ध को न टाल सका। वह अपने सरदारों एवं अमीरों के सहयोग से भी कोई कदम नहीं उठा सका। अतः उसे इस खूनी संघर्ष को मूक दर्शक बनकर देखना पड़ा।

18.6.7. युद्ध की घटनायें – दारा के उत्तराधिकरी बनने का समाचार मिलने पर सभी शहजादे युद्ध की तैयारी में जुट गए। शुजा ने स्वयंग बंगाल का तथा मुराद ने स्वयं को गुजरात का स्वतंत्र शासक घोषित करते हुए अपने नाम के सिक्के चलाए। औरंगजेब ने कूटनीति का परिचय देते हुए ऐसी कोई घोषणा नहीं की। उसने सेना तैयार की एवं अपनी बहन रोशनआरा के माध्यम से राजधानी के समाचार प्राप्त करने लगा। उसने मुराद से एक गोपनीय संधि कर संघर्ष में विजयी होने पर साम्राज्य को आपस में बांट लेने का वचन दिया।

18.6.8. बहादुरगढ़ का युद्ध (1658 ई.) – शुजा ने विशाल सेना सहित आगरा की ओर कूच किया। बनारस के पास बहादुरगढ़ नामक स्थान पर वह दारा के पुत्र सुलेमान शिकोह एवं राजपूत सेनापति जयसिंह से परास्त हुआ और बंगाल की तरफ भाग गया।

18.6.9. धरमत का युद्ध (अप्रैल, 1658 ई.) – आपस में संधि करने के पश्चात् औरंगजेब तथा मुराद की संयुक्त सेना ने आगरा की तरफ कूच किया। दारा ने जसवंत सिंह राठौड़ एवं मीर कासिम खां के नेतृत्व में विशाल सेना उनके विरूद्ध भेजी। उज्जैन के निकट भरमत नामक स्थान पर हुए युद्ध में औरंगजेब तथा मुराद की विजय हुई। जसवंत सिंह राजस्थान भाग गया और औरंगजेब तथा मुराद ने आगरा की ओर प्रस्थान किया।

18.6.10. सामूगढ़ का युद्ध (मई, 1658 ई.) – धरमत की पराजय के बाद दारा ने विशाल सेनाजुटाकर 29 मई, 1658 ई. को सामूगढ़ नामक स्थान पर औरंगजेब व मुराद से युद्ध किया, किन्तु वहपरास्त हुआ। दुर्भाग्यवश दारा पराजित हुआ था क्योंकि "दारा ने अपने हाथी के घायल हो जाने पर उससे उतरकर घोड़े पर सवार होने की गलती की। सेना ने उसे मरा हुआ मान लिया। केवल इसी एक कार्य ने युद्ध के परिणाम को बदल दिया।" स्मिथ के अनुसार, "सामूगढ़ के युद्ध ने क्रियात्मक रूप से उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध का निर्णय कर दिया और औरंगजेब को हिन्दुस्तान का स्वामी बना दिया।"

18.6.11. औरंगजेब का आगरा पर अधिकार (जून, 1658 ई.) – औरंगजेब ने आगरा को घेर लिया तथा यमुना नदी से किले व शहर को जाने वाली पानी की सप्लाई काट दी। विवश शाहजहां ने दुर्ग औरंगजेब को सौंप दिया। औरंगजेब ने शाहजहां को कैदखाने में डाल दिया, जहां 1666 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी। उसे ताजमहल में ही दफना दिया गया।

18.6.12. मुराद का वध – सामूगढ़ के युद्ध के पश्चात् मुराद को संदेह हो गया कि औरंगजेब पूरा साम्राज्य हड़पना चाहता है। अतः उसने बीस हजार सैनिकों को एकत्रित किया। चालाक औरंगजेब ने एक दाव में मुराद को बहुत शराब पिलायी तथा उसके सैनिकों को अपनी तरफ मिलाकर उसका वध कर दिया।

18.6.13. दारा व उसके पुत्रों का वध – सामूगढ़ में पराजय के बाद दारा मुल्तान, सिन्ध, काठियावाड़, गुजरात आदि स्थानों पर भटकता फिरा, किन्तु उसने साहस नहीं छोड़ा। उसने एक बार पीछा करती हुई मुगल सेना का सामना किया, किन्तु वह परास्त हुआ। अब उसने सिन्ध के सूबेदार मलिक जीवन के यहां आश्रय लिया, किन्तु उसने विश्वासघात करते हुए उसे तथा उसके पुत्र सिफर शिकोह को औरंगजेब के हवाले कर दिया। औरंगजेब ने दारा का फटे कपड़ों में गंदे हाथी पर जुलूस निकाला तथा उस पर इस्लाम छोड़ने का आरोप लगाकर उसका वध करवा दिया। उसके सिर को शाहजहां के पास भेजा गया तथा धड़ को दिल्ली में घुमाया गया। अंत में उसे हुमायूं के मकबरे में दफना दिया गया। उसके साथ उसके छोटे पुत्र सिफर शिकोह का भी वध कर दिया गया तथा कुछ समय बाद उसके बड़े पुत्र सुलेमान शिकोह को भी जहर देकर मरवा दिया गया।

18.6.14. शुजा का अंत – बहादुरगढ़ के युद्ध नें परास्त होने के बाद शुजा पटना भाग गया था। औरंगजेब ने उसे इलाहाबाद के निकट परास्त किया, किन्तु वह अराकान भाग गया, जहां 1660 ई. में मग जाति के लोगों ने उसका वध कर दिया। इस प्रकार अपने भाइयों का सफाया करके तथा अपने बाप को कैद करके औरंगजेब 1658 में गद्दी पर बैठा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

18.7. शाहजहां के अंतिम दिन :

आगरा दुर्ग के शाह बुर्ज में आठ वर्ष तक शाहजहां ने बंदी जीवन व्यतीत किया। इस महल में रहते हुए वह प्रायः ताजमहल को देखा करता था। यद्यपि उसको सर्वसुखदायक सामग्री सुलभ थी तथा उसकी प्रिय पुत्री जहानआरा सदैव उसकी सेवा में रहती थी, फिर भी शंका के कारण बाहरी सम्पर्क का उसे अवसर नहीं दिया जाता था। उससे भेंट करने के लिए सरकारी आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती थी। दारा, मुराद और शुजा की मृत्यु से वृद्ध पिता की हृदय वेदना तीव्र हो उठी। उसने अपना सारा समय ईश्वरीय प्रार्थना में लगा दिया। उसे केवल अपनी पुत्री जहानआरा की पितृभक्तिपूर्ण सेवाओं से संतुष्टि मिलती थी। जनवरी 1666 ई. में वह बीमार हुआ और 22 जनवरी 1666 ई. को 74 वर्ष की आयु में इस संसार को छोड़ चल बसा। कहा जाता है कि अपने अंतिम क्षण तक वह ताजमहल की ओर अपलक नेत्रों से देखता रहा। कठोर औरंगजेब अपने पिता की मृत्यु के बाद भी बैर को न भुला पाया और शाही ठाठ से उसका अंतिम संस्कार करने की अनुमति नहीं दी। साधारण नौकरों व हिजड़ों के द्वारा उसकी अर्थी उठवाकर ताजमहल में अपनी प्रियतमा मुमताज के पार्श्व में उसको दफना दिया गया।

18.8. शाहजहां का मूल्यांकन :

शाहजहां के चरित्र और सफलताओं के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। वी.ए. स्मिथ के मतानुसार शाहजहां मनुष्य और शासक दोनों ही रूप में असफल रहा। किन्तु तत्कालीन भारतीय इतिहासकारों व यूरोपीय यात्रियों के मतानुसार शासक के रूप में शाहजहां महान था और पूर्णतया सफल था। किन्तु उपर्युक्त दोनों ही मत आंशिक रूप से ही सत्य है।

शाहजहां आंशिक रूप से उदार, प्रगतिशील और अपने पिता व पितामह का योग्य उत्तराधिकारी था। स्मिथ के अनुसार वह अपने पिता का आज्ञाकारी पुत्र नहीं था, क्योंकि वह कई वर्षों तक अपने पिता के विरूद्ध विद्रोह करता रहा। किन्तु सत्य तो यह है कि यह परम्परा तो उसे पूर्वजों से प्राप्त हुई और फिर अपनी सौतेली मां नूरजहां के ईर्ष्यापूर्ण व्यवहार से वह विद्रोह करने पर विवश हुआ था। अतः इसमें शाहजहां को दोष देना अनुचित है। स्मिथ ने यह भी लिखा है कि मुमताजमहल की मृत्यु के बाद भी अनेक पत्नियों को रखने के कारण वह आदर्श पति भी नहीं था। लेकिन मुगल राजकुमार तो सभी बहुपत्नीवादी थे और दाम्पत्य प्रेम के प्रति भक्ति की भावना नहीं रखते थे, लेकिन शाहजहां ने तो 20 वर्षों तक मुमताज के प्रति अपने प्रेम को अचल और पवित्र रखा था। यद्यपि वह व्यक्तिगत जीवन में सुशील, दयालु और सज्जन था किन्तु उसमें मैत्री और दया के भाव इतनी मात्रा में नहीं पाये जाते जितने बाबर, अकबर और जहांगीर में परिलक्षित होते हैं। शाहजहां कट्टर सुन्नी था, अतः अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णु था, फिर भी उसने अपने पुत्र दारा की धार्मिक उदारता का कभी विरोध नहीं किया। शाहजहां को साहित्य व ललित कलाओं से अत्यधिक प्रेम था। दरबार में हो अथवा यात्रा में, वह सदैव कलाप्रेमियों से घिरा रहता था। हिन्दुओं को उच्च पद देने में उसने अपने पिता तथा पितामह का अनुकरण किया था।

शाहजहां अपने पिता की अपेक्षा अधिक योग्य सैनिक तथा सेनापति था। अपनी वृद्धावस्था तक वह युद्ध की योजनाएं बनाता रहा और सैन्य संचालन करता रहा। लेकिन फारस के शाह से कन्धार लेने के तीनों प्रयास निराशा तथा जन–धन व मानहानि में समाप्त हुए। उसकी मध्य एशिया विषयक नीति भी पूर्णतः असफल रही। इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शाहजहां के समय मुगल सेना की दशा इतनी अच्छी नहीं थी जितनी अकबर के समय थी। शाहजहां का राज्यकाल भारत के मध्ययुगीन इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से प्रसिद्ध है। यह साम्राज्य की समृद्धि, वैभव और स्थापत्यकला की दृष्टि से सत्य कहा जा सकता है। शाहजहां के काल की कला और साहित्य का विस्तृत वर्णन यथा स्थान पर आगे किया जायेगा।

शाहजहां उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ व कुशल प्रबंधक था। उसने मनसबदारों का वेतन भी कम करने का प्रयास किया तथा उन्हें अपने पदानुसार सेना की एक निश्चित संख्या रखने के लिए भी बाध्य किया। उसने भूमि कर की दर 1/3 से बढ़ा कर 1/2 कर दी, जिससे राज्य की आय बढ़कर 4 करोड़ रुपये वार्षिक हो गयी। कृषकों पर भार अब अधिक हो गया, जिससे उनकी दशा खराब हो गयी। शाहजहां ने भी अपने पूर्वजों की भांति अंतिम न्यायाधीश का कार्य करना जारी रखा। वह दुष्ट मनुष्यों को कठोर दण्ड देने तथा निष्पक्ष न्याय करने के लिए प्रसिद्ध था। राय भारमल ने शाहजहां के न्याय प्रशासन का वर्णन करते हुए लिखा है, ''यद्यपि वह देश इतना बड़ा है फिर भी फरियादें इतनी कम थी कि सप्ताह में केवल एक दिन–बुधवार ... न्याय के लिए रखा गया था। ... यदि कोई व्यक्ति अपने मुकदमे के फैसले से संतुष्ट न होता तो वह सूबेदार अथवा सूबे के काजी के यहां अपील करता और मामले की पुनः जांच की जाती तथा फैसला बड़ी सावधानी और विवेक से किया जाता जिससे कहीं ऐसा न हो कि कोई सम्राट के सामने जिक्र कर दे कि न्याय नहीं हुआ है।'' अतः अपनी धर्मान्धता तथा कर वृद्धि की नीति का अनुसरण करते हुए भी वह एक जनप्रिय शासक था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शाहजहां के राज्यकाल में मुगल वंश की अवनति का बीजारोपण भी हुआ। उसकी धर्मान्धता तथा अनादरता औरंगजेब के कट्टर शासन की अग्रदूत थी। उसकी धन लोलुपता ने उसे जनता का भार बढ़ाने के लिए बाध्य किया। शाहजहां के दरबार का वैभव और शाही ठाठ जनता के शोषण पर आधारित थी। उसकी भेंट तथा उपहार स्वीकार करने की प्रथा ने एक प्रकार से रिश्वत को प्रोत्साहन दिया और राजकीय परिवार तथा अमीरों व सामन्तों में भी यह एक प्रथा का रूप धारण कर गई। इससे राज्य प्रबंध में भ्रष्टाचार फैल गया। उसकी विलासप्रियता ने जनता का नैतिक स्तर नीचा करने में योगदान दिया। एलफिंस्टन ने तो यहां तक लिखा है कि शाहजहां का अपनी लड़की जहानआरा से यौन सम्बन्ध था। डा. वी.ए.पी. सक्सेना ने इस आरोप का जबरदस्त खण्डन किया है। शाहजहां के चारित्रिक एवं प्रशासनिक दोषों पर पर्दा डालकर केवल ऊपरी तड़क भड़क के आधार पर शाहजहां के काल को स्वर्ण युग की संज्ञा देना उचित नहीं है।

18.9 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 मुमताज महल कौन थी?

अ. शाहजहां की बेटी ब. शाहजहां की पत्नि

स. शाहजहां की माँ द. शाहजहाँ की बहन

उत्तर – ....

प्रश्न 2 शाहजहां की दक्षिण नीति पर टिप्पणी लिखिए। (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 ''क्या शाहजहां शासनकाल मुगलकाल का स्वर्णकाल था।'' सिद्ध करिये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 19
औरंगजेब

संरचना

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रारम्भिक जीवन
19.2 राज्याभिषेक
19.3 औरगंजेब के प्रारम्भिक कार्य
19.4 औरगंजेब की राजपूत नीति
    19.4.1 शत्रुता की नीति का प्रदर्शन
    19.4.2 अजीतसिंह से अन्याय एवं विरोध
    19.4.3 मारवाड़ पर आक्रमण
    19.4.4 मेवाड़ के साथ संधि
    19.4.5 मारवाड़ द्वारा संघर्ष
    19.4.6 राजपूत नीति के परिणाम
19.5 औरंगजेब की दक्षिण नीति
19.6 औरंगजेब के दक्षिणी अभियान
    19.6.1 बीजापुर पर अभियान
    19.6.2 गोलकुण्डा पर अभियान
    19.6.3 मराठों से संघर्ष
    19.6.4 दक्षिण नीति के परिणाम
    19.6.5 औरंगजेब तथा मराठे
    19.6.6 शाइस्ता खां तथा शिवाजी
    19.6.7 जयसिंह तथा दिलेर खां का आक्रमण
    19.6.8 मुगलों से पुनः संघर्ष एवं राज्याभिषेक
    19.6.9 शाम्भाजी का वध
    19.6.10 रायगढ़ पर अधिकार
    19.6.11 जिन्जी दुर्ग पर अधिकार
19.7 औरंगजेब के अन्तिम प्रयास
19.8 औरंगजेब के मराठों के विरूद्ध असफलता के कारण
19.9 औरंगजेब के अन्तिम दिन और मृत्यु
19.10 औरंगजेब का मूल्यांकन
19.11 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में मुगल सम्राट का विस्तृत विवेचन किया है तथा विशेष रूप से औरंगजैब की राजपूतों से नीति विशेषतः मारवाड़ और मेवाड़ के सन्दर्भ में। इसके साथ ही औरंगजेब की दक्षिण की नीति विशेषतः गोलकुण्डा, बीजापुर, और मराठों के सन्दर्भ में। इन नीतियों से पड़ने वाले प्रभाव को भी विवेचित किया गया है।

19.1. प्रारम्भिक जीवन :

मुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब का जन्म 3 नवम्बर, 1618 ई. को उज्जैन के निकट दोहद में हुआ था। उस समय उसका बाबा

जहांगीर दक्षिण से आगरा लौट रहा था। अपने पिता शाहजहां के विद्रोहकाल में औरंगजेब और उसके बड़े भाई दारा को अत्यधिक कष्ट सहने पड़े। इन दोनों को नूरजहां के पास बंधन के रूप में रखा गया और जब शाहजहां ने समर्पण कर दिया और उसे क्षमा कर दिया गया, तब इन दोनों को मुक्त किया गया। इन सब बातों के कारण उसकी शिक्षा 10 वर्ष की आयु में योग्य शिक्षकों के संरक्षण में प्रारम्भ की गयी। वह बहुत प्रखर–बुद्धि तथा परिश्रमी विद्यार्थी था। वह कुरान और हदीस जैसी धार्मिक पुस्तकों का पण्डित हो गया। अल्पायु में ही वह अरबी और फारसी का अच्छा ज्ञाता हो गया। साथ में उसने तुर्की तथा हिन्दी भी सीख ली। उसे धार्मिक विषयों के अध्ययन में विशेष रूचि थी, परन्तु चित्रकला, संगीत तथा अन्य ललित–कलाओं की ओर उसने कोई ध्यान नहीं दिया। इसके साथ–साथ उसे सैनिक शिक्षा का भी उचित ज्ञान कराया गया और वह शीघ्र ही कुशल सैनिक बन गया। 1634 ई. के अंत में उसे दस हजार जात और चार हजार सवार के पद पर मनसबदार नियुक्त किया गयां ओरछा के जूझारसिंह के विरूद्ध बुन्देल आक्रमण का भार उसे ही सौंपा गया। वहां पर उसने कूटनीति और युद्ध का प्रथम अनुभव प्राप्त कियां इसके बाद उसे दक्षिण का राज्यपाल नियुक्त किया गया जहां वह 1636 ई. से 1644 ई. तक रहा। यहां अपने कार्यों के कारण वह एक कुशल सैनिक, प्रबंधक तथा कूटनीतिक माना जाने लगा। 18 मई, 1637 ई. को फारस के राजघराने के शाहनवाज की पुत्री दिलरास बानो बेगम के साथ औरंगजेब का पाणिग्रहण–संस्कार हुआ। अपने बड़े भाई दारा से विचार–भेद हो जाने के कारण 1644 ई. में उसे दक्षिण के राज्यपाल की नौकरी से त्यागपत्र देना पड़ा। परन्तु फरवरी 1645 ई. में उसे क्षमा कर दिया गया और गुजरात का राज्यपाल नियुक्त किया गयां वहां वह 1647 ई. तक रहा जहां से उसे बल्ख के आक्रमण का भार संभालना पड़ा। कुशल सेनापति होते हुए भी औरंगजेब ट्रान्स–ऑक्सियाना विजित न कर सका। सम्राट ने उसे वापस बुला लिया और मुल्तान का राज्यपाल नियुक्त किया, जिस पद पर वह 1648 ई. से 1652 ई. तक कार्य करता रहा। इसी बीच उसे 1649 ई. और 1652 ई. में दो बार कन्धार को पुनर्विजित करने के लिए भेजा गया, परन्तु इन दोनों आक्रमणों में वह असफल रहा। इन असफलताओं के कारण शाहजहां बहुत अप्रसन्न हुआ और 1652 ई. में उसे पुनः दक्षिण का राज्यपाज बनाकर भेज दिया। औरंगजेब इस बार दक्षिण भारत में 1652 ई. से 1658 ई. तक राज्यपाल रहा।

अपने राज्यपाल–काल में औरंगजेब ने उच्चकोटि की प्रबंध–शक्ति तथा कर्त्तव्य–परायणता का परिचय दिया। परन्तु इसके साथ–साथ वह अपने दल का शक्तिशाली संगठन करके अपने पिता का सिंहासन प्राप्त करने की चेष्टा में भी लगा रहता था। कट्टर सुन्नी होने के कारण वह हिन्दुओं और विशेषकर राजपूतों को नापसन्द करता था। धार्मिक असहिष्णुता की नीति का पालन करके उसने खुल्लमखुल्ला राजपूतों को अपमानित भी किया। बीजापुर और गोलकुण्डा के युद्ध में जब विजयश्री उसके चरण चूमने वाली थी तभी उसने अपने पिता शाहजहां की बीमारी और मृत्यु की अफवाहें सुनीं। यह सुनते ही उसने उत्तराधिकारी होने तथा सिंहासन प्राप्त करने का इच्छुक होने के नाते उत्तराधिकार युद्ध की तैयारियां प्रारम्भ कर दी।

19.2. राज्याभिषेक :

आगरा दुर्ग को विजित कर तथा अपने पिता को उसमें बंदी बनाकर मुरादबख्श के सिंहासन प्राप्त करने के दावों को समाप्त करने के बाद 31 जुलाई, 1658 ई. को हड़बड़ी में औरंगजेब बहादुर आलमगीर बादशाह गाजी की उपाधि ग्रहण की। क्योंकि उसे दारा का पीछा करके शुजा के साथ युद्ध में फैसला करना बाकी था इसलिए उसने उत्सव तथा जश्न स्थगित कर दिये। खजुआ और अजमेर पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् 15 मई, 1659 ई. को सम्राट औरंगजेब ने दिल्ली में एक शानदार जुलूस के साथ प्रवेश किया। शाहजहां के भव्य महल में बहुत ठाट और धूमधाम के साथ उसका राज्याभिषेक–संस्कार सम्पन्न हुआ। 15 मई, 1659 ई. को ज्योतिषियों द्वारा बताये हुए समय, सूर्योदय से 3 घंटे 15 मिनट उपरान्त, उसने मयूर–सिंहासन पर आसन ग्रहण किया। राज्य में कई दिन तक खुशियां मनायी गयीं और उत्सव हुए। औरंगजेब चाहता था कि उसका राज्याभिषेक इतनी शान से मनाया जाय, जैसा कि किसी भी मुगल बादशाह के समय में न हुआ हो। इस कारण इस अवसर पर दिल खोलकर रुपये खर्च किये गये। बड़ी–बड़ी दावतें की गयीं तथा वृहत पैमाने पर रोशनियां की गयीं। अनेक सामन्तों तथा सरदारों की पद–वृद्धि तथा अनेक नये अफसर भी नियुक्त किये गये।

19.3. औरंगजेब के प्रारंभिक कार्य :

औरंगजेब के शासक बनते समय राज्य में अव्यवस्था थी। अतः उसने निम्न प्रारम्भिक कार्य किये–

1. औरंगजेब ने सूबेदारों की इस तरह तबदीलियां कर दीं कि वे मिलकर विद्रोह न कर सकें।

2. औरंगजेब ने राहदारी कर, पंढारी कर, अनाज कर आदि अनावश्यक कर हटाकर प्रजा को संतुष्ट करने का प्रयास किया। उसने हिन्दुओं पर से तीर्थयात्रा कर, गंगा में अस्थि प्रवाह कर, पुत्र जन्म पर कर आदि अनेक कर हटा दिये।

3. औरंगजेब ने अपनी मुस्लिम प्रजा को प्रसन्न करने के लिए सिक्कों पर 'कलमा' अंकित करवाना समाप्त कर दिया,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ताकि वह हिन्दुओं के हाथों से छूकर अपवित्र न हो। ईरानी त्यौहार नौरोज को मनाना बंद कर दिया। उसने बड़े–बड़े नगरों में मुस्लिम लोगों को मद्यपान, जुआ एवं वेश्यागमन से रोकने हेतु 'मुहतसिब' नामक अधिकारी नियुक्त किये। उसने कई मस्जिदें बनवाईं व कई का पुनर्निमार्ण करवाया। उसने धार्मिक कार्यों हेतु इमाम तथा मुऊजनों को नियुक्त किया। उसने दारा के सूफी साथियों को दण्डित किया एवं शिरोमणि सरमद को इस्लाम की निन्दा के आरोप में मृत्युदण्ड दे दिया। उसने हजारों शिया मुसलमानों को मरवा दिया।

19.4. औरंगजेब की राजपूत नीति :

धर्मान्ध औरंगजेब ने जयसिंह तथा जसवंत सिंह की मृत्यु के बाद राजपूतों के प्रति प्रतिशोध की नीति को अपनाया। इस तरह उसने राजपूतों को अपना शत्रु बना दिया। इससे मुगल साम्राज्य को जन–धन की भारी हानि हुई और उसका पतन हो गया।

19.4.1. शत्रुता की नीति का प्रदर्शन – 1678 ई. में मारवाड़ के राजा तथा मुगल फौजदार जसवंतसिंह की जमरौद (काबुल) में मृत्यु हो गई। जयसिंह की मृत्यु पहले ही हो चुकी थी। अतः औरंगजेब ने मारवाड़ को हड़पने का निश्चय किया। उसने मारवाड़ के हिन्दू मंदिरों को गिराने तथा वहां की हिन्दू जनता से जजिया कर वसूलने का आदेश दिया। उसने जसवंत सिंह के सम्बन्धी इन्द्रसिंह से 36 लाख रुपये लेकर उसे मारवाड़ का शासक बना दिया। अतः राजपूत असंतुष्ट हो गये।

19.4.2. अजीतसिंह से अन्याय एवं विरोध – इसी समय जसवंतसिंह की दो विधवा रानियों ने मारवाड़ जाते समय मार्ग में दो पुत्रों को जन्म दिया। इनमें एक तो मर गया, किन्तु दूसरा अजीतसिंह जीवित रहा। अतः स्वामिभक्त राजपूत सरदार इन्हें लेकर औरंगजेब के पास आये और उससे अजीतसिंह को मारवाड़ का शासक मान लेने की प्रार्थना की, किन्तु औरंगजेब ने उसे हरम में भेजने का आदेश दिया और शर्त रखी कि ऐसा करने से पहले अजीतसिंह को इस्लाम स्वीकार करना पड़ेगा। राजपूत इससे क्रूद्ध हो गये। वीर दुर्गादास ने अपने साथियों की मदद से अजीतसिंह तथा उसकी माताओं को मुक्त करवाकर मारवाड़ भेज दिया। मुगल सेना ने उनका पीछा किया, किन्तु उसे परास्त होना पड़ा।

19.4.19. मारवाड़ पर आक्रमण – औरंगजेब ने चाल चलते हुए एक ग्वाले के बच्चे को हरम में लाकर उसके असली अजीतसिंह होने की घोषणा की, किन्तु वह मारवाड़ की जनता को बेवकूफ न बना सका। मारवाड़ की जनता अजीतसिंह के साथ हो गई और इन्द्रसिंह को हटा दिया। सम्राट की आज्ञा पर शाहजादा अकबर ने मारवाड़ पर अधिकार कर लिया और उसे मुगल फौजदारों में बांट दिया। उसने मारवाड़ के मंदिरों को नष्ट करवाकर मस्जिदें बनवायीं। राजपूत पहाड़ों तथा जंगलों में छुपकर संघर्ष करते रहे।

मेवाड़ का विद्रोह – मेवाड़ के राणा राजसिंह ने मारवाड़ की दुर्दशा से क्रुद्ध होकर औरंगजेब के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। मुगलों ने मेवाड़ पर आक्रमण कर लूट–मार की एवं 173 मंदिरों का विनाश किया। राणा राजसिंह पहाड़ियों में चला गया और गुरिल्ला प्रणाली से लड़ता रहा। अब औरंगजेब युद्ध का कार्य अकबर को सौंपकर दिल्ली लौट गया। राजपूतों ने अकबर को बहुत क्षति पहुंचाई। अतः औरंगजेब ने अकबर को मारवाड़ में तथा शहजादा आजम को मेवाड़ में नियुक्त किया, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ।

अकबर का विद्रोह – मारवाड़ में भी अकबर असफल रहा। अकबर ने सम्राट बनने के लिए राजपूतों से गठजोड़ किया तथा अपने पिता के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। औरंगजेब विशाल सेना सहित अजमेर के पास आ डटा। उसने चालाकी से काम लेते हुए जाली पत्रों द्वारा अकबर तथा राजपूतों में संदेह उत्पन्न कर दिया। अकबर ने भागकर शिवाजी के पुत्र शम्भाजी के यहां शरण ली। उसका मराठों से गठजोड़ भी औरंगजेब के लिए चिंता का कारण बना रहा।

19.4.4. मेवाड़ के साथ संधि (1681 ई.) – औरंगजेब ने अपनी सेना को दक्षिण की तरफ मोड़ने के लिए मेवाड़ के साथ संधि करना उचित समझा। अतः जून, 1681 ई. को औरंगजेब तथा मेवाड़ के राणा जयसिंह के बीच संधि हो गयी, जिसके अनुसार–

1. जयसिंह को मेवाड़ का राणा मान लिया गया एवं उसे पांच हजार का मनसब दिया गया।
2. जजिया कर के स्थान पर मुगल सम्राट को राणा ने कुछ परगने दे दिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. राणा ने चित्तौड़ के दुर्ग का पुनर्निर्माण न करना स्वीकार किया।

4. राणा ने मारवाड़ को सहायता न देने का आश्वासन दिया।

19.4.5. मारवाड़ द्वारा संघर्ष – मारवाड़ ने इस संधि के बाद भी अपना संघर्ष जारी रखा। 1681 ई. से 1687 ई. तक राजपूत बिना किसी प्रसिद्ध नेता के संघर्ष करते रहे। दुर्गादास इन दिनों दक्षिण गया हुआ था। इसके बाद उन्होंने दुर्गादास के नेतृत्व में संघर्ष किया एवं दिल्ली तक जा पहुंचे। 1690 ई. में अजमेर का सूबेदार उनके हाथों परास्त हुआ। मारवाड़ का संघर्ष रुक–रुककर औरंगजेब की मृत्यु तक चलता रहा। उसकी मृत्यु के बाद 1707 ई. में अजीतसिंह मारवाड़ का शासक बन गया। औरंगजेब के पुत्र बहादुरशाह ने उसे मान्यता दे दी।

19.4.6. राजपूत नीति के परिणाम – औरंगजेब की राजपूत नीति मुगल साम्राज्य के पतन का कारण सिद्ध हुई। औरंगजेब मारवाड़ तथा मेवाड़ को निर्णायक रूप से पराजित न कर सका। औरंगजेब की राजपूत नीति के निम्न परिणाम हुए–

1. राजपूत मुगलों के शत्रु बन गये तथा अब उनका मुगल सम्राट पर विश्वास न रहा। औरंगजेब ने उनके मंदिरों का विनाश करवाया, उनसे जजिया कर वसूल किया तथा अजीतसिंह से अन्याय किया। अतः राजपूतों ने मुगलों से संघर्ष छेड़ दिया। इससे साम्राज्य में अव्यवस्था फैल गई।

2. लेनपूल ने लिखा है, "जब तक वह कट्टरपंथी अकबर के सिंहासन पर बैठा रहा, एक भी राजपूत उसे बचाने के लिए अपनी उंगली भी हिलाने को तैयार न था। औरंगजेब को अपनी दाहिनी भुजा खोकर दक्षिण के शत्रुओं के साथ युद्ध करना पड़ा।" राजपूतों ने औरंगजेब को दक्षिणी अभियानों में कोई सहयोग नहीं दिया, अतः वह दक्षिण में सफलता प्राप्त न कर सका।

3. राजपूतों से संघर्ष के कारण साम्राज्य में अव्यवस्था फैल गई। इससे राजस्थान के साथ–साथ मालवा तथा गुजरात में भी अराजकता फैल गई। अतः दक्षिण जाने वाला मार्ग असुरक्षित हो गया। साम्राज्य में लूटमार मचने से सैनिक, प्रशासनिक तथा आर्थिक शक्ति को धक्का पहुंचा। जे.एन. सरकार के अनुसार, "राजस्थान में फैली हुई गड़बड़ ने शीघ्र ही पड़ोसी प्रदेशों को अपनी लपेट में ले लिया और साम्राज्य के लिए विचित्र कठिनाइयां उत्पन्न कर दी।"

4. राजपूतों के संघर्ष से राज्य को जन–धन की बहुत हानि हुई। आर्थिक अवस्था बिगड़ गयी एवं इन अभियानों से कोई लाभ नहीं हुआ। के.एम पन्निकर के अनुसार, "इन राजपूत युद्धों ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि साम्राज्य न केवल अपनी प्रजा के सहयोग से ही वंचित है, अपितु सैनिक दृष्टिकोण से भी शक्तिशाली नहीं है।"

5. औरंगजेब के अंतिम वर्षों में राजपूतों ने अचानक हमले कर साम्राज्य को बहुत नुकसान पहुंचाया एवं शाही अभियानों को असफल कर दिया। एस.आर. शर्मा के शब्दों में, "संघर्ष के अंतिम वर्षों में राजपूतों का विरोध इतना प्रबल हो गया कि शाही सेनाओं को कई बार पराजय का सामना करना पड़ा। इस वीर जाति के योद्धाओं ने भीमसिंह और दयालदास के नेतृत्व में न केवल मुगल सेनाओं को ही नीचा दिखाया, अपितु मालवा और गुजरात के प्रदेशों में लूटमार भी की।"

6. अनेक कठिनाइयों के बाद भी राजपूत सफल हुए और अजीतसिंह मारवाड़ का शासक बन गया। इस संघर्ष ने मुगल साम्राज्य को पतन के मार्ग पर ला खड़ा किया।

19.5. औरंगजेब की दक्षिण नीति :

औरंगजेब की दक्षिण नीति भी बड़ी घातक सिद्ध हुई। सर जे.एन. सरकार के अनुसार, "जिस प्रकार नेपोलियन के स्पेन के विरूद्ध अभियान उसके लिए एक रिसता हुआ घाव सिद्ध हुए, इसी प्रकार औरंगजेब के दक्षिणी अभियान उसके साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुए।" आरंभ में मुगल सूबेदार ही दक्षिण में लड़ते रहे, किन्तु दरबार द्वारा विद्रोह कर दक्षिण चले जाने तथा मराठों से गठबंधन करने पर सम्राट ने स्वयं दक्षिणी अभियान किये। इन दक्षिणी अभियानों के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे–

1. औरंगजेब बीजापुर एवं गोलकुण्डा के शिया राज्यों तथा शक्तिशाली बनते जा रहे मराठों को कुचलना चाहता था।

2. वह अकबर के विद्रोह को दबाना चाहता था।

एस.आर. शर्मा के अनुसार, "बीजापुर और गोलकुण्डा की आंतरिक दुर्बलता तथा मराठों के प्रति उनके बढ़ते हुए झुकाव ने औरंगजेब के लिए दक्षिण की ओर पग उठाना अनिवार्य कर दिया था।" औरंगजेब 25 वर्षो तक दक्षिण में जूझता रहा, किन्तु असफल रहा। उसकी दक्षिण नीति साम्राज्य के लिए बहुत घातक सिद्ध हुई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

19.6. औरंगजेब के दक्षिणी अभियान :

औरंगजेब ने पहले शहजादा आजम को विशाल सेना सहित अकबर के विरूद्ध भेजा। तत्पश्चात् स्वयं ने भी विशाल सेना सहित कूच करके 1681 ई. में बुरहानपुर नामक स्थान पर डेरे डाल दिये। पहले चार वर्षों तक वह मराठों से उलझा रहा। इसी दौरान उसने अकबर को पकड़ने के असफल प्रयत्न किये। तब उसने अनुभव किया कि बीजापुर तथा गोलकुण्डा पर अधिकार किये बिना मराठों को कुचलना संभव नहीं है, क्योंकि इन राज्यों से मराठों को सहायता मिलती है। अतः उसने इन राज्यों पर अधिकार करने का निश्चय किया।

19.6.1. बीजापुर पर अधिकार – अप्रैल, 1658 ई. में शहजादा आजम ने बीजापुर को घेर लिया, किन्तु गोलकुण्डा तथा मराठों की मदद से बीजापुरियों ने 15 मास तक उनका डटकर सामना किया। अतः मुगल सेना निराश हो गई, किन्तु जुलाई, 1686 ई. में स्वयं सम्राट ने रणक्षेत्र में पहुंचकर युद्ध का संचालन अपने हाथ में ले लिया। घेरे को कड़ा कर दिया गया, जिससे बीजापुर को सहायता तथा खाद्य सामग्री नहीं मिल सकी। अतः बीजापुर के शासक सिकन्दर आदिलशाह ने रसूलपुर नामक स्थान पर मुगल सत्ता स्वीकार कर ली। उसे मुगल मनसबदार बना दिया गया तथा खान की उपाधि दी गई। बीजापुर को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

19.6.2. गोलकुण्डा पर अधिकार – गोलकुण्डा के शासक अब्दुल हसन ने बीजापुरियों को सहायता दी थी तथा मराठों से भी गठजोड़ कर रखा था। वह हिन्दुओं के प्रति काफी उदार था। उसने राज्य का शासन मदन नामक ब्राह्मण व्यक्ति को सौंप रखा था। अतः औरंगजेब ने शहजादे मुअज्जम को गोलकुण्डा पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। शहजादे मुअज्जम ने कुछ संघर्ष के बाद गोलकुण्डा से संधि कर ली, जिसे विवश होकर औरंगजेब ने स्वीकार किया।

औरंगजेब ने 1687 ई. में गोलकुण्डा का दुर्ग घेर लिया, किन्तु वह उस पर अधिकार न कर सका। अंत में, उसने 2 अक्टूबर, 1687 ई. की रात्रि को दुर्ग का पूर्वी द्वार खोल दिया। दुर्ग रक्षक अब्दुल रज्जाक तथा उसके साथियों ने मुगल सैनिकों का डटकर सामना किया। एस.आर. शर्मा के अनुसार, ''गोलकुण्डा के दुर्ग में वीर अब्दुल रज्जाक ने मुगलों का सामना उस साहस तथा वीरता से किया, जिस प्रकार चांदबीबी ने अहमदनगर के दुर्ग में किया था।''

घायल होकर बंदी बनने पर अब्दुल रज्जाक ने औरंगजेब से कहा, ''जिसने अब्दुल हसन का नमक खाया है, वह किसी भी तरह औरंगजेब आलमगीर की सेवा में नियुक्त नहीं हो सकता।'' उसने रज्जाक के उपचार के लिए दो वैद्यों को भेजा। औरंगजेब ने उसके साहस से प्रभावित होकर कहा, ''यदि अब्दुल हसन के पास इस प्रकार का एक और सरदार होता तो उसके दुर्ग पर कभी भी हमारा अधिकार नहीं हो सकता था।''

गोलकुण्डा विजय के बाद अब्दुल हसन को पचास हजार रुपये वार्षिक पेंशन देकर दौलताबाद भेज दिया गया। गोलकुण्डा मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। मुगलों को सात करोड़ रुपये मिले व अपार सोना–चांदी मिला।

19.6.3. मराठों से संघर्ष – औरंगजेब ने नवम्बर, 1689 ई. में मराठा शम्भाजी को परास्त करके उसका निर्दयतापूर्वक वध करवा दिया। उसके बाद भी मराठे उसके भाई राजाराम के नेतृत्व में संघर्ष करते रहे। धीरे–धीरे मराठों का विद्रोह व्यापक होता गया और राष्ट्रीय विरोध में परिवर्तित हो गया। औरंगजेब इसे नहीं कुचल सका। अतः विवश होकर उसने युद्ध बंद करके उत्तरी भारत की तरफ कूच किया, किन्तु मार्ग में ही 1707 ई. में बुरहानपुर नामक स्थान पर उसकी मृत्यु हो गई।

19.6.4. दक्षिण नीति के परिणाम – औरंगजेब की दक्षिण नीति भी असफल रही। इससे साम्राज्य को जन–धन की अपार क्षति हुई तथा वह पतन के मार्ग पर बढ़ने लगा। एस.आर. शर्मा के अनुसार, ''दक्षिण उसके लिए कब्रिस्तान सिद्ध हुआ और जब 1707 ई. में उसे वहां दफनाया गया तो एक सम्राट की लाश ही नहीं, बल्कि अन्य अनेक चीजें भी कब्र के नीचे दब गई।'' वी.ए. स्मिथ के अनुसार, ''दक्षिण सम्राट के जीवन, उसके साम्राज्य तथा गौरव के लिए काल सिद्ध हुआ।'' उसकी दक्षिण नीति के निम्न प्रभाव पड़े–

1. बीजापुर तथा गोलकुण्डा मुगलों तथा मराठों के बीच दीवार का काम करते थे, किन्तु औरंगजेब द्वारा इन पर अधिकार करने से उनमें सीधी टक्कर होने लगी। बीजापुर तथा गोलकुण्डा के पदच्युत सैनिक मराठों से जा मिले। औरंगजेब मराठा शक्ति को कुचल न सका। मराठों के विद्रोह से राज्य में अराजकता फैल गई।

2. मुगल अभियानों तथा मराठा लुटेरों से दक्षिण में कृषि, व्यापार तथा उद्योग को भारी नुकसान पहुंचा तथा मार्ग असुरक्षित हो गये। फसलों के नष्ट होने से साम्राज्य की आर्थिक स्थिति डांवाडोल हो गई। जे.एन. सरकार के अनुसार, ''इन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

युद्धकालीन परिस्थितियों में ग्राम–उद्योग तथा औद्योगिक वर्ग लगभग समाप्त हो गये। कृषकों तथा मजदूरों को अकाल का सामना करना पड़ा और मुगल सैनिकों की लूटमार तथा स्थानीय कर्मचारियों के अत्याचारों से किसानों की दशा दयनीय हो गयी। मद्रास की ओर से विदेशियों के साथ व्यापार स्थगित हो गया और सरकार के अनुचित कार्यों ने स्थिति को अधिक गंभीर बना दिया।''

3. दक्षिण में युद्धों के कारण औरंगजेब को 25 वर्षों तक दक्षिण में रहना पड़ा और उत्तर से मुगल सैनिकों को भी वहां बुलवाना पड़ा। अतः उत्तरी भारत में अराजकता फैल गई। मालवा, जौनपुर तथा बंगाल के पठानों, जाटों, राजपूतों एवं सिक्खों आदि ने विद्रोह कर दिया। मेवाती भी लूटमार करने लगे। अतः साम्राज्य का विघटन होने लगा।

4. दक्षिणी अभियानों में दो लाख सैनिक तथा असैनिक कर्मचारियों का खर्चा उठाना पड़ा। युद्ध एवं खाद्य–सामग्री पर भी अपार धन व्यय हुआ। कृषि, व्यापार नष्ट होने के कारग राज्य की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गयी। इस कारण सैनिकों को तीन वर्षों तक वेतन नहीं मिला तथा भूखमरी के कारण वे युद्ध के प्रति उदासीन हो गये। अतः शाही अभियान असफल रहे तथा शाही प्रतिष्ठा को आघात पहुंचा।

5. बीजापुर एवं गोलकुण्डा विजय से मुगल साम्राज्य बहुत विशाल हो गया, जिससे उसे व्यवस्थित रखना कठिन हो गया। साम्राज्य में अनेक विद्रोह होने से जन–धन की भारी हानि हुई। साम्राज्य में इतनी अराजकता फैल गई कि दूरस्थ प्रांतों पर उसका कोई नियंत्रण नहीं रहा। अतः औरंगजेब के सामने ही साम्राज्य विघटित होने लगा।

6. औरंगजेब अपने दक्षिणी भारत की सुन्दर ललितकलाओं को प्रोत्साहन न दे सका। इतना ही नहीं, उसने भारत की सुन्दर कलाकृतियों को नष्ट कर भारतीय संस्कृति को गहरी क्षति पहुंचाई। अतः हमें औरंगजेब के शासनकाल की कोई यादगार इमारत, पुस्तक अथवा तस्वीर देखने को नहीं मिलती।

7. मुगल सैनिक निरन्तर युद्धों के कारण युद्ध के प्रति उदासीन हो गये। इसी प्रकार शाही सरदारों का नैतिक पतन हो गया था और राज्य आर्थिक दृष्टि से जर्जर हो चुका था। जे.एन. सरकार ने ठीक ही लिखा है, ''मुगल शासन का वास्तव में नाश हो चुका था, परन्तु सम्राट की उपस्थिति के कारण भ्रमात्मक ढंग से प्रशासन की गाड़ी खिंच रही थी।'' दक्षिण के वातावरण से तंग होकर मुगल सेनापति भी उत्तर में लौटने का प्रयास करने लगे। अतः मुगल सैन्य शक्ति को आघात पहुंचा तथा वह सुसंगठित न रही।

औरंगजेब की दक्षिण नीति उसके साथ–साथ उसके साम्राज्य को भी ले डूबी। स्मिथ के अनुसार, ''दक्षिण औरंगजेब की प्रतिष्ठा और उसके शरीर के लिए कब्र बन गया।'' वस्तुतः मुगल साम्राज्य का पतन औरंगजेब की दक्षिण नीति के साथ–साथ उसकी धार्मिक नीति, राजपूत नीति, मराठा नीति तथा सिक्खों, जाटों तथा सतनामियों के विद्रोहों के कारण हुआ था।

19.6.5. औरंगजेब तथा मराठे – औरंगजेब मराठों की बढ़ती शक्ति से आशंकित था। इस समय मराठा नेता शिवाजी हिन्दूशाही की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे एवं वे छापामार प्रणाली द्वारा मुगल प्रदेशों को लूटते थे। शिवाजी के हाथों बीजापुर के सेनापति अफजल खां के मारे जाने के बाद औरंगजेब ने मराठों के दमन का निश्चय किया, अतः उसने जुलाई 1659 ई. में अपने मामा शाहस्ता खां को दक्षिण का सूबेदार बनाकर शिवाजी के दमन की आज्ञा दी।

19.6.6. शाहइस्ता खां तथा शिवाजी – शाइस्ता खां ने 1660 ई. में महाराष्ट्र पर आक्रमण कर दिया। इस समय शिवाजी पनहाला के दुर्ग में बीजापुरियों से घिरे हुए थे। अतः शाइस्ता खां पूना तथा चक्कन जीतता हुआ कोंकण की तरफ बढ़ा। इस समय तक शिवाजी बीजापुरियों का घेरा तोड़ चुका था। अब उसने पहले रत्नगिरि के समीप तथा फरवरी, 1661 ई. में पुनः मुगलों को परास्त किया एवं उन्हें भारी क्षति पहुंचायी।

अप्रैल, 1663 ई. में रात्रि को शिवाजी ने पूना के निकट 400 वीर सैनिकों सहित अचानक शाइस्ता खां के शिविर पर आक्रमण कर दिया, जिससे उसका एक पुत्र, छः पत्नियां एवं चालीस सेवक मारे गये तथा शाइस्ता खां की भी एक अंगुली कट गयी। वह बड़ी मुश्किल से जान बचाकर भागा। अतः क्रुद्ध होकर औरंगजेब ने शाइस्ता खां को हटाकर बंगाल के सूबेदार को नियुक्त किया।

19.6.7. जयसिंह तथा दिलेरखां का आक्रमण – सूरत की लूट में शिवाजी को एक करोड़ रुपये का माल मिला। अतः औरंगजेब ने अपने दो विख्यात सेनानायकों–जयसिंह तथा दिलेर खां को शिवाजी के दमन के लिये भेजा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जयसिंह ने दक्षिण के कुछ सरदारों का सहयोग प्राप्त कर शिवाजी को पुरन्दर के दुर्ग में घेर लिया। कुछ संघर्ष के बाद शिवाजी को संधि करनी पड़ी, जिसके अनुसार उन्होंने मुगल सत्ता स्वीकार कर ली, 1665 ई. में पुरन्दर की संधि कर ली। इसके अनुसार शिवाजी ने मुगलों को 23 दुर्ग दे दिये तथा मुगल दरबार में उपस्थित होना स्वीकार कर दिया। मई, 1666 ई. में शिवाजी द्वारा मुगल दरबार में उपस्थित होने पर औरंगजेब ने उन्हें बंदी बनाकर आगरा भेज दिया। तीन मास बाद ही शिवाजी बड़ी चतुराई से फलों की टोकरी में छिपकर तथा भेष बदलकर दक्षिण पहुंच गये।

19.6.8. मुगलों से पुनः संघर्ष एवं राज्याभिषेक — दक्षिण पहुंचने के बाद तीन वर्ष तक शिवाजी व मुगलों ने एक–दूसरे से कोई छोड़छाड़ नहीं की। इस दौरान शिवाजी अपनी शक्ति बढ़ाते रहे। 1670 ई. में शिवाजी ने अपने खोये हुए प्रदेश पुनः प्राप्त कर लिये तथा मुगलों से बरार, खानदेश, बागलान, सालहर आदि प्रदेश भी मुगलों से छीन लिये। मुगल इन्हें पुनः प्राप्त करने में असफल रहे। शिवाजी ने सूरत को दो बार लूटा। दक्षिण में मुगल सूबेदार बहादुर खां एवं खानजहां शिवाजी का दमन नहीं कर सके, उल्टे शिवाजी मुगल प्रदेशों से चौथ कर वसूलने लगे। जून 1674 ई. में शिवाजी का स्वतंत्र शासक के रूप में राज्याभिषेक हुआ। उसने मैसूर एवं कर्नाटक पर छापे मारे। शिवाजी अपने जीवन के अंतिम वर्षों तक मुगलों से संघर्ष करते रहे। 1680 ई. में उनकी मृत्यु हो गयी।

19.6.9. शम्भाजी का वध — शिवाजी के पुत्र शम्भाजी ने भी मुगल प्रदेशों में लूटमार तथा उन पर अधिकार करने की नीति अपनायी। उसने विद्रोही शहजादे अकबर को शरण दी तथा मुगलों से संघर्ष किया। बीजापुर एवं गोलकुण्डा पर मुगल अधिकार होने के बाद शम्भाजी की स्थिति खराब हो गई उसे पश्चिम में सिद्दियों एवं पुर्तगालियों का एवं पूर्व में मुगलों का सामना करना पड़ा। मार्च, 1689 ई. में उसे मुगलों ने बंदी बना लिया तथा उसका निर्ममतापूर्वक वध कर दिया।

19.6.10. रायगढ़ पर अधिकार — शम्भाजी के बाद उसके छोटे भाई राजाराम ने संघर्ष जारी रखा। मुगलों ने मराठा रायगढ़ पर अधिकार कर लिया। अतः राजाराम ने कर्नाटक के जिन्जी दुर्ग में आश्रय लिया। शम्भाजी की पत्नी तथा उसके पुत्र शाहू को बंदी बनाकर दिल्ली भेज दिया गया, जहां शाहू का मुस्लिम ढंग से पालन–पोषण हुआ।

19.6.11. जिन्जी दुर्ग पर मुगल अधिकार — मुगलों ने जिन्जी के दुर्ग पर घेरा डाल दिया, जो आठ वर्ष तक चलता रहा। इस दौरान रामचन्द्र नेरकर बावदेकर, शंकर जी मलहार, परशुराम त्रियम्बक आदि मराठा सरदारों के रणक्षेत्र में कूदने से मराठा विद्रोह बहुत व्यापक हो गया। मुगल सेनापति कासिम खां भी मराठों के हाथों परास्त हुआ। मराठे निरन्तर शक्तिशाली होते गये। 1695 ई. में मुगलों ने जिन्जी पर अधिकार कर लिया, अतः राजाराम सतारा के दुर्ग में भाग गया। मार्च, 1700 ई. में राजाराम की सिंहगढ़ नामक स्थान पर मृत्यु हो गयी।

19.7. औरंगजेब के अंतिम प्रयास :

राजाराम की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी ताराबाई ने अपने पुत्र शिवाजी तृतीय को शासक बनाकर मुगलों का डटकर मुकाबला किया। 1698 ई. औरंगजेब ने ब्रह्मपुरी नामक स्थान पर डेरे डालकर दुर्गों को विजय करने में असफल प्रयास किये। वह यदि एक दुर्ग पर अधिकार करता, तो दूसरा उसके हाथ से निकल जाता। जे.एन. सरकार का मानना है कि वह 1698 से 1705 ई. तक सतारा, पन्हाला, रायगढ़, तोरान आदि दुर्गों पर विजय प्राप्त करता रहा एवं उन्हें खोता रहा। अंत में उसकी स्थिति इतनी खराब हो गयी कि मराठों ने उसे अहमदनगर नामक स्थान पर घेर लिया। निराश औरंगजेब ने दौलताबाद प्रस्थान किया, किन्तु 3 मार्च, 1707 ई. को मार्ग में ही बुरहानपुर नामक स्थान पर उसका देहान्त हो गया।

19.8. औरंगजेब के मराठों के विरूद्ध असफलता के कारण :

औरंगजेब निम्न कारणों से मराठों के विरूद्ध असफल रहा–

1. मुगलों के लिये दक्षिण की जलवायु प्रतिकूल थी। वे वहां की भौगोलिक स्थिति से परिचित नहीं थे तथा पर्वतों एवं असमतल भूमि में युद्ध लड़ने के आदी नहीं थे। दूसरी तरफ मराठे दक्षिण की जलवायु एवं उसकी भूमि से परिचित थे एवं छापामार प्रणाली से लड़ते थे।

2. मुगल मैदान में युद्ध करना जानते थे एवं गुरिल्ला प्रणाली से अनभिज्ञ थे। मराठे अचानक पहाड़ों से निकलकर मुगलों पर आक्रमण कर वापस पहाड़ों में छिप जाते थे। अतः मुगल उन्हें परास्त न कर सके।

3. औरंगजेब की सेना शिविरों में पड़े रहने के कारण दुर्बल, विलासी तथा आलसी हो गयी थी। वेतन न मिलने के कारण भी वे युद्ध के प्रति उदासीन हो गये थे। वे मराठों की छापामार युद्ध प्रणाली से परेशान हो गये थे और उत्तर भारत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लौट जाना चाहते थे। उनमें कोई उत्साह नहीं था। दूसरी तरफ मराठे अपने देश, धर्म, जाति तथा संस्कृति की रक्षा के लिये लड़ते थे।

4. मराठों को योग्य नेतृत्व तथा सेनानायकत्व प्राप्त हुआ। शिवाजी, राजाराम, ताराबाई, धन्नाजी यादव, शांताजी घोरपड़े, परशुराम त्रियम्बक जी आदि में योग्यता कूट–कूटकर भरी थी। इसके विपरीत मुगल सेनानायकों में एकता नहीं थी। दिलेर खां एवं मुअज्जम के द्वेष के कारण कई मुगल अभियान असफल रहे। सम्राट भी काफी वृद्ध हो चुका था, अतः वह अपनी योग्यता का प्रदर्शन न कर सका।

5. मराठा विद्रोह शनैः शनैः फैलता गया 1695 ई. के बाद सम्राट को सम्पूर्ण मराठा जाति से संघर्ष करना पड़ा। जे. एन. सरकार के शब्दों में, "संग्राम के अंतिम वर्षों में मुगलों के सम्मुख कोई निश्चित मराठा नरेश और सरकार न रही। अनेक मराठा सरदार और उनके देशभक्त सैनिक भिन्न–भिन्न दिशाओं से मुगल साम्राज्य पर आक्रमण करने लगे और शाही सेनाओं के लिये एक ही साथ सभी दिशाओं में लड़ना असंभव हो गया। अतः उनकी रणक्षेत्र में पराजय होने लगी और मराठों का उत्साह तथा गौरव दिन–प्रतिदिन बढ़ने लगा।"

6. मराठों में राष्ट्र–प्रेम कूट–कूटकर भरा हुआ था तथा मुगलों से लड़ना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। रानाड़े के अनुसार, "इस स्वतंत्रता संग्राम में यदि कुछ मराठा सैनिक अथवा सेनानायक मृत्यु का ग्रास हो जाते थे, तो उनका स्थान लेने के लिये महाराष्ट्र के अन्य शूरवीर खड़े होते थे, जो अपनी देशभक्ति तथा उत्साह में अपने पूर्वगामियों से किसी प्रकार भी कम नहीं होते थे। इन परिस्थितियों में मुगल सम्राट का विजय प्राप्त करना सर्वथा असंभव था।"

7. यद्यपि औरंगजेब एक योग्य सेनानायक था, तथापि वृद्ध होने के कारण वह मराठों को दबा न सका। लेनपूल के अनुसार, "1706 ई. में औरंगजेब की आयु 88 वर्ष की हो चुकी थी। उसकी कमर झुक गई थी और उसका स्वास्थ्य गिर गया था। इसके बाद भी उसका उत्साह अटूट था और वह शत्रु के विरूद्ध लड़ने में पूर्णतया संलग्न था। ऐसी अवस्था में सम्राट के लिये अधिक समय तक युद्धरत रहना कठिन था। उसकी वृद्धावस्था ने उसकी महत्त्वाकांक्षा को पूरा न होने दिया और 1707 ई. उसका देहान्त हो गया।"

8. औरंगजेब के लम्बे समय तक दक्षिण में रहने के कारण उत्तरी भारत में अराजकता फैल गयी तथा विद्रोह होने लगे, अतः उसे उत्तरी भारत से आवश्यक सहायता न मिल सकी।

9. राजपूतों ने औरंगजेब की दक्षिण में कोई सहायता नहीं की, अतः वह सफल न हो सका।

19.9. औरंगजेब के अंतिम दिन और मृत्यु :

निरन्तर युद्धों के कारण औरंगजेब का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता गया और 1705 ई. के लगभग बीमार पड़ गया। किन्तु कुछ समय बाद वह पुनः स्वस्थ होकर जनवरी 1706 ई. में अहमदनगर की तरफ गया। मार्ग में मराठा सैनिकों ने उसका पीछा किया। मुगलों द्वारा आक्रमण करने पर वे तितर–बितर हो गये, लेकिन ज्योंही हमलावर सेना अपनी मुख्य सेना से मिली, ज्यौंही मराठे पुनः संगठित हो गये। सम्राट के अहमदनगर पहुंचने पर मराठों के उसके शिविर को घेर लिया और बड़े भीषण युद्ध के बाद मई 1706 ई. में वे खदेड़े जा सके। सम्राट मराठों की शक्ति से आतंकित हो गया। जब मराठों के विरूद्ध मुगलों की असफलता का समाचार सुनता तो वह अपनी पगड़ी फेंकने लगता और होंठ काटने लगता। ऐसी स्थिति में उसका स्वास्थ्य गिरता गया। उसे अपने उत्तराधिकार की चिंता होने लगी। वह नहीं चाहता था कि उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र भी संघर्षरत हो जाय। अतः उसने शाहजादे कामबख्श को शाही सम्मान के साथ बीजापुर भेजा, जिसका स्पष्ट अर्थ उसे अपना उत्तराधिकारी बनाना था। लेकिन वह अपने पुत्रों पर भी विश्वास नहीं करता था। उसे हर समय यह भय बना रहता था कि कहीं कोई शाहजादा उसे बंदी न बना ले। अंत में विफलता, विनाश और व्यथा का भार लेकर औरंगजेब 21 फरवरी 1707 ई. को इस संसार को छोड़ चल बसा। दौलताबाद से चार मील पश्चिम में खुलदाबाद में उसके शव को दफना दिया गया। खुलदाबाद (स्वर्गधाम) अनेक फकीरों का कब्रिस्तान था और मुसलमानों का विश्वास था कि यहां दफनाये गये लोग निश्चित रूप से जन्नत में पहुंच गये होंगे।

19.10. औरंगजेब का मूल्यांकन :

कुछ आधुनिक विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि औरंगजेब धर्मान्ध शासक नहीं था। उनका तर्क यह है कि उसने केवल युद्ध काल में ही मंदिर तुड़वाये थे या फिर उन मंदिरों को तुड़वाया जो हिन्दुओं ने मस्जिदों के स्थान पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बनवा दिये थे। उसने तो कुछ मन्दिरों को जागीरें दी थी, वे तो उसके पूर्व सम्राटों द्वारा प्रदान की गई थी और औरंगजेब ने मात्र उनकी पुष्टि की थी। उसने पुष्टि भी इसलिये की थी कि वे लोग उसकी चालाकियों में सहायक थे। यदि उसने एक हिन्दू मठाधीश को जागीर दी तो हजारों मंदिरों को ढा दिया था और मठाधीशों की जीविका का अपहरण कर लिया था। इस तथ्य में भी कोई सच्चाई नहीं है कि उसने केवल युद्ध काल मे ही मंदिरों को ध्वस्त करवाया था। यह सही है कि उसने ऐसे प्रदेशों को मुगल साम्राज्य में मिलाया था, जो उसके पूर्वज न मिला सके थे, लेकिन इसमें उसका उद्देश्य सारे देश को इस्लामी रंग से रंग देना था। किन्तु निजी जीवन में वह एक आदर्शवादी व्यक्ति था। वह बिना थके काम करता रहता था तथा भोजन और वस्त्रों में सादगी रखता था। यद्यपि उसने कुरान के निर्देशानुसार चार स्त्रियां रखी थी, किन्तु दूसरी स्त्रियों के प्रति उसे कोई आकर्षण नहीं था। उसे शराब या किसी अन्य चीज का व्यसन नहीं था। वह जन्म से ही विद्याप्रेमी था तथा अपने धर्म का दृढ़ता से पालन करता था। यदि उसके व्यक्तिगत जीवन में कुछ दोष थे तो यह कि वह महत्त्वाकांक्षी, जिद्दी, शंकालू और संकीर्ण धार्मिक विचारों वाला व्यक्ति था। वह सदैव दूसरों को गलत और अपने को ठीक समझता था। इस्लाम के अलावा वह सभी धर्मों को झूठा मानता था। उसमें पारिवारिक प्रेम नाम की कोई चीज नहीं थी। अपने पिता के लिए वह सुपुत्र नहीं था, राज्य प्राप्ति के लिए अपने भाइयों की हत्या करवाई और यहां तक कि वह अपने पुत्रों के प्रति भी शंकालू बना रहा।

सैनिक और सेनापति के रूप में उसकी तुलना बाबर और अकबर से की जा सकती है। घनघोर युद्धों में वह अपना संयम कभी नहीं खोता था। वह एक युद्ध–कुशल सम्राट था और अपने शत्रु की भूल और दुर्बलता का सदा लाभ उठाता था। षड़यंत्र और राजनीतिक चालाकियों में तो वह पारंगत था और उसमें निर्णय करने की असाधारण शक्ति थी। प्रबंधक के रूप में वह सरकार के छोटे से छोटे कार्य को बड़े ध्यान से देखता था। यद्यपि वह एक कर्तव्यपरायण शासक था, लेकिन उसमें राजा का उत्तम गुण नहीं था। कर्तव्य के सम्बन्ध में उसका विचार बड़ा संकीर्ण था। वह अपने को केवल सुन्नी मुसलमानों का शासक मानता था और गैर मुसलमानों को तब तक घृणित समझता था जब तक कि वे इस्लाम धर्म नहीं अपना लेते थे। इन्हीं विचारों के कारण वह विनाश करता रहा, निर्माण नहीं। न्याय करते समय भी वादी अथवा प्रतिवादी में से जो कोई इस्लाम स्वीकार कर लेता था, उसके पक्ष में निर्णय दे दिया जाता था। इतना ही नहीं, यदि हत्यारा भी इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेता तो उसे क्षमा कर दिया जाता था। उसकी स्वेच्छाचारिता और अविश्वासी प्रवृत्ति के कारण बड़े–बड़े मंत्री और अधिकारी केवल क्लर्क मात्र रह गये थे। फलस्वरूप सारी शासन व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो गयी। उसने देश की संस्कृति और स्थापत्य कला, संगीत और चित्रकला के विकास का कोई प्रयत्न नहीं किया। अपने शासन के अंतिम 26 वर्ष वह दक्षिण की लड़ाइयों में व्यस्त रहा, जिससे उत्तर भारत में अनेक विद्रोह उठ खड़े हुए और साम्राज्य में अशांति व्याप्त हो गई।

अतः औरंगजेब न तो सफल शासक सिद्ध हो सका और न सफल राजनीतिज्ञ। सर जदुनाथ सरकार ने ठीक ही लिखा है कि ''यदि हम राजा के सम्बन्ध में विचार करें तो वह असफल ठहरेगा। वह तो राजा के सर्वप्रथम कर्तव्य से भी अनभिज्ञ था, अर्थात् वह नहीं जानता था कि समृद्ध जनता के बिना कोई राजा बड़ा नहीं हो सकता।'' वास्तव में मुहम्मद अली जिन्ना को छोड़कर औरंगजेब के समान कोई दूसरा ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ जिसने इस देश की जनता की दो मुख्य जातियों में भेदभाव की खाई को इतना चौड़ा किया हो। औरंगजेब भारत को एक इस्लामी राज्य बनाने की इच्छा रखता था, लेकिन उसकी यह इच्छा पूरी न हो सकी।

19.11 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 औरंगजेब का जन्म कब हुआ?

अ. 3 नवम्बर 1618 ई. ब. 20 नवम्बर 1617 ई.

स. 23 नवम्बर 1616 ई. द. 27 नवम्बर 1615 ई.

उत्तर – ....

प्रश्न 2 औरंगजेब की राजपूत नीति के परिणाम लिखिए। (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 'दक्षिण नीति औरंगजेब के लिए नासूर बन गई।'' सिद्ध करिये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 20
मुगल शासकों की धार्मिक नीति

संरचना

20.0 उद्देश्य
20.1 भूमिका
20.2 बाबर की धार्मिक नीति
20.3 हुमायु की धार्मिक नीति
20.4 अकबर की धार्मिक नीति
20.5 जहाँगीर की धार्मिक नीति
20.6 शाहजहाँ की धार्मिक नीति
20.7 औरंगजेब की धार्मिक नीति
20.8 सारांश
20.9 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

20.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में मुगल सम्राटों विशेषतः बाबर, हुमायु, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब तथा उत्तरवर्ती मुगल सम्राटों ने कौनसी धार्मिक नीति अपनायी, को विस्तारपूर्वक विवेचित किया गया है। जहां प्रारम्भिक सम्राट उदार धार्मिक दृष्टिकोण रखे थे वही उत्तरकालीन सम्राटों ने अनुदार नीति को अपनाया। प्रस्तुत इकाई में मुगलों की धार्मिक नीति का वर्णन किया गया है।

20.1. भूमिका :

औरंगजेब से पूर्व तक के मुगल सम्राटों ने धार्मिक क्षेत्र में उदार नीति अपनाकर सिद्ध कर दिया था कि यही भारत के शासक वर्ग के लिए उपयुक्त है। बाबर एवं हुमायूँ संघर्षों के कारण व्यवस्थित धार्मिक नीति की स्थापना न कर सके। अकबर ने धार्मिक उदारता की नीति अपनाते हुए भारत में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। यद्यपि जहाँगीर एवं शाहजहाँ के शासनकाल में धार्मिक असहिष्णुता की नीति का बीजारोपण हो चुका था, तथापि सैद्धान्तिक रूप से उन्होंने अकबर की ही नीति को अपनाया। औरंगजेब एक धर्मान्ध शासक था। उसने हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाकर भारत में इस्लामी राज्य की स्थापना का प्रयास किया। अतः मुगल साम्राज्य को पतन का मुँह देखना पड़ा।

20.2. बाबर की धार्मिक नीति :

भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डालने वाला प्रथम मुगल बादशाह जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर सुन्नी मुसलमान था। वह ईश्वर में अगाध श्रद्धा रखता था। उसने कहा था, ''ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं होता। उसकी दया पर निर्भर करते हुए हमें आगे बढ़ना चाहिए।'' परन्तु बाबर धार्मिक दृष्टि से असहिष्णु नहीं था। उसने ईरान के शिया बादशाह शिया इस्माइल से संधि करके शियामत को अपने राज्य में फैलाने का वायदा किया था। उसने अपने दरबार में धार्मिक कट्टरता को कोई स्थान नहीं दिया। इसमें कोई संदेह नहीं कि बाबर ने भारत में युद्ध के अवसर पर धार्मिक असहिष्णुता की नीति का परिचय दिया था, जिसकी पुष्टि में कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। जैसे–खानवा के युद्ध में धर्मयुद्ध (जिहाद) की संज्ञा दी थी। इन दोनों युद्धों के पश्चात् उसने 'गाजी' (काफिरों का कत्ल करने वाला) की उपाधि धारण की और राजपूतों के सिरों की मीनारें खड़ी करवायी। मुसलमानों को 'तमगा' (व्यापारिक कर) से मुक्त कर दिया। उसने अयोध्या में रामचन्द्र जी के जन्म–स्थान पर मंदिर तोड़कर मस्जिद का निर्माण करवाया, परन्तु बाबर की इस नीति का मूल उद्देश्य धार्मिक न होकर राजनीतिक था। बाबर ने ये कार्य मुख्यतया युद्ध के अवसर पर ही किए थे। शासन की ओर से भारतीय जनता के प्रति कोई धार्मिक कट्टरता की नीति बाबर ने नहीं अपनायी थी। डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव ने लिखा है, ''यहां की जनता के प्रति बाबर का व्यवहार सल्तनतयुग

के शासकों के व्यवहार की भांति बुरा न था।'' डॉ. एस.आर. शर्मा ने भी लिखा है, ''ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि उसने धर्म के आधार पर कभी किसी हिन्दू मंदिर को नष्ट किया हो अथवा हिन्दुओं पर अत्याचार किया हों'' डॉ. आर.पी. त्रिपाठी ने लिखा है, ''ऐसा कोई उदाहरण नहीं है, जो यह प्रमाणित करे कि धार्मिक अत्याचार राज्य की नीति का भाग था अथवा इसे मुगल बादशाह बाबर का कोई नैतिक समर्थन प्राप्त था।'' अतः स्पष्ट है कि बाबर व्यक्तिगत रूप से धार्मिक था, परन्तु असहिष्णु और धर्मान्ध शासक नहीं था। भारत में उसने धार्मिक असहिष्णुता के जो कार्य किये, वे राजनैतिक उद्देश्य से प्रेरित थे।

20.3. हुमायूं की धार्मिक नीति :

हुमायूं धर्म में पूर्ण आस्था रखने वाला सुन्नी मुसलमान था परन्तु उसमें धार्मिक कट्टरता अथवा असहिष्णुता नहीं थी। सुन्नी मत का अनुयायी होते हुए भी वह शिया मत के प्रति बहुत उदार था। उसकी पत्नी हमीदाबानू बेगम तथा उसका मुख्य परामर्शदाता बैराम खां शिया थे। उसने भारत से निर्वासित होने के बाद अपने राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए ईरान के शिया शासक ने संधि की, जिसके अनुसार उसने शिया धर्म को मानने और उसका प्रचार–प्रसार करने का वायदा किया था।

हुमायूं ने हिन्दुओं के प्रति अपने पिता बाबर के समान उदारता तथा समानता का व्यवहार किया। युद्ध के अवसर पर उसने हिन्दुओं के साथ कठोर व्यवहार करते हुए कालिंजर के हिन्दू मंदिरों को नष्ट किया था, परन्तु हिन्दुओं के प्रति उसकी नीति को कटु नहीं माना जा सकता। उसके समय का ऐसा कोई उदाहरण प्राप्त नहीं होता, जिससे इस बात की पुष्टि होती हो कि उसने धर्म के आधार पर हिन्दुओं पर अत्याचार करने की नीति अपनायीं। हुमायूं साधारणतया धार्मिक कट्टरता से तटस्थ रहा। उसे सूफी संतों के धार्मिक विचारों को सुनने में बहुत आनन्द आता था। अतः स्पष्ट है कि हुमायूं व्यक्तिगत दृष्टि से धार्मिक प्रवृत्ति वाला था, परन्तु सम्राट की दृष्टि से उसकी धार्मिक नीति में असहिष्णुता के अंश प्राप्त नहीं होते।

20.4. अकबर की धार्मिक नीति :

सभी इतिहासकारों ने समस्त मुगल बादशाहों में अकबर की धार्मिक नीति को सर्वश्रेष्ठ माना है। अकबर एक उच्चकोटि का सेनानायक, कुशल शासन–प्रबंधक और प्रतिभाशाली शासक ही नहीं था, अपितु एक सामाजिक और धार्मिक सुधारक भी था। ईश्वर में उसकी अगाध श्रद्धा थी, परन्तु उसकी नीति पूर्णतया धार्मिक सहिष्णुता की 'सुलहकुल' (सभी के साथ शांति) के सिद्धान्तों पर आधारित थी। उसने अपनी समस्त प्रजा को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की। इसके बाद उसने अपनी प्रजा को एक साझा धर्म देने का प्रयास किया, जिसके कारण राष्ट्र–निर्माण के कार्य को प्रोत्साहन मिला।

अकबर की उदारता और धार्मिक सहिष्णुता की नीति के निर्माण और विकास में विभिन्न परिस्थितियों ने सहायता दी।

अकबर का जन्म तथा पालन–पोषण ऐसे उदार वातावरण में हुआ था कि उसका बड़े होकर सहनशील तथा उदारचित्त होना स्वाभाविक था। अकबर का दादा बाबर और पिता हुमायूं धर्मान्ध नहीं थे, वे उदार तथा स्वतंत्र विचारों के थे। उसकी माता हमीदाबानों शिया थी, जो धार्मिक संकीर्णता से मुक्त थी। अकबर का संरक्षण बैराम खां शिया मुसलमान था। उसका शिक्षक अब्दुल लतीफ धार्मिक विचारों में इतना उदार था कि फारस में उसे सुन्नी समझा जाता था और भारत में उसे शिया माना जाता था। इस समय भक्ति आंदोलन तथा सूफी मत के नेताओं ने धार्मिक संकीर्णता का विरोध करते हुए ईश्वर की एकता और भाईचारे पर बल दिया। इसी प्रकार भक्ति आंदोलन ने भी अकबर को प्रभावित किया।

अकबर ने हिन्दू राजकुमारियों से विवाह किया था, उन्होंने भी उसके विचारों पर गहरा प्रभाव डाला। उसके हिन्दू अधिकारियों–टोडरमल, भगवानदास, मानसिंह, बीरबल, जगन्नाथ कच्छावा आदि ने भी उसके विचारों को उदार एवं सहिष्णु बनाने में सहायता दी। शेख मुबारक और उसके दो विद्वान पुत्र अबुलफजल और फैजी ने भी अकबर की धार्मिक नीति को उदार बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। यद्यपि यह ठीक है कि उपरोक्त सभी बातों ने अकबर को उदार धार्मिक नीति अपनाने हेतु प्रेरित अवश्य किया था, परन्तु उसकी उदारता और सहिष्णुता की नीति का प्रमुख आधार स्वयं उसका उदार स्वभाव, दार्शनिकता तथा जिज्ञासु धार्मिक प्रवृत्ति थी। अबुल फजल के अनुसार अकबर अक्सर फतेहपुर सीकरी के बड़े दरवाजे के बाहर एक पत्थर पर बैठकर प्रातःकाल घंटों तक ईश्वर के चिंतन में लीन रहता था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार अकबर ने राजनीतिक कारण से उदार धार्मिक नीति अपनाई थी। यदि इसे सत्य भी मान लें, तो भी इससे अकबर की महानता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। वह बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा और युद्धप्रिय राजपूत वर्ग की सहायता से एक मजबूत राज्य की स्थापना करने में सफल रहा था। इस प्रकार अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति का विकास सीढ़ी–दर–सीढ़ी हुआ था।

अकबर के धार्मिक विचारों के विकास में पहला चरण (1560–1575 ई.) वह आता है, जब उसने सहनशीलता की नीति को आरम्भ किया। प्रथम चरण में उसने 1562 ई. में दास–प्रथा को समाप्त कर दिया। इन उदार पगों को उठाने के बावजूद

अकबर के व्यक्तिगत धार्मिक विचारों में कोई परिवर्तन नहीं आया। वह अभी भी एक सच्चे मुसलमान की तरह दिन में पांच बार नमाज पढ़ता था। इस प्रकार 1575 ई. तक अकबर इस्लाम के नियमों का पालन बड़ी दृढ़ता से करता रहा।

अकबर की धार्मिक नीति का द्वितीय चरण (1575–1580 ई.) है। उसने इस्लाम धर्म के बारे में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की लालसा से 1575 ई. में फतेहपुर सीकरी में 'इबादतखाने' का निर्माण करवाया और इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों पर वाद–विवाद करने के लिए इस्लाम धर्म के सभी विद्वानों को आमंत्रित किया। अकबर उनके वाद–विवाद को सुनकर इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों पर भी इस्लाम के विद्वान एकमत्‍ नहीं हैं और वे संकीर्ण मनोवृत्ति तथा पररस्परिक ईर्ष्या व द्वेष के शिकार हैं। अकबर को इन सब बातों से दुःख हुआ और इस्लाम की श्रेष्ठता से उसका विश्वास हिल गया। इस कारण उसने इबादतखाने के दरवाजे हिन्दू, जैन, ईसाई और फारसी आदि सभी धर्मों के विद्वानों के लिए खोल दिए। परिणामस्वरूप हिन्दू धर्म के विद्वान पुरुषोत्तम और देवी, जैन धर्म के हीरविजय सूरी, जिनचन्द्र सूरी, शांतिचन्द्र, विजयसेन सूरी, पारसियों के दस्तूर जी मेहरजी राणा तथा ईसाई धर्म के पादरी भी इस इबादतखाने में उपस्थित हुए। इन सभी विद्वानों के वाद–विवाद को अकबर ने ध्यान से सुना। इसके बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सभी धर्म मूलरूप से एक समान हैं, केवल उनके रीति–रिवाजों तथा बाहरी क्रियाओं में थोड़ा बहुत अंतर है। वाद–विवाद के दौरान अकबर ने यह भी अनुभव किया कि मुस्लिम धार्मिक वर्ग के उच्चतम नेताओं को इस्लाम के सिद्धान्तों का विशेष ज्ञान नहीं है और वे अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करते हैं। अतः सम्राट ने उनके कुप्रभाव राज्य से बचाने के लिए इस दिशा में शीघ्र ही पग उठाने का निश्चय किया।

अकबर ने मुल्लाओं के प्रभाव को कम करने के लिए 22 जून, 1579 ई. को फतेहपुर सीकरी की जामा मस्जिद में खुतबा पढ़ा। अबुल फजल के पिता शेख मुबारक ने इस खुतबे को तैयार किया था। इस खुतबे के द्वारा अकबर ने 'मुख्य इमाम' की उपाधि धारण की। इसके बाद सितम्बर, 1579 ई. में शेख मुबारक ने सम्राट के आदेश पर मजहर अथवा अभ्रांति आज्ञा–पत्र के द्वारा भारत में इस्लाम धर्म से सम्बन्धित सभी वाद–विवादों को सुलझाने तथा इस सम्बन्ध में अंतिम निर्णय करने का अधिकार अकबर को सौंप दिया गया।

मजहर–पत्र की आलोचना करते हुए बदायूंनी ने लिखा है, ''इस पत्र के द्वारा धार्मिक झगड़ों को निपटाने की अंतिम शक्ति अकबर के अधिकार में आ गई है और उसके फरमान का विरोध करना संभव नहीं।'' कुछ आधुनिक इतिहासकारों ने भी बदायूंनी के मत का समर्थन किया है। वी.ए. स्मिथ और सर बूल्जले हेग जैसे पाश्चात्य इतिहासकारों ने मजहर–पत्र को 'अचूक आज्ञा–पत्र' की संज्ञा दी है। उनका कहना है कि इस पत्र की सहायता से अकबर अपनी प्रजा का धार्मिक तथा राजनीतिक नेता बन गया।

मजहर आज्ञा–पत्र के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि पाश्चात्य इतिहासकारों की आलोचना न्यायसंगत नहीं है। इससे अकबर को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि मतभेद होने पर वह इस्लाम के सिद्धान्तों के बारे में प्रस्तुत विधि–वेत्ताओं के मतों में से किसी एक को स्वीकार कर सकता था। इसके अतिरिक्त वह कोई ऐसा फरमान जारी नहीं कर सकता था, जो राष्ट्रीय हितों अथवा कुरान के नियमों के विरुद्ध हो। अतः स्पष्ट है कि अकबर ने उन्हीं अधिकारों को अपने हाथों में लिया था, जो अब तक उसके एक अधीनस्थ अधिकारी सद्र–उस–सुदूर (मुख्य सदर) के हाथों में थे। इस प्रकार अपने ही एक अधिकारी के अधिकारों को अपने हाथ में लेने से 'अकबर पोप' बन गया था अथवा बनना चाहता था, यह कहना उचित नहीं है। मुस्लिम धार्मिक वर्ग अकबर से इसलिए नाराज था कि सम्राट ने उनके धार्मिक अधिकारों के दुरुपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया था।

दीन–ए–इलाही – अकबर ने 1582 ई. में दीन–ए–इलाही के नाम से एक नवीन मत या धर्म अथवा संघ स्थापित किया। इसके कुछ नियम कुरान से, कुछ हिन्दू धर्म से, कुछ जैन धर्म से एवं कुछ अन्य धर्मों से लिए गये थे। दीन–ए–इलाही का सरकारी नाम 'तौहीद–ए–इलाही' था। अबुल फजल इस मत का प्रधान पुरोहित था। जो व्यक्ति इस सम्प्रदाय का सदस्य बनना चाहता था, वह रविवार के दिन अपनी पगड़ी हाथों में लेकर अपना सिर सम्राट के चरणों में रख देता था। तब बादशाह उसे उठाकर पगड़ी पुनः उसके सिर पर रख देता था और उसे एक शिस्त (अंगूठी की भांति सोने की वस्तु) देता था, जिस पर 'अल्लाह–हू–अकबर' खुदा होता था। इसे प्राप्त करने पर व्ही दीन–ए–इलाही का सदस्य बन जाता था। दीन–ए–इलाही का सदस्य अकबर की रत्नजड़ित सोने की मूर्ति सिल्क के टुकड़े में लपेटकर अपनी पगड़ी के सिरे पर पहनता था।

दीन–ए–इलाही के सदस्यों की संख्या केवल कुछ हजार तक ही सीमित रही और उच्च वर्ग के व्यक्तियों में से केवल 18 व्यक्तियों ने ही इसे स्वीकार किया। इनमें अबुल फजल, फैजी तथा शेख मुबारक के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रसिद्ध हिन्दुओं में से केवल बीरबल ने ही इस धर्म को स्वीकार किया था। राजा भगवानदास और मानसिंह ने इसका सदस्य बनने से इन्कार कर दिया, परन्तु अकबर ने उन पर कोई दबाव नहीं डाला।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आलोचना – दीन–ए–इलाही की स्थापना को लेकर कुछ इतिहासकारों ने अकबर की बड़ी आलोचना की है। बारतोली ने उसे 'अकबर की दूरदर्शितापूर्ण धूर्तता' की संज्ञा दी है। इतिहासकार स्मिथ ने भी लिखा है, ''दीन–ए–इलाही अकबर की बुद्धिमत्ता नहीं, अपितु उसकी मूर्खता का प्रमाण था।''

डॉ. ईश्वरीप्रसाद, एस.आर. शर्मा तथा एस.एम. जाफर जैसे इतिहासकारों ने उपरोक्त मतों का खण्डन करते हुए लिखा है दीन–ए–इलाही को प्रचलित करने के पीछे अकबर का उद्देश्य धार्मिक नहीं था। यदि उसका उद्देश्य धार्मिक होता, तो वह इसके प्रसार के लिए राज्य के समस्त साधनों का प्रयोग करता, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। राजा भगवानदास और मानसिंह ने दीन–ए–इलाही का सदस्य बनने से इन्कार कर दिया, परन्तु अकबर ने उन पर कोई दबाव नहीं डाला। नवीन मत प्रचलित करने के पीछे उसका उद्देश्य राजनीतिक था। वह इसके माध्यम से हिन्दू और मुसलमानों को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बांधना चाहता था। अतः उसका यह प्रयास किसी भी दृष्टि से निंदनीय नहीं माना जा सकता। दीन–ए–इलाही अधिक समय तक प्रचलित न रह सका। अकबर की मृत्यु के साथ ही उसका भी अंत हो गया।

अकबर की धार्मिक नीति ने मुगल साम्राज्य के विस्तार और स्थायित्व में बहुत सहयोग दिया और अकबर को राष्ट्रीय सम्राट होने का गौरव प्राप्त हुआ।

20.5 जहांगीर की धार्मिक नीति :

धार्मिक दृष्टि से जहांगीर का स्थान अपने पिता अकबर और पुत्र शाहजहां के मध्य में आता है। जहांगीर का ईश्वर में अगाध विश्वास था। वह हिन्दू और मुसलमान संन्यासियों का आदर करता था और उनकी संगति में उसे बहुत आनन्द आता था।साधारणतया जहांगीर अपने धर्म के नियमों का पालन करता था, परन्तु धर्म में उसे विशेष रूचि न थी। इस्लाम के सिद्धान्तों का पालन भी वह कट्टरता से नहीं करता था। जहांगीर ने अकबर की भांति सभी धर्मों के प्रति सहनशीलता और सुलहकुल की नीति अपनाई थी। इसीलिए उसने हिन्दुओं को अपने राज्यकाल में सम्मानित पद दिये और उन पर किसी प्रकार के अतिरिक्त कर नहीं लगाए गए। इसी प्रकार ईसाइयों तथा अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति भी उदारता एवं सहिष्णुता की नीति अपनायी गयी।

परन्तु जहांगीर के समय में कुछ घटनायें अवश्य ही ऐसी घटित हुई, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि यदा–कदा उसने धर्म का पक्ष लिया था। राजौरी के हिन्दुओं को उसने इसलिए दण्डित किया कि वे मुसलमान लड़कियों से विवाह करके उन्हें हिन्दू धर्म में परिवर्तित कर लेते थे। कांगड़ा की विजय के बाद उसने वहां एक गाय को कटवाकर जश्न मनाया था। उसने मेवाड़ और कांगड़ा के अभियान के समय हिन्दू मंदिरों को तोड़ने का आदेश दिया। अजमेर में उसने वाराह के मंदिर की मूर्तियों को तालाब में फिंकवा दिया था और पुर्तगालियों से युद्ध करते समय राज्य के समस्त गिरजाघरों को बंद करवा दिया था। एक बार उसने जैनियों से अप्रसन्न होकर उन्हें गुजरात से बाहर चले जाने के आदेश दिये थे। गुरु अर्जुनदेव को राजनीतिक कारणों से दण्ड दिया था, परन्तु उसके बाद सिक्खों के धार्मिक कार्यों में उसने कोई हस्तक्षेप नहीं किया। ये सब घटनाएं एक विशेष अवसर अथवा परिस्थिति के कारण थीं, अन्यथा हिन्दुओं से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध था और वह उनके सभी त्यौहारों तथा उत्सवों में भाग लेता था। उसने हिन्दुओं को तीर्थ–यात्रा करने अथवा मंदिरों के निर्माण की स्वतंत्रता दे रखी थी। वह ईसाई पादरियों को भी राजकोष से भत्ता देता था।

इसके अतिरिक्त जब हम यह देखते हैं कि जहांगीर ने असंतुष्ट होने पर मुस्लिम धर्म–प्रचारकों जैसे शेख रहीम, काजी नूरुल्ला, शेख अहमद सरहिन्दी आदि को भी दण्डित किया था, तो इससे यह स्पष्ट हो जाता हैकि उसने हिन्दू, सिक्खों, जैन अथवा ईसाइयों के साथ कठोरता का व्यवहार धार्मिक कट्टरता के कारण नहीं, अपितु राजनीतिक परिस्थितिवश किया था। इस प्रकार जहांगीर अपने पिता की तरह धर्म के क्षेत्र में उदार नीति का ही पालन करता रहा।

20.6. शाहजहां की धार्मिक नीति :

शाहजहां अपने धार्मिक विचारों में अकबर और जहांगीर की तुलना में अधिक अनुदार सिद्ध हुआ। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था और इस्लाम के नियमों का कठोरता से पालन करता था। वह नियमित रूप से नमाज पढ़ता था और रोजे भी रखता था। उसने दाढ़ी रखी थी, वह मुसलमानी ढंग के वस्त्र पहनता था। उसने हिन्दुओं को मुसलमानी ढंग से वस्त्र पहनने के लिए मना कर दिया था। वह शराब बहुत कम पीता था। उसने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में धार्मिक कट्टरता का परिचय दिया। उसने सिजदा (बादशाह के आगे जमीन पर लेटकर दण्डवत् प्रणाम करना) की इस्लाम विरोधी–प्रथा को बंद कर दिया,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दरबार में इलाही सम्वत् के स्थान पर हिजरी सम्वत् आरम्भ किया था, हिन्दुओं को मुसलमान गुलाम रखने से रोक दिया। उसने दरबार में हिन्दू त्यौहारों के मनाने पर प्रतिबंध लगा दिया, जबकि मुसलमानों के त्यौहार पहले की तरह मनाये जाते रहे। उसने हिन्दुओं को नये मंदिर बनाने और पुराने मंदिरों की मरम्मत कराने से रोक दिया। उसने यह आदेश जारी किया कि उसके पिता के शासनकाल में निर्मित मंदिरों को गिरा दिया जाए। उसके समय में बनारस, इलाहाबाद, गुजरात और कश्मीर में बहुत–से हिन्दू मंदिर गिराये गये। अकेले बनारस में लगभग 72 मंदिर तोड़े गये थे। बुन्देला के जुझारसिंह के परिवार के कुछ सदस्यों को शाहजहां ने इस्लाम स्वीकार करने के लिए विवश किया। पुर्तगालियों से युद्ध होने पर उसने आगरा के गिरजाघर को तुड़वा दिया। राजौरी के हिन्दू, मुसलमान लड़कियों से विवाह करके उन्हें हिन्दू बना लेते थे–शाहजहां ने आदेश दिया कि ऐसी सभी लड़कियों उनके पतियों से छीनकर उनके मां–बाप को लौटा दी जाए और भविष्य में कोई हिन्दू मुसलमान लड़कियों से विवाह न करे। शाहजहां ने अपने शासनकाल के सातवें वर्ष में यह आदेश निकाला कि हिन्दू द्वारा इस्लाम स्वीकार करने पर ही उसे अपनी पिता की सम्पत्ति का हिस्सा प्राप्त होगा। उसने हिन्दुओं को इस्लाम ग्रहणकरने के लिए प्रोत्साहित किया। युद्ध–बन्दियों को इस्लाम स्वीकार करवाने की प्रथा पुनः आरंभ की गयी, अपराधियों को इस्लाम स्वीकार करने पर मुक्त करने की व्यवस्था की। इस्लाम का अपमान करने वाले व्यक्तियों के लिए मृत्यु–दण्ड की व्यवस्था की गयी। इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि शाहजहां ने अकबर की धार्मिक समानता की नीति को समाप्त कर दिया था, क्योंकि वह इस्लाम की श्रेष्ठता में विश्वास करता था।

शाहजहां की कट्टरता की धार्मिक नीति उसके आरम्भिक वर्षों तक ही सीमित रही। बाद में धीरे–धीरे इस कट्टरता में कमी आ गयी। आरम्भ में उसके द्वारा बनाये गये बहुत–से नियमों का बाद में पालन नहीं किया गया। उसने झरोखा दर्शन, तुलादान तथा हिन्दू शासकों के सिर पर तिलक लगाने की प्रथा को स्थापित रखा। बाद के समय में हिन्दू मंदिरों को तोड़ना बंद कर दिया। शाहजहां के दरबार में सुन्दरदास, चिंतामणि, सेनापति कवीन्द्राचार्य आदि हिन्दू विद्वानों को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। उसने हिन्दुओं को शासन तथा सेना में ऊंचे पदों पर नियुक्त किया। राजा जसवंतसिंह और राज्य जयसिंह उसके बड़े अधिकारी थे। शाहजहां ने अहमदाबाद के चिंतामणि के मंदिर की मरम्मत की आज्ञा दे दी तथा कैम्बे के नागरिकों की प्रार्थना पर वहां गो–हत्या बंद करा दी। हिन्दुओं के अतिरिक्त ईसाई धर्म के अनुयायियों के साथ भी उसने सहिष्णुता की नीति का पालन किया। इस कारण शाहजहां का शासनकाल धार्मिक असहिष्णुता तथा धार्मिक अत्याचार का काल नहीं माना जा सकता। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि शाहजहां का झुकाव धार्मिक संकीर्णता की ओर हो गया था और उसने अकबर के उद्देश्य को भुला दिया गया था।

20.7. औरंगजेब की धार्मिक नीति :

औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने शासक बनने के बाद धार्मिक असहिष्णुता की नीति अपनाई। कट्टर सुन्नी प्रजा उसे 'जिन्दा पीर' कहती थी। व्यक्तिगत जीवन में औरंगजेब ने जिन इस्लामी आदर्शों का पालन किया, उनके कारण वह समस्त मुगल बादशाहों में सबसे अधिक चरित्रवान बादशाह सिद्ध हुआ, परन्तु जब उसने व्यक्तिगत इस्लामी आदेशों को अपने सम्पूर्ण साम्राज्य में लागू किया, तब उनसे इतनी हानि हुई,जितनी किसी दूसरे मुगल बादशाह ने साम्राज्य को कभी नहीं पहुंचाई।

औरंगजेब धर्मान्ध था। उसने अकबर से भिन्न धार्मिक नीति अपनाई। उसका राजत्व सिद्धान्त इस्लाम का राजत्व सिद्धान्त था। इसलिए उसने भारत को दार–उल–हर्ब (काफिरों का देश) से दार–उल–इस्लाम (इस्लाम का देश) बनाने का निश्चय किया। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने जीवनपर्यन्त प्रयास किया। परिणामस्वरूप उसने बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा का विश्वास खो दिया। यही नहीं, उसकी धार्मिक नीति के कारण राजपूतों, जाटों, मराठों तथा सिक्खों ने विद्रोह कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मुगल साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो गया।

औरंगजेब ने सर्वप्रथम साम्राज्य में प्रचलित इस्लाम विरोधी नियमों को समाप्त किया। उसने सिक्कों पर कलमा खुदवाना बंद कर दिया, नौरोज का त्यौहार मनाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया, तुलादान और झरोखा दर्शन की प्रथा को बंद कर दिया, दरबार से नाचने–गाने वालों को निकाल दिया। भांग और शराब पीने पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा जुआं खेलना पूर्णरूप से बंद करवा दिया। वेश्याओं को विवाह करने अथवा देश छोड़ने के आदेश दिए गये। दरबार में हिन्दू त्यौहारों को मनाना बन्द कर दिया। औरंगजेब ने मुहतसिबों (धर्म–निरीक्षकों) को नियुक्त किया, जो यह देखते थे कि मुसलमान इस्लाम धर्म का ठीक से पालन करते हैं अथवा नहीं। औरंगजेब के समय में उदार शियाओं और सूफियों को भी दण्डित किया गया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

औरंगजेब ने अपनी बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा के प्रति कट्टर नीति अपनाई। उसने 1669 ई. में हिन्दू मंदिरों को गिराने के आदेश जारी कर दिये। इसके लिए एक पृथक् विभाग भी खोला गया। उसकी धार्मिक कट्टरता के कारण बनारस का विश्वनाथ मंदिर, मथुरा का केशवराय मंदिर और पाटन का सोमनाथ मंदिर नष्ट किया गया। मेवाड़ और मारवाड़ अभियान के दौरान भी औरंगजेब ने बहुत–से मंदिरों को नष्ट कर दिया तथा उसे मस्जिद में परिवर्तित करवा दिया। यही नहीं, उसने हिन्दू पाठशालाओं को तोड़ने की आज्ञा दी, ताकि हिन्दू सभ्यता और संस्कृति का प्रचार बंद किया जा सके।

जजिया नामक धार्मिक कर अकबर ने हटा दिया था। औरंगजेब ने 1679 ई. में पुनः हिन्दुओं पर जजिया कर लगा दिया तथा इसे कठोरता से वसूल करने के आदेश दिये। हिन्दुओं पर पुनः तीर्थ–यात्रा कर लागू किया गया। मुसलमान व्यापारिक कर से मुक्त रखे गये, जबकि हिन्दू व्यापारियों से वस्तु–मूल्य का 5 प्रतिशत चुंगी कर के रूप में लिया जाता था। हिन्दुओं को उच्च सरकारी पदों से हटाया गया तथा सेना में उन पर अप्रत्यक्षरूप से प्रतिबंध लगा दिया। औरंगजेब ने हिन्दुओं के त्यौहारों और उत्सवों के मनाने पर प्रतिबंध लगा दिया।

औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता का उद्देश्य यह था कि किसी प्रकार हिन्दू विवश होकर इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लें। हिन्दू प्रजा को पद, धन, सम्मान का लालच तथा दण्ड से मुक्ति का प्रलोभन देकर इस्लाम का अनुयायी बनाने का प्रयास किया गया। इस्लाम धर्म स्वीकार करने वाले हिन्दू को उच्च पद प्रदान किये जाते थे। इस्लाम स्वीकार करने पर अपराधियों को जेल से मुक्त कर दिया जाता था।

औरंगजेब की इस कट्टर धार्मिक नीति के भयंकर दुष्परिणाम हुए। उसने मुगल साम्राज्य की एकता, शक्ति, शांति और समृद्धि को नष्ट कर दिया। उसकी धर्मान्धता के कारण जाटों, सिक्खों, सतनामियों, मराठों तथा राजपूतों ने विद्रोह कर दिया। इन विद्रोहों के कारण साम्राज्य में अव्यवस्था फैल गयी। औरंगजेब ने इन विद्रोहों को कुचलने का प्रयास किया, परन्तु असफल रहा। उसने अपनी कट्टर धार्मिक नीति के कारण बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा का विश्वास खो दिया। इस प्रकार उसकी यह नीति मुगल साम्राज्य की दुर्बलता के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुई।

कुछ आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार औरंगजेब ने आर्थिक व राजनीतिक कारणों के आधार पर हिन्दुओं के प्रति धर्मान्धता की नीति अपनाई थी। अतः उसकी यह नीति पूर्णरूप से उचित थी। इन विद्वानों के अनुसार औरंगजेब ने हिन्दू मंदिरों को जागीरें दी थीं और उन्हीं हिन्दू मंदिरों को गिराया था, जहां पहले मुसलमानों की मस्जिदें थी। उनके इस कथन में सत्य का अंश तो अवश्य है, परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम और केवल नाममात्र के हैं। तत्कालीन लेखकों के विवरणों में उनके पक्ष का समर्थन प्राप्त नहीं होता। केवल छुट–पुट उदाहरणों के आधार पर औरंगजेब के राज्यकाल के 50 वर्षों में उसके कार्यों तथा नीति को उचित नहीं ठहराया जा सकता।

कुछ विद्वान इतिहासकार यह भी मानते हैं कि औरंगजेब ने आर्थिक आधार पर जजिया व तीर्थ–यात्रा कर लगाये थे। इसे भी न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। अकबर के समय में औरंगजेब की तुलना में राज्यकोष काफी रिक्त था, परन्तु अकबर ने कभी भी इन करों को लगाने और मंदिरों तो तोड़ने की आवश्यकता नहीं समझी, क्योंकि वह यह अच्छी तरह जानता था कि इस प्रकार धार्मिक और सामाजिक एकता को बनाये नहीं रखा जा सकता। ऐसी स्थिति में हमारे सामने सिर्फ दो ही विकल्प हैं–या तो अकबर की नीति को अव्यावहारिक या अनुचित कहा जाए अथवा औरंगजेब की नीति को अव्यावहारिक और अनुचित कहा जाए? हम अकबर और औरंगजेब की धार्मिक नीति के परिणामों के आधार पर आंकलन कर सकते हैं। अकबर की नीति के फलस्वरूप मुगल साम्राज्य शक्तिशाली और समृद्ध हुआ और उसके उत्तराधिकारियों के समय में भी मुगल साम्राज्य शक्ति, समृद्धि और सांस्कृतिक दृष्टि से प्रगतिशील हुआ। इसके विपरीत औरंगजेब की नीति से मुगल साम्राज्य का प्रत्येक क्षेत्र में ह्रास हुआ और उसके उत्तराधिकारियों के समय में मुगल साम्राज्य विनाश और पतन की ओर अग्रसर हो गया।

औरंगजेब संभवतया उन व्यक्तियों में से एक था, जो अपने ही विचारों और नीतियों को उचित मानता था तथा दूसरों के विचारों को सुनने या समझने के लिए तत्पर नहीं था। वह स्वभाव से कट्टर और जिद्दी प्रवृत्ति का था। अतः अपने विचारों में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं था। ऐसा व्यक्ति शासक होने की अपेक्षा एक फकीर या धर्म–प्रचारक होता, तो वह इतनी आलोचना का पात्र नहीं बनता। एक अच्छा प्रचारक, अच्छी नीतिज्ञ और कुशल बादशाह नहीं हो सकता। यही बात औरंगजेब पर भी लागू होती है। यही कारण है कि औरंगजेब की धर्मान्धता की नीति उसकी असफलता का एक प्रमुख कारण सिद्ध हुई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

20.8. सारांश :

उत्तर मुगलकालीन बादशाहों के समय में हुए धार्मिक कट्टरता और धार्मिक उदारता की नीति के संघर्ष में उदार विचारों को सफलता प्राप्त हुई। जहांदारशाह ने जजिया कर समाप्त कर दिया और फर्रूखसियर ने सैय्यद भाइयों के प्रभाव में आकर जजिया और तीर्थ–यात्रा कर दोनों को ही समाप्त कर दिया। बाद में मुगल बादशाह इतने दुर्बल हो गये थे कि उनके लिए अनुदारता की नीति का पालन करना नितान्त असंभव था।

20.9 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 अकबर ने इबादत खाने की स्थापना कब कराई–

अ. 1573 ई. ब. 1574 ई.

स. 1575 ई. द. 1576 ई.

उत्तर – ....

प्रश्न 2 औरंगजेब की धार्मिक नीति पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 मुगलों की धार्मिक नीति पर निबन्धात्मक उत्तर दीजिए।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 21
शिवाजी और उसका विजय अभियान

संरचना

21.0 उद्देश्य
21.1 भूमिका
21.2 शिवाजी के पूर्व मराठों की दशा
21.3 जन्म और बाल्यकाल
21.4 शिवाजी की प्रारम्भिक सफलताएं
- 21.4.1 रायगढ़, सूपा और जावली विजय
- 21.4.2 शिवाजी और बीजापुर, अफजल खाँ से भिडन्त (1659 ई.)
- 21.4.3 अनेक दुर्गों को जीतना
- 21.4.4 बीजापुर के साथ शान्ति समझौता
- 21.4.5 शाइस्ता खाँ की घटना, शिवाजी और मुगल
- 21.4.6 सूरत की लूट (1664 ई.)
- 21.4.7 शिवाजी और जयसिंह (1665–66 ई.)
- 21.4.8 पुरन्दर की सन्धि (22 जून, 1665 ई.)
- 21.4.9 शिवाजी की आगरे की यात्रा (1666 ई.)
- 21.4.10 शिवाजी का आगरे से पलायन
- 21.4.11 मुगलों के साथ युद्ध का पुनः प्रारम्भ
- 21.4.12 मराठों के हाथों मुगलों की पराजय

21.5 राज्याभिषेक के बाद की घटनाएं (1674–1680 ई.)
- 21.5.1 शिवाजी की अन्य विजयें

21.6 शिवाजी का राज्य विस्तार
21.7 शिवाजी की मृत्यु (14 अप्रैल 1680 ई.)
21.8 शिवाजी की प्रशासनिक व्यवस्था
21.9 केन्द्रीय प्रशासन
- 21.9.1 पेशवा
- 21.9.2 अमात्य
- 21.9.3 मन्त्री
- 21.9.4 सचिव
- 21.9.5 सुमन्त
- 21.9.6 सेनापति
- 21.9.7 पण्डितराव
- 21.9.8 न्यायाधीश

21.10 स्थानीय प्रशासन
21.11 सैन्य प्रशासन
21.12 राजस्व प्रशासन
21.13 न्याय व्यवस्था
21.14 शिवाजी की धार्मिक नीति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

21.15 शिवाजी का मूल्यांकन

21.16 अभ्यास प्रश्नावली

21.0. उद्देश्य :

इस इकाई मं छत्रपति शिवाजी की विशेषताओं और योगदान को विस्तार से समझाया गया है वह भी निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से –

– साम्राज्य विस्तार

– शासन प्रबन्ध

21.1. भूमिका :

भारत के मुगल–साम्राज्य का इतिहास तब तक अधूरा ही रहेगा जब तक शिवाजी के नेतृत्व में होने वाले मराठों के उत्कर्ष का वर्णन न कर दिया जाय क्योंकि शिवाजी और उनके उत्तराधिकारियों का मुगल–साम्राज्य के पतन में महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है।

21.2. शिवाजी के पूर्व मराठों की दशा :

शिवाजी के उत्कर्ष के पूर्व मराठे महाराष्ट्र (दक्षिणी पठार की पश्चिमी सीमा) के आदिवासी थे और परमाणुओं की तरह दक्षिण भारत में बिखरे हुए थे। वे निर्धन और पददलित थे और खेती–बाड़ी से अपनी जीविका चलाते थे। इनमें से उच्च–परिवारों के कुछ लोग दक्षिण के मुसलमान राज्यों में नौकर थे। ये सेनानायक और जागीरदार थे। इन्हें जागीरें मिली हुई थीं और इन्हें इन राजदरबारों में द्वितीय अथवा तृतीय श्रेणी के सामन्तों की प्रतिष्ठा प्राप्त थी। किन्तु मराठों का अपने ढंग का एक निजी समाज था। इस समाज के लोगों की विशेषता यह थी कि इनमें आर्थिक और सामाजिक समानता थी और एक धर्म और संस्कृति के साथ–साथ इनके जीवन का दृष्टिकोण भी एक ही था। इनमें से धनी तो बहुत ही कम थे। इनकी भाषा मराठी थी और इनका धर्म हिन्दू था। ये परिश्रमी थे और सादा जीवन बिताते थे। इनका विश्वास दृढ़ था और ये अपने मेहमानों का आदर–सत्कार करते थे। ये स्वावलम्बी, उत्साही, वीर और स्वाभिमानी थे। तीन सौ वर्ष के मुसलमानी शासन ने इन्हें वीर बनाने के साथ–साथ चालाक अधिक बना दिया था। 16वीं और 17वीं शताब्दियों में महाराष्ट्र में एक धार्मिक आंदोलन चला जिसके फलस्वरूप अनेक धर्मोपदेशक पैदा हो गये। इन उपदेशकों में से कुछ नीच जाति के थे किन्तु देश की उच्च जातियों में इनका अच्छा सम्मान था। ये भक्ति का उपदेश देते थे और ऊंच–नीच, धनी–निर्धन सभी के लिए धर्म के मूल सिद्धान्तों की आवश्यकता पर जोर देकर उनमें हिन्दू एकता की भावना भरते थे। तुकाराम, रामदास, वामन पण्डित और एकनाथ के नाम सारे महाराष्ट्र में आज भी घर–घर में गूंज रहे हैं। इनमें से कुछ उपदेशकों के उपदेश लिखे भी गये थे। इन्होंने मराठी भाषा के विकास के साथ–साथ लोगों को जातीयता का नवीन जीवन प्रदान कर उनमें प्रजातंत्र की वह ठोसभावना भर दी जो भारत के किसी प्रदेश में नहीं थी। इसमें राष्ट्रीयता लाने के लिए राजनीतिक चेतना और स्वतंत्रता की भावना की कमी थी। इस अभाव को शिवाजी ने सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पूरा कर दिया। ग्राण्ट डफ के अनुसार उन्नीसवीं शताब्दी में मराठों का उत्कर्ष अचानक हो गया था किन्तु उसका यह कथन निराधार है। यह तो दो सौ वर्ष की उस तैयारी का स्वाभाविक परिणाम था जो सामाजिक और धार्मिक आंदोलन के प्रयत्नों से प्राप्त हुआ था और जिसने जनता की छिपी हुई शक्ति को उभारकर उसमें नवीन जीवन और आशा का संचार भर दिया था।

21.3. जन्म और बाल्यकाल :

शिवाजी के पूर्वज मराठा जाति के भोंसला–वंश के थे। ये पूना जिले में हिन्गानी, बेरडी और दिवालगांव ग्रामों के मुखिया थे जो उस समय अहमदरनगर के निजामशाही सुल्तान के अधिकार में थे। 16वीं शताब्दी के मध्य में इस परिवार का प्रधान पुरुष (मुखिया) बालाजी था। इसके मालोजी और वीतोजी दो पुत्र थे। ये दोनों दौलताबाद की पहाड़ी सीमाओं पर स्थित विरुल (एलोरा) नामक गांव में आ बसे थे और अहमदनगर के सुल्तान के सामन्त सिन्धखेर के यादवराव की अधीनता में साध ारण सिपाही के रूप में भरती हो गये थे। यादवराव उस सम्य अहमदनगर के सुल्तान का सरदार था। कहा जाता है कि एक दिन यादवराव ने हंसी–हंसी में मालोजी के छोटे पुत्र शाहजी को अपनी पुत्री जीजाबाई के लिए योग्य वर बताया। इस पर मालोजी ने उपस्थित मेहमानों से कहा कि यादवराव ने अपनी पुत्री की सगाई मेरे पुत्र से कर दी है और तुम लोग इस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बात के साक्षी हो। यादवराव इससे क्रुद्ध हुआ और मालोजी को नौकरी से अलग कर दिया। कहा जाता है कि मालोजी अपने गांव को लौट आया। कुछ समय बाद उसे अपने खेत में एक गढ़ा हुआ खजाना मिला। इस धन से उसने तथा उसके भाई ने एक हजार सैनिक भरती किये और फलतान–निवासी निम्बालकर के यहां नौकरी कर ली। कुछ दिन बाद वह अहमदनगर के सुल्तान के यहां नौकर हो गया और शीघ्र ही प्रमुखता प्राप्त कर ली। सिन्धखेर के यादवराव ने अब मालोजी के पुत्र शाहजी के साथ अपनी पुत्री जीजाबाई के विवाह करने में कोई हानि नहीं समझा। यही शाहजी उन्नति करते–करते अहमदनगर का प्रमुख सेनानायक और सरदार हो गया। उसकी शक्ति का सर्वप्रथम परिचय तब मिला जब वह मलिक अम्बर के पुत्र फतेहखां के मंत्रित्वकाल में मुगलों द्वारा अधिकृत पूरबी खानदेश पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया था। इस समय मुगल सम्राट शाहजहां अहमदनगर राज्य को जीतने के लिए प्रयत्नशील था। शाहजी ने इस अवसर का लाभ उठाकर जुन्नार से अहमदनगर तक के देश को अपने लिए जीतने का प्रयत्न किया। वह मुग लों की सेवा में भी रहा किन्तु एक वर्ष बाद उन्हें छोड़ दिया। इसके बाद उसने बीजापुर के सुल्तान के यहां नौकरी कर ली और बीजापुर के वजीर खवासखां के प्रमुख सहायक प्रसिद्ध मराठा मुरारजी जगदेव की सहायता भी प्राप्त कर ली। इस समय अहमदनगर के राज्य मुरारजी जगदेव की सहायता भी प्राप्त कर ली। इस समय अहमदनगर के राज्य का पतन हो रहा था। अतः शाहजी ने पूना और चकन को तथा अहमदनगर और नासिक के आसपास के प्रदेशों को छीन लिया। बीजापुर के सुल्तान की सहायता से उसने अगस्त 1633 ई. में अहमदनगर के शाही खानदान के लड़के को राजा बना दिया और तीन वर्ष तक उसके नाम से सरकार चलाता रहा। किन्तु 1636 ई. में उसे उस अल्पायु राजा को मुगलों को सौंप देना पड़ा। अंत में उसने बीजापुर में नौकरी कर ली और मैसूर के पठार तथा पूरबी कर्नाटक में अपनी एक बड़ी रियासत बनाकर बीजापुर सुल्तान का प्रमुख सामन्त बन गया।

शिवाजी इसी शाहजी भोंसले की पहली स्त्री जीजाबाई से उत्पन्न पुत्ररत्न थे। उनका जन्म सोमवार, 20 अप्रैल, 1627 ई. को पूना के उत्तर में स्थित जुन्नार नगर के समीप शिवनेर के पहाड़ी किले में हुआ था। कुछ लोगों का कहना है कि उनका जन्म 9 मार्च, 1630 ई. को हुआ था। कुछ लोगों का कहना है कि उनका जन्म 9 मार्च, 1630 ई. को हुआ। जब वह लगभग दस वर्ष के हो गये तक पूना भेज दिये गये। इस समय शाहजी ने जीजाबाई का परित्याग कर उससे अधिक सुन्दर स्त्री तुकाबाई मोहिते से विवाह कर लिया था। फलतः उसने अपनी पहली स्त्री जीजाबाई को बालक शिवाजी के साथ–साथ अपने परमभक्त कारिन्दे दादाजी कोंणदेव के संरक्षण में पहले शिवनेर में और फिर पूना में छोड़ दिया और फिर कुछ वर्ष तक उनसे नहीं मिला। जीजाबाई परमभक्त और पतिव्रता स्त्री थी। शाहजी के त्याग के कारण शिवाजी और उसकी माता में ऐसा ही प्रेम था जैसा भक्त का भगवान में। शिवाजी एक ऐसा निर्भीक बालक था जिसने अपने से उच्च अधिकारी की अधीनता में रहना तो सीखा ही नहीं था। उसकी माता गुरु और संरक्षक दादाजी कोंणदेव ने उसे हिन्दू धर्म तथा शास्त्रों की शिक्षा दी थी। उसको सैनिक–शिक्षा भी दी गयी थी और वह घुड़सवारी तथा दूसरे सैनिक कार्यों में निपुण हो गया किन्तु उसने लिखना–पढ़ना नहीं सीखा था। निरक्षर होते हुए भी उसने सुन–सुनकर रामायण, महाभारत तथा दूसरे हिन्दू–शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वह धार्मिक कीर्तनों तथा हिन्दू अथवा मुसलमान संतों के सत्संग का बहुत प्रेमी था।

शिवाजी ने शासन सम्बन्धी ज्ञान और अनुभव व्यवहार–कुशल एवं अनुभवी दादाजी कोंणदेव से ही प्राप्त किया था। बारह वर्ष की आयु में उसके पिता ने उसे पूना की जागीर दे दी और 1641 ई. के लगभग सईबाई निम्बालकर के साथ शाहजी के प्रधान स्थान बंगलौर में उसका विवाह हो गया। शिवाजी के जन्म और प्रारम्भिक जीवन के कार्यकलापों का स्मृति–स्थान मावल नामक प्रदेश है। यह पहाड़ियों और घाटियों से घिरा हुआ है और उन किलों से शोभायमान है जिनके स्वमी प्रायः बदलते रहे हैं। इन दृश्यों ने उसमें ऐसी साहसिक चेतना उत्पन्न कर दी जिससे उसमें क्रमशः उत्कृष्ट देशभक्ति का विकास होता गया। मावल प्रदेश के निवासी अधिकतर कोली और मराठे थे। ये अत्यन्त दृढ़ और परिश्रमी थे और उच्चकोटि के सैनिक थे। शिवाजी ने इन्हीं नवयुवकों को इकट्ठा कर एक के बाद दूसरा किला जीतना आरंभ कर दिया। अहमदनगर और बीजापुर राज्य का पतन हो रहा था, देश में अव्यवस्था फैली हुई थी और जनता में शांति और सुरक्षा का अभाव था। इन सब कारणों ने शिवाजी में साहसी जीवन भरकर स्वतंत्र राष्ट्र के निर्माण की उत्कृष्ट इच्छा उत्पन्न कर दी। यह तो संदिग्ध है कि शिवाजी उस समय हिन्दुओं को मुस्लिम शासन से मुक्त कराना चाहते थे। उनका सच्चा विचार कुछ भी रहा हो, किन्तु उन्होंने अपने जीवन के आरंभ में ही पूना के आसपास के किलों को छीनना आरंभ कर दिया था। दादाजी कोंणदेव को शिवाजी के इस काम से बहुत दुख हुआ, क्योंकि वह नहीं चाहता था कि उसका अभिरक्षित एक प्रथम श्रेणी के सरदार एवं खानदानी रईस का लड़का आराम के जीवन को छोड़कर अपने वंश की प्रतिष्ठा के विरूद्ध ऐसे साहसिक कार्य करे। मार्च 1647 ई. में दादाजी कोंणदेव की मृत्यु हो गयी और शिवाजी अपनी बीस वर्ष की अवस्था में ही अपने द्वारा निश्चित मार्ग पर अग्रसर होने लगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

21.4. शिवाजी की प्रारम्भिक सफलताएं :

एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना के उद्देश्य से शिवाजी ने सबसे पहले मालवा प्रदेश पर ही अपना पूर्ण अधिकार किया। सन् 1643 ई. में सिंहगढ़ पर अधिकार कर लिया गया। इस प्रकार शिवाजी का चाकन, पुरन्दर, बारामती, सूपा, जावली आदि दुर्गों पर जल्द ही अधिकार हो गया। 1646 ई. में उसने बीजापुर के तोरण दुर्ग पर भी अपनी सत्ता जमा ली। शिवाजी के इन कार्यों से बीजापुर का सुल्तान चिढ़ गया और शिवाजी को सीख देने के उद्देश्य से उसने शाहजी को राजद्रोह के आरोप में 25 जुलाई, 1648 ई. को कैद कर लिया। बाद में 1649 ई. में लाचार होकर शिवाजी को बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह से शांति–समझौता कर लेना पड़ा। अस्तु, प्रायः छह वर्षों तक (1649–1655 ई.) शिवाजी को अपनी आक्रमणात्मक नीति का परित्याग करना पड़ा, किन्तु इन वर्षों को भी उन्होंने राज्य संगठन एवं अपनी सैन्य शक्ति के विस्तार में लगाया।

21.4.1. रायगढ़, सूपा और जावली विजय – 1655 ई. में पुनः शिवाजी ने अपनी आक्रमण नीति को प्रारंभ किया। 25 जनवरी, 1655 ई. को उन्होंने जावली के दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। जावली दुर्ग का सामरिक महत्व बहुत अधिक था। जब तक शिवाजी का इस दुर्ग पर अधिकार नहीं हो जाता, वे अपने राज्य का विस्तार दक्षिण–पश्चिम में नहीं कर सकते थे। जावली की विजय शिवाजी के जीवन की एक उल्लेखनीय घटना कही जा सकती है। अब दक्षिण–पश्चिम की ओर शिवाजी का विस्तार आसान हो गया। पुनः जावली विजय से शिवाजी की सैनिक शक्ति बहुत अधिक बढ़ गयी, क्योंकि जावली के हजारों सैनिक अब उनकी सेना में भर्ती हो गये। इससे शिवाजी को आर्थिक लाभ भी हुए। जावली की विजय के बाद शिवाजी ने 1655 ई. के अप्रैल माह में रायगढ़ के दुर्ग को जीतकर उसे अपनी राजधानी बना ली। 1656 ई. के अक्टूबर में उसने सूपा जिले पर भी अपना अधिकार कर लिया।

21.4.2. शिवाजी और बीजापुर, अफजल खां से भिड़न्त (1659 ई.) – शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने का प्रयास बीजापुर के शासक आदिलशाह ने किया था। 1656 ई. में आदिलशाह स्वर्गवासी हो गया और एक 18 वर्ष का नवयुवक रियासत का उत्तराधिकारी बना। शासन–सत्ता निश्चित रूप से कमजोर हो गयी। इसका फायदा उठाकर शिवाजी ने बीजापुर के अनेक दुर्गों पर अधिकार कर लिया। सुल्तान शिवाजी को दबाना चाहता था। इस उद्देश्य से बीजापुर के एक प्रसिद्ध सेनापति अफजल खां को 10,000 सवारों के साथ शिवाजी के विरूद्ध भेजा गया। शिवाजी की सैन्य शक्ति एवं उसकी युद्धशैली का ख्याल रखते हुए अफजल खां को यह आदेश दिया गया कि वह युद्ध के बजाय छल–बल के द्वारा शिवाजी को पराजित करे। अफजल खां ने धोखे से शिवाजी को मारना चाहा। उसने कृष्णजी भास्कर नामक एक मराठा ब्राह्मण को अपना दूत बनाकर शिवाजी से मिलने की उत्कृष्ट इच्छा प्रकट की। अफजल खां ने इस मिलन के द्वारा शिवाजी पर एक–न–एक हमला करने की योजना बना रखी थी, किन्तु शिवाजी को उसके इस नापाक इरादे का पता चल गया था। अतः उन्होंने अपनी सुरक्षा का पूरा प्रबंध कर लिया। उसने अपने शरीर पर कवच एवं हाथ में बंधनखा धारण किया। इसके बाद प्रतापगढ़ में उन्होंने अफजल खां से भेंट की। अफजल खां ने शिवाजी को बातचीत में फंसाकर एक–बार उस पर तलवार का वार किया। इस पर शिवाजी ने उसे अपने बधनखे का शिकार बना दिया। यह घटना 6 नवम्बर, 1659 ई. को घटी थी। इसी बीच मराठा सैनिक बीजापुर की सेना पर टूट पड़े। बीजापुर की सेना पराजित होकर पीछे लौट गयी। इसमें बीजापुर के तीन सौ सैनिकों का कत्ल कर दिया गया और शेष भाग खड़े हुए। शिवाजी ने शत्रु सेना की तोपखाना, गोलाबारूद, खजाना, हाथी, घोड़े और ऊंटों पर अपना अधिकार कर लिया।

21.4.3. अनेक दुर्गों को जीतना – अफजल खां की मृत्यु के बाद शिवाजी की सेना ने दक्षिणी कोंकण और कोल्हापुर के जिलों पर आक्रमण कर पन्हाला, बसन्तगढ़, खेलना, पंगा और अन्य दूसरे किलों पर अपना अधिकार कर जमा लिया। जनवरी, 1660 ई. के अंत में लूट का सारा सामान लेकर शिवाजी रायगढ़ पहुंचे।

21.4.4. बीजापुर के साथ शांति–समझौता – शिवाजी की इन सफलताओं से बीजापुर का सुल्तान घबड़ा गया और उसने कर्नूल जिले के अधिकारी सिद्दी जौहर को शिवाजी पर आक्रमण करने का आदेश दिया। उसने शिवाजी को पन्हाला दुर्ग में घेर लिया, किन्तु वे वहां से भागकर विशालगढ़ चले गये। अंत में शिवाजी के विरूद्ध अपनी असफलताओं को देखकर बीजापुर के सुल्तान ने उनसे एक शांति–समझौता कर लिया। इस समझौते के अनुसार शिवाजी ने पन्हाला एवं चाकन के किलों को सुल्तान को दे दिया और बदले में सुल्तान ने शिवाजी को एक स्वतंत्र शासक मान लिया।

21.4.5. शाइस्ता खां की घटना, शिवाजी और मुगल – जिस समय दक्षिण में शिवाजी अपनी शक्ति के विकास में लगे हुए थे, उन दिनों उत्तर में शक्तिशाली मुगलों का शासक था। अकबर के शासनकाल में ही दक्षिण भारत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में भी मुगलों के प्रभुत्व की स्थापना हो चुकी थी और बाद में मुगल शासकों ने दक्षिण में अपने प्रभुत्व को और अधिक बढ़ाने का प्रयत्न किया। शिवाजी के उत्थानकाल के प्रारंभिक वर्ष में औरंगजेब दक्षिण में मुगल साम्राज्य का सूबेदार था। जब औरंगजेब ने 1657 ई. के आरंभ में बीजापुर पर आक्रमण किया तब शिवाजी और मुगलों की प्रथम मुठभेड़ हुई, किन्तु इसी समय मुगल शहजादों के बीच उत्तराधिकार युद्ध प्रारम्भ हो गया। अतः सन् 1657 से 1659 के बीच शिवाजी को अपनी शक्ति एवं सत्ता–विस्तार की पूरी स्वतंत्रता मिल गयी। जब औरंगजेब भारत का सम्राट बना तो उसने मराठों की बढ़ती हुई शक्ति के दमन को अपनी दक्षिणी नीति में प्राथमिकता दी। उसने इस उद्देश्य से अपने मामा शाइस्ता खां को सन् 1660 ई. में दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। उसने जल्द ही पूरा, चाकन और कल्याण के जिलों पर अपना अधिकार जमा लिया और शिवाजी की शक्ति बहुत कम कर दी। शाइस्ता खां से छुटकारा पाने के उद्देश्य से शिवाजी ने 15 अप्रैल, 1663 ई. की रात्रि को शाइस्ता खां के ऊपर जब वह घोर निद्रा में मग्न था, आक्रमण कर दिया। मुगल सेना इसके लिए तत्पर न थी, अतः उनके बीच इस आक्रमण से खलबली मच गयी। बहुत से मुगल सैनिक मारे गये और स्वयं शाइस्ता खां अपनी जान बचाकर भागने के सिलसिले में अपनी कुछ अंगुलियां गवां बैठा।

21.4.6. सूरत की लूट (1664 ई.) – शाइस्ता खां की इस असफलता से उद्विग्न हो, औरंगजेब ने मराठों की शक्ति को कुचलने के लिए उसके स्थान पर पहले शहजादा मुहज्जम और बाद में राजा जयसिंह को नियुक्त किया, किन्तु इसके पूर्व ही शिवाजी ने सूरत के बंदरगाह पर आक्रमण कर दिया था। सूरत उन दिनों एक समृद्ध नगर तथा व्यापार का बहुत महत्वपूर्ण केन्द्र था। वहां डच एवं अंग्रेजों की कुछ कोठियां भी थीं। शिवाजी ने सूरत पर आक्रमण कर चार दिनों तक (16 जनवरी से 20 जनवरी 1664 ई) निश्चिन्तता के साथ लूटा तथा अनेक गृहों में आग लगा दिये। बहुत से लोग मार डाले गये। मराठों को इस लूट से काफी धन हाथ लगा।

21.4.7. शिवाजी और जयसिंह (1665–66 ई.) – अब तक अंबर नरेश जयसिंह दक्षिण जा चुका था। वह सिर्फ एक योग्य सेनापति ही नहीं, अपितु एक सफल कूटनीतिज्ञ भी था। जयसिंह ने दक्षिण में आते ही बीजापुर के साथ संधि कर ली और शिवाजी के विरूद्ध आक्रमण की योजना बनायी। उसने पुरन्दर को घेर लिया और सेना की एक दूसरी टुकड़ी को मराठा प्रदेश को लूटने में लगा दिया। शिवाजी ने जब देखा कि पुरन्दर के किले को बचाना आसान नहीं है तो उन्होंने संधि की बात चलायी।

21.4.8. पुरन्दर की संधि (22 जून, 1665 ई.) – शिवाजी ने पुरन्दर के किले की रक्षा के उद्देश्य से जयसिंह के साथ 22 जून, 1665 ई. को एक संधि कर ली, जिसे पुरन्दर की संधि के नाम से पुकारा जाता है। संधि की शर्तें निम्नलिखित थीं–1. शिवाजी ने मुगलों को अपने तेईस दुर्गों के अतिरिक्त उस प्रदेश को दे दिया जिसकी वार्षिक आय चार लाख हून की थी। यह क्षेत्र अब मुगल साम्राज्य का अंग बन गया। 2. मुगलों ने रायगढ़ समेत अन्य बारह दुर्ग तथा उनसे लगी भूमि पर, जिसकी वार्षिक आय एक लाख की थी, शिवाजी का अधिकार स्वीकार कर लिया। 3. शिवाजी ने भविष्य में मुगल सम्राट की सेवा करने का आश्वासन दिया। शिवाजी को मुगल दरबार की निजी उपस्थिति से बरी कर दिया गया, किन्तु उसने अपने बेटे शंभुजी के साथ 5000 सवार भेजने का वादा किया। सम्राट् ने इसके एवज में शिवाजी को उचित जागीर प्रदान करने का वचन दिया। इसके अतिरिक्त एक गुप्त संधि भी की गयी, जिसके अनुसार शिवाजी ने बीजापुर पर आक्रमण के समय मुगलों को अपना सहयोग का वचन दिया और सम्राट् से यह आश्वास चाहा कि बीजापुर का विघटन होने पर रियासत के कोंकण और बालाघाट प्रदेश उसे मिल जाएंगे। इसके बदले में शिवाजी ने मुगल सम्राट् को चालीस हजार हून देने का वादा किया। इस संधि के अनुरूप शिवाजी ने बीजापुर के विरूद्ध युद्ध में जयसिंह की सहायता की, किन्तु यह अभियान असफल रहा।

21.4.9. शिवाजी की आगरे की यात्रा (1666 ई.) – जयसिंह शिवाजी को आगरे ले जाने के लिए उत्सुक था। शिवाजी इसके लिए तैयार न थे, क्योंकि उन्हें औरंगजेब पर विश्वास नहीं था परन्तु जयसिंह के द्वारा अपनी सुरक्षा का आश्वासन पाकर वे ओरा जाने के लिए तैयार हो गये। वे अपनी आंखों से उत्तर भारत की स्थिति को समझने के लिए उत्सुक थे। संभवतः वह यह भी आशा करते थे कि सम्राट् की सहायता से वे सिसोदियों से जंजीरा का द्वीप प्राप्त करके अपनी पश्चिमी सीमा को सुरक्षित कर सकेंगे। अतः वह आगरे जाने के लिए तैयार हो गये और 9 मई, 1666 ई. को उन्होंने अपने बेटे, प्रध ाान सरदारों और 4000 सैनिकों के साथ आगरे जाकर औरंगजेब से भेंट की। दुर्भाग्यवश औरंगजेब ने दरबार में शिवाजी के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार नहीं किया। उन्हें पांच हजारी मनसबदारों की तीसरी पंक्ति में खड़ा कर दिया गया। शिवाजी ने इसे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपना अपमान समझा, क्योंकि वह पदवी उनके नाबालिग पुत्र को दी गयी थी। इसके अतिरिक्त चूंकि औरंगजेब का जन्म दिवस मनाया जा रहा था। अतः उसे शिवाजी से वार्तालाप करने का समय नहीं मिला। उन्होंने खुले दरबार में औरंगजेब को विश्वासघाती कहकर संबोधित किया। इस पर औरंगजेब ने शिवाजी और उनके लड़के को कैद करवा लिया। संभवतः वह शिवाजी की हत्या भी करवा देना चाहता था, किन्तु जयसिंह एवं उसके पुत्र राम सिंह के प्रभाव के कारण वह ऐसा नहीं कर सका। इससे राजपूतों के बिगड़ जाने की संभावना थी।

21.4.10. शिवाजी का आगरे से पलायन — शिवाजी कठिन–से–कठिन परिस्थितियों में भी अपना धैर्य एवं आत्मविश्वास खोने वाला व्यक्ति न थे। वे अपनी चातुर्य से कैद से मुक्त होने में सफल हो गये। वे कैद से भागकर अपने लड़के के साथ मथुरा पहुंचे। वहीं अपने लड़के शंभुजी को एक मराठा ब्राह्मण के संरक्षण में छोड़कर शिवाजी संन्यासी के वेष में इलाहाबाद, बनारस, गया, तैलंगाना होते हुए घूमते–घूमते 30 नवम्बर, 1666 ई. को महाराष्ट्र पहुंचे। कैद से शिवाजी एवं उनके पुत्र का पलायन औरंगजेब के लिए एक लज्जा की बात थी। उसने रामसिंह एवं जयसिंह का हाथ इसमें समझा। राम सिंह मुगलों की सेवा से मुक्त कर दिया गया और जयसिंह को दक्षिण से वापस बुला लिया गया। कहा जाता है कि रास्ते में बुरहानपुर के पास 7 दिसम्बर, 1666 ई. को जयसिंह को विष देकर औरंगजेब ने ही मरवा डाला।

वस्तुतः शिवाजी की आगरा यात्रा के बाद ही मुगलों तथा मराठों के बीच एक गहरी खायी उत्पन्न हो गयी। ऐसा प्रतीत होता है कि जयसिंह की आशा के विपरीत औरंगजेब शिवाजी की मैत्री को विशेष महत्व नहीं देता था। उसके लिए शिवाजी एक छोटे जमींदार से अधिक महत्व नहीं रखते थे। निस्संदेह ऐसा सोचना तथा एक अदूरदर्शी मराठा नीति का पालन करना औरंगजेब की बहुत बड़ी राजनीतिक भूल थी।

21.4.11. मुगलों के साथ युद्ध का पुनः प्रारम्भ — शिवाजी इस भाग–दौड़ से काफी थके थे। इस समय औरंगजेब भी पश्चिमोत्तर सीमा में युसूफ जाइयों के विद्रोह के दमन में व्यस्त था। औरंगजेब ने दक्षिण की सूबेदारी मुअज्जम को दे रखी थी, किन्तु उसकी सहायता के लिए उसने यशवन्त सिंह को भी भेजा था। यशवन्त सिंह शिवाजी का आदर करता था। अतः उसने औरंगजेब और शिवाजी के बीच समझौते का प्रयत्न किया। उसके प्रभाव में आकर औरंगजेब ने शिवाजी को एक स्वतंत्र शासक मान लिया एवं बरार की जागीर उन्हें दे दी गयी। शम्भू जी को पांच हजार का मंसब दिया गया तथा शिवाजी ने सम्राट् के लिए 5000 सैनिक भेज दिये। यह संधि शिवाजी और मुगलों के बीच 1668 ई. में की गयी। शिवाजी ने 1667 से लेकर 1669 ई. के बीच के तीन वर्षों को शासन के कार्यों में लगाया। शिवाजी एवं औरंगजेब के बीच यह शांति एक दिखावा मात्र थी। दोनों एक–दूसरे से संशकित रहते थे और अपनी शक्ति की परीक्षा के लिए उचित अवसर की खोज में थे। शिवाजी ने 1669 ई. तक कोंकण में अपनी शक्ति का विस्तार कर लिया। 1670 ई. में औरंगजेब की दुर्नीति से असंतुष्ट होकर उन्होंने पुनः मुगलों के साथ युद्ध का आरंभ कर दिया। मराठों का प्रहार इस बार इतना शक्तिशाली था कि मुगल सेना एक के बाद दूसरे दुर्गों को छोड़कर पीछे हटती गयी और उन पर पुनः मराठों का अधिकार होता चला गया। इसी समय शहजादा मुअज्जम और दिलेर खां के बीच मनमुटाव ने गृहयुद्ध का रूप धारण कर लिया था। मुगलों की इस कमजोरी का फायदा उठाकर शिवाजी ने 13 अक्टूबर, 1670 ई. को सूरत को दूसरी बार लूटा। सूरत के बंदरगाह को नष्ट कर दिया गया और इसके लूट से मराठों के हाथ एक बहुत बड़ी धनराशि आयी। इस आक्रमण के बाद मुगल सम्राट की सूरत से होने वाली आय काफी घट गयी और वहां मराठों का आतंक छा गया। अपनी इस स्फलता के बाद शिवाजी ने सिर्फ दक्षिणी मुस्लिम रियासतों से ही नहीं, वरन् मुगलों के अधीनस्थ राज्यों से भी चौथ और सरदेशमुखी करों की वसूली की।

21.4.12. मराठों के हाथों मुगलों की पराजय — सन् 1670 से 1680 तक शिवाजी को दिन–प्रतिदिन अधिकाधिक सफलता मिलती गयी। 1670 ई. में उसने खानदेश और बरार पर आक्रमण के लिए प्रतापराव को भेजा। खानदेश के विरूद्ध मराठों को पूरी सफलता मिली। 15 जनवरी, 1671 ई. को साल्हेर दुर्ग के ऊपर शिवाजी का अधिकार हो गया। औरंगजेब ने इस बार महावत खां को मराठों को कुचलने के लिए भेजा था। सन् 1670–1674 ई. के बीच अनेकों बार मुगलों तथा मराठों के बीच मुठभेड़ हुए। मराठों ने साल्हेर, मुल्हे, ज्वाहेर, रामनगर आदि अनेक युद्धों में मुगलों को बुरी तरह से पछाड़ा।

1672 ई. में जब बीजापुर के सुल्तान एवं शिवाजी के आपसी सम्बन्ध विच्छेदित हो गये। अतः शिवाजी ने पन्हाला दुर्ग पर पुनः अपना अधिकार कर लिया। बीजापुर के सुल्तान ने मराठों को दबाने के लिए लाख प्रयत्न किये, किन्तु उसकी एक न चली। सतारा का दुर्ग भी उनके हाथों से निकल गया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शिवाजी का राज्याभिषेक (16 जून, 1674 ई) तथा इसका महत्त्व – शिवाजी की शक्ति एवं सत्ता विस्तार 1674 ई. तक काफी हो चुका था, किन्तु दक्षिण के मुस्लिम रियासत एवं उत्तर के मुगल सम्राट की दृष्टि में अभी भी वे एक विद्रोही, लूटेरा और सफल अनियमित सिंहासनाधिकारी थे। शिवाजी ने अपने मंत्रियों की सलाह से शास्त्रानुसार अपना विधिवत् राज्याभिषेक कराकर 'राजा' का पद धारण करना आवश्यक समझा। 16 जून, 1674 ई. को बड़े धूमधाम के साथ शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक करवाया और 'छत्रपति' तथा 'गौ–ब्राह्मण–प्रतिपालक' की उपाधियां धारण की। शिवाजी का राज्याभिषेक अनेक उद्देश्यों से प्रेरित था। इसके चलते वे मराठा नेताओं के बीच सर्वशक्तिशाली एवं श्रेष्ठ माने जाने लगे। इस अवसर पर पंडित गंगाभट्ट ने घोषणा की कि शिवाजी एक उच्चवर्गीय क्षत्रिय हैं। इस घोषणा से शिवाजी की सामाजिक स्थिति मजबूत हुई और उन्होंने खानदानी मराठा परिवारों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। राज्याभिषेक के बाद शिवाजी दक्कन के सुल्तानों के साथ अब बराबरी का दावा कर सकते थे। अंत में यह भी कहा जा सकता है कि मराठा राष्ट्र भावना के साथ विकास में भी यह काफी सहायक सिद्ध हुआ।

21.5. राज्याभिषेक के बाद की घटनाएं (1674–1680 ई.) :

शिवाजी ने अपने राज्याभिषेक पर काफी धन खर्च कर दिया था। फलतः उनका कोष रिक्त हो गया। अब उनके सामने पहली समस्या अपने रिक्त राज्यकोष को भरने की थी। इस उद्देश्य से शिवाजी ने पैंड़गांव में स्थित मुगल सेनापति पर आक्रमण कर उसे खदेड़ दिया और यहां उन्हें एक बड़ी धनराशि तथा अच्छे नस्ल के घोड़े प्राप्त हुए। उन्होंने बलगाना, खानदेश, कोल्हापुर आदि मुगलों के अधीनस्थ क्षेत्रों पर आक्रमण कर उन्हें पूरी तरह से लूटा और काफी मात्रा में धन एवं घोड़े एकत्र किये। बीजापुर, गोलकुण्डा एवं हैदराबाद के रियासतों के ऊपर आक्रमण कर के भी उन्होंने काफी धन प्राप्त किया। बड़ौदा, जो इन दिनों पुर्तगालियों के अधीन था, पर भी मराठों का सफल आक्रमण हुआ।

21.5.1 शिवाजी की अन्य विजयें – जब मुगल सेना ने बीजापुर पर आक्रमण किया तो शिवाजी ने बीजापुर के सुल्तान को मुगलों के विरूद्ध सहायता का वादा किया। इसके बदले में बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी को तीस लाख रुपये नकद और एक लाख हून सालाना देना स्वीकार किया, किन्तु यह समझौता अस्थायी साबित हुई।

21.6. शिवाजी का राज्य–विस्तार :

शिवाजी ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष में कर्नाटक, जिंजी, बैलोर आदि क्षेत्रों पर भी अधिकार कर लिया था। उन्होंने प्रायः 30 वर्ष तक संघर्ष कर एक नये स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। शिवाजी ने सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर अपना आधिपत्य जमा लिया। उनके राज्य का विस्तार उत्तर में रामनगर से लेकर दक्षिण में कारवार तक विस्तृत था। उनकी पूर्वी सीमा, उत्तर में बलगाना से दक्षिण में कोल्हापुर तक थी। इसके अतिरिक्त इसमें मैसूर का एक बड़ा भाग तथा पश्चिमी कर्नाटक का भी कुछ हिस्सा शामिल था।

21.7. शिवाजी की मृत्यु (14 अप्रैल, 1680 ई.) :

शिवाजी के अंतिम दिन आनन्द से नहीं बीते। उन्हें दो बातों को अत्यन्त दुःख था–प्रथम सन् 1674 में उसकी माता जीजाबाई की मृत्यु और द्वितीय उसके पुत्र शंभुजी की स्वेच्छाचारिता एवं उनके साथ उपेक्षित व्यवहार। इन्हीं दुःखों को अपने ह्रदय में छिपाये हुए 14 अप्रैल, 1680 ई. को तिरपन वर्ष की अवस्था में शिवाजी इस संसार से कूच कर गये।

21.8. शिवाजी की प्रशासनिक व्यवस्था :

शिवाजी ने अपने रण कौशल एवं कुशल कूटनीति से न केवल 'स्वराज्य' की स्थापना की, बल्कि अपने स्वराज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को भी सुसंगठित किया, जिसमें शिवाजी का मुख्य उद्देश्य जनहित था।

21.9. केन्द्रीय प्रशासन :

मध्यकालीन रीति के अनुसार एक निरंकुश शासक थे और शासन की सारी शक्ति अपने हाथ में ही रखते थे, किन्तु सदैव अपनी प्रजा का कल्याण चाहते थे, अतः हम उन्हें एक 'दयालु निरंकुश' शासक कह सकते हैं। उन्होंनें शासन प्रबंध में सहायता देने के लिए आठ मंत्रियों की नियुक्ति की थी, जो केवल शिवाजी के प्रति उत्तरदायी थे। शिवाजी उन्हें रखने या निकालने को पूर्ण स्वतंत्र था। इन मंत्रियों का काम शिवाजी को केवल उस समय सलाह देना था, जब शिवाजी उनकी सलाह लेना चाहे। अन्यथा उन्हें केवल शिवाजी की आज्ञा का पालन ही करना पड़ता था। इन मंत्रियों के अधीन एक निश्चित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रशासनिक विभाग होता था। राज्य की नीति निर्धारण को छोड़कर शिवाजी उनके काम में बहुत कम दखल देते थे। इन मंत्रियों में पेशवा, राजा का अधिक विश्वासपात्र था और अन्य मंत्रियों में उसकी प्रमुखता थी। ये सभी मंत्री 'अष्ट प्रधान' कहलाते थे। ये मंत्री और उनके कार्य इस प्रकार थे–

21.9.1. पेशवा – इसे मुख्य प्रधान भी कहा जाता था। उस पर राज्य के सभी मामलों की देखभाल व प्रजा हित का उत्तरदायित्व होता था। राज्य के सभी अधिकारियों पर उसी का नियंत्रण होता था। सभी राजकीय आदेशों व संदेशों पर राजा की मुहर के नीचे अपनी मुहर लगाता था। राजा की अनुपस्थिति में वह राजा की ओर से शासन कार्य करता था।

21.9.2. अमात्य – सम्पूर्ण राज्य अथवा किसी विशेष जिले के आय–व्यय प्रलेखों की जांच कर उन पर अपने हस्ताक्षर करता था।

21.9.3. मंत्री – यह राजा के दैनिक कार्यों की डायरी रखता था, राजा से मिलने वालों की सूची रखता था तथा राजा के खाने पीने की चीजों पर सतर्क दृष्टि रखता था, ताकि कोई गुप्त षड़यंत्र द्वारा राजा की हत्या न कर दे। इसे वाकियानवी सभी कहते थे।

21.9.4. सचिव – यह सभी राजकीय पत्रों की भाषा–शैली देखता था और परगनों के हिसाब की जांच भी करता था। इसे शुरूनवीस भी कहते हैं।

21.9.5. सुमन्त – विदेशों से सम्बन्ध व संधि–विग्रह के सम्बन्ध में राजा को सलाह देना तथा विदेशी राजदूतों पर सतर्क दृष्टि रखते हुए गुप्तचरों द्वारा दूसरे राज्यों की गुप्त सूचनाएं मंगवाना इसी का काम था। इसे दबीर (विदेश–मंत्री) भी कहते थे।

21.9.6. सेनापति – सैनिकों की भर्ती, उनका संगठन व अनुशासन और युद्ध क्षेत्र में सेना की तैनाती करना इसी का काम था। इसे सरै–नौबत भी कहते थे।

21.9.7. पण्डित राव – शुभ मुहूर्त व धार्मिक कार्यों की तिथि निश्चित करना, पापाचार व धर्म–भ्रष्टता के लिये दण्ड देना, ब्राह्मणों में दान बंटवाना, धर्म व जाति सम्बन्धी झगड़ों को निपटाना तथा प्रजा के आचरण को सुधारना इसी का काम था।

21.9.8. न्यायाधीश – राज्य का सबसे बड़ा न्यायकर्त्ता होने के कारण सभी सैनिक असैनिक न्याय करना और भूमि अधिकार एवं गांव की मुख्यािगिरी आदि के निर्णयों पर अमल कराना इसी का काम था।

पण्डितराव व न्यायाधीश को छोड़कर सभी मंत्रियों को समय–समय पर सेना का नेतृत्व भी करना पड़ता था। सभी राजकीय पत्रों, फरमानों व संधि पत्रों पर राजा व पेशवा की मुहर के नीचे अमात्य, मंत्री, सचिव और सुमन्त इन चारों के हस्ताक्षर होते थे।

21.10. स्थानीय प्रशासन :

शिवाजी का सम्पूर्ण राज्य चार प्रान्तों में विभक्त था और प्रत्येक प्रान्त वायसराय या सूबेदार के अधीन था। एक प्रान्त में अनेक परगने होते थे और प्रत्येक परगना संभवतः एक सैनिक अधिकारी के अधीन रखा जाता था। प्रत्येक परगना कई 'मौजों' में विभक्त था, जो प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। संभवतः 'मौजा' एक मुखिया के अधीन होता था और वहां पंचायती शासन की पद्धति रही होगी।

21.11. सैनिक प्रशासन :

शिवाजी का सैनिक प्रशासन श्रेष्ठ था। शिवाजी की मृत्यु के समय उसकी सेना में 45,000 पागा, 60,000 सिलेदार घुड़सवार और एक लाख मावले सैनिक थे। उनकी घुड़साल में 32,000 घोड़े थे। उनके हाथियों की संख्या के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न मत हैं। सेना का सबसे महत्वपूर्ण भाग राजकीय अश्वारोहियों का प्रसिद्ध पागा होता था। इस भाग के सैनिक को 'बरगीर' कहते थे, जिन्हें घोड़े हथियार, पांच हवलदारों एक एक जमादार और दस जमादारों अर्थात् 1,250 बरगीरों पर एक हजारी होता था। पागा में सर्वोच्च पद पांच हजारी होता था तथा इस सम्पूर्ण पागा अश्व सेना पर सरै नौबत होता था। सिलेदार अपने घोड़े व हथियार अपने पास से खरीदते थे। ये पागा अश्व सेना से निम्न श्रेणी के होते थे तथा अश्व–सेना के सेनापति के नियंत्रण में रहते थे। सेना में पैदल सैनिकों का भी विशेष महत्व था। नौ पैदल सिपाहियों पर एक नायक, दस नायकों के ऊपर एक हवलदार, दो या तीन हवलदारों पर एक जुमलादार और दस जुमलादारों पर एकहजारी होता था। पैदल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सैनिक विभाग में सर्वोच्च पद सात हजारी था। सात हजारियों पर सरै नौबत होता था। इसके अतिरिक्त दो हजार मावले प्यादा शिवाजी के अंग–रक्षक थे।

मराठों की सेना नीति यह थी कि वह विदेशी राज्यों पर आक्रमण करने तथा रसद आदि एकत्र करने हेतु सेना वर्ष में आठ महीना बाहर रखते थे। वर्षा के चार महीने सेना छावनी में व्यतीत करती थी और दशहरें के बाद राजा द्वारा निर्दिष्ट राज्य पर आक्रमण करने निकलते थे। प्रमाण के पूर्व सैनिकों एवं अधिकारियों के पास रहने वाली वस्तुओं की सूची बनाई जाती थी और लौटने पर तलाशी ली जाती थी। तलाशी में जो वस्तुएं अधिक पाई जाती वह राज्य में जमा कर ली जाती थी। सेना अपने साथ बहुत कम सामान रखती थी। स्त्रियां फौज के साथ नहीं जा सकती थी।

21.12. राजस्व प्रशासन :

शिवाजी के राजस्व का मुख्य साधन भूमि कर था। भूमि कर व्यवस्था क्षेत्रामिति के निश्चित सिद्धान्तों के द्वारा किये गये बंदोबस्त पर निर्भर थी। पैमाइश के बाद प्रत्येक गांव का क्षेत्रफल ब्यौरेवार रखा जाता था और प्रत्येक बीघे की उपज का अनुमान लगाया जाता था। उपज का 33 प्रतिशत भाग राज्य ले लेता था, किन्तु कालांतर में जब अन्य सभी प्रकार के कर हटा दिये गये थे, तब भूमि–कर उपज का 40 प्रतिशत निर्धारित कर दिया गया। नये किसानों को बीज और पशुओं की सहायता दी जाती थी, जिसका मूल्य सरकार कुछ किश्तों में वसूल कर लेती थी। भूमि कर नकद अथवा अन्न के रूप में सरकारी हाकिम वसूल करते थे। दुर्भिक्ष के समय किसानों को तकाबी ऋण दिया जाता था। शिवाजी जागीरदारी प्रथा के विरूद्ध थे, अतः जहां तक संभव होता अपने हाकिमों को जागीर के बदले नकद वेतन ही देते थे ताकि कोई जमींदार किसानों पर राजनीतिक वर्चस्व स्थापित न कर ले। भूमि पर प्रणाली भी रैय्यतवाड़ी थी, जिससे राज्य और किसानों के बीच सीधा सम्बन्ध रहता था। भूमि कर के अतिरिक्त संभवतः आयात–कर, निर्यात–कर तथा चुंगी कर भी रहे होंगे, किन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित जानकारी का हमारे पास कोई साधन नहीं है। आय का एक अन्य मुख्य साधन 'चौथ' भी था। यह पड़ौस के दुर्ब राज्यों अथवा विजित प्रदेशों से वसूल की जाती थी, जो उन राज्यों की आय का चौथा भाग होता था। जिन राज्यों से 'चौथ' वसूल की जाती थी, उनकी रक्षा का दायित्य मराठो अपने ऊपर लेते थे। कुछ इतिहासकारों का इस सम्बन्ध में मतभेद है, उनका कहना है कि शिवाजी चौथ वसूल करने के लिये हर साल उन राज्यों पर आक्रमण करते थे। आय का दूसरा मुख्य साधन 'सरदेशमुखी' था। महाराष्ट्र के समस्त देशमुख शिवाजी को अपना सरदेशमुख मानकर अपनी आय का दसवां भाग अदा करते थे।

21.13. न्याय व्यवस्था :

शिवाजी की न्याय प्रणाली का आधार प्राचीन न्याय पद्धति थी। गांवों में न्याय का काम पंचायतें करती थी। पटेल नामक राज्याधिकारी फौजदारी मुकदमों का निर्णय करता था। फौजदारी और दीवानी दोनों प्रकार के मुकदमों की अपील न्यायाधीश के पास होती थी। चूंकि कानून व न्याय प्रणाली न तो लिखित थी और न निश्चित थी, इसलिये हिन्दु स्मृतियों के आधार पर ही न्याय प्रदान किया जाता था।

इस प्रकार शिवाजी की प्रशासनिक व्यवस्था सुसंगठित थी। शिवाजी ने शासन के बड़े–बड़े पद वंशानुगत न कर केवल योग्यता के आधार पर नियुक्तियां करते थे। प्रशासन में हिन्दू व मुसलमानों का भेदभाव नहीं था। राज्य सेवा के बदले भूमि न देकर नकद वेतन दिया जाता था। शिवाजी ने अपनी केन्द्रीय व स्थानीय शासन व्यवस्था का इस प्रकार गठन किया था कि शिवाजी की अनुपस्थिति में भी शासन सुचारू रूप से संचालित होता रहता था। शिवाजी अपनी प्रजा को बिना किसी भेदभाव के सभी को समान रूप से उन्नति का अवसर देता था। शिवाजी का शासन प्रजा कल्याणकारी और पक्षपात व भ्रष्टाचार से रहित था।

21.14. शिवाजी की धार्मिक नीति :

यद्यपि शिवाजी कट्टर हिन्दू थे तथापि दूसरे धर्मों का सम्मान करते थे। उन्होंने मुसलमानों को पूरी धार्मिक स्वतंत्रता दे रखी थी और वह स्वयं पीरों व मस्जिदों का आदर करते थे। हिन्दू मंदिरों के साथ–साथ मुसलमान फकीरों व पीरों को भी आर्थिक सहायता देते थे। उन्होंने बाबा याकूत के लिये दरगाह बनवा कर दी थी। यदि आक्रमण के समय उनके आदमियों को कुरान हाथ लग जाती तो वे अपने मुसलमान साथियों को पढ़ने के लिये दे देते थे। वे कुरान का हिन्दू ध र्म ग्रंथों के समान ही आदर करते थे। वे मुस्लिम महिलाओं का भी हिन्दू महिलाओं के समान आदर करते थे। उन्होंने अपने सैनिकों को कठोर आदेश दे रखा था कि वे किसी महिला को अपमानित न करे, महिला चाहे हिन्दू हो या मुसलमान।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

खलीफा जो शिवाजी का कट्टर शत्रु था, उसने भी अपने ग्रन्थ में शिवाजी की धर्म सहिष्णुता तथा हमले में मिली मुस्लिम महिलाओं के प्रति किये गये सम्मानपूर्ण व्यवहार की प्रशंसा की है। राजकीय नियुक्तियों में भी कोई भेदभाव नहीं था।

शिवाजी स्वयं धर्मपरायण व्यक्ति थे और वेदाध्ययन के लिये प्रोत्साहन देते थे। जो ब्राह्मण एक वेद में पारंगत होता था उसे प्रतिवर्ष एक मन चावल राज्य की ओर से दिया जाता था। यद्यपि शिवाजी के गुरु संत रामदास थे, जिनके प्रति शिवाजी की असीम श्रद्धा थी, फिर भी शिवाजी की राज्य नीति या शासन प्रणाली पर इस संत का कोई प्रभाव नहीं था। कहा जाता है कि अपने गुरु को प्रतिदिन भिक्षा मांगने के लिये जाता देखकर शिवाजी ने अपना सारा राज्य गुरु को भेंट कर दिया। गुरु ने भेंट स्वीकार कर अपने प्रतिनिधि के रूप में शासन करने के लिये वह राज्य पुनः शिवाजी को लौटा दिया और आदेश दिया कि वह अपने स्वशासन का उत्तरदायी सर्वशक्तिमान भगवान को माने। शिवाजी ने गुरु आदेश को शिरोधार्य कर गुरु के वस्त्रों के गेरुआ रंग को अपने राजकीय झण्डे का रंग अपना लिया था।

21.15. शिवाजी का मूल्यांकन :

शिवाजी पिता का आदर करने वाले, माता के प्रति भक्ति भाव रखने वाले, पत्नियों के प्रति सम–प्रेम रखने वाले तथा मित्रों के प्रति दयालु एवं उदार थे। यद्यपि उन्हें नियमित शिक्षा तो प्राप्त नहीं हुई थी, फिर भी वे उच्च कोटि के विद्वान थे। उनमें असाधारण प्रतिभा थी, अत्यधिक व्यावहारिक ज्ञान था और सूक्ष्म विवेक शक्ति थी। वे पक्के धर्मात्मा व कट्टर हिन्दू थे, किन्तु असहिष्णु नहीं। वे प्रत्येक धर्म में सच्चाई ढूंढते थे। वे सैनिक और प्रशासनिक दोनों कार्यों में दक्ष थे। मध्ययुगीन शासकों में शिवाजी पहले शासक थे जिन्होंने नौ–सेना के महत्व को अनुभव कर सामुद्रिक बेड़े व व्यापारिक जहाजों का निर्माण करवाया। उन्होंने अपनी अच्छी शासन व्यवस्था द्वारा प्रजा कल्याण की ओर अधिक से अधिक ध्यान दिया। शिवाजी की प्रेरणा से फारसी के स्थान पर मराठी राजभाषा बनी तथा संस्कृत–कोष का निर्माण हुआ। वे उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ भी थे। जिस समय शक्तिशाली मुगल साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर था, तब अपने स्वराज्य की रक्षा हेतु मुगल साम्राज्य पर प्रहार किया और साम्राज्य की जड़ों को खोदकर रख दिया। उन्होंने न केवल दक्षिण के मुस्लिम राज्यों से बल्कि पुर्तगालियों से भी टक्कर ली। मराठा जाति में उन्होंने नवजीवन का संचार किया।

कुछ इतिहासकारों ने शिवाजी को एक 'लुटेरा व विश्वासघाती' कहा है। यह सच है कि उनका राजनीति में प्रवेश एक लुटेरे सरदार के रूप में हुआ था, लेकिन उसने कभी असहाय प्रजा को नहीं लूटा। जिन राज्यों से युद्ध चलता था उन राज्यों को ही युद्ध के दौरान लूटता था और इस लूट के धन का प्रयोग राष्ट्रीय आवश्यकताओं के लिये खर्च करता था। अतः उसे लूटेरा कहना न्याय संगत न होगा। इतिहासकार सरदेसाई का कहना है कि शिवाजी भारत में 'हिन्दू स्वराज्य' स्थापित करना चाहता था। अपने इस मत के समर्थन में तर्क देते हुए कहते हैं कि शिवाजी ने 1645 ई. में दादाजी नरसप्रभु को 'हिन्दवी स्वराज्य' की योजना के सम्बन्ध में लिखा था। शिवाजी का आगरा जाने का उद्देश्य भी उत्तरी भारत की स्थिति का अध्ययन कर उत्तर भारत को मुगलों के पंजे से मुक्त करना था और उन्होंने हिन्दू से मुसलमान बने युवकों को शुद्ध कर पुनः हिन्दू समाज में प्रतिष्ठित किया। वे हमेशा राजपूत राजाओं से मेल करने का प्रयत्न करते थे। किन्तु डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव ने इन तर्कों का खण्डन किया है और निष्कर्ष निकाला है कि शिवाजी ने कभी भी भारत में हिन्दू साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा नहीं की। शिवाजी ने मुगल साम्राज्य का तख्ता पलटने की कोई ठोस योजना भी नहीं बनाई थी। अतः डॉ. श्रीवास्तव का मत है कि इसका हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है कि शिवाजी भारत में हिन्दू साम्राज्य स्थापित करना चाहते थे।

21.16 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 पुरन्दर की सन्धि कब हुई–

अ. 20 मई 1660 ई.   ब. 22 जून 1665 ई.

स. 15 अगस्त 1662 ई.   द. 5 मार्च 1660 ई.

उत्तर – ....

प्रश्न 2 शिवाजी के केन्द्रीय प्रशासन पर टिप्पणी लिखिए। (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 शिवाजी के साम्राज्य विस्तार को समझाइये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 22
मुगल साम्राज्य के पतन के कारण

संरचना

22.0 उद्देश्य

22.1 भूमिका

22.2 मुगल साम्राज्य के पतन के कारण

22.2.1 मुगल सत्ता का विदेशी होना

22.2.2 उत्तराधिकार के नियम का अभाव

22.2.3 बुद्धि एवं विवेक का हवास होना

22.2.4 मुगल शासन में भ्रष्टाचार का होना

22.2.5 आर्थिक पतन

22.2.6 सैन्य संगठन का दोषपूर्ण होना

22.2.7 जनता में मुगल साम्राज्य के विरूद्ध असन्तोष की भावना

22.2.8 औरंगजेब की धर्मान्धिता

22.2.9 औरंगजेब की शंकालू प्रवृत्ति

22.2.10 औरंगजेब के प्रशासन में दोष

22.2.11 औरंगजेब की दक्षिण नीति

22.2.12 औरंगजेब द्वारा कर वृद्धि

22.2.13 औरंगजेब की अन्य त्रुटिया

22.3 अभ्यास प्रश्नावली

22.0 उद्देश्य :

मुगल सम्राटों ने भारत में 1526 ई. से 1740 ई. के लगभग शासन किया। इतने लम्बे अन्तराल में कई सम्राटों ने शासन किया मगर 1707 ई. के पश्चात् (औरंगजेब की मृत्यु) कोई भी योग्य शासक नहीं बचा इसके अलावा अनेक कई कारण हुये जिसके कारण मुगलों का पतन हुआ। प्रस्तुत इकाई में मुगल साम्राज्य के पतन के विभिन्न कारणों को विस्तार से विवेचित किया गया है।

22.1. भूमिका :

मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन मध्यकालीन भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। दिल्ली सल्तनत की कब्र पर बाबर ने मुगल साम्राज्य की नींव डाली। अकबर ने न सिर्फ इसकी नींव को मजबूत किया, अपितु उसने इस साम्राज्य का अद्वितीय विस्तार भी किया। विस्तार का यह सिलसिला औरंगजेब के काल तक चलता रहा, किन्तु उसी समय से इसका पतन भी आरंभ हो गया। जब तक औरंगजेब जिन्दा रहा, किसी तरह से उसने साम्राज्य को बिखरने से बचाकर रखा, किन्तु उसकी मृत्यु के कुछ ही वर्ष बाद मुगल साम्राज्य का यह महल ताश के पत्तों से निर्मित भवन की तरह धराशायी हो गया। मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगजेब एवं उसके शक्तिहीन उत्तराधिकारियों का महत्वपूर्ण हाथ रहा है, किन्तु जब इसके अन्य कारणों को हम ढूंढते हैं तो हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि इसके पतन की कहानी भारत अथवा अन्य देशों के शक्तिशाली साम्राज्यों की पतन की कहानी से भिन्न नहीं है। दूसरे शब्दों में, जिन कारणों से विश्व के शक्तिशाली साम्राज्यों का पतन होता रहा है, वे कारण मुगल साम्राज्य के पतन के लिए भी उत्तरदायी कहे जा सकते हैं।

22.2. मुगल साम्राज्य के पतन के कारण :

22.2.1. मुगल सत्ता का विदेशी होना – मुगल भारतीय के लिए विदेशी थे। अपनी शक्ति और योग्यता के बल पर बाबर ने भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य की स्थापना की जिसे बाद के अकबर, जहांगीर एवं शाहजहां जैसे शक्तिशाली मुगल सम्राटों ने न सिर्फ विस्तृत किया, अपितु उसका उचित संगठन भी किया। इन मुगल सम्राटों ने, सिर्फ अकबर को छोड़कर,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जनता के हृदय में ऐसा विचार उत्पन्न नहीं किया जैसा शिवाजी ने महाराष्ट्र की जनता में उत्पन्न कर दिया था। अर्थात् वे भारतीय जनता को यह समझाने में असमर्थ रहे कि इस देश को वे अपना देश मानते हैं और उनके हृदय में भारतीयों के लिए सहानुभूति अथवा जनकल्याण की भावना भी है। ठीक इसके विपरीत उन्होंने अपनी शासन–व्यवस्था में विदेशी मुसलमानों को महत्वपूर्ण स्थान दिया। यहां तक कि अकबर ने शासनकाल में भी सरकारी कर्मचारियों में भारतीयों की संख्या कम ही रही। आंकड़ों से पता चलता है कि उसके शासनकाल में भी सत्तर प्रतिशत उच्च पदाधिकारी तुर्क, फारसी, उजबेग और पठान जाति के थे और केवल तीस प्रतिशत ही भारतीय थे। अकबर के लम्बे शासनकाल में एक हजारी अथवा उससे ऊपर मनसबदारों में केवल चौदह हिन्दू थे। औरंगजेब के शासनकाल तक भारतीयों की संख्या नगण्य हो गयी। दूसरे शब्दों में मुगल शासन–व्यवस्था में विदेशियों की भरमार थी। ऐसी शासन–व्यवस्था को भारतीय अथवा राष्ट्रीय नहीं कहा जा सकता है। सच्चाई तो यह है कि मुगल शासन प्रधान रूप से विदेशी था। सर यदुनाथ सरकार के मत में मुगल शासकों की सरकार के सिद्धान्त, उनकी धर्मनीति, उनके कर लगाने के नियम, उनके विभागों का बंटवारा और उनके अधिकारियों के पदों के नाम तक विदेशी थे और भारत में ज्यों–के–त्यों लाये गये थे, किन्तु देश में जो देशी शासन–प्रणाली प्रचलित थी और जिससे यहां के निवासी पूर्णतया परिचित थे, उसे भी इसे विदेशी प्रणाली में आत्मसात् कर लिया गया। इस विदेशी प्रणाली में ऐसे सुधार कर दिये गये, जिससे यह स्थानीय आवश्यकता के अनुकूल हो जाय। अस्तु, मुगल शासन–व्यवस्था की आत्मा को अरबी–फारसी–प्रणाली और उसके शरीर को भारतीय प्रणाली कहा जा सकता है। इन कारणों से मुगलों को भारतीय जनता का समर्थन और सहयोग प्राप्त नहीं हो सका और मुगल साम्राज्य की नींव कमजोर हो गयी। ऐसी सरकार अपनी सेना और शक्ति के बल पर ही शासन करने में समर्थ हो सकी थी। जैसे ही मुगल सम्राट दुर्बल हो गये, साम्राज्य का पतन अनिवार्य हो गया।

22.2.2. उत्तराधिकार के नियम का अभाव – मुगल उत्तराधिकार ज्येष्ठ के नियम पर आधारित नहीं था, वरन् तलवार के द्वारा उत्तराधिकार का फैसला किया जाता था। यह कुरान के नियमों के अनुरूप था। साम्राज्य का योग्य एवं शक्तिशाली व्यक्ति ही सम्राट बनने का हकदार होता है। अस्तु, सभी मुगल सम्राटों की हुमायूं से लेकर औरंगजेब तक और उसके बाद भी उत्तराधिकार युद्धों में शामिल होना पड़ा। सिंहासन के लिए भाई–भाई का, पुत्र पिता का एवं अपने सगे–सम्बन्धियों के खून का प्यासा रहता था। हुमायूं ने अपने नये–सम्बन्धी मिर्जाओं के खून से होली खेली। जहांगीर ने अकबर के विरूद्ध बगावतें की। शाहजहां ने अपने पिता जहांगीर के विरूद्ध षड़यंत्र किये और अपने तीन भाईयो–खुसरो, परवेज और सहरयार को मौत के घाट उतारकर दिल्ली के तख्त पर अपना अधिकार जमाया। औरंगजेब ने तो न सिर्फ अपने भाइयों–दारा, शुजा और मुराद का खून किया, वरन् अपने पिता शाहजहां को भी कैद कर लिया। इस प्रकार गद्दी के लिए प्रायः सभी मुगल सम्राटों ने तलवार उठायी और खून की नदी को पारकर वे उस पर आरूढ़ हुए। उत्तराधिकार के युद्ध मुगलों के लिए काफी महंगे साबित हुए। मुगल दरबार षड़यंत्र कुचक्र, घातक युद्ध, हत्याएं एवं जघन्य अपराधों का अड्डा बन गया। ईर्ष्या, द्वेष, फूट, षड़यंत्र, व्यभिचार, घूसखोरी और गुटबंदी सम्पूर्ण साम्राज्य में व्याप्त हो गये। फलतः मुगल साम्राज्य शक्तिहीन होता चला गया और इसका पतन अनिवार्य हो गया।

22.2.3. बुद्धि एवं विवेक का ह्रास होना – अट्ठारहवीं शताब्दी में मुस्लिम जाति, मुगल सरदार एवं मध्यवर्ग की जनता का बौद्धिक ह्रास हो गया था। मुगल साम्राज्य में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं रह गया जो सुविचारपूर्ण योजना का निर्माण कर मुगल साम्राज्य में जीवनशक्ति का संचार कर सकता था। सिर्फ निजाम–उल–मुल्क उसका अपवाद था, किन्तु वह भी स्वार्थी एवं विश्वासघाती था, अतः साम्राज्य को उसने भी अहित ही पहुंचाया। इन परिस्थितियों में शासकों की चेतना का नष्ट होना और उनका विनाश होना स्वाभाविक ही था। इस व्याप्त बौद्धिक ह्रास का प्रमुख कारण मुगल सम्राटों में शिक्षा के प्रति उदासीनता की भावना थी। उचित शिक्षा के अभाव में विकसित मस्तिष्क एवं योग्य नेताओं की कमी स्वाभाविक होती है। इस काल में मुगलों का कोई ऐसा नेता ही नहीं हुआ जो देशवासियों को जीवन का नया दर्शन सिखाता या पृथ्वी पर दूसरा स्वर्ग बनाने के लिए नया उत्साह भरता। मुगल सरदार अपने पूर्वजों की बुद्धिमानी की प्रशंसा करते थे और तत्कालीन सरदारों की चरित्रहीनता पर कूढ़ा करते थे। इस बौद्धिक ह्रास के चलते भी मुगल साम्राज्य का पतन हुआ।

22.2.4. मुगल शासन में भ्रष्टाचार का होना – मुगल प्रशासन में भ्रष्टाचार दिन–प्रतिदिन बढ़ता चला गया। शासन के सारे विभागों में (सेना, राजस्व, न्याय आदि) घूसखोरी एवं भ्रष्टाचार प्रारम्भ से ही मौजूद थे। इन विभागों से सम्बन्धित अधिकारी घूस लेने में प्रारम्भ से ही कुख्यात थे। सम्राट् भी कभी–कभी इन दुर्गुणों का शिकार हो जाते थे। कहा जाता है कि एक बार किसी व्यक्ति ने औरंगजेब को एक उपाधि देने के लिए एक लाख रुपये घूस में दिये थे। काबिल खां ने, औरंगजेब का एक दरबारी था, ढाई वर्षों के समय में रिश्वत के द्वारा बारह लाख नकद रुपये और काफी मात्रा में बहुमूल्य जेवरात आदि इकट्ठे कर लिये थे। रिश्वत का यह रंग था कि प्रधान काजी तक इसके शिकार हो जाते थे। ऐसी हालत में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

साम्राज्य के अन्य काजियों का क्या पूछना। वस्तुतः स्वार्थ की चपेट में आकर मुगल दरबारी, सैनिक और असैनिक अधिकारी, यहां तक कि मुगल सम्राट भी इन गुणों के चंगुल में फंस जाते थे। भ्रष्टाचार, रिश्वत एवं अनैतिकता पर आधारित कोई भी शासन–व्यवस्था लोकप्रिय अथवा स्थायी नहीं हो सकती है। मुगल साम्राज्य इसका अपवाद नहीं हो सकता था।

22.2.5. आर्थिक पतन – मुगल शासकों में सिर्फ अकबर को छोड़कर शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति हुआ, जिसने देश की आर्थिक व्यवस्था में सुधार लाने का प्रयत्न किया हो। अकबर के प्रयत्नों के फलस्वरूप देश समृद्ध हो गया, सरकार की आय में आशातीत वृद्धि हुई और जनता खुशहाल हो गयी, किन्तु अकबर के बाद देश की आर्थिक स्थिति दिन–प्रतिदिन बिगड़ती चली गयी और अंत में मुगल सरकार बिल्कुल दिवालिया हो गयी। मजदूर, कृषक, व्यापारी एवं देश की सामान्य जनता करों के बोझ से लदती चली गयी। अकबर के बाद भूमिकर जागीरदारों एवं ठेकेदारों द्वारा वसूल किया जाने लगा। वे स्वार्थी व्यक्ति किसान से मनमाना कर वसूल करते थे। अस्तु, उसके पास खाने–पहनने के लिए बहुत कम बचता था। किसान कृषि कार्यों में दिलचस्पी नहीं लेने लगे। शाहजहां के शासनकाल तक उनकी दशा दयनीय हो गयी। विलियम फास्टर के शब्दों में उस काल के सभी लेखकों ने शाहजहां के दरबार के वैभव, शासन की उदारता और उसकी निजी सर्वप्रियता की खूब प्रशंसा की है, किन्तु इसके साथ–साथ उन्होंने उन विनाशकारी तथ्यों को भी नहीं छिपाया है जो इस वैभव में सन्निहित थे। देश की आय के साधनों को देखते हुए दरबार की यह फिजूलखर्ची देश को रसातल की ओर ले जा रही थी। अफसरों की धन–लिप्सा तथा मुगल राज्यपालों के अत्याचारों तथा उनकी सेना ने जनता की विपत्ति को और भी बढ़ा दिया था। अब जनता के पास अपनी विपत्तियों को दूर करने का कोई साधन बाकी नहीं रह गया था। शाहजहां के शासनकाल में लगान की दर सम्पूर्ण उपज का आधा भाग कर दी गयी। एक ओर जनता करों के बोझ से झुकती चली जा रही थी और दूसरी ओर राजकोष का धन सम्राटों और सरकारी अधिकारियों के द्वारा पानी की तरह बहाया जा रहा था। राज्य का धन इनाम, दरबार की शोभा, भवनों के निर्माण, भोग–विलास एवं साम्राज्यवादी युद्धों के ऊपर अंधाधुंध खर्च किया जा रहा था। शाहजहां ने अपने भव्य महलों के निर्माण पर करोड़ो रुपये व्यय किये। औरंगजेब ने साम्राज्य विस्तार के लिए युद्धों पर काफी रुपये खर्च किये। सरकारी अफसरों ने भी बहती गंगा में हाथ धोना शुरू किया। परिणामस्वरूप सरकारी राजकोष रिक्त हो गया। औरंगजेब के बाद सरकार धीरे–धीरे दिवालिया होने लगी और आलमगीर द्वितीय के शासन–काल तक साम्राज्य का आर्थिक ढांचा अस्त–व्यस्त हो गयां नौबत यहां तक आ गयी कि सम्राट् भूखों मरने लगी। राज्याभिषेक के डेढ़ महीने बाद ही आलमगीर की स्थिति यह हो गयी कि उसके पास बाहर निकलने के लिए कोई अच्छी सवारी नहीं थी। सर यदुनाथ सरकार के इस वर्णन की स्थिति की गंभीरता का सहज ही पता लगाया जा सकता है। वे कहते हैं, 'एक बार तो तीन दिन तक शाही महल में रसोई घर में चूल्हें तक नहीं जले। शहजादियां भूख की ज्वला से तड़प कर पर्दे फाड़कर नगर की ओर दौड़ पड़ीं। किले के दरवाजों के बंद होने के कारण वे सारे दिन और सारी रात चौकीदार की कोठरी में बंदी थीं और वहां से जबर्दस्ती अपने–अपने कमरे में भेजीं गयी।'' घटना 1775 ई. की है। अस्तु, आश्चर्य इस बात की नहीं है कि इसके कारण मुगल साम्राज्य का पतन हो गया, वरन् आश्चर्य इस बात का है कि यह दिवालिया सरकार किस तरह से पच्चास वर्षों तक चलती रही।

ऐसा विश्वास करने के ठोस धरातल हैं कि कृषि उत्पादन तथा वाणिज्य व्यवसाय में अपेक्षित प्रगति मुगल काल में न हो पायी। कृषि की प्रगति कुछ खास कारणों से न हो पायी। कृषि के नये तरीकों की जानकारी लोगों को नहीं थी। अतः उपज घटती गयी। पुनः लगान की दर काफी ऊंची थी, किन्तु इनकी अपेक्षा सामाजिक तथा कुछ दूरी तक प्रशासनिक कारण अधिक उत्तरदायी थे। आबादी के अनुपात में कृषिभूमि काफी अधिक थी। इसके बावजूद बड़ी संख्या में किसान भूमिहीन थे। भूमिहीन कृषक सामान्यतः अछूत वर्ग के थे, जिन्हें अपने गांवों में बसाना उच्च जाति के कृषकों तथा जमींदारों को गवारा नहीं था। अतः ऐसे लोग गांवों में अतिरिक्त मजदूरों के तौर पर ही रहते थे। उनका न तो कोई ऐसा संगठन था और न ही इतनी पूंजी,जिसके बल पर वे जमीन पर अधिकार करते। प्रशासन, जिसके आधार–स्तम्भ भी उच्च जाति के थे, भी चाहकर उनकी मदद न कर पाया। इन कारणों से उत्पादन में विशेष प्रगति नहीं हो पायी। दूसरी ओर सरदारों, जागीरदारों एवं प्रशासक वर्ग की संख्या तथा महत्वकांक्षाएं तेजी से बढ़ती गयीं। वेतन अधिक होने से उनमें विलासिता भी बढ़ी। उनके अधिकार तथा प्रभावों में भी तेजी से विस्तार हो रहा था। साम्राज्य की शक्ति पर इन तत्वों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

जमींदारों का बढ़ता हुआ प्रभाव भी साम्राज्य के लिए अहितकर सिद्ध हुआ। वे जमीन से अधिक से अधिक लाभ उपार्जित करना चाहते थे और ऐसे तरीके भी अपनाने से बाज नहीं आते थे, जो राज्य द्वारा स्वीकृत नहीं थे। परिणामस्वरूप मध्यकालीन ग्रामीण समाज के सभी आंतरिक संघर्ष उभरकर सामने आ गये। किसानों तथा जमींदारों के अनेक विद्रोह भी हुए। अनेक अवसरों पर ऐसे जमींदारों ने स्वतंत्र क्षेत्रीय राज्य स्थापित करने का प्रयास भी किया। प्रशासनिक स्तर पर भी उनके बीच व्यापक असंतोष फैला, जिससे जागीरदार व्यवस्था में गंभीर संकट पैदा हो गया। वे अधिक आय वाली जागीर हथियाने का

प्रयास करने लगे, जिससे मुगल प्रशासन में भ्रष्टाचार बढ़ता गया। खालिसा भूमि की सीमा को बढ़ाकर औरंगजेब ने संकट को और भी गंभीर बना दिया।

22. मुगल सरदारों का चरित्रहीन होना–मुगल सरदारों का चारित्रिक पतन भी मुगल साम्राज्य की समाप्ति का एक महत्वपूर्ण कारण था। जब तक मुगल सम्राटों का चरित्र उत्तम रहा, मुगल सरदारों की योग्यता देखते बनी। हम बैरम खां, मुनीम खां, मुजफ्फर खां, अब्दुल रहीम खानखाना, एतमादुद्दौला, महावत खां, आसफ खां, सादुल्ला खां आदि को कैसे भूल सकते हैं? मध्यकालीन इतिहास में उनका स्थान महत्वपूर्ण रहा है। किन्तु जैसे–जैसे मुगल सम्राटों के चारित्र में दोष आते गये, मुगल सरदारों का चरित्र गिरता चला गया। विदेशी मुगल सरदारों ने भारत रूपी सोने की चिड़िया को खूब नोचा–खसोटा था। धन के मद में वे सुरा और सुन्दरी के उपासक बनकर रह गये। रंगरेलियों में उन्हें अपने कर्त्तव्य का भी ध्यान नहीं रह पाया। उनके व्यक्तित्व में अब शौर्य, विवेक आदि गुणों का नामोनिशान समप्त हो गया। उसकी शारीरिक, चारित्रिक एवं मानसिक शक्ति बिल्कुल समाप्त हो गयी। अस्तु, मुगल सरदार अपने पुराने पद और उनके गौरव को और अधिक दिनों तक कायम रखने में असफल रहे। मसिरूल उमरा ने लिखा है, 'यदि मुगल वंश के किसी सरदार की असफलताओं का वर्णन तीन पृष्ठों में आता था तो उसके लड़के के वर्णन के लिए एक ही पृष्ठ पर्याप्त हो पाता था और उसके पोते का वर्णन तो कुछ ही पंक्तियों में समाप्त हो जाता था या ऐसा होता ही न था कि उसका लेखा रखा जाय।' मुगल सरदारों के इस चारित्रिक पतन का एक विशिष्ट कारण यह था कि वे विदेशी थे और उन्हें न तो इस देश से सहानुभूति थी और न ही यहां की जनता से। वे ऐशोआराम की जिन्दगी व्यतीत करते थे। अतः उनका चारित्रिक पतन अनिवार्य ही था। महान् मुगल सम्राटों के बाद तो इनका पतन और तेजी से हुआ। ऐसे व्यक्ति जिस राज्य के कर्ताधर्ता हों, वह राज्य कितने दिनों तक चल सकता था।

22.2.6. सैन्य संगठन का दोषपूर्ण होना – मुगल सैन्य संगठन में कुछ आधारभूत दोष प्रारंभ से ही थे जो बाद में और अधिक बढ़ गये। सेना के कुछ महत्वपूर्ण दोष थे–सेना का मनसबदारी व्यवस्था पर आधारित होना, सैनिकों में राष्ट्रीयता की भावना का अभाव होना, उनके बीच अनुशासनहीनता एवं उनके अस्त्र–शस्त्रों का पुराना होना। मनसबदारी व्यवस्था में दोषों की भी कमी नहीं थी। मनसबदारों द्वारा सैनिकों की अलग–अलग टुकड़ियां बहाल की जाती थी। इन सैनिकों के ऊपर इन्हीं मनसबदारों का पूर्ण नियंत्रण रहता था। सैनिकों को वेतन राजकोष से नहीं, वरन् मनसबदारों की जागीर से दिया जाता था। अतः मनसबदारों को ही अपना स्वामी समझते और उसी की आज्ञा का पालन करते थे। सम्राट और सैनिकों के बीच कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रह गया था। जब तक सम्राट शक्तिशाली रहे, किसी न किसी तरह से उन्होंने इन सैनिकों के ऊपर अपना नियंत्रण बनाये रखा, किन्तु औरंगजेब के बाद के मुगल सम्राटों का नियंत्रण इनके ऊपर कमजोर होता चला गया। ये मनसबदार अपनी–अपनी जागीरों में शक्तिशाली एवं स्वतंत्र होते चले गये और सम्राट् की कोई सुदृढ़ सेना नहीं रह गयी, जो उसके नियंत्रण में रहती। ये मनसबदार अत्यधिक स्वार्थी एवं ईर्ष्यालु होते थे। अतः वे सम्राट् का पूरा–पूरा साथ युद्धस्थल में भी नहीं देते थे। मुगल सैन्य संगठन का दूसरा दोष यह था कि मुगल सेना किसी भी अर्थ में एक राष्ट्रीय सेना नहीं थी। इसमें तुर्क, अफगान, मुगल एवं ईरानियों की प्रधानता थी। अधिकतर सैनिक अधिकारी विदेशी होते थे। अकबर ने इसे राष्ट्रीय रूप देना चाहा था और उसे कुछ हद तक सफलता भी मिली थी, किन्तु बाद में यह पुनः पहले की तरह हो गयी। एक राष्ट्रीय सेना के अभाव में कोई साम्राज्य स्थायी नहीं रह सकता है। पुनः मुगल सेना में अनुशासन की नितान्त कमी थी। युद्धक्षेत्रों में भी सैनिकों को औरतों के साथ रखने की अनुमति रहती थी। अतः उनमें विलासिता का आना स्वाभाविक था। रणक्षेत्र में यह सेना मंथर गति से आगे बढ़ती और एक चलते–फिरते शहर का दृश्य उपस्थित करती थी। ऐसी सेना किसी बूते पर शक्तिशाली शत्रु सेना का सामना कर सकती थी? सेना पर सम्राट् का उचित नियंत्रण भी नहीं रहता था और उन्हें अपराधों के लिए दण्ड भी कम ही दिये जाते थे। औरंगजेब जैसा शक्तिशाली सम्राट् भी अपने सैनिकों के अपराध को क्षमा कर देता था। सैनिकों के अस्त्र–शस्त्र भी पुराने पड़ गये थे। उनकी युद्ध–प्रणाली भी अब पहले की तरह प्रभावशाली नहीं रह गयी थी। सैनिकों को उचित प्रशिक्षण भी नहीं मिल पाता था। अस्तु, मुगलों की सैन्य–व्यवस्था धीरे–धीरे खराब होती चली गयी और अब उनमें हमले करने की ताकत नहीं रह गयी। ऐसी शक्तिहीन सेनाशक्तिशाली मराठा सेना एवं पश्चिमी देशों की सेनाओं का सामना करने में पूर्णतया असमर्थ थी।

22.2.7. जनता में मुगल साम्राज्य के विरूद्ध असंतोष की भावना – मुगल शासन एक फौजी तानाशाही व्यवस्था थी। ऐसी सरकार के सिर्फ दो ही कर्त्तव्य होते हैं–देश में आंतरिक एवं बाह्य शांति–सुरक्षा रखना और जनता से करों की वसूली करना। सिर्फ अकबर के शासनकाल को छोड़कर सभी मुगल सम्राटों के शासनकाल में सरकार इन्हीं बातों पर ध्यान देती रह गयी। इस सरकार का लोक कल्याण के कार्यों से कोई वास्ता नहीं था। देश की सभ्यता एवं संस्कृति को समृद्ध बनाना भी यह अपना कर्त्तव्य नहीं शायद ही कोई प्रयास किया गया। शिक्षा के क्षेत्र में मुगल सम्राटों ने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नाममात्र की अभिरूचि दिखलायी। जनता की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने और उनके जीवन को सुखी एवं सम्पन्न बनाने की ओर मुगल सम्राटों का ध्यान ही नहीं गया। ऐसी स्थिति में जनता के बीच यह सरकार लोकप्रिय नहीं हो पायी। ठीक इसके विपरीत साम्राज्य के विरूद्ध जनता में असंतोष की भावना बलवती होती गयी। ऐसी सरकार को देश में बने रहने का कोई औचित्य नहीं रह गया था।

22.2.8. औरंगजेब की धर्मान्धता – औरंगजेब एक कट्टर सुन्नी और धर्मान्ध शासक था। वह अपने आपको केवल सुन्नी मुसलमानों का बादशाह मानता था। फलस्वरूप उसने देश में कुरान द्वारा निर्देशित नियम बनाये और लोगों को इन नियमों का पालन करने के लिए बाध्य किया। भारत को इस्लामी राज्य में परिवर्तित करने की प्रबल इच्छा के कारण उसे गैर–मुसलमानों को इस्लाम धर्म में दीक्षित कराने का एक सुनियोजित अभियान छोड़ दिया। दूसरी ओर देश की गैर–मुस्लिम प्रजा अपने धर्म और संस्कृति को बनाये रखने हेतु दृढ़ संकल्प थी। अतः दोनों में पारस्परिक विरोध होना तो स्वाभाविक ही था। औरंगजेब ने इस बात पर कभी ध्यान ही नहीं दिया कि उसकी इस धर्मान्ध नीति के परिणाम क्या होंगे। उसकी धर्मान्धता ने समस्त हिन्दू जाति को क्रूद्ध कर दिया; जिससे जाटों, सतनामियों, सिक्खों, मराठों आदि के विद्रोह फूट पड़े और समस्त साम्राज्य विद्रोहों की आग में झुलसने लगा। उसकी धर्मान्ध नीति ने स्वामीभक्त राजपूतों को भी क्रूद्ध कर दिया। राजपूत, जो साम्राज्य के आधार स्तम्भ माने जाते थे, उन्हें क्रूद्धकर साम्राज्य के आधार स्तम्भों को ही गिरा दिया। उसका विनाश तो उसी समय आरंभ हो गया था जबकि उसने मारवाड़ के स्वामीभक्त वीर राठौड़ों से संघर्ष मोल लिया। हिन्दू मंदिरों को ध्वस्त कर वहां की देव मूर्तियों को अपमानजनक ढंग से नष्ट करना तथा हिन्दुओं पर जजिया लगाने से तो साम्राज्य के विनाश की पुष्टि होने लग गयी। उससे न केवल हिन्दू जाति पर अत्याचार किये बल्कि शिया मुसलमानों को भी नष्ट करने का प्रयास किया। फलस्वरूप देश की न केवल हिन्दू प्रजा ही उसकी शत्रु बनी बल्कि शिया मुसलमान भी उसके कट्टर शत्रु बन गये। देश की लगभग 80 प्रतिशत से भी अधिक प्रजा जब शासन की शत्रु हो गयी तब साम्राज्य का स्थायी रहना असंभव हो गया।

22.2.9. औरंगजेब की शंकालू प्रवृत्ति – अपनी शंकालू प्रवृत्ति के कारण औरंगजेब की शासन व्यवस्था अत्यन्त केन्द्रित थी और सारे अधिकार वह अपने हाथ में रखता था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसकी वृद्धावस्था में दूरस्थ प्रान्तों के सूबेदारों पर केन्द्र का नियंत्रण शिथिल पड़ता गया। सम्राट अपने पुत्रों को प्रशासन के कार्य में शिक्षित कर उन्हें शासन व्यवस्था का दायित्व सौंप सकता था, लेकिन उसे सदैव यह भय बना रहता था कि उसके पुत्र उसे कहीं बंदी बनाकर साम्राज्य पर अधिकार न कर ले, क्योंकि स्वयं औरंगजेब ने अपने पिता को बंदी बनाकर साम्राज्य पर अधिकार किया था। अपनी इस शंकालू प्रवृत्ति के कारण वह अपने पुत्रों को न केवल प्रशासन से दूर रखता था, बल्कि उनके पीछे गुप्तचर भी लगाये रखता था। इसका परिणाम यह निकला कि उसके पुत्र उसके आदेशों व नीतियों का विरोध करने तो तत्पर रहते थे। इतना ही नहीं उसके पुत्र उसके विरूद्ध षड़यंत्र और विद्रोह करने को भी इच्छुक रहते थे। अपनी शंकालू प्रवृत्ति के कारण ही वह अपना कोई योग्य उत्तराधिकारी भी तैयार न कर सका। औरंगजेब अपने मंत्रियों, अधिकारियों व सेनापतियों को भी शंका की दृष्टि से देखता था इसलिए राज्य का छोटे से छोटा काम भी वह स्वयं करने का प्रयत्न करता था। फलतः उसके मंत्री और अधिकारी मात्र क्लर्क बनकर रह गये और सेनापति, घोर संकट के समय भी असहाय होकर सम्राट के आदेशों के लिए उसका मुंह ताकने लगे। इससे प्रशासन में दायित्व की भावना ही समाप्त हो गयी। अतः जब तक सम्राट में शारीरिक योग्यता रही, साम्राज्य को नियंत्रित रखा, किन्तु उसकी वृद्धावस्था और मृत्यु के बाद साम्राज्य छिन्न–भिन्न होने लगा।

22.2.10. औरंगजेब के प्रशासन में दोष – औरंगजेब ने अत्यन्त ही एकतंत्रीय शासन व्यवस्था स्थापित की थी। ऐसी शासन व्यवस्था की सफलता सम्राट की शक्ति एवं योग्यता पर निर्भर करती है। जब तक औरंगजेब में शारीरिक योग्यता बनी रही, प्रशासन का काम ठीक–ठाक चलता रहा। वृद्धावस्था में भी वह दरबार में उपस्थित होकर प्रशासन का कार्य करने का प्रयत्न करता रहा, लेकिन उस समय ऐसा लगने लगा था कि अब सम्राट का वृद्ध जर्जर शरीर सदा के लिय अवकाश मांग रहा है। उस समय सर्वत्र साम्राज्य में यह अनुभव किया जाने लगा था कि प्रशासन की बागडोर उसके हाथ से निकली जा रही है। इसके अतिरिक्त उसके विचारों में धार्मिक पक्षपात का रंग चढ़ा हुआ होने के कारण उसके निर्णय सदा दोषपूर्ण रहते थे। ऐसी स्थिति में प्रशासन में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार ने साम्राज्य को खोखला करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। ''मआसिर–ए–आलमगीरी'' में हमें ऐसे सैंकड़ों उदाहरण मिलते हैं कि औरंगजेब के शासन में छोटे–बड़े सभी अधिकारी भ्रष्ट आचरण से धन कमाते थे। एक साधारण अमीर सम्राट के पास केवल ढाई वर्ष रहा और उसने 12 लाख रुपये व अनेक बहुमूल्य वस्तुएं भ्रष्ट तरीके से संग्रहित करली और एक नया सुन्दर मकान भी बनवाया। इतना ही नहीं स्वयं सम्राट बड़ी–बड़ी रकमें अथवा भेंटे ग्रहण कर अपने अधिकारियों के इच्छित स्थानों पर तबादले करता था। इस प्रकार प्रशासन में कोई भी व्यक्ति भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं था। ऐसे प्रशासन की सफलता संदिग्ध तो रहती ही, उसका विनाश भी अवश्यंभावी हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

22.2.11. औरंगजेब की दक्षिण नीति – औरंगजेब की दक्षिण नीति न केवल साम्राज्य के लिये बल्कि स्वयं के लिए भी विनाशकारी सिद्ध हुई। दक्षिण भारत में मुख्यतः तीन शक्तियां थी–बीजापुर, गोलकुण्डा और मराठा। ये तीनों शक्तियां पारस्परिक संघर्ष से रत रहने के कारण न तो मुगलों से लड़ने का साहस जुटा पा रही थी और न उन्हें इसके लिये अवकाश ही मिल पा रहा था। फलस्वरूप दक्षिण में शक्ति संतुलन बना हुआ था। लेकिन औरंगजेब ने इस शक्ति संतुलन को नष्ट कर दिया। उसने बीजापुर और गोलकुण्डा को मात्र इसलिये नष्ट कर दिया, क्योंकि वे शिया राज्य थे इसलिये औरंगजेब की दृष्टि से अपराधी थे। जब बीजापुर और गोलकुण्डा ने नवोदित मराठा शक्ति को कष्ट करने हेतु सब कुछ लुटा दिया। लेकिन वह मराठा शक्ति को नहीं दबा सका, बल्कि उसने तो मराठों को एक राष्ट्र के रूप में संगठित कर दिया। अपने अंतिम 26 वर्ष उसने दक्षिण के युद्धों में ही व्यतीत किये, फलस्वरूप बड़े–बड़े अधिकारी भी दक्षिण पहुंच गये और केन्द्रीय शासन दूसरी श्रेणी के लोगों के हाथ में आया और गया, जिनमें प्रशासनिक क्षमता नाम मात्र की भी नहीं थी। फलस्वरूप प्रशासन में अराजकता के साथ–साथ उत्तर भारत में अनेक विद्रोह उठ खड़े हुए। दक्षिण के लम्बे युद्धों के कारण साम्राज्य का राजकोष रिक्त हो गया। वस्तुतः दक्षिण औरंगजेब के लिये एक ऐसा विषैला फोड़ा सिद्ध हुआ जिससे उसका सर्वनाश हो गया। दक्षिण के निरन्तर युद्धों के कारण लम्बे समय तक उत्तर भारत में उसकी अनुपस्थिति से न केवल केन्द्रीय सत्ता कमजोर हुई बल्कि सारे साम्राज्य की शासन व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो गयी। ऐसे साम्राज्य के स्थायित्व की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती।

22.2.12. औरंगजेब द्वारा कर–वृद्धि – अकबर के समय जो कर–निर्धारण का तरीका था, औरंगजेब ने उसे बंद कर दिया। औरंगजेब के पूर्व सरकार की देखरेख में सरकारी अधिकारी लगान वसूल किया करते थे। किन्तु औरंगजेब ने ठेकेदारी प्रथा आरंभ कर दी अर्थात् किसानों से लगान वसूल करने का ठेका दिया जाने लगा जो मनमानी दर से भू–लगान वसूल करते थे। फलस्वरूप लाखों किसानों की दशा बिगड़ गई। निरन्तर युद्धों के कारण कृषि और व्यापार प्रायः नष्ट हो गये। अकाल, महामारी आदि के कारण तो स्थिति ने विकराल रूप धारण कर लिया। चूंकि युद्धों में अत्यधिक जन धन की हानि उठानी पड़ी थी, अतः इस क्षति को पूरा करने के लिये उसने किसानों व जनसाधारण का कर–भार बढ़ा दिया। तात्कालिक परिस्थितियों में साधारण कर वसूली भी बड़ी कठिनाई से हो रही थी और जब करों में वृद्धि कर दी गई तो सर्वत्र साम्राज्य में असंतोष और विद्रोह की भीषण अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। स्वयं औरंगजेब ऐसी स्थिति देखकर कहा करता था उसकी मृत्यु के बाद कैसा प्रलय आयेगा? वास्तव में जिस प्रलय की कल्पना औरंगजेब ने की थी, उस प्रलय की पृष्ठभूमि का निर्माण तो स्वयं ही कर दिया था।

22.2.13. औरंगजेब की अन्य त्रुटियां – यद्यपि औरंगजेब बड़ा विद्वान और बुद्धिमान शासक था, लेकिन चालाकी और मक्कारी भी उसमें कूट–कूट कर भरी हुई थी। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये वह निम्नतम साधन अपनाने से भी नहीं चूकता था। षड़यंत्र और चालाकी से शत्रु को जीतना उसका स्वभाव था जिसमें वह पारंगत था। उसके इस स्वभाव के कारण उसने अपने अनेक पदाधिकारियों को अपना शत्रु बना लिया। उसने शियाओं और विशेषकर इस्लामी और दाऊदी बोहरों पर भीषण अत्याचार किये तथा उनके उपदेशों व रीति–रिवाजों को नष्ट कर दिया। शाही नौकरियों में पक्षपात किया। औरंगजेब ने सबसे बड़ी गलती यह की कि उसने राजपूतों को शत्रु बनाकर उनकी सहानुभूति खो दी, जबकि साम्राज्य को उनकी सेवाओं की बड़ी आवश्यकता थी। उसने यह मानकर भी गलती की कि राजनैतिक, सैनिक और धार्मिक शासन प्रबंध की कुशलता से राज्य सफल हो जाता है, इसलिये उसने देश की सांस्कृतिक विद्याओं को विकसित करने का कोई प्रयास नहीं किया। यहां की ललित कलाओं की ओर ध्यान न देने से भारतीय सभ्यता का ही पतन हो गया। वह तो अपने दीर्घशासन काल में प्रजा को जीवन व सम्पत्ति की सुरक्षा का आश्वासन भी न दिला सका। ऐसी व्यवस्था का तो अंत निश्चित था।

22.3 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 किस मुगल सम्राट की धामिक कट्टरता मुगलों के पतन का कारण बनी–

अ. बाबर ब. हुमायुं

स. जहांगीर द. औरंगजेब

उत्तर – ....

प्रश्न 2 मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों का विवेचन कीजिए।

उत्तर – ....

प्रश्न 3 मुगलों के पतन में औरंगजेब कहां तक जिम्मेदार था? समझाइये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संवर्ग – 5 : मुगलकालीन व्यवस्था

इकाई – 23

मुगलकालीन प्रशासन

संरचना

23.0 उद्देश्य
23.1 भूमिका
23.1.1 सैनिक शक्ति पर आधारित राज्य
23.1.2 शासन में देशी और विदेशी तत्वों का सम्मिश्रण
23.1.3 सम्राट का असीमित शक्ति का स्वामी
23.1.4 प्रशासन कार्य और सेना में भेद न होना
23.1.5 धर्म अप्रभावित राज्य
23.1.6 सामाजिक सुधारों के प्रति उदासीनता
23.1.7 देशी भूमि कर व्यवस्था
23.1.8 न्यायिक व्यवस्था की अपूर्णता
23.2 मुगलों का शासन–प्रबन्ध
23.3 केन्द्रीय शासन–प्रबन्ध
23.3.1 सम्राट
23.3.2 मन्त्रिमण्डल
23.3.3 वजीर
23.3.4 दीवान
23.3.5 मीर बख्शी
23.3.6 मुख्य सदर
23.3.7 खाने सामान
23.3.8 काजी उल कजात
23.3.9 मुहतसिब
23.3.10 अन्य मन्त्री
23.4 मुगलों की सैन्य व्यवस्था
23.4.1 अधीन राजाओं की सेना
23.4.2 मनसबदारों की सेना
23.4.3 दाखिली सेना
23.4.4 अहदी सेना
23.5 प्रान्तीय शासन प्रबन्ध
23.5.1 सूबेदार
23.5.2 दीवान
23.5.3 सदर–काजी बख्शी एवं अन्य अधिकारी
23.6 सरकारों (जिलों) का शासन प्रबन्ध
23.6.1 फौजदार
23.6.2 अमलगुजार, खजानेदार एवं अन्य कर्मचारी
23.7 परगनों का शासन प्रबन्ध
23.8 ग्राम प्रशासन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

23.9 मुगलों की न्याय व्यवस्था
23.10 मुगलों की राजस्व व्यवस्था
23.10.1 भूमि कर
23.11 सारांश
23.12 अभ्यास प्रश्नावली

23.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया गया है –

–केन्द्रीय, प्रान्तीय, जिला, ग्राम प्रशासन

–सैन्य व्यवस्था, राजस्व व्यवस्था, मनसबदारी प्रथा आदि।

23.1 भूमिका :

मुगलों का शासन अपने स्वरूप में विदेशी और भारतीय तत्त्वों का सम्मिश्रण था। केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन व्यवस्था तथा दरबार और उच्च कर्मचारी वर्ग का संगठन मुख्यतः विदेशी मुस्लिम राज्य पद्धति के अनुसार किया गया था। इसमें अरब और फारस की व्यवस्था का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता था। इसके विपरीत ग्रामीण शासन व्यवस्था और भूमि–कर प्रणाली का मूल आधार भारतीय था। मुगल राज्य की प्रकृति मुख्यतः सैनिक रूप की थी। सेना का संगठन तुर्की प्रणाली के अनुरूप था। मुगलों के राज्य का स्वरूप कल्याणकारी राज्य का नहीं था। मुगल सम्राट निरंकुश शक्तियों के स्वामी थे, जिन पर किसी प्रकार के प्रतिबन्ध नहीं थे। वैसे प्रभावशाली सरदारों और अमीरों तथा प्रजा के विद्रोह के भय से उन पर अप्रत्यक्ष अंकुश अवश्य लगा रहता था। मुसलमान के लिए सम्राट राज्य और धर्म दोनों का सरताज था जबकि गैर–मुसलमानों के लिए वह केवल साम्राज्य का स्वामी था। मुगल शासन व्यवस्था में उत्तराधिकार का कोई नियम नहीं था, अतः गद्दी के लिए बहुधा भीषण गृह–युद्ध होते थे।

मुगल राज्य की प्रकृति को प्रमुख बिन्दुओं में निम्नानुसार समझा जा सकता हैं –

23.1.1. सैनिक शक्ति पर आधारित राज्य – मुगल शासन व्यवस्था सैनिक एकतन्त्रात्मक थी। राज्य का प्रधान सम्राट होता था जो सैनिक शक्ति के बल पर राज्य करता था। सम्राट् राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रों में प्रधान तथा सर्वोपरि शक्ति होता था। खलीफा से उसका सम्बन्ध नहीं था और धार्मिक नीति सम्बन्धी निर्णय लेने में वह स्वतन्त्र था। गांवों में लगभग स्वायत्त शासन प्रचलित था।

23.1.2. शासन में देशी और विदेशी तत्त्वों का सम्मिश्रण – मुगल शासन अपने स्वरूप में देशी और विदेशी तत्त्वों का सम्मिश्रण था। मुगल शासन का आधार अपने बादशाहों के तौर–तरीकों और परिपाटियों पर निर्भर था जो भारतीयों के लिए विदेशी थे। मुगलों के राज्य की प्रकृति सम्बन्धी सिद्धान्त विदेशी थे। उनकी धार्मिक नीति और उपाधियां देने की व्यवस्था विदेशी थी लेकिन मुगल सम्राटों ने आवश्यकतानुसार इस विदेशी स्वरूप को देशी रूप में ढालने का प्रयास किया। इस क्षेत्र में अकबर सबसे अग्रणी रहा।

23.1.3. सम्राट असीमित शक्ति का स्वामी – मुगल सम्राट सम्पूर्ण शासन व्यवस्था की धुरी था। उसे नियम बनाने, उनको लागू करने और न्याय करने के सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे। मुगल सम्राट् स्वेच्छाचारी और निरंकुश थे। प्रजा के हितों की चिन्ता करना, न करना उनकी मर्जी पर था। अकबर जैसे सम्राट् ने जहां प्रजा के हित को सर्वोपरि महत्त्व दिया वहां औरंगजेब जैसे सम्राट ने प्रजा के हितों की उपेक्षा की। सैद्धान्तिक रूप से अपरिमित शक्तियों के स्वामी होते हुए भी व्यावहारिक रूप से सम्राटों को प्रभावशाली सरदारों और सेनापतियों के विचारों का आदर करना पड़ता था और प्रचलित रीति–रिवाजों तथा प्रजा की आवश्यकताओं पर न्यूनाधिक ध्यान देना पड़ता था। ऐसा न होने पर विद्रोह का भय रहता था।

23.1.4. प्रशासन कार्य और सेना में भेद न होना – मुगलों के समय शासन और सेना के विभागों में कोई भेद नहीं था। जैसा कि डॉ. सिन्हा ने लिखा है – "सारे नागरिक अधिकारी मनसबदार अथवा अन्य सैन्य पदाधिकारी थे। उच्च से उच्च पद प्राप्त करने के लिए सैनिक गुणों का होना अनिवार्य था। राज्य के सर्वोच्च अधिकारी मनसबदार होते थे जो सैनिक पदाधिकारी थे, किन्तु उन्हें सूबेदार तक के पदों पर आसीन किया जाता था। सम्राट के दरबारों में उच्च कर्मचारी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विभिन्न विभागों के वजीर सभी मनसबदार होते थे जिनका प्रथम पद सैनिक था तथा समय पड़ने पर उनमें युद्ध भूमि में सैन्य संचालन करने की योग्यता होना आवश्यक था। अकबर के काल में टोडरमल तथा बीरबल तक को युद्ध भूमि में सैन्य संचालन करना पड़ता था। उच्च पदाधिकारियों को उनके मनसब के अनुसार मीरबख्शी से वेतन मिलता था।''

23.1.5. धर्म अप्रभावित राज्य — प्रो. एस.आर. शर्मा के अनुसार मुगल साम्राज्य धर्म अप्रभावित राज्य था। विशेष रूप से अकबर ने बहुत ही उदार और सहिष्णु नीति अपनाई तथा धर्म को राजनीति से पृथक करते हुए एक लौकिक साम्राज्य स्थापित किया। 'धर्म से प्रभावित राज्य में सम्राट को धार्मिक अधिकार होते हैं ओर सम्राट् तथा धर्मचारियों का विरोध करना पाप समझा जाता हे। परन्तु मुगल शासन में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं थी। न्यायलय अधिकतर धर्म से अप्रभावित रहते हुए निष्पक्ष न्याय करते थे। मुगल सम्राटों ने प्रायः धर्मान्धता की नीति पर न चलकर सभी को उन्नति के समान अवसर प्रदान किए। औरंगजेब जैसे धर्मान्ध सम्राट के शासनकाल में भी (जिसने धर्म प्रभावित राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया था) अनेक कट्टर मुसलमान तक सम्राट की नीति के विरूद्ध थे।

23.1.6. सामाजिक सुधारों के प्रति उदासीनता — मुगल सम्राटों ने कभी यह अपना कर्त्तव्य नहीं माना कि समस्त प्रजा के सामाजिक सुधार के लिए उन्हें प्रयत्नशील होना चाहिए। यद्यपि मुस्लिम समाज के सुधार या उन्नति के लिए थोड़े बहुत प्रयत्न किए गए लेकिन बहुसंख्यक हिन्दू समाज के सुधार की दिशा में शासन उदासीन रहा। मुगल सम्राट का कार्य लगान वसूल करने और प्रजा की सुरक्षा के लिए पुलिस व्यवस्था करने तक ही सीमित था। सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था भी धार्मिक संस्थाओं द्वारा की जाती थी। संक्षेप में, मुगल साम्राज्य में सार्वजनिक उन्नति अथवा राष्ट्रीय सांस्कृतिक उत्थान राज्य का कर्त्तव्य नहीं समझा जाता था।

23.1.7. देशी भूमि कर व्यवस्था — मुगल शासन की भूमि कर व्यवस्था देशी थी। हिन्दू काल से प्रचलित भूमि व्यवस्था को ही सामान्य संसाधनों के साथ जारी रखा गया तथा भूमि कर के लिए मुख्यतः हिन्दू कर्मचारी ही नियुक्त किए गए।

23.1.8. न्यायिक व्यवस्था की अपूर्णता — मुगल साम्राज्य में न्याय की कोई एकरूप और समुचित प्रभावी व्यवस्था नहीं थी। ग्रामीण जनता अपनी पंचायतों पर ही न्याय के लिए निर्भर थी, मुगलों की न्याय व्यवस्था से वह वंचित थी। न्याय के लिए राज्य की ओर से फौजदार नियुक्त किए जाते थे किन्तु कार्यभार की अधिकता के लिए वे सुचारू रूप से न्यायिक कार्य सम्पन्न नहीं कर पाते थे। केवल महत्त्वपूर्ण मुल्दमों में ही वे प्रायः हस्तक्षेप करते थे। अन्यथा गांवों के लोग आपसी झगड़ों का निर्णय स्वयं ही कर लेते थे। मुगल शासनकाल में न तो न्याय करने की कोई वैधानिक पद्धति विकसित की गई और न ही बड़े न्यायलयों की स्थापना की गई। वैसे मुगल सम्राट अधिकतर निष्पक्ष न्याय के पक्षधर थे।

23.2. मुगलों का शासन–प्रबन्ध :

मुगलों का शासन–प्रबन्ध तीन भागों में विभाजित था –

(1) केन्द्रीय शासन–प्रबन्ध

(2) प्रान्त शासन–प्रबन्ध

(3) स्थानीय शासन–प्रबन्ध

23.3. केन्द्रीय शासन–प्रबन्ध :

मुगलों की केन्द्रीय सरकार में सम्राट तथा इसके मन्त्री सम्मिलित थे। राज्य की वास्तविक शक्ति सम्राट के हाथों में निहित थी और मन्त्री उसकी मर्जी के खिलौने थे।

23.3.1. सम्राट — सम्राट केन्द्रीय शासन का मुखिया था। राज्य की प्रशासनिक, विधायी तथा न्यायिक शक्तियां उसके हाथों में निहित थी। वह राज्य का सर्वोच्च सेनापति एवं न्यायाधीश भी था। मुगल सम्राट स्वेच्छाचारी थे। प्रजा की भलाई करना या न करना उनकी इच्छा पर था। अकबर जैसे सम्राट ने तो प्रजा की भलाई तथा सुख के लिए अथक् प्रयास किए, परन्तु औरंगजेब जैसे सम्राट ने प्रजा के हित की उपेक्षा की। मुगल सम्राट के शब्द ही कानून थे। सैद्धान्तिक रूप से असीम शक्तियों का स्वामी होते हुए भी व्यावहारिक रूप में साम्राट को प्रजा की इच्छाओं, उसकी आवश्यकताओं तथा प्रचलित रीति–रिवाजों की ओर ध्यान देना पड़ता था। वे अपने सरदारों तथा धार्मिक नेताओं के विचारों का भी आदर करते थे। ये सब निश्चय ही उनकी शक्ति पर प्रतिबन्ध थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जहांगीर के अतिरिक्त सभी मुगल सम्राट राजकीय कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए कठोर परिश्रम करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। सभी मुगल सम्राट अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते थे और प्रजा से आदेश का पालन करने की आशा करते थे। अकबर ने जाति भेदभाव को छोड़कर अपने साम्राज्य में रहने वाली हिन्दू और मुस्लिम जनता की भलाई के लिए कार्य किए। औरंगजेब ने कट्टर धर्मान्ध नीति अपनाई। उसने भारत को इस्लामी राज्य में परिवर्तित करने के हरसम्भव प्रयास किए।

23.3.2. मन्त्रिमण्डल – राज्य कार्य में सम्राट की सहायता के लिए कुछ मन्त्री होते थे, जिनका प्रमुख कार्य सम्राट को शासन–सम्बन्धी विषयों में परामर्श देना था। उनकी सलाह को मानना या न मानना सम्राट की इच्छा पर था। वह मन्त्रियों के विचारों का आदर करता था, लेकिन अन्तिम निर्णय उसका अपना होता था। मोन्सर्ट के अनुसार, "कभी–कभी सम्राट मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर अपना निर्णय बदल भी लेता था, परन्तु मन्त्रिमण्डल सम्राट को किसी बात के मानने के लिए विवश नहीं कर सकता था।" केन्द्रीय शासन में मन्त्रियों की संख्या 4 से 6 तक थी, परन्तु उनकी सहायता के लिए कुछ अन्य निम्न–स्तर के मन्त्री भी होते थे। औरंगजेब के बाद मन्त्रियों की संख्या लगभग 8 पहुच गई थी।

23.3.3. वजीर (प्रधानमंत्री) – मुगल साम्राज्य में प्रधानमंत्री को वजीर, वकील, वजीर–ए–आला तथा वकील–ए–मुतलक आदि नामों से पुकारा जाता था। वित्त और राजस्व विभाग पर वजीर का पूर्णाधिकार था। उसके प्रमुख कार्य थे – अपने अधीन विभागों का निरीक्षण करना, सम्राट की अनुपस्थिति में शासन का संचालन करना, प्रजा की भलाई के लिए किए गए कार्यों की देख–रेख करना एवं सैनिक अभियान में भाग लेना आदि। लगान तथा वसूली सम्बन्धी प्रश्नों का निर्णय भी वजीर ही करता था। पदाधिकारियों की नियुक्ति, पदोन्नति तथा विमुक्ति में उसका प्रमुख हाथ होता था। उसकी सहायता के लिए दो मन्त्री होते थे – (1) दीवान–ए–खालसा एवं (2) दीवान–ए–तनखा। दीवान–ए–खालसा लगान एकत्रित करता था और शाही भूमि पर नियन्त्रण रखता था। दीवान–ए–तनखा जागीरी की भूमि के लिए जिम्मेदार था।

23.3.4. दीवान (वित्त मंत्री) – दीवान मुगल सरकार का एक महत्त्वपूर्ण मन्त्री था। वित्त विभाग और राजस्व विभाग पर उसका अधिकार था। कई बार वजीर अर्थात् प्रधानमंत्री को ही दीवान का पद सम्भालना पड़ता था। दीवान को राजस्व निर्धारित करने और एकत्रित करने के अधिकार प्राप्त थे। उसके कार्यालय में राज्य के विभिन्न भागों से भूमि–कर सम्बन्धी सभी प्रकार के पत्र आते थे और भुगतान सम्बन्धी लगभग सभी आदेश उसके द्वारा ही जारी किए जाते थे। दीवान के हस्ताक्षर के बिना किसी भी बड़ी रकम का भुगतान नहीं हो सकता था। वह राज्य की आय–व्यय का हिसाब रखता था और अपने विभाग तथा प्रान्तीय दीवानों के काम के बारे में सम्राट को सूचना देता था। दीवान के कार्य में सहायता देने के लिए कई छोटे–छोटे दीवान नियुक्त किए जाते थे।

23.3.5. मीर बख्शी (सेना मंत्री) – मीर बख्शी सैनिक विभाग का अध्यक्ष होता था। उसके मुख्य कार्य थे – सैनिकों की भर्ती करना, उनमें अनुशासन बनाए रखना, उनकी परीक्षाओं की व्यवस्था करना, घोड़ों का निरीक्षण करना, सैनिक नामावली को सम्राट के सामने पेश करना, अभियानों का आयोजन करना, शाही महलों के लिए पहरेदारों की नियुक्ति करना, आक्रमण के समय सैनिकों को शस्त्रों से सुसज्जित करना एवं दुर्गों की रक्षा करना आदि। मुगल सरकार के अधिकांश कर्मचारी सैनिक पदाधिकारी तथा मनसबदार होते थे, अतः उनके वेतन पत्रों पर मीर बख्शी के हस्ताक्षर होने अनिवार्य थे। युद्ध काल में सैनिकों को वेतन–वितरण करना मीर बख्शी की जिम्मेदारी थी।

23.3.6. मुख्य सदर (धर्मार्थ विभाग का अध्यक्ष) – मुख्य सदर धर्मार्थ विभाग का अध्यक्ष होता था। उसे सदरे–जहां अथवा सदरे–कुल के नाम से भी पुकारा जाता था। इस्लामी शिक्षा को प्रोत्साहन देना, सम्राट और राज्य–कर्मचारियों को कुरान के अनुसार चलाना, मुस्लिम विद्वानों तथा महात्माओं को छात्रवृत्तियां तथा अनुदान दिलवाना, धार्मिक तथा दान–पुण्य सम्बन्धी कार्यों में सम्राट को परामर्श देना, प्रान्तीय सदरों के कार्यों का निरीक्षण करना, इस्लामी कानून की व्याख्या करना एवं दान की भूमि की देख–रेख करना आदि उसके प्रमुख कार्य थे। कभी–कभी वही मुख्य न्यायाधीश का काम भी करता था।

23.3.7. खाने–सामान अथवा मीरे–सामान – इसके प्रमुख कार्य सम्राट के निजी नौकरों, शाही महलों के भोजन भण्डार और दैनिक व्यय का ध्यान रखना, शाही घराने के लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध करना, बेगमों, शाहजादों तथा शाहजादियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। यह पद बहुत महत्त्वपूर्ण था, अतः यह बड़े विश्वसनीय और प्रभावशाली व्यक्ति को ही दिया जाता था। युद्ध के समय खाने–सामान को सम्राट के साथ रहना पड़ता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

23.3.8. काजी–उल–कजात (मुख्य न्यायाधीश) – यह न्याय विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी थी, जिसके अधीन अनेक छोटे–बड़े काजी होते थे। इसके मुख्य कार्य अपने अधीन काजियों के कार्यों पर निगरानी रखना, इस्लामी कानून के अनुसार झगड़ो को निपटाना, प्रान्तो, सरकारों, परगनो तथा नगरो के काजियों की नियुक्ति करना, सम्राट को न्याय सम्बन्धी मामलों में परामर्श देना आदि थे। सर जे.एन.सरकार के अनुसार अधिकांश काजी रिश्वत लेने के कारण बदनाम थे।

23.3.9. मुहतसिब – मुहतसिह जनता को कुरान की शिक्षाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करने के लिए प्रोत्साहन देता था। कुरान के नियमों की अवहेलना करने वाले लोगों को वह दण्ड दिलवाता था। यह मन्त्री पुलिस की सहायता से नगरों में शराब व जुएं के अड्डों को बन्द करवाता था। औरंगजेब ने हिन्दू मन्दिरों को नष्ट करने का काम भी उसे ही सौंप दिया था। वह दुकानदारों के बांटों का निरीक्षण करता था तथा बाजार में वस्तुओं के भावों को निर्धारित करता था।

23.3.10. अन्य मंत्री – उपर्युक्त पदाधिकारियों के अतिरिक्त कुछ निम्न स्तरीय मन्त्री या अध्यक्ष होते थे। जैसे – दरोगा–ए–डाक चौकी (गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष), दारोगा–ए–तोपखाना (शाही बन्दूकों एवं तोपों का निर्माण करवाना, गोला–बारूद की व्यवस्था एवं दुर्गों की रक्षा करना) आदि। कुछ अधिकारी–मीरे अदल, मीरे तौजक, मीरे मंजिल आदि केन्द्रीय सरकार से सम्बन्धित थे, जिन्हें विभिन्न प्रकार के कार्य सौंपे गए थे।

23.4. मुगलों की सैन्य व्यवस्था :

अकबर ने अपने विशाल साम्राज्य की रक्षा हेतु एक सुसंगठित, शक्तिशाली, आदर्श एवं सुव्यवस्थित सेना की व्यवस्था की –

1. अकबर ने सैनिक अधिकारियों को नगद वेतन देने की व्यवस्था की।

2. अकबर ने घोड़े दागने की प्रथा पुनः प्रचलित की तथा प्रत्येक अधिकारी को सेना के अलग–अलग निशान तय कर दिए।

3. अकबर के अधीन पांच सेनाएं थी :

23.4.1. अधीन राजाओं की सेना – यह सेना अकबर की अधीनता स्वीकार करने वाले राजाओं की थी, जिसका संगठन भी उन्हीं के द्वारा किया जाता था। इस सेना के लिए आर्थिक सहायता नहीं दी जाती थी। यह निश्चित था कि राजा आवश्यकता पड़ने पर सम्राट को कितनी सैनिक सहायता देंगे।

23.4.2. मनसबदारों की सेना – इस सेना पर अकबर को पूरा भरोसा था। सबसे छोटे मनसबदार के पास 10 एवं सबसे बड़े मनसबदार के पास 12 हजार तक सैनिक होते थे। 500 से 2500 सैनिक तक के मनसबदार अमीर एवं 2500 से अधिक सैनिक वाले अमीर–आजम कहलाते थे। पाच हजार के ऊपर शाही व्यक्तियों अथवा अत्यन्त विश्वसनीय व्यक्तियों को ही मनसबदार बनाया जाता था।

23.4.3. दाखिली सेना – यह आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखती थी।

23.4.4. अहदी सेना – इस सेना में सम्राट के अत्यन्त विश्वसनीय सैनिक होते थे। इसमें प्रायः कुलीन वर्ग के लोग होते थे, जो ऊँचा वेतन प्राप्त करते थे। ये सीधे सम्राट के प्रति उत्तरदायी होते थे तथा उसके अंगरक्षक का कार्य भी करते थे।

4. अकबर की सेना छः भागों में विभक्त थी –

(1) अश्वरोही सेना : यह सेना सबसे महत्त्वपूर्ण थी तथा समतल मैदानों में युद्ध के लिए बड़ी उपयोगी थी।

(2) पैदल सेना : यह ऊबड़–खाबड़ एवं पर्वतीय प्रदेशों में युद्ध के लिए उपयोगी थी। इसमें बन्दूकची तथा शमशेरबाज आते थे। 12,000 बन्दूकची 'दारोगो तोपचियान, के नेतृत्व में बन्दूकों से युद्ध करते थे। शमशेरबाज तलवार, कटार, चाकू, कोड़े आदि से लड़ते थे।

(3) हस्ति सेना : इस सेना में 5,000 प्रशिक्षित हाथी थे, जो रणक्षेत्र में काफी उपयोगी होते थे। इसका प्रयोग सावधानी से करना पड़ता था, क्योंकि हाथी उल्टे भी पड़ सकते थे। इनका प्रयोग सामान ढोने के लिए भी किया जाता था।

(4) तोपखाना : अकबर का तोपखाना बड़ा शक्तिशाली था। उसने ऐसी बन्दूके बनवाई, जो आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जा सकती थी।

(5) नौसेना : इस क्षेत्र में अकबर ने विशेष ध्यान नहीं दिया, फिर भी उसने नदियों के युद्ध हेतु विशालकाय नावें बनवाई, जिनका बंगाल, बिहार एवं सिन्ध में प्रयोग होता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(6) शाही खेमा : अभियान के समय अकबर के साथ पांच से बीस मील लम्बा विशाल शाही खेमा चलता था। इसमें 1 लाख से 2 लाख तक व्यक्ति होते थे। इस शाही खेमे में वस्तुओं की आपूर्ति का उत्तम प्रबन्ध था।

इस प्रकार अकबर का सैन्य–प्रबन्ध बड़ा सुसंगठित एवं उत्तम था।

23.5. प्रान्तीय शासन प्रबन्ध :

मुगल साम्राज्य को प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से विभिन्न प्रान्तों अथवा सूबो में बांटा गया था। अकबर के समय मुगल साम्राज्य में 15 प्रान्त थे, औरंगजेब के समय बीस। कुछ इतिहासकारों के अनुसार प्रान्तों की यह संख्या क्रमशः 18 और 21 थी। प्रान्तों में भी केन्द्र की तरह ही शासन चलता था। प्रान्तों के मुख्य प्रशासनाधिकारी ये थे –

23.5.1. सुबेदार – प्रत्येक प्रान्त का सबसे बड़ा अधिकारी सूबेदार या 'साहिब सूबा' या 'सिपहसालार' या 'नाजिम' कहलाता था। इस पद पर बहुत ही विश्वसनीय और प्रभावशाली व्यक्ति अथवा शाहजादे को नियुक्त किया जाता था। प्रान्त में वह सम्राट का प्रतिनिधि था। अपने इलाके में शान्ति व्यवस्था बनाए रखना, प्रजा की सुख–समृद्धि पर ध्यान देना, प्रान्तीय व्यापार–वाणिज्य व कृषि को प्रोत्साहन देना, प्रान्त में सड़कों, कुओं, नहरों, अस्पतालों आदि का निर्माण करना, प्रान्तीय राजधानी की सहायता करना आदि उसके मुख्य कर्त्तव्य थे। सूबेदार के अधीन शक्तिशाली सेना रहती थी जिससे वह विद्रोहों को दबाता था और आवश्यकता पड़ने पर सम्राट की सहायता करता था।

23.5.2. दीवान – यह प्रान्त के वित्तीय विभाग का मुख्य अधिकारी था जिसकी नियुक्ति सम्राट केन्द्रीय दीवान के परामर्श से करता था। दीवान के कार्यों में सूबेदार दखल नहीं दे सकता था। वास्तव में दीवान और सूबेदार एक दूसरे की गतिविधियों पर निगाह रखते थे और सम्राट को दोनों से प्रान्तीय मामलों के बारे में अलग–अलग रिपोर्ट प्राप्त होती थी। प्रान्त में भूमि–कर निर्धारण करना, भूमि कर की वसूली का प्रबन्ध करना, कर–वसूली के अधिकारियों की नियुक्ति करना, दीवानी मामलों में निर्णय देना, खजाने व कृषि की देखभाल करना, किसानों को अकाल आदि के समय सहायता देना, दीवानी कागजातों को केन्द्रीय दीवान अथवा वजीर के पास भेजना आदि उसके मुख्य कर्त्तव्य थे।

23.5.3. सदर–काजी, बख्शी एवं अन्य अधिकारी – प्रान्तीय शासन में सदर नामक अधिकारी धार्मिक विभाग का मुखिया था जिसकी नियुक्ति सम्राट केन्द्रीय सदर के परामर्श से करता था। जिस प्रकार के कार्य केन्द्र में मुख्य सदर के थे, वैसे ही अधिकार प्रान्त में इसके थे। वह सूबेदार और दीवान के अधीन नहीं होता था। काजी प्रान्त का मुख्य न्यायाधीश होता था जिसका काम प्रान्त के फौजदारी मुकदमों का निर्णय करना और जिलों तथा कस्बों के काजियों के कार्यों का निरीक्षण करना था। बख्शी प्रान्तीय सेना की भर्ती, तरक्की, तबादले आदि के मामलों की देखभाल करता था। सैनिक संगठन को दृढ बनाए रखने के लिए आवश्यक कदम उठाता था। शाही आदेश पर सैनिकों को लेकर अभियानों में भी उसे शामिल होना पड़ता था। कई बार वह गुप्तचर विभाग के मुखिया के रूप में भी काम करता था। इन अधिकारियों के अतिरिक्त प्रान्त में वाकिया–नवीस, सवानह–नवीस, कोतवाल आदि उल्लेखनीय अधिकारी थे। वाकिया–नवीस का मुख्य कार्य सम्राट को प्रान्तीय घटनाओं व कर्मचारियों के बारे में गुप्त सूचना भेजना था। कोतवाल नगर का मुख्य पुलिस अधिकारी होता था।

शासन की सुविधा की दृष्टि में प्रत्येक प्रान्त तीन भागों में विभक्त था–

(1) सरकार

(2) परगना

(3) ग्राम।

23.6. सरकारों (जिलों) का शासन प्रबन्ध :

प्रत्येक मुगल प्रान्त अनेक सरकारों अथवा जिलों में विभक्त होता था। अकबर के समय राज्य भर में लगभग 105 सरकारें थीं। सरकार के मुख्य अधिकारी ये होते थे –

23.6.1. फौजदार – यह सरकार का कार्यपालक अधिकारी था जिस पर सरकार अर्थात् जिले में शान्ति व्यवस्था बनाए रखने, सरकारी आदेशों को लागू करने, पुलिस प्रबन्ध की व्यवस्था करने, भूमि–कर वसूली में सम्बन्धित कर्मचारी की सहायता देने आदि का भार था। फौजदार की हैसियत एक प्रकार से आधुनिक जिलाधीश जैसी थी उसके अधीन सेना की एक टुकड़ी भी रहती थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

23.6.2. अमलगुजार, खजानेदार एवं अन्य कर्मचारी – सरकार में अमलगुजार महत्त्वपूर्ण अधिकारी था जो अपने इलाके में किसानों की भूमि की ठीक ढंग से पैमाइश करवाने, किसानों की सुख–सुविधा का ध्यान रखने, बन्जर भूमि के सुधार के लिए आवश्यक कदम उठाने आदि के लिए उत्तरदायी था। अमलगुजार की सहायता के लिए वितिक्ची नामक कर्मचारी होता था जिसका मुख्य कार्य भूमि–कर और उपज सम्बन्धी लेखे तैयार करना था। खजानेदार नामक कर्चचारी का काम किसानों से एकत्रित किए धन को सरकारी कोष में सुरक्षित रखना था।

23.7. परगनों की शासन प्रबन्ध :

सरकार से छोटी शासकीय इकाई परगना थी। परगने को 'महाल' भी कहा जाता था। परगने के मुख्य अधिकारी शिकदार, आमिल, कानूनगों आदि होते थे। शिकदार मुख्य कार्यपालक था जो परगने में शान्ति व्यवस्था बनाए रखने, विद्रोहों को दबाने, चोरों व उपद्रवियों को दण्ड देने, साधारण फौजदारी मुकदमों का निर्णय करने, भूमि–कर वसूली में सहायता करने व उच्च अधिकारियों के आदेशों को लागू करने के लिए उत्तरदायी था। आमिल परगने के राजस्व विभाग का मुखिया होता था जिसका काम कृषि की उन्नति का ध्यान और कर वसूल करना था। वह भूमि की पैमाइश के लेखों का निरीक्षण करता था और यह देखता था कि परगने की आय स्थानीय कोष में नियमित रूप से जमा होती रहे। कानूनगो परगने के पटवारियों का मुखिया होता था जिसका काम भूमि और भूमि–कर सम्बन्धी लेखे रखना तथा आवश्यकतानुसार उन्हें उच्च अधिकारियों के सामने पेश करना था। पोतदार परगने का खजांची था। अमीन का काम किसानों को जमीन देना था।

परगने का प्रधान अधिकारी **'शिकदार'** कहलाता था, जो परगने में शांति एवं सुव्यवस्था के लिए उत्तरदायी होता था। इसके अतिरिक्त यह परगने में फौजदारी मुकदमों का निर्णय कर न्यायाधीश के कार्य भी करता था। प्रत्येक परगने में एक **'आमिल'** भी होता था जिसका प्रमुख कार्य भूमि कर का निर्धारण तथा उसकी वसूली करना था। आमिल को कारकून मदद करते थे। प्रत्येक परगने में कानूनगों भी नियुक्त किये जाते थे। **'कानूनगो'** परगने की उपज तथा जमा लगान एवं बकाया धनराशि का विवरण रखता था। 'काननूगो' की मदद के लिए अनेक पटवारी होते थे। सरकार या जिले के **'खजानेदार'** के समान परगने में **'फौजदार'** की व्यवस्था भी थी, यह कोषागार का प्रभारी होता था।

23.8. ग्राम प्रशासन :

प्रत्येक परगना अनेक गांवों में विभक्त रहता था। गांव शासन की सबसे छोटी इकाई होती थी। गांव का प्रधान अधिकारी **'मुकदम'** कहलाता था। जो गांव का मुखिया होता था। इसका प्रमुख कार्य लगान वसूल करना, गांव में शांति एवं सुव्यवस्था स्थापित करना तथा सरकारी कर्मचारियों की मदद करना था। गांव का दूसरा प्रमुख अधिकारी **'पटवारी'** कहलाता था। यह भूमि के लगान से सम्बन्धित रजिस्टर रखता था। यह राजस्व विभाग का सबसे छोटा अधिकारी होता था, किन्तु ग्राम प्रशासन में उसका अत्यधिक महत्व था।

23.9. मुगलों की न्याय–व्यवस्था

सल्तनतकालीन न्याय–व्यवस्था इस्लाम के नियमों पर आधारित थी। बाबर एवं हुमायूं ने इसी प्रथा को जारी रखा। अकबर ने यद्यपि इस न्याय–व्यवस्था में कोई मौलिक सुधार नहीं किये लेकिन उसने छोटे–छोटे सुधारों के द्वारा इस न्याय–व्यवस्था को अधिक उपयोगी बना दिया। **अकबर ने इस्लामी कानून के क्षेत्र को सीमित कर दिया तथा देश के सामान्य एवं प्रचलित कानून को बढ़ावा दिया जिसके परिणामस्वरूप देश के सामान्य कानूनों के अनुसार अधिक मुकदमों की सुनवाई होने लगी।** अकबर ने हिन्दू प्रजा के लिए न्यायाधीशों की नियुक्ति की। इन सुधारों के अतिरिक्त अकबर के शासनकाल की न्याय–व्यवस्था वैसी ही रही जैसे मुगलकाल में प्रचलित थी।

मुगल काल में निम्नलिखित अदालतें होती थी–

(1) बादशाह की अदालत – मुगलकाल में सम्राट न्याय का प्रधान स्रोत था। सम्राट सप्ताह में एक दिन अर्थात बुधवार को आम न्यायालय में न्याय करता था। राजशाही अदालत में एक प्रधान काजी, दूसरे न्यायाधीश तथा अनेक धर्माचार्य उपस्थित रहते थे। **अपील का अंतिम न्यायालय सम्राट का न्यायालय ही था।** प्रायः न्याय हेतु सम्राट की अदालत तक पहुंचना एक मुश्किल कार्य था क्योंकि सम्राट के पास न्याय करने के लिए समय का अभाव होता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(2) प्रधान काजी की अदालत – बादशाह की अदालत के बाद प्रधान काजी की अदालत होती थी। प्रधान काजी अपनी अदालत में इस्लाम के नियमों के अनुसार न्याय किया करता था। प्रधान काजी की अदालत में अपीलें भी सुनी जाती थी।

(3) प्रान्तीय अदालतें – प्रत्येक प्रान्त की राजधानी में एक काजी की अदालत होती थी, इस काजी की नियुक्ति प्राधान काजी करता था।

(4) कस्बों के अदालतें – प्रत्येक प्रान्त की तरह प्रत्येक कस्बे में भी एक काजी रहता था। गांव, कस्बे में भी एक काजी रहता था। गांव, कस्बे एवं नगरों में मुकदमों की सुनवाई पंचायतों द्वारा भी की जाती थी।

अपराध एवं दण्ड विधान – इस्लामी धर्मशास्त्र के अनुसार तीन प्रकार के अपराध होते थे–(1) ईश्वरीय अपराध (2) राज्य अपराध (3) व्यक्तिगत अपराध। ईश्वरीय अपराध का सम्बन्ध ईश्वरीय नियमों के उल्लघंन से था।

मुगल काल में चार प्रकार के दण्ड थे–

(1) हद – यह दण्ड ईश्वरीय अपराध के लिए दिया जाता था। इस अपराध को कोई भी माफ नहीं कर सकता था। यह दण्ड मुख्यतः व्यभिचार, शराब पीने, चोरी, डकैती, हत्या तथा धर्म विरोधी कार्यो के लिए दिया जाता था।

(2) ताजिर – ताजिर दण्ड अपराधी को सुधारने के लिए दिया जाता था। इसके अन्तर्गत अपराधी को जैसे न्यायालय के द्वार तक घसीटना, देश निष्कासन, कान ऐंठना, कोड़े लगवाना, आदि शामिल था। ताजिर के अन्दर आये हुए अपराधों का दण्ड देना जज की इच्छा पर निर्भर था।

(3) किसास (बदला) – किसास दण्ड हत्या या गहरी चोट के बदले में दिया जाता थ। चोट खाया हुआ व्यक्ति या फिर मृत व्यक्ति का निकटतम सम्बन्धी अपराधी से क्षतिपूर्ति की मांग करता था। दोनों पक्षों के मान जाने पर मुकदमा काजी के पास भेज दिया जाता था।

(4) तशहीर (सार्वजनिक निन्दा) – यह कानून हिन्दूओं के लिए लागू था। इस दण्ड के अन्तर्गत अपराधी को सिर मुड़वाना, गधे पर उल्टा मुंह करके (पूंछ की ओर) बैठाना, मुंह पर धूल अथवा काला पोत देना अथवा जूतों की माला पहना कर बाजार में धुमाना, इत्यादि शामिल था।

प्राणदण्ड अपराधी का जिन्दा जलवाकर, हाथी के नीचे कुचलवा कर, जहरीले सर्प से कटवाकर या गड्ढे में दबा दिया जाता था। ऋण अथवा दूसरे छोटे–छोटे अपराधों के लिए कारावास का दण्ड दिया जाता था।

बन्दी–गृहों की व्यवस्था – मुगलों के समय में बन्दीगृह दो प्रकार के होते थे– एक बन्दी–गृह उच्च जाति के लोगों के लिए तथा दूसरे निम्न जाति के लोगों के लिए। राजवंशीय राजकुमारों तथा अन्य कुलीन सरदारों को अपराध करने पर पहले प्रकार के बन्दी–गृह में रखा जाता था तथा निम्न श्रेणी के लोगों को दूसरे प्रकार के बन्दी–गृहों में रखा जाता था। बन्दी–गृहों में कैदियों के भोजन एंव स्वास्थ्य की अच्छी व्यवस्था नहीं थी।

डॉ. इब्नहसन का मुगलकालीन न्याय–व्यवस्था के विषय में कथन महत्वपूर्ण है उन्होंने लिखा है कि मुगल साम्राज्य के राजनीतिक संगठन पर इस्लामी सिद्धांतों का जितना प्रभाव था उससे बहुत अधिक प्रभाव न्याय–प्रणाली पर था।

मुगलकालीन न्याय–व्यवस्था में अनेक दोष भी थे। **न्याय प्रणाली का प्रमुख दोष काजियों का भ्रष्टाचार था।** समकालीन यूरोपीय यात्रियों ने इसके अनेक उदाहरण दिये है, जहां काजी घूस लेकर मुकदमे का फैसला करते थे। न्यायालयों में घूस का बोलबाला था, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

23.10. मुगलों की राजस्व–व्यवस्था :

23.10.1. भूमि कर – भारत प्राचीन समय से ही एक कृषि प्रधान देश रहा है। अतः कृषि ही अर्थ का प्रमुख साधन रहा। मुगल काल में भी राज्य की आय का प्रमुख साधन कृषि ही था। बाबर एवं हूमायूं ने सल्तनतकालीन मालगुजारी की प्रथा को सुव्यवस्थित करने का प्रयास किया। अकबर ने भी शेरशाह की मालगुजारी प्रथा को अपनाया तथा उसमें अनेक सुधार किये। अकबर ने जमीन को नापने के लिए रस्सी के स्थान पर बांस के टुकड़ों का इस्तेमाल किया जो लोहे के छल्लों से जुड़ें रहते थे। उसने जागीरदारी प्रथा को भी समाप्त कर दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मुगलकालीन भू–राजस्व व्यवस्था को संगठित तथा सुव्यवस्थित करने का श्रेय अकबर को है। उसने 1560 ई. में इस कार्य का शुभारम्भ किया तथा 1590 ई. तक चलता रहा। मुगलकालीन ढांचों तथा सिद्धांतों पर ही अंग्रेजों ने भी भू–राजस्व का संगठन किया। डॉ. स्मिथ ने लिखा है कि अकबर के भू–राजस्व कर्मचारी भूमि सम्बन्धी जिन आंकड़ों को एकत्रित करते थे उसी तरह ब्रिटिश काल में भी किया जाता था'' मोरलैण्ड ने भी लिखा है कि अकबरकालीन बन्दोबस्त ब्रिटिशकालीन बन्दोबस्त के समान था। इन विद्वानों के मत के आधार पर मुगलकालीन भू–राजस्व व्यवस्था के महत्व को समझा जा सकता है। राजकीय भूमि में अकबर ने 'करोड़ी' नाक अधिकारी नियुक्त किये, जिनका कार्य अपने अधिकार–क्षेत्र की सीमा को निश्चित करना, लगान के विभिन्न साधनों का लेखा रखना तथा प्रत्येक फसल को लेखा रखना, इत्यादि था। 'करोड़ी' की मदद हेतु **'कारकुन'** एवं **'पोतदार'** अन्य पदाधिकारी होते थे। अकबर का सबसे महत्वपूर्ण सुधार 'दस सालाह' प्रबन्ध था। 'इस सालाह' का तात्पर्य यह था कि पहले दस वर्षो के मूल्य का औसत निकालकर लगान को निश्चित किया गया था। अकबर ने भूमि की उर्वरता के अनुसार भूमि को चार भागों में विभक्त किया– (1) पोलस (क) उत्तम श्रेणी (ख) निम्न श्रेणी (2) पड़ौती : (क) उत्तम श्रेणी, (ख) निम्न श्रेणी (3) चांचर (4) 'बंजर'। भूमि का वर्गीकरण करने के उपरान्त उत्तम एवं निम्न श्रेणी की पोलस तथा पड़ौती की औसत निकाली गयी। चांचर तथ बंजर भूमि की उपज का औसत निकालते समय सिंचाई की व्यवस्था का ध्यान रखा गया। अकबर के समय में मालगुजारी की **तीन व्यवस्थाएँ** प्रचलित थी– (क)**'गल्ला बख्शी'** इस प्रथा के अनुसार फसल का कुछ भाग सरकार ले लेती थी, (ख) **'नस्क'** इस प्रथा में भूस्वामी एवं सरकार के बीच लगान का समझौता हो जाता था। (ग) **'जाब्ती'** इस प्रथा में जिस प्रकार की फसल खेत में बोयी जाती थी उसी के अनुसार लगान निश्चय होता था। इन तीनों प्रथाओं में से किसान किसी भी प्रथा को अपनाने के लिए स्वतंत्र थे। यद्यपि अकबर द्वारा निश्चित की गयी लगान बहुत कम न थी परन्तु किसान उसकी लगान व्यवस्था से सन्तुष्ट थे। लगान के निश्चित हो जाने से किसान तथा सरकार दोनों ही चिन्ता मुक्त हो गये। इसके अतिरिक्त अकबर ने जजिया, जकात, तीर्थयात्रा कर, वृक्ष कर, बाजार कर, गृह कर तथा अन्य अनेक करों को समाप्त कर दिया था इसके साथ–साथ अकाल तथा अन्य दैवी आपदाओं के समय किसानों के लगान में कमी कर दी जाती थी। गरीब किसानों को बीज, पशु एवं कृषि औजार खरीदने हेतु धन भी दिया जाता था। अकबर की राज्य व्यवस्था के विषय में मोरलैण्ड ने लिखा है, ''यदि उस समय के स्तर का मूल्यांकन किया जाय तो आर्थिक दृष्टिकोण से उसका शासन श्लाघनीय था, क्योंकि उसके कोष में सदैव वृद्धि होती गयी और जब उसने पंचत्व प्राप्त किया तब वह संसार का सबसे समृद्धिवान शासक था।

23.11. सारांश :

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मुगल प्रशासन का स्वरूप वास्तव में मध्ययुगीन राजतंत्रात्मक पद्धति थी। प्रो. हरिशंकर श्रीवास्तव के शब्दों में, ''वास्तव में मुगल राज्य एक राजतंत्र थ, जिसमें सुविधानुसार भारतीय धर्म, संस्कृति तथा कल्याणकारी भावना मिश्रित थी। इसका प्रमुख उद्देश्य सम्राट की शक्ति एवं गरिमा को बढ़ाकर मुगल साम्राज्य को मध्य एशिया, ईरान तथा तुर्की के परिप्रेक्ष्य में उच्च स्थान प्रदान करना था।''

23.12. अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 मीर बख्शी कौन था?

अ. वित्त अधिकारी   ब. सेना मंत्री

स. प्रधानमंत्री   द. न्यायाधीश

उत्तर – ....

प्रश्न 2 मुगलों की सैन्य व्यवस्था पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 मुगलों की प्रशासन व्यवस्था पर निबन्ध लिखिये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई 2
कृषि व्यवस्था

संरचना

कृषि व्यवस्था
24.0 उद्देश्य
24.1 भूमिका
24.2 कृषि
24.3 भू–राजस्व व्यवस्था
    24.3.1 प्रशासनिक विभाजन
    24.3.2 दहशाला बन्दोबस्त
    24.3.3 भूमि का वर्गीकरण
    24.3.4 मालगुजारी की व्यवस्थाएँ
    24.3.5 राजस्व की दरे
    24.3.6 राजस्व अधिकारियों के कार्यों के सम्बन्ध में निर्देश
24.4 मुगलकाल में जमींदार
24.5 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

24.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में मुगलों की कृषि व्यवस्था को भू–राजस्व दहशाला बन्दोबस्त, जमीदार आदि बिन्दूओं के माध्यम से विस्तारपूर्वक समझाया गया है।

24.1. भूमिका :

मुगकालीन अर्थव्यवस्था का विस्तृत विवरण सर टामस रो, पेलसर्ट, डेला वेली, मेण्डलसो, मनरीक, वर्नियर, ट्रेवनियर, जैसे विदेशी यात्रियों एवं समसामयिक ग्रंथो से प्राप्त होता है। मुगल काल में अर्थव्यवस्था को सुव्यवस्थित करने की दिशा में जितना परिश्रम सम्राट अकबर ने किया था। सम्भवतः अन्य किसी मुगल शासक ने नही किया था। अकबर की भू–राजस्व नीति निःसन्देह इस दृष्टि से एक महत्वपूर्ण पहलू थी।

संक्षेप में, मुगलों की आर्थिक नीति अथवा मुगलकालीन आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को निम्नवत् दर्शाया जा सकता है–

24.2. कृषि :

डच यात्री पेलसर्ट के विवरण से ज्ञात होता है कि मुगल काल में खरीफ एवं रबी की ये दो फसलें होती थी। बाजरा, चावल, ज्वार, मूंग, उरद एवं नील का उत्पादन खरीफ की कपास, गन्ना, अफीम एव चावल के उत्पादन के लिए बिहार प्रमुख था तो चना, गेहूँ, चावल तथा ज्वार दक्षिण की प्रमुख उपज थी।

मुगल सम्राटों ने कृषि की स्थिति को सुधारने का पूर्ण प्रयत्न किया था। बर्नियर ने आगरा व दिल्ली के मध्य सिंचाई के साधनों का उल्लेख किया है। अकबर ने अपने सूबेदारो को निर्देश दिये कि वे कुएं, तालाब और सराय, आदि का निर्माण करवायें। इतना सब कुछ होते हुए भी गांवों की स्थिति दयनीय होने से कृषि पर इसका गम्भीर प्रभाव पड़ा। प्रो. इरफान हबीब इसका कारण करों की अधिकता बतलाते है। नूनिज के अनुसार, "दक्षिण के कृषक उपज का 1/10 भाग ही अपने पास रख पाते थे। सिंध के किसानों का अपनी उपज का 1/2 भाग कर के रूप में देना पड़ता था। 1629 ई. में गुजरात के कृषक अपनी उपज का 3/4 भाग कर के रूप में देते थे । औरंगजेब के शासनकाल में उसके निर्देशों के बावजूद भी किसानों से उनकी उपज का 1/2 भाग कर के रूप में वसूल किया जाता था। वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में जो नियम मुगल सम्राटों ने बनाये थे उसका असर भी कृषि पर पड़ा। परन्तु फिर भी कृषि की दृष्टि से मुगल काल को अत्यन्त कमजोर नहीं कहा जा सकता क्योंकि अन्न की उपज राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था।

24.3. भू–राजस्व व्यवस्था :

मुगलकाल में राज्य की आय का प्रमुख साधन कृषि ही था। बाबर एव हुमायूं ने सल्तनतकालीन मालगुजारी प्रथा को जारी रखा। तदुपरान्त शेरशाह सूरी (सूर शासक) ने मालगुजारी प्रथा को सुव्यवस्थित करने का प्रयास किया। अकबर ने भी शेरशाह की मालगुजारी व्यवस्था को अपनाया तथा उसमें अनेक सुधार किये। शेरशाह ने उपज का एक–तिहाई भाग मालगुजारी के रूप मे निश्चित किया था। अकबर ने सैद्धांतिक रूप में उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया किन्तु संशोधन अवश्य किये। इस कार्य के लिए उसने 1560 ई. से 1580 ई. की अवधि में राजस्व विभाग में अनेक विशेषज्ञों की नियुक्ति की। अकबर की भू–राजस्व व्यवस्था का उल्लेख निम्नलिखित बिन्दुओं में किया जा सकता है–

24.3.1. प्रशासनिक विभाजन – अकबर द्वारा राजस्व में पर्याप्त निरीक्षण कराने के बाद जागीरों की भूमि को खालसा भूमि में परिवर्तित कर दिया गया। इस प्रकार की परिवर्तित भूमि को 182 क्षेत्रों में विभक्त किया गया। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि इससे करोड़ दाम का राजस्व उपलब्ध हो सके। राजस्व वसूली के लिए करोड़ी नामक अधिकारी रखा गया जिसकी सहायता के लिए कारकून एवं फोतदार नियुक्त किये गये। करोड़ी का यह दायित्व था कि वह उपजाऊ भूमि की वृद्धि करे तथा राजस्व वसुली कर शाही खजाने में ज़मा करें।

बदायूंनी लिखता है कि व्यवस्था ठीक तरीके से कार्य नहीं कर पाई क्योंकि करोड़ी नाम अधिकारियों ने गबन एवं भ्रष्टाचार में पड़कर अव्यवस्था को जन्म दे दिया। मोरलैण्ड के अनुसार, "कुछ समय के लिए तो इनके कारण भ्रष्टाचार एवं जबरदस्ती वसूली का युग स्थापित हो गया।" इस स्थिति को देखते हुए सुव्यवस्था स्थापित करने का कार्य अकबर ने पुनः टोडरमल को सौंपा। सीकरी में अकबर के शयनागार के समीप ही एक राजस्व अभिलेखगार कार्यालय बनाया गया।

24.3.2. दहसाला बन्दोबस्त – राजस्व व्यवस्था में अकबर के द्वारा किया गया महत्वपूर्ण सुधार दहसाला बन्दोबस्त था। दहसाला प्रबन्ध से ताप्तर्य यह था कि "पहले दस वर्षो के मूल्यों का औसत मिलाकर लगान निश्चित करना।" उपज का औसत निकालने के लिए परगना को एक इकाई माना गया तथा दस्तूर के आधार पर मूल्य निकाला गया। उल्लेखनीय है कि दससाला प्रबन्ध परिवर्तनशील था। यह जब्ती प्रणाली ही थी। मालगुजारी नकद थी, राजस्व का आधार अब भी उपज का 1/3 भाग ही था। अब कृषक वर्ग राजस्व विभाग से सीधे सम्पर्क स्थापित कर सकते थे। अब दीवानी कार्य को फौजदारी कार्य से पृथक् कर दिया गया। अतः प्रान्तों में प्रान्तीय राजस्व अधिकारियों को दीवान कहा जाने लगा। अब उनका सम्बन्ध केन्द्रीय राजस्व विभाग से सीधे जुड़ गया। भ्रष्ट अधिकारियों को दण्डित करने की नीति अपनाई गई।

24.3.3. भूमि का वर्गीकरण – अकबर ने भूमि की उर्वरता के अनुसार भूमि को चार भागों ये विभक्त किया– (1) पोलस : (क) उत्त्म श्रेणी, (ख) निम्न श्रेणी, (2) पडौती : (क) उत्तम श्रेणी, (ख) निम्न श्रेणी, (3) चांचर (4) बंजर। भूमि का वर्गीकरण करने के पश्चात् उत्तम व निम्न पोलस एवं पड़ौती भूमि का औसत निकाली जाती थी। चांचर व बंजर भूमि की उपज की औसत निकालते समय सिंचाई की व्यवस्था का ध्यान रखा जाता था।

24.3.4. मालगुजारी की व्यवस्थाएं – अकबर ने मालगुजारी की **तीन व्यवस्थाएं** निर्धारित की– **(क) गल्ला बख्शी**– इस प्रथा के अनुसार फसल का कुछ भाग सरकार ले जाती थी। **(ख) नस्क**– इस प्रथा में भूस्वामी एवं सरकार के बीच लगान का समझौता हो जाता था। **(ग) जब्ती**– इस प्रथा में जिस प्रकार की फसल खेत में बोई जाती थी उसी के अनुसार लगान निश्चित होता था। कृषक इन तीनों में से किसी भी प्रणाली को स्वीकार करने के लिए स्वतंत्र था।

24.3.5. राजस्व की दरे – शेरशाह के शासन काल में प्रति वर्ष गल्ले की कीमतों के आधार पर राजस्व की नकद की राशि का निर्धारण किया जाता था। इस प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह था कि इसमें विलम्ब एवं अनावश्यक व्यय होता था। टोडरमल ने इस दोष को देखते हुए दसवर्षीय बन्दोबस्त निश्चित किया। एक बार निर्धारित राजस्व में परिवर्तन नहीं हो सकता था। गन्ने तथा नील की दरें गेहूं व जौ से भिन्न थी। कृषक नकद या उपज के रूप में कर देने को स्वतंत्र था।

24.3.6. राजस्व अधिकारियों के कार्यो के सम्बन्ध में निर्देश – मुगल शासक अकबर ने कृषकों से सीधे प्रशासन का सम्पर्क स्थापित करने के उद्देश्य से राजस्व अधिकारियों के लिए कतिपय निर्देश जारी किये थे। यदि राजस्व अधिकारी निश्चित धनराशि से अधिक वसूल करता था तो वह दण्ड का भागी होता था। अब राजस्व अधिकारी की सहायता के लिए केवल एक लिपिक रखा गया। अकबर ने घोषित किया कि सभी खालसा परगनों की भूमि की पैमाइश की जाय तथा गरीब कृषकों को अग्रिम ऋण दिया जाय। यह ऋण उनके किस्त के रूप में लिया जाय। वह व्यवस्था कर दी गई कि सभी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परगनों में खड़ी फसलों का औसत जांचकर्ता निकालेंगे। परगनाधिकारियों को प्रतिवर्ष क्षतिग्रस्त फसलों का ब्यौरा भेजना अनिवार्य कर दिया गया। फसल के क्षतिग्रस्त होने पर कृषकों को मुआवजा देने का निर्देश दिया गया। प्रत्येक अधिकारी के कार्यो का ब्यौरा केन्द्रीय विजारत द्वारा मूंल्याकन किया जायेगा। राजस्व विभाग से सम्बन्धित कर्मचारियों व अधिकारियों को नई दर से वेतन देने की घोषणा की गई। जांचकर्ता को 1 दिन में 1 दाम, अमीन को 4 दाम प्रतिदिन, लिपिक को 2 दाम प्रतिदिन निर्धारित किया गया। एक रूपया 40 दाम के बराबर था। एक स्वर्ण मुद्रा 40 दाम के बराबर थी। यह निश्चित कर दिया गया कि रबी की फसल में 250 बीघा जमीन प्रतिदिन एवं खरीफ की फसल में 200 बीघा जमीन प्रतिदिन अवश्य नापी जाय। पटवारियों की सहायता से राजस्व वसूली समय पर होने के निर्देश भी दिये गये। यह अपेक्षा की गई कि राजस्व चालू सिक्कों में देय हो किन्तु पुराने सिक्के भी निर्धारित मूल्य के आधार पर चल सकते थे।

इस प्रकार अकबर द्वारा राजस्व व्यवस्था में पर्याप्त संशोधन के भरसक प्रयत्न किये गये। यह ठीक है कि अकबर पूर्णतः घूसखोरी को न रोक सका परन्तु यह तो मानना ही होगा कि अधिक लगान होने पर भी कृषक उसकी लगान व्यवस्था से सन्तुष्ट थे। लगान निश्चित हो जाने से कृषक व सरकार दोनों ही चिन्तामुक्त हो गये। अकबर ने जजिया, जकात, तीर्थ यात्रा कर, वृक्ष कर, बाजार कर, गृह कर, आदि को माफ कर दिया था। अतः कृषक पर लगान की अधिकता से भी भार नहीं पड़ा। यहीं नहीं, अकाल व अन्य दैवी आपदाओं के समय किसानों के लगान में भारी कमी भी कर दी जाती थी। उसकी इस व्यवस्था से राजकोष में भी वृद्धि हुई। मोरलैण्ड के अनुसार, ''अकबर के साम्राज्य के अन्तिम वर्षो में राजस्व की आय 9 करोड़ रूपये थी।'' यही कारण था कि अकबर की राजस्व व्यवस्था के सम्बन्ध में मोरलैण्ड ने लिखा है, ''यह उस समय स्तर का मूल्यांकन किया जाय तो आर्थिक दृष्टिकोण से उसका शासन सराहनीय था, क्योंकि उसके कोष में सदैव वृद्धि होती गई और जब उसने पंचत्व प्राप्त किया तब वह संसार का सबसे समृद्धिशाली शासक था।'' अकबर द्वारा स्थापित भू–व्यवस्था में जहांगीर के काल में दोष आने आरम्भ हो गये अतः उत्तरकालीन मुगल शासकों के शासनकाल में सतनामियों एवं जाटों का विद्रोह इसके प्रबल प्रमाण है किन्तु इसके लिए अकबर की भू–राजस्व व्यवस्था उत्तरदायी नहीं थी अपितु अकबर के पश्चात् मुगल शासकों की नीति ही उत्तरदायी थी।

24.4. मुगलकाल में जमींदार :

मुगलकालीन स्रोतों से पता चलता है कि मुगल साम्राज्य के प्रत्येक भाग में जमींदार होते थे। 'जमीदार' शब्द का अर्थ 'भूमि का अधिकार रखने वाला' होता है। मुगलकालीन लेखक अबुल फजल ने जमींदारों के लिए 'भूमि' शब्द का प्रयोग किया है। कुछ अन्य ग्रंथों में उन्हें 'ताल्लुकेदार' या 'मलिक' भी कहा गया है। मुगलकाल में जमींदारी खेत से नही वरन् गांव से सम्बन्धित होती थी। मुगल साम्राज्य भूमि–कर के दृष्टिकोण से 'रैयती' व 'जमींदारी' गांवों में विभाजित था। जमींदार अपने गांव की आय का मालिक स्वयं होता था जबकि रैयती गांव की आय को वह राजकोष में जमा कराता था।

जमींदार को भूमि के सारे अधिकार होते थे। वह अपनी इच्छानुसार जिसे चाहे खेती करने के लिए जमीन दे सकता था तथा जिसको चाहे बेदखल कर सकता था। वास्तव में जमींदारी जमींदार की व्यक्तिगत सम्पत्ति की तरह होती थी। जमींदार की मृत्यु होने पर जमींदार उसके उत्तराधिकारी को हस्तान्तरित हो जाती थी। मुगलकाल में जमींदार अपनी सुरक्षा के लिए सेना भी रखते थे। इस सेना को उलूस कहा जाता था। अबुल फजल के अनुसार अकबर के समय में जमींदारी की सेना में 44 लाख सैनिक थे। इरफान हबीब ने लिखा कि एक वर्ग के रूप में जमींदार परस्पर विभाजित थे। यही कारण था कि मध्ययुग में साम्राज्य निर्माण के कार्य में कोई विशेष योगदान न दे सके।

24.5 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 मुगल काल में कितने प्रकार की फसलें होती हैं –

अ. 2 ब. 3

स. 4 द. 5

प्रश्न 2 दहशाला बन्दोबस्त को समझाइयें? (30 शब्द सीमा)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 कृषि व्यवस्था पर निबन्ध लिखिये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई – 25
मनसबदारी प्रथा

संरचना

25.0 उद्देश्य
25.1 प्रस्तावना
25.2 मनसबदारी शब्द का अर्थ
25.3 मनसबदारी प्रथा लागू करने के कारण
25.4 मनसबदारों की भर्ती / नियुक्ति
25.5 मनसबदारों की श्रेणियाँ
25.6 मनसबदारों का वेतन
25.7 मनसबदारों की पदोन्नति
25.8 मनसबदारी प्रथा का मूल्यांकन
25.9 मनसबदारी प्रथा के लाभ
25.10 सारांश
25.11 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

25.0 उद्देश्य :

इस इकाई में मनसब के अर्थ, प्रथा के लागू करने के कारण श्रेणियां, भर्ती के नियम, वेतनमान, लाभ और और हानि से पाठकों को अवगत कराना है।

25.1 प्रस्तावना :

मुगलों के समय की सैनिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था मनसबदारी प्रथा पर आधारित थी। मगुल शासकों में सबसे पहले अकबर ने 1566 ई. में इस प्रथा को अपनाया था। इस प्रथा में थोड़े बहुत संशोधन के बाद अन्य मुगल बादशाहों ने भी इसे लागू किया था, परन्तु उत्तर मुगल काल में यह प्रथा प्रभाव विहीन हो गई थी। अकबर द्वारा अपनाई गई यह प्रथा प्रभाव विहीन हो गई थी। अकबर द्वारा अपनाई गई यह प्रथा वास्तव में भारत के लिए कोई नई नहीं थी। अकबर के पूर्व अनेक शासक इस प्रथा को अपना चुके थे, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि अकबर ने सबसे पहले इस प्रथा को सुदृढ़ एवं उपयोगी रूप प्रदान किया। इसी कारण उसे इस व्यवस्था का जनक माना जाता है।

सल्तनतकाल में भी मनसबदारी प्रथा प्रचलित थी। बरनी ने लिखा है कि दस घुड़सवारों का सेनानायक सरखेल, सौ घ्घुड़सवारों का नायक सिपहसालार, एक हजार घोड़ों का नायक अमीर, दस हजार घुड़सवारों का नायक मलिक व एक लाख घुड़सवारों का नायक खान कहलाता था। बलबन के समय में यह प्रथा प्रचलित थी। सिकन्दर लोदी तथा इब्राहीम लोदी के समय में भी दस हजार तथा बाहर हजार के अश्वारोहियों का उल्लेख मिलता है। शेरशाह तथा इस्लामशाह ने इसी प्रथा को आधार बनाकर अपनी सेनाओं को संगठित एंव सुदृढ़ किया था।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मनसबदारी प्रथा अकबर से पूर्व भी भारत में प्रचलित थी। यह व्यवस्था मूल रूप से दशमलव प्रणाली पर आधारित थी, अर्थात् इस प्रणाली को आधार बनाकर घुड़सवा सेना को विभाजित किया जाता था। इस प्रथा के अनुसार किसी व्यक्ति को दस से विभाज्य संख्या (10, 20, 100 आदि) का मनसबदार नियुक्त किया जाता था। अतः उस व्यक्ति को उस संख्या के बराबर घोड़े रखने पड़ते थे। अकबर से पूर्व शेरशाह के समय में घोड़ो को दागने की प्रथा प्रचलित थी। अकबर ने भी मनसबदारी प्रथा में दशमलव प्रणाली तथा दागने की प्रथा को लागू किया था, परन्तु उसने इसमें अनेक संशोधन करके इस व्यवस्था को अपने पूर्वगामियों से कहीं अधिक श्रेष्ठ बनाया था।

25.2. मनसबदारी शब्द का अर्थ :

'मनसब' अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है– पद, प्रतिष्ठा, पदवी अथवा दर्जा। मुगल काल में मनसब किसी व्यक्ति का अधिकारी वर्ग में उसका स्थान, वेतन एवं दरबार में उसकी प्रतिष्ठा तथा स्थान को निर्धारित करता था। इरविन ने अपनी पुस्तक दि आर्मी ऑफ द इण्डियन मुगल्स में मनसब का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "इसका अर्थ पद, श्रेष्ठता एंव वेतन को निर्धारित करना था।" मनसब का मतलब यह था कि मनसबदार राजकीय सेवा में कार्यरत है एवं आवश्यकता के अनुरूप राज्य में किसी भी पद पर उससे कार्य लिया जा सकता है। मनसबदारी प्रथा की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है:

(1) मनसब किसी पद का प्रतीक नहीं था, अपितु यह मनसब प्राप्त व्यक्ति का दरबार तथा अधिकारी वर्ग में उसके स्थान को निर्धारित करता था।

(2) मनसबदार का सैनिक अधिकारी आवश्यक नहीं था। उससे उसके स्तर एवं योग्यता के अनुसार किसी भी पद पर कार्य लिया जा सकता है।

(3) मनसब का दर्जा उसकी पदवी का प्रतीक नहीं था। एक छोटे मनसबदार को एक बड़े मनसबदार से भी उच्च पद पर नियुक्त किया जा सकता था।

(4) मनसब, मनसबदार द्वारा रखे गए घोड़ों, हाथियों एंव सैनिकों की संख्या के बारे में जानकारी देता था, परन्तु घोड़ों की संख्या अकसर मनसब से कम होती थी। यह संख्या सरकार निर्धारित करती थी।

25.3. मनसबदारी प्रथा लागू करने के कारण :

अकबर एक ऐसा सुदृढ़ शासन प्रबन्ध की स्थापना करना चाहता था, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्थिति, शासन के प्रति अपने उत्तरदायित्व की जानकारी हो तथा योग्य व्यक्ति उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकें। संक्षेप में इस प्रथा को लागू करने के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे:

(1) केन्द्रीकृत सेना का समुचित विकास नहीं हुआ था, अतः सेना सम्बन्धी प्रत्येक कार्य के लिए सैनिक सरदारों की सेना पर आश्रित रहना पड़ता था।

(2) राज्य की आय का अधिकांश भाग इन सैनिक सरदारों को उनकी सेवाओं के बदले में खर्च करना पड़ता था।

(3) राज्य में भू–राजस्व की दर अलग–अलग थी।

(4) सेना संगठित नहीं थी एवं उसमें भ्रष्टाचार फैला हुआ था। सैनिक सरदार अनुदान में प्राप्त हुई भूमि पर निरंकुश रूप से शासन करते थे। जितनी सैनिक टुकड़ियां होती थी, उससे कुछ और दिखाई जाती थी।

(5) राज्य के अधिकारियों की भर्ती तथा नियुक्ति के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं था। बदायूंनी ले लिखा है कि राज्य के अधिकारी ही राज्य के साथ धोखा करते थे

अकबर सेना तथा प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करना चाहता था, अतः उसने मनसबदारी प्रथा को लागू करने का निश्चय किया। लेनपूल ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "अकबर ने सैनिक व्यवस्था के तमाम पुराने संकटों को दूर करने व भ्रष्टाचार मिटाने का यथासम्भव प्रयास किया। शासन प्रबन्ध और कर्मचारी वर्ग में कार्यकुशलता एवं अनुशासन स्थापित करने हेतु सरकार के सैनिक, असैनिक ढांचे का संगठन मनसबदारी पद्धति पर किया गया।"

इस प्रकार अकबर ने ऐसी व्यवस्था लागू की, जिसमें कोई भी व्यक्ति प्रशासनितक क्षेत्र में अपनी निष्ठा एवं कार्यकुशलता को प्रदर्शित कर पदोन्नति का अवसर प्राप्त कर सकता था। इसके लिए सैन्य तथा असैनिक पदों को नए सिरे से पुनर्गठित किया गया। इस नई प्रथा में सरकारी नौकरी को मनसबदारी प्रथा के नाम से पुकारा गया।

मध्यकाल में सम्राज्य के विस्तार तथा सुरक्षा हेंतु एक सुदृढ़ सेना का होना आवश्यक था। अच्छी सेना के लिए अच्छे घोड़ों का होना आवश्यक था। इसीलिए प्रत्येक अमीर अच्छे घोड़े रखता था। निरीक्षण के दौरान बार–बार उन्ही घोड़ों को प्रस्तुत न कर सके, इसको रोकने हेतु अलाउद्दीन ने घोड़ों को दागने की प्रथा प्रारम्भ की थी। शेरशाह ने भी इसी प्रथा को अपनाया था, परन्तु उसके समय घोड़ो पर केवल एक ही निशान दागा जाता था। अतः निरीक्षण के समय अलग–अलग सैनिक सरदार एक ही घोड़े को बार–बार प्रदर्शित कर देते थे। अबुल फजल ने लिखा है कि अकबर ने दाग प्रथा का प्रचलन अपने शासनकाल के 18वें वर्ष में प्रारम्भ किया था। आईन–ए–अकबरी से पता चलता है कि अकबर ने इस प्रथा में संशोधन किया था। अब घोड़ों को एक के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बजाय दो जगह दागा जाने लगा। घोड़े की एक रान पर सरकार तथा दूसरी रान पर सैन्य सरदार का निशान दागा जाता था। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण सुधार था, क्योंकि अब एक ही घोड़े को अलग–अलग सैन्य अधिकारी बार–बार प्रदर्शित नहीं कर सकते थे। अकबर ने इस प्रणाली का कठोरतापूर्वक पालन करने के लिए दाग महाली नामक एक पृथक् विभाग स्थापित किया। इस विभाग ने प्रत्येक मनसबदार को अलग–अलग निशान आंवटित किए, जो उनके घोड़ों पर दागे जाते थे। इस व्यवस्था का विरोध करने वाले मनसबदारों के प्रति अकबर ने कठोर रवैया अपनाया और अनेक को दण्डित किया। इस प्रकार इस प्रथा के माध्यम से अकबर ने प्रत्येक मनसबदार के लिए निर्धारित संख्या में घोड़े रखना आवश्यक कर दिया।

25.4. मनसबदारों की भर्ती/नियुक्ति :

मुगल काल में मनसबदारों की नियुक्ति का कोई निश्चित नियम नहीं था। सम्राट् स्वयं योग्यता के आधार पर उनकी नियुक्ति करता था और उनकी पदोन्नति अथवा पदावनति सम्राट् की कृपा अथवा अप्रसन्नता पर निर्भर थी। उनकी नियुक्ति की विधि अत्यन्त सरल थी। मनसब के इच्छुक व्यक्ति को मीरबख्शी के द्वारा सम्राट के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था। मीरबख्शी इच्छुक व्यक्ति की योग्यताएँ सम्राट् को बताता था। सम्राट् वकील एवं मीरबख्शी के परामर्श से उस व्यक्ति को योग्यतानुसार मनसब प्रदान करता था। सम्राट् की स्वीकृति के बाद उस व्यक्ति का रिकार्ड तैयार करके एक प्रति दीवान तथा दूसरी प्रति सैनिक सलाहकार (साहिबे तौहीज) को भेजी जाती थी। इसके बाद फरमान जारी किया जाता था। इस प्रकार नियुक्त मनसबदार को निर्धारित संख्या में घुड़सवार रखने पड़ते थे और उन्हें समय–समय पर निरीक्षण के समय प्रदर्शित करना पड़ता था। अबुल फजल ने आईन–ए– अकबरी में मनसबदारों की नियुक्ति के सम्बन्ध में लिखा है, ''सम्रट् एक ही नजर में व्यक्ति को देखकर उसे समझ जाते हैं और उसे उच्च मनसब प्रदान करते हैं।'' उसने पुनः लिखा है, मुश्किल से ही कोई दिन ऐसा जाता है, जिस दिन योग्य एवं ईमानदार व्यक्ति को मनसब प्रदान न किया जाता हो। बहुत से व्यक्ति अरब और ईरान जैसे दूर–दूर देशों से आते है और उन्हें सेना में मनसब देकर सम्मानित किया जाता है और इस प्रकार उनकी इच्छा की पूर्ति की जाती है।'' मनसबदारों की पदोन्नति के लिए भी कोई निश्चित नियम नहीं बना हुआ था। उनकी पदोन्नति सम्राट् की कृपा पर निर्भर थी। सामान्यतया मनसबदार जिन पदाधिकारियों (सूबेदारों एवं राजकुमारों आदि) के अधीन कार्य करते थे, उनकी अवसरों पर या सैनिक अभियान के प्रारम्भ में अथवा अन्त में या उत्सवों, वर्ष के प्रथम दिन अथवा सम्राट के राज्याभिषेक के दिन मनसबदारों को उन्नति प्रदान की जाती थी।

25.5. मनसबदारों की श्रेणियाँ :

अबुल फजल ने आईन–ऐ–अकबरी में लिखा है कि उस समय मनसबदारों की 66 श्रेणियाँ थीं, परन्तु आईन–ऐ–अकबरी की मनसबदारों की सूची में मात्र 33 श्रेणियाँ का उल्लेख मिलता है। विभिन्न श्रेणियों में सैनिकों की संख्या निर्धारित करने के लिए दशमलव प्रणाली का प्रयोग किया जाता था। दूसरे शब्दों में, सैनिको की संख्या दस से विभाजित होने वाली संख्या पर आधारित थी। छोटी संख्या का अधिकारी छोटे पद एवं बड़ी संख्या का अधिकारी बड़े पद पर नियुक्त होता था। अकबर ने प्रारम्भ में दस से दस हजार तक के मनसब प्रदान किए थे। पाँच हजार या इससे अधिक का मनसब राजकुमारों को ही दिया जाता था। बाद में जब 12,000 का मनसब भी दिया जाने लगा, तो राजकुमारों को 7,000 से ऊपर के एवं अन्य सरदारों को 7,000 तक के मनसब दिए जाते थे। शाहजहाँ एवं औरंगजेब ने 60,000 तक के मनसब दिए थे। जब अकबर ने मनसबदारी प्रथा लागू की, तब केवल 'जात' मनसब की ही जानकारी प्राप्त होती है। बाद में 1594–95 में 'सवार' मनसब भी प्रारम्भ हो गया। 'जात' तथा 'सवार' शब्द के अर्थ के विषय में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। मुगल दस्तावेजों में मनसबदार के पहले 'जात' तथा बाद में 'सवार' मनसब का उल्लेख मिलता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि 'जात' मनसब का 'सवार' मनसब से अधिक महत्व था। विभिन्न इतिहासकारों ने जात एवं सवार मनसब के अलग–अलग मत व्यक्त किए है, जो इस प्रकार है:

(1) ब्लॉकमैन ने अपनी पुस्तक आइन–ए–अकबरी, भाग(प्रथम), पृष्ठ 241 पर लिखा है कि मनसबदार जितने सैनिक रखता था, उसे जात कहते थे। (अर्थात् 1,000 मनसबदार वाले व्यक्ति को 1,000 सैनिक रखने चाहिए। यह संख्या 'जात' कहलाती थी,) परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता था तथा मनसबदार 'जात' संख्या के बराबर सैनिक नहीं रखते थे। किसी मनसबदार के अधीन वास्तव में सैनिकों की जो संख्या होती थी, उसे 'सवार' कहा जाता था। अर्थात् यदि 1,000 के मनसबदार के पास यदि वास्तव में 700 सैनिक होते, तो उसके लिए 1,000 जात व 700 सवार का प्रयोग किया जाता था।

(2) डॉ. आर. पी. त्रिपाठी ने लिखा है मनसबदार जात के आधार पर सैनिक रखता था तथा 'सवार' मनसब के आधार पर उसे भता दिया जाता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(3) इरविन ने अपनी पुस्तक द आर्मी ऑफ द इण्डियन मुगल्स सम्मान था, जिसके अन्तर्गत 'जात' सैनिकों की संख्या के अतिरिक्त 'सवार' की संख्या के बराबर उसे अतिरिक्त सैनिक रखने होते थे।

(4) डॉ. मोरलैण्ड ने लिखा है कि 'जात' मनसब के अनुसार, ''मनसबदार को वेतन दिया जाता था, जबकि 'सवार' मनसब के बराबर उस मनसबदार को घोड़े रखने पड़ते थे।''

(5) डॉ. सी. एस. राव ने लिखा है कि, ''जात' पैदल व 'सवार' घुड़सवार सैनिकों की संख्या को प्रदर्शित करता था।''

(6) अब्दुल अजीज के अनुसार, ''जात' एक निश्चित संख्या में हाथी, घोड़े व पशु रखने को प्रदर्शित करता था, जबकि 'सवार' घोड़ो की निश्चित संख्या को प्रदर्शित करता था।''

(7) डॉ.कुरैशी के अनुसार, '' सवार' मनसब वास्तव में सम्मान सूचक था तथा ऐसे मनसबदार को बिना उतनी संख्या में घोड़े रखे, अधिक वेतन दिया जाता था।''

इन परस्पर विरोधी मतों का अध्ययन करने के पश्चात् निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है, परन्तु ऐसा लगता है कि 'जात' के आधार पर मनसबदारों को वेतन दिया जाता था और 'सवार' मनसब के बराबर घुड़सवार सैनिक उसे रखने पड़ते थे।

25.6. मनसबदारों का वेतन :

मनसबदारों के वेतन का भुगतान नकदी अथवा जागीर के रूप में किया जाता था। मनूची तथा मोरलैण्ड ने लिखा है कि मनसबदारों को बहुत अच्छा वेतन दिया जाता था, जिससे वे ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते थे। मनसबदारों को अपने वेतन में से ही सेवा के लिए हाथी, घोड़े एवं अन्य पशु रखने पड़ते थे।

मनसबदारों को उनके पद के अनुरूप वेतन दिया जाता था। बड़ी संख्या वाले मनसबदार को अधिक वेतन दिया जाता था।

मनसबदारों को पूरा वेतन नहीं दिया जाता था। उनके वेतन में से कुछ धनराशि काट ली जाती थी।

25.7. मनसबदारों की पदोन्नति :

मनसबदारों की पदोन्नति अथवा अवनति के लिए कोई निश्चित नियम नहीं था। मनसबदारों की पदोन्नति अथवा पदावनति सम्राट् की कृपा अथवा अप्रसन्नता पर निर्भर थी। सम्राट् किसी भी मनसबदार को उसके पद से अलग कर सकता था। सम्राट् प्रसन्न होने पर मनसबदार को ऊँचा पद प्रदान कर सकता था। सामान्यतया युद्ध से पूर्व अथवा उपरान्त या शुभ अवसरों पर मनसबदारों के मनसब में वृद्वि करता था। अतः प्रत्येक मनसबदार अपने कार्यों से सम्राट् को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता था।

सम्राट् मनसबदारों पर अपना नियन्त्रण स्थापित रखने के लिए निम्नलिखित कार्य करते थेः–

(1) मनसबदारों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित करते रहते थे।

(2) गुप्तचर विभाग मनसबदारों के बारे में सम्राट् को निरन्तर जानकारी देता रहता था।

(3) दाग एवं चेहरा प्रणाली (घोड़ों को दागने एवं सैनिकों के हुलिया लिखने की प्रथा) लागू की गई थी।

(4) यदि कोई मनसबदार विशिष्ट उपलब्धि प्राप्त करता, तो सम्राट् उसके मनसब में वृद्वि कर देते थे, ताकि अन्य मनसबदारों को भी अच्छा कार्य करने की प्रेरणा मिले।

25.8. मनसबदारी प्रथा का मूल्यांकन :

मुगलकालीन प्रशासनिक व्यवस्था मूल रूप से मनसबदारी प्रथा पर आधारित थी। मुगल काल में महिलाओं के अतिरिक्त अन्य समस्त पदाधिकारियों को उच्च मनसब दिया गया था।

मनसबदारी प्रथा के दोषः मनसबदारी प्रथा के प्रमुख दोष निम्नलिखित थे–

(1) मनसबदारी व्यवस्था पर आधारित सैन्य संगठन बहुत खर्चीला था।

(2) मुगल मनसबदार विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने में राष्ट्रीय धन को खर्च करते थे।

(3) मनसबदारी प्रथा में सैनिक सम्राट् की तुलना में अपने मनसबदार के प्रति अधिक स्वामीभक्त होते थे, क्योंकि वही उन्हें नियुक्त करता था और वेतन देता था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(4) मनसबदारी व्यवस्था में सेना के केन्द्रीयकरण न होने से सेना कमजोर हुई। उसमें एकता की वह भावना विकसित न हो सकी, जो एक राष्ट्रीय सेना के लिए आवश्यक होती है।

(5) मनसबदार सम्रट् के प्रति तो स्वामीभक्त रहते थे, परन्तु अपने तत्कालीन उच्च अधिकारी की परवाह नहीं करते थे। इस प्रकार की व्यवस्था से प्रशासन कमजोर हुआ।

(6) मनसबदार अपने सैनिकों में वेतन वितरित करते थे। कई बार मनसबदार अपने सैनिकों का वेतन हड़प लेता था। इस तरह मनसबदार अनेक प्रकार से भ्रष्टाचार के कार्य करते थे, जिससे प्रशासन कमजोर होता था।

(7) कई मनसबदारों में सैनिक दक्षता नहीं होती थी, फिर भी उन्हें युद्व में भाग लेने के लिए भेज दिया जाता था। इससे सैन्य शक्ति की दुर्बलता स्पष्ट हो जाती थी। उदाहरणस्वरूप; बीरबल एवं टोडरमल को सैनिक न होते भी युद्धों में भाग लेने के लिए भेज दिया जाता था।

25.9. मनसबदारी प्रथा के लाभ :

इन दोनों के बावजूद भी मनसबदारी प्रथा से अनेक लाभ भी हुए, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित थे–

(1) मनसबदारों की पदोन्नति सम्राट् की कृपा पर निर्भर थी। अतः मनसबदारों में सम्राट् के प्रति निष्ठा एवं स्वामिभक्ति की भावना में वृद्धि हुई। इस प्रकार सम्राटों को बड़ी संख्या में निष्ठावान अधिकारी मिल जाते थे।

(2) निरन्तर जाँच एवं निरीक्षण होने से सैन्य व्यवस्था एवं प्रशासन में भ्रष्टाचार कम हुआ।

(3) इस व्यवस्था से योग्य व्यक्तियों को दायित्वपूर्ण काम सौंपने में आसानी हो जाती थी और सम्राट् अनेक प्रशासनिक दायित्वों तथा परेशानियों से बच जाता था।

(4) मनसबदार की नियुक्ति सैनिक या असैनिक किसी भी कार्य के लिए की जा सकती थी।

(5) मनसबदारों के पास भी अनेक विद्वान् एवं कलाकार थे, जिन्होनें कला तथा साहित्य को संरक्षण प्रदान किया।

अनेक दोषों के बावजूद भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मनसबदारी प्रथा अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। निस्सन्देह यह व्यवस्था मुगल प्रशासन के लिए आवश्यक एवं अकबर की एक विशिष्ट उपलब्धि थी।

25.10 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 'मनसब' का अर्थ था –

अ. पद　　ब. घोड़ा

स. शस्त्र　　द. तलवार

प्रश्न 2 मनसबदारी प्रथा के लाभ और हानि बताइये।

उत्तर – ....

प्रश्न 3 मनसबदारी प्रथा पर निबन्ध लिखिये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 26
विदेशी व्यापार वाणिज्य

संरचना

26.0 उद्देश्य

26.1 प्रस्तावना

26.2 व्यापार वाणिज्य

  26.2.1 आन्तरिक व्यापार

  26.2.2 विदेशी व्यापार

26.3 मुगलकाल में यूरोपीय व्यापार

26.4 व्यापार एवं वाणिज्य के विकास के कारण

26.5 मुगलकालीन बैंकिंग एवं मुद्रा–व्यवस्था

26.6 मुगलकालीन आर्थिक जीवन के निषेधात्मक पहलू

26.7 सारांश

26.8 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

26.0 उद्देश्य :

मुगलों का व्यापार क्या था तथा किन–किन देशों से नुगल व्यापारिक सम्पर्क रखते थे और व्यापार की प्रमुख वस्तुएँ कौन–कौनसी थी इन्ही तथ्यों से पाठकों को अवगत कराना इस पाठ का मुख्य उद्देश्य है।

26.1 प्रस्तावना :

मुगलकाल में देश में सामान्यतः शान्ति एवं व्यवस्था बनी रही। कृषि में कुटीर–उद्योगों का विकास हुआ और उत्पाद में वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप भारत के आन्तरिक व्यापार–वाणिज्य के साथ–साथ विदेशी व्यापार एवं वाणिज्य में भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई। यूरोपीय जातियों के आगमन ने भी विदेशी व्यापार–वाणिज्य की वृद्धि में योगदान दिया। भारत की धन–सम्पदा से आकर्षित होकर ही यूरोपियन लोगों ने भारत का समुद्री मार्ग खोज निकाला था। डॉ. ताराचन्द ने लिखा है कि उन दिनों में भारतीय वस्तुएँ केवल ऐशिया व अफ्रीका के देशों की आवश्यकताओं की पूर्ति ही नहीं करती थी अपितु यूरोपीय मण्डियों में भी उनकी मांग थी। वास्कों–डी–गामा द्वारा समुद्री मार्ग की खोज के बाद यूरोपीय व्यापारी बड़े–बड़े जहाजों में भारतीय माल लादकर ले जाने लगे। अमेरिका और अफ्रीका के आन्तरिक भागों की खोज ने भी भारत के विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन दिया। भारत में यूरोपियन कम्पनियों द्वारा समुद्रतटों तथा देश के आन्तरिक भागों में कोठियों एवं कारखानों की स्थापना ने तो विदेशी व्यापार के क्षेत्र में महान् परिवर्तन ला दिया। 1700 ई. में बर्नियर ने लिखा था कि भारत एक अथाह गड्ढा है जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चांदी चारों ओर से अनेक रास्तों से जमा होता है तथा जिन्हें बाहर निकालने का रास्ता नहीं मिलता। स्पष्ट है कि मुगलों के काल में विदेशी व्यापार–वाणिज्य अत्यधिक उन्नत रहा होगा।

26.2. व्यापार एवं वाणिज्य :

मुगल सम्राटों ने व्यापार एवं वाणिज्य को भी बहुत प्रोत्साहन दिया। मुगल काल में आन्तरिक एंव विदेशी दोनों प्रकार का व्यापार विकसित अवस्था में था। व्यापार जल एवं स्थल दोनों मार्गो से होता था।

26.2.1. आन्तरिक व्यापार – आईन–ए–अकबरी से पता चलता है कि आगरा में यमुना तथा चम्बल नदियों के द्वारा व्यापार होता था। आगरा से कालीन, लोहा, शीशा, रूई, से भी सामान का आयात तथा निर्यात होता था। आगरा से सूरत के मध्य बुरहानपुर के मार्ग से यातायात होता था। इस काल में व्यापार की दृष्टि से अहमदाबाद एक प्रसिद्ध केन्द्र था। अहमदाबाद अनाज की मण्डियों के लिए प्रसिद्ध था। यहां पर अनाज की बड़ी–बड़ी बीस मण्डियां थी। समीपवर्ती गांवों के लोग अहमदाबाद की मण्डी में अनाज लाकर इकट्ठा करते थे। यहां पर अनाज का व्यापार हिन्दू व्यापारी करते थे। यह नगर नील एवं रेशम के व्यापार के लिए भी प्रसिद्ध था, यहां अच्छे प्रकार के रेशम की मांग आगरा में बहुतायत से थी।

26.2.2. विदेशी व्यापार — मुगल सम्राटों ने विदेशी व्यापार को भी प्रोत्साहन दिया। सिन्ध में लारी नामक प्रसिद्ध बन्दरगाह था, यहां से रूई का समान तथा नील 30 से 40 जहाज रेशमी तथा सूती कपड़ों के साथ विदेशों को भेजे जाते थे। इस समय विदेशों को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में नील, ईरान एवं अरेबिया को निर्यात किया जाता था। कैम्बे भारत का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था, जहां से 30 से 40 जहाज रेशमी तथा सूती कपड़ों के साथ विदेशों को भेजे जाते थे। इस समय विदेशों को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में नील, कागज, चमडें का सामान, कच्चा चमड़ा, लोहा, अफीम, चीनी, अभ्रक, बहुमूल्य पत्थर, हींग एवं रूई आदि प्रमुख थी। सत्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में कैम्बे से 10 लाख टन माल प्रतिवर्ष निर्यात किया जाता था। ईरान, यूरोप तथा अमेरिका ने व्यापारियों का नील के व्यापार में विशेष रूचि थी। अहमदाबाद अरेबिया, तुर्की तथा ईरान को कागज का निर्यात करता था। सूरत गुजरात का एक प्रमुख बन्दरगाह था, जहां से रूई का सामान, नील, अफीम, गलीचे, चीनी, मसाले एवं चन्दन को विदेशों को निर्यात किया जाता था एवं विदेशों से सोने, चांदी एव तांबे से भरे हुए जहाज यहां पर आते थे। 1579—80 में मुगल सम्राट् ने पुर्तगाल के व्यापारियों को व्यापार करने की अनुमति दे दी थी। अतः पुर्तगालियों ने जौनपुर से मोटे गलीचे, रेशमी कपड़े, गद्दे, शामियाने एवं खेमा लगाने का सामान ले जाना प्रारम्भ कर दिया था।

स्थल मार्ग से व्यापार करने के दो मार्ग थे— प्रथम, लाहौर से काबुल एवं द्वितीय, मुल्तान से कन्धार। काबुल बदख्शा, काश्गर, बल्ख, कन्धार एवं ईरान आदि देशों के साथ सड़क से जुड़ा हुआ था। बुखारा से भारत को काबुल के मार्ग से घोड़े तथा दास लाए जाते थे। ट्रेवनियर ने लिखा है कि "एक वर्ष में बुखारा से काबुल मार्ग से होते हुए भारत में 50 हजार रूपए तक घोड़ों का व्यापार होता था।" बहराइच का मार्ग काबुल जैसा सुगम नहीं था। भारत के चीन तथा तिब्बत से भी व्यापारिक सम्बन्ध थे। प्रत्येक वर्ष एक काफिला आगरा से चीन जाता था।"

26.3. मुगलकाल में यूरोपीय व्यापार :

बाबर ने जिस समय भारत में मुगल वंश की नींव रखी, उस समय पुर्तगाली दक्षिण तथा पश्चिम भारत में अपनी शक्ति का विस्तार करने में लगे हुए थे। सोलहवीं शताब्दी में भारत के व्यापार पर उनका पूर्ण प्रभुत्व था। उन्होंने फारस की खाड़ी तथा लालसागर के व्यापार पर एकाधिकार कर अरबों के व्यापार को चौपट कर दिया था। 1572 ई. में पुर्तगाली व्यापारी अकबर के दरबार में उपस्थित हुए, जिसके कारण अकबर और उनके बीच एक सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार पुर्तगालियों ने यह वचन दिया कि वे मक्का जाने वाले भारतीय मुसलमानों की रक्षा करेंगे। इस पर अकबर ने उन्हें भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करने की छूट दे दी। अकबर के शासनकाल में पुर्तगालियों को जो व्यापारिक एकाधिकार प्राप्त हुए थे, वे जहांगीर के समय में धूमिल पड़ने लगे। इस पर फादर जैरोम ने जहांगीर के साथ पुर्तगालियों के सम्बन्धों को पुनः मधुर बनवाया। शाहजहां का शासनकाल की इस दृष्टि से मधुर रहा, परन्तु औरंगजेब के शासनकाल में ये सम्बन्ध पुनः कटुतापूर्ण हो गए।

डचों ने 1602 ई. में स्टेट्स जनरल की एक सनद् द्वारा 'डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना कर पुर्तगालियों के व्यापारिक एकाधिकार को चुनौती दी। पुर्तगालियों ने गछलीपट्टम, नेगापट्टम, कारिग, पटना, बालासौर, कोचीन एवं सूरत गें अपने केन्द्रों की स्थापना की। इस पर डचों ने कोरोमण्डल तट, गंगा की निचली घाटी एवं गुजरात में अपनी बस्तियां तथा कारखानों की स्थापना की, जिससे पुर्तगालियों की शक्ति को एक जबरदस्त झटका लगा। अब पूर्व व्यापार पर डचों का सिक्का कायम हो गया।

जिस समय पुर्तगाली और डच के बीच संघर्ष चल रहा था, उस समय अंग्रेजों का ध्यान भी भारत की ओर आकर्षित हुआ। कैप्टिन हॉकिन्स प्रथम अंग्रेज यात्री था, जो समुद्री मार्ग से सूरत पहुंचा तथा मुगल सम्राट् जहांगीर के दरबार में उपस्थित हुआ। जहांगीर ने 1613 ई. में अंग्रेजों को सूरत में फैक्टरी स्थापित करने की अनुमति दे दी। इसके बाद 1615 ई. में सर टॉमस रो ने जहांगीर से भेंट की। तत्पश्चात् अंग्रेजों ने आगरा, अहमदाबाद एवं भड़ौंच में अपने कारखाने स्थापित किए। 1640 ई. में अंग्रेजों को 'सेन्ट फोर्ट जार्ज' नामक किलेबन्द कारखाना बनाने में सफलता मिली। 1650—51 ई. में उन्होंने हुगली एंव कासिम बाजार में अपने कारखानों की स्थापना की। 1680 ई. में अंग्रेजों ने सूरत के माल पर 3.5 प्रतिशत चुंगी औरंगजेब को देकर पूर्ण भारत में स्वतंत्र व्यापार करने का आदेश प्राप्त कर लिया। 1698 ई. में कम्पनी ने कालीकट, गोविन्दपुर तथा सूतानती ग्रामों की जमींदारी खरीदने में सफलता प्राप्त की। धीरे—धीरे सम्पूर्ण भारत के व्यापार पर अंग्रेजों ने एकाधिकार स्थापित कर लिया।

अंग्रेजों को भारतीय व्यापार पर अपना सिक्का जमाने में सबसे भयंकर चुनौती फ्रांसीसियों ने दी थी। फ्रांसीसियों ने 1664 ई. में फ्रैंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की। उन्होंने 1688 ई. में अपनी प्रथम फैक्टरी सूरत में तथा 1669 ई. में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दूसरी फ्रेंच फैक्टरी मछलीपट्टम में स्थापित की थी। परन्तु अन्ततः अंग्रेजों ने उन्हे निर्णायक रूप से पराजित किया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मुगलकाल में पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी एंव अंग्रेजों ने व्यापार करने में सफलता प्राप्त की थी। इनकी पारस्परिक प्रतिद्वन्द्वता एवं संघर्ष में अन्ततः अंग्रेज विजयी हुए।

26.4. व्यापार एवं वाणिज्य के विकास के कारण :

मुगल काल में भारत के व्यापार एवं वाणिज्य के विकास के प्रमुख कारण निम्नलिखित थेः

(1) मुगल काल में शांति एंव सुव्यवस्था स्थापित हुई और देश का राजनीतिक एकीकरण हुआ। मुगल शासकों ने सड़को तथा सरायों का निर्माण करवाया, जिससे आवागमन की सुविधा हो गई तथा व्यापार को प्रोत्साहन मिला।

(2) मुगल शासकों ने विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए चांदी के ऐसे सिक्के प्रचलित किए, जिन्हें विदेशों में मान्यता प्राप्त हुई।

(3) मुगल शासकों ने पूरे देश में किसी भी वस्तु के आयात के लिए समान कर नीति लागू की। सड़क पर लिया जाने वाला टैक्स गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। यद्यपि कुछ स्थानीय शासक सड़क टैक्स वसूल करते थे।

(4) मुगल शासकों ने सैनिकों तथा प्रशासनिक अधिकारियों को नकद वेतन देना प्रारम्भ किया। जब्ती प्रणाली के अन्तर्गत लगान निश्चित करके उसे नकद रूप में वसूल किया गया।

(5) लगान की अदायगी निश्चित करने बाद भी किसान को यह अधिकार दिया गया था कि वह चाहे तो लगान की राशि अनाज के रूप में चुका सकता था, परन्तु राज्य अपना हिस्सा व्यापारियों की सहायता से गांव में ही बेच देता था। शेष अनाज का बीस प्रतिशत किसान मण्डी में लेकर आता था। इस प्रकार मण्डियों के प्रसार से छोटे–छोटे कस्बों तथा नगरों का विकास हुआ, जिसने व्यापार तथा वाणिज्य के विकास में योगदान दिया।

(6) उच्च वर्ग के लोगों में वैभवपूर्ण एवं विलासितापूर्ण वस्तुओं की बहुत मांग थी, जिससे हस्तकला का विकास हुआ और उससे व्यापार विकसित हुआ।

(7) भारत में डच, पुर्तगाली तथा अंग्रेज व्यापारी आए, जिससे विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन मिला। अब भारत सीधा यूरोपीय बाजारो से जुड़ गया। डच तथा पुर्तगालियों की तुलना में अंग्रेज बहुत आगे निकल गए। अतः भारत का सीधा सम्पर्क इंग्लैण्ड से स्थापित हो गया।

26.5. मुगलकालीन बैंकिंग एवं मुद्रा–व्यवस्था :

भारत में बैंकिंग एंव मुद्रा–व्यवस्था का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। मुगलों कें भारत में आगमन के बहुत समय पूर्व से ही यह प्रणाली भारत में विद्यमान थी। मुगलों के शासन की स्थापना के साथ ही इस प्रणाली का तेजी से विकास हुआ, क्योंकि मुगलकाल में व्यापार एवं वाणिज्य की भी तीव्र प्रगति हुई है। इसके अतिरिक्त मुगलकाल में अनेक नगरों का भी विकास हुआ जिनमें आगरा, दिल्ली, लाहौर, अहमदाबाद, आदि प्रमुख थे। नगरों के विकास का मुख्य कारण किसानों का नगरों के जीवन के प्रति आकर्षित होना तथा व्यापार व वाणिज्य की उन्नति होना था।

मुगलकाल में अकबर के समय से मुद्रा के चलन में तीव्रता आयी। मुगलकाल में तीन प्रकार के सिक्कों का चलन था। ये थे– (i) सोने की मुहर, (ii) चांदी का रूपया, तथा (iii) तांबे का दाम।

मुगलकाल में आम जन–जीवन में सर्वाधिक प्रयोग चांदी के रूपये का ही होता था। मुद्रा अथवा सिक्कों के इतिहास में अफगान शासक शेरशाह का नाम भी उल्लेखनीय है। शेरशाह ने खोट रहित मुद्रा प्रणाली की व्यवस्था की थी। अकबर के समय में रूपया का वजन 1/8 भरी होता था। अकबर के पश्चात् के मुगल शासकों ने भी इसी भार के सिक्कों का प्रचलन किया था।

मुगुलकालीन स्रोतों से ज्ञात होता है कि मुगलकाल में नुद्राओं का नियंत्रण विभिन्न टकसालों के माध्यम से किया जाता था। आइने–अकबरी में ऐसी लगभग 42 टकसालों का उल्लेख मिलता है। इन टकसालों में छापे जाने वाले सिक्कों पर टकसाल का नाम तथा ढलाई का वर्ष भी छापा जाता था। औरंगजेब के शासनकाल में टकसालों की संख्या व ढाले जाने वाले सिक्कों की संख्या में बड़ी वृद्धि हुई थी। मुख्य कारण औरंगजेब के शासनकाल में राज्य की सीमाओं में वृद्धि होना था।

मुगलकालीन मुद्राओं की एक प्रमुख विशेषता उनमें एकरूपता का होना था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बैंकिंग व्यवस्था– मुगलकालीन स्रोतों से एक सुचारू एवं व्यवस्थित बैंकिंग व्यवस्था की जानकारी मिलती है। मुगलकाल में भू–राजस्व की नकद वसूली की व्यवथा की गई थी। परिणामस्वरूप मुगल–साम्राज्य के गांव–गांव में सर्राफों का आविर्भाव हुआ। बास्तव में मुगलकालीन बैंकिंग व्यवस्था का आधार ये सर्राफ ही थे। इन सर्राफों के प्रमुख कार्य निम्नवत् थे–

(i) सर्राफ का मुख्य कार्य मुद्रा की परख करना होता था। मुद्रा की शुद्धता का उसी के द्वारा प्रमाणित किया जाता था।

(ii) सर्राफों का दूसरा कार्य मुद्रा बदलने व लेन–देन का था।

(iii) सर्राफों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य हुण्डियां (Bills of Exchange) जारी करना व छुड़ाना था। इस कार्य के लिए वे अपना कमीशन लेते थे। हुण्डी एक आज्ञा–पत्र होता था जो किसी एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के मांगे जाने पर रकम अदा करने के उद्देश्य से जारी किया था। इसमें पूरा विवरण दर्ज रहता था कि किस व्यक्ति को कितनी रकम दी जानी थी। मुगलकाल में हुण्डियों का प्रयोग रकम एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रेषित करने के लिए किया जाता था। **इस तरह मुगलकालीन हुण्डियों की तुलना वर्तमान बैंक ड्रॉफ्ट से की जा सकती है।** मुगलकालीन स्रोतों से पता चलता है कि यदि किसी व्यक्ति को यात्रा, आदि में धन के लुट जाने का खतरा रहता था। जो वह अपनी रकम सर्राफ के पास जमा करके उतनी रकम की हुण्डी ले लेता था तथा दूसरे नगर में उस हुण्डी को वहां के सर्राफ के यहा देकर अपना धन से लेता था। मुगलकालीन व्यापार एवं वाणिज्य में इन हुण्डियों का विशेष महत्व था। इनकी साख बनाए रखने के लिए हुण्डियों की रकम की अदायगी नियमानुसार तुरन्त कर दी जाती थी।

मुगलकालीन स्रोतों से ज्ञान होता है कि भारत में 17वीं शताब्दी में सर्राफ द्वारा हुण्डी जारी करने के लिए जो कमीशन लिया जाता था वह निम्नवत् था–

(i) आगरा से अहमदाबाद–लगभग 2.5

(ii) आगरा से दिल्ली–1 प्रतिशत

(iii) सूरत से बड़ौदा–7/8 प्रतिशत

उल्लेखनीय है कि मुगलकाल में हुण्डियों का प्रयोग ऋण की व्यवस्था के लिए भी किया जाता था। मुगलकाल में भारत में बैंक में रूपया जमा करने की व्यवस्था भी किसी–न–किसी रूप में विद्यमान थी। कुछ सर्राफ ऐसे थे जिनके द्वारा रूपया जमा किया जाता था तथा ऋण भी दिया जाता था। अंग्रेजों द्वारा भी सर्राफों के यहां धन जमा करने का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मुगलकालीन भारत में एक ऐसी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ था जो मुद्रा पर आधारित भी तथा हुण्डी, बीमा व बैंकिग, आदि की सभी सुविधाएं उपलब्ध थी।

26.6. मुगलकालीन आर्थिक जीवन के निषेधात्मक पहलू :

मुगलकालीन आर्थिक दशा के निषेधात्मक पहलूओं का विवरण दिये बिना आर्थिक दशा का सही मूल्यांकन नही किया जा सकता। **अतः इस काल की आर्थिक दशा के निषेधात्मक पहलू निम्नवत् है–**

(1) मुगलकालीन आर्थिक जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण नकारात्मक पहलू यह था कि इस युग में उत्पादक एवं उपभोक्ता के मध्य पर्याप्त अन्तर आ गया।

(2) हिन्दू–मुस्लिम समाज के साधु–संन्यासी एवं फकीर कोई विशेष महत्वपूर्ण कार्य नहीं करते थे फलस्वरूप राज्य की आय बहुत बड़ा हिस्सा व्यर्थ हो जाता था। व्यय भार उत्पादक वर्ग का जिसमें विशेष रूप से कृषक था, शोषण किया करते थे।

(3) अमीर एवं अधिकारी वर्ग वैभवपूर्ण एवं विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने के कारण अधिकांशतः कर्ज में फंसे रहतें थे, इस कर्ज से छुटकारा पाने के लिए ये उत्पादक वर्ग का जिसमें विशेष रूप से कृषक था, शोषण किया करते थे।

(4) औरंगजेब की लगातार युद्ध करने की नीति ने कृषि, उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य पर घातक परिणाम किये।

(5) मगुल सम्राटों द्वारा विदेशी कम्पनियों को जो व्यापारिक अधिकार प्रदान किये गये उससे भारत का यूरोप के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया परन्तु एक क्षेत्र में इसका घातक प्रभाव पड़ा। यूरोप भारत से प्राप्त होने वाली वस्तुओं के बदले में कोई विशेष सामग्री नहीं भेज पाता था इसलिए उसे विवश होकर वस्तुओं का मूल्य सोने–चांदी के रूप में चुकाना पड़ता था। परिणास्वरूप भारत में कीमते शीघ्र ही बढ़ गई और सत्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक करीब दुगुनी हो गई। इस मुद्रा–स्फीति से भारत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का गरीब वर्ग प्रभावित हुआ। उधर दूसरी ओर विशेष कम्पनियां विशेष रूप से इंग्लैण्ड इस बात के लिए चिन्तित थे कि उनका धन भारत को जा रहा है। अतः उन्होंने भारत के कुछ क्षेत्रों पर अधिकार करने का विचार किया और इस ओर शीघ्रता से कदम बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया।

26.8. सारांश :

इस प्रकार मगुलकालीन आर्थिक दशा का वर्णन स्पष्ट करता है कि मुगलकाल में कृषि, नगरीकरण, उद्योग–धन्धों, व्यापार एवं वाणिज्य का अभूतपूर्व विकास हुआ किन्तु इसके निषेधात्मक पहलुओं को नजर–अन्दाज नही किया जा सकता है। यही कारण है कि जहां एक ओर स्मिथ जैसे इतिहासकारों ने मुगलकालीन आर्थिक स्थिति की तुलना ब्रिटिशकालीन भारत की आर्थिक स्थिति से करते हुए मुगलकालीन भारत की अर्थव्यवस्था को उत्तम बतलाया है वहां दूसरी ओर पलेसर्ट जैसे यात्रियों के विवरण मुगलकालीन भारत के सामान्य वर्ग की शोचनीय स्थिति का चित्रण करते है। यदि मूल्यांकन किया जाय तो यह तो स्वीकार करना ही होगा कि मुगल काल में धनी व निर्धन का भेद उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया।

26.9. अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 मुगल काल में कितने प्रकार के सिक्कों का प्रचलन था? –

अ. दो   ब. तीन   स. चार   द. पाँच

उत्तर – ....

प्रश्न 2 मुगलकाल में व्यापार एवं विकास के क्या कारण थे? (शब्द सीमा 30)

उत्तर – ....

प्रश्न 3 मुगलकाल में व्यापार वाणिज्य पर निबन्ध लिखिए।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 27
मुगलकाल में जनता की सामाजिक अवस्था

संरचना

27.0 उद्देश्य
27.1 भूमिका
27.2 हिन्दू समाज
    27.2.1 शासक वर्ग
    27.2.2 सामन्त वर्ग
    27.2.3 साधारण वर्ग
27.3 हिन्दूओं की स्थिति
27.4 मुस्लिम समाज
    27.4.1 शासक वर्ग
    27.4.2 अभिजात्य वर्ग
    27.4.3 साधारण वर्ग
27.5 रहन सहन : जनसाधारण
    27.5.1 आभूषण
    27.5.2 सौन्दर्य सामग्री
    27.5.3 मनोरंजन
    27.5.4 खान–पान
27.6 स्त्रियों की दशा
    27.6.1 सती प्रथा
    27.6.2 बहु विवाह
    27.6.3 बाल विवाह
    27.6.4 दास प्रथा
27.7 दास प्रथा
27.8 त्यौहार
27.9 भोजन
27.10 आवास एवं फर्नीचर
27.11 मादक द्रव्य
27.12 श्रृंगार
27.13 मनोरंजन
27.14 शिक्षा
27.15 अभ्यास प्रश्नावली

27.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में मुगलकालीन समाज का चित्रण निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से प्रस्तुत किया गया हैं –

–हिन्दू और मुस्लिम समाज

–रहन–सहन, खान–पान, मनोरंजन, स्त्रियों की दशा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

27.1. भूमिका :

भारत में मुसलमानों के आगमन तथा यहां पर शासन स्थापित करने के साथ ही भारतीय रंगमच पर एक नई संस्कृति व सभ्यता का उदय हुआ। भारतीय समाज मुख्य रूप से दो वर्गों में विभक्त हो गयाः प्रथम, हिन्दु समाज एवं द्वितीय, मुस्लिम समाज। इन दोनों वर्गों के जीवन –स्तर में पर्याप्त भिन्नता थी। यही नहीं, प्रत्येक वर्ग में अपने ही वर्ग के भीतर विभेद उप्तन्न हो गये । मुगलकाल में प्रत्येक वर्ग में यह वर्ग में यह वर्ग विभेद धन, सम्पति एंव विशेषाधिकार के कारण और भी अधिक बढ़ गया। सर टामस रो, पेलसर्ट, डेलोवेले, मेण्डलसा, मनरीक, बर्नियर, ट्रेवर्नियर , जैसे विदेशी यात्रियों तथा समसामायिक ग्रन्थों से प्राप्त विवरणों से मुगलकालीन समाज की यथार्थ स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। संक्षेप में, मुगलकालीन सामाजिक दशा के विभिन्न पहलुओं का विवरण निम्नवत् है–

27.2. हिन्दु समाज :

हिन्दु समाज प्रमुख रूप से तीन वर्गों में विभक्त था– शासक वर्ग, सामन्त वर्ग एवं साधारण वर्ग।

27.2.1. शासक वर्ग – मुगल काल में राजपूत शासकों ने अपनी वंश परम्परा को त्यागकर अपनी कन्याओं का विवाह मुगल शासकों के साथ करना आरम्भ कर दिया। जहां एक ओर राणा उदयसिंह एवं महाराणा प्रताप ने मुगल शासकों की अधीनता स्वीकार न कर उनसे लोहा लिया, वहीं दूसरी ओर शक्तिसिंह एवं जगमल ने अकबर को सहयोग दिया। यह हिन्दु शासक वर्ग जाति–व्यवस्था में विश्वास करता था। इनकी सेना में केवल राजपूतों के लिए ही स्थान था। वास्तव में, कुल मिलाकर हिन्दु समाज के इस राजपूत शासक वर्ग का मुगलकाल में पतन हो रहा था।

27.2.2. सामन्त वर्ग – मुगलकाल में हिन्दु राज्यों में अनेक सामन्त जागीरों की व्यवस्था देखा करते थे। हिन्दु राजपूत शासकों के अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन होते ही इस सामन्त वर्ग ने स्वयं को आत्मनिर्भर बनाया। परिणामस्वरूप सामन्त वर्ग की महत्वाकांक्षा अत्यधिक बढ़ गई। **ये राजगदी के लिए राजद्रोह तक के लिए उतारू हो जाते थे।** बनवीर नामक सामन्त द्वारा राणा उदयसिंह की हत्या का प्रयास इसका स्पष्ट उदाहरण है। यह सामन्त वर्ग शान–शौकत एवं भोग–विलासपूर्ण जीवन में राजपूत शासकों की नकल करता था।

27.2.3. साधारण नर्ग – शासक एवं सामन्त वर्ग को छोड़कर सर्वसाधारण जनता इस वर्ग में आ जाती थी। **साधारण वर्ग में जाति प्रथा की भावना की प्रबलता थी।** मुस्लिम समाज से प्रभावित होकर हिन्दु समाज का शुद्र वर्ग समानता के लिए प्रयत्नशील था। शासक व सामन्त वर्ग के वैभव एवं विलासप्रिय जीवन का भार सर्वसाधारण जनता पर पड़ता था। फलस्वरूप साधारण वर्ग में राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था।

27.3. हिन्दुओं की स्थिति :

मुगल काल में हिन्दुओं की स्थिति में सल्तनत युग की अपेक्षा महत्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। राज्य की प्रशासनिक सेवाओं में हिन्दुओं की नियुक्ति की गई। हिन्दुओं की नियुक्तियों के पीछे प्रमुख रूप से तीन कारक उतरदायी थे। प्रथम, सम्राट के सम्बन्धियों को लाभ पहुंचाना। द्वितीय, विश्वसनीय सैन्य बल का गठन एवं तृतीय, वित एवं न्याय विभागों की आवश्यकताओं की पूर्ति। बाबर एंव हुमायूं के समय में तो उक्त नीति पर कोई स्पष्ट नीति नहीं अपनाई गई, किन्तु अकबर के समय इस नीति पर विशेष ध्यान दिया गया। यही कारण था कि अकबर के शासन काल में भगवानदास, मानसिंह, रामसिंह एवं टोडरमल गवर्नर के पद तक पहुंचे थे। 1595 में 12 वित्त मन्त्रियों में 8 हिन्दू थे। जहांगीर ने भी प्रशासनिक पदों पर हिन्दुओं की नियुक्ति की। किन्तु बीकानेर के शासक राजा रायसिंह के विद्रोह के पश्चात् जहांगीर राजपूतों से रूष्ट हो गया। नूरजहां के हाथ में सत्ता आने पर तो हिन्दुओं को प्रशासनिक पदों पर स्थान मिलना कम हो गया। यह ठीक है कि शाहजहां के शासन काल में राजा टोडरमल, राय काशीदास एवं राय बहादुरमल ऊँचे पदों पर थे किन्तु अकबर के शासन काल की अपेक्षा इसमें कमी आ गई। औरंगजेब ने तो स्पष्ट घोषणा की थी कि सूबेदार के पद पर किसी राजपूत को न रखा जाय। उसने हिन्दुओं को सरकारी पदों पर रखने पर रोक लगा दी । फारूकी का विचार है कि औरंगजेब ने ऐसा हिन्दु कर्मचाारियों की वित विभाग में चोरी, घूसखोरी एवं भ्रष्टाचार के कारण किया।

किन्तु हिन्दुओं के अभाव में सरकारी कार्य में गतिरोध उत्पन्न होते ही उसने यह आदेश निकाला कि वित्त विभाग में 50 प्रतिशत हिन्दु एंव 50 प्रतिशत मुसलमान होने चाहिए। कुल मिलाकर औरंगजेब के काल में प्रशासनिक पदों पर हिन्दुओं की नियुक्ति प्रायः शून्य–सी हो गई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का जहां तक प्रश्न है अकबर से पूर्व हिन्दुओं को सामाजिक एवं धार्मिक स्वतन्त्रता नहीं थी। **बाबर ने तो जिहाद का नारा और इस्लाम के प्रसार के लिए अपने सैनिकों को प्रोत्साहित किया।** हुमायूं तो आजीवन राजनीतिक समस्याओं से इस कदर घिरा रहा कि लड़खड़ाते ही उसका अन्त हुआ। अकबर ने अवश्य हिन्दुओं को व्यक्तिगत स्वतन्ता प्रदान की। अकबर का काल (1556–1605) धार्मिक स्वतन्त्रता का काल था। जहांगीर ने हिन्दुओं को सामाजिक एवं धार्मिक स्वतन्त्रता तो दी किन्तु उसने परिवर्तन की स्वतन्त्रता नहीं दी। शाहजहां कट्टर धार्मिक विचारों का था अतः उसने जहां एक ओर नये मन्दिरों के निर्माण में रोक लगा दी, तो वहीं दूसरी ओर पुराने मन्दिरों की मरम्मत की मनाही के आदेश दिये। 1647 ई. के बाद शाहजहां पर दारा का प्रभाव पड़ा, अतः उसने नये मन्दिरों को बनाने की अनुमति दी। औरंगजेब के समय में तो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अन्त हो गया। जजिया कर पुनः लगा दिया गया संगीत पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। हिन्दु शिक्षण संस्थाओं को बन्द कर दिया गया। होली व दीवाली जैसे त्यौहार सार्वजनिक रूप में मनाये जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। हिन्दु हाथी, घोड़े एवं पालकी पर नहीं चढ़ सकते थे। अतः डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव का यह कथन नितान्त सत्य प्रतीत होता है कि 200 वर्ष से कुछ ही अधिक (1526–1748) मुगल काल में केवल अकबर के शासन काल (1556–1605) में हिन्दुओं को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता थी।"

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मुगलकाल में हिन्दुओं की स्थिति में सल्तनत युग की अपेक्षा परिवर्तन तो आया किन्तु फिर भी कुल मिलाकर हिन्दुओं की स्थिति अच्छी नहीं थी।

27.4. मुस्लिम समाज :

मुगलकालीन मुस्लिम समाज को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– शासक वर्ग, अभिजात्य वर्ग एवं साधारण वर्ग।

27.4.1 शासक वर्ग–सल्तनतकालीन शासकों की तुलना में मुगलकालीन शासक अत्यधिक सभ्य एवं सुसंस्कृत थे। मुगल सम्राट तत्कालीन समाज का सर्वोच्च प्रधान था। सम्राट अपने दरबार को ईरानी तरीके से लगाते थे। फतेहपुर सीकरी की इमारतों में स्थित ख्वाबगाह, मरियम का महल, पंचमहल , बीरबल का महल उनके विलासप्रिय एवं वैभवपूर्ण जीवन को स्पष्ट करते हैं।

27.4.2. अभिजात्य वर्ग – शासक वर्ग के पश्चात् द्वितीय स्थान अभिजात्य वर्ग का था। इस वर्ग में सरदार व जमींदार, धार्मिक नेता व विद्वान विशेष उल्लेखनीय हैं। सामाजिक दृष्टि से विशेषाधिकार वर्ग मुगल सरदारों का था। इसमें ईरानी, तूरानी, अफगान, उजबेग, राजपूत राजा एवं राजकुमार, आदि आते थे। जहांगीर के समय से पूर्व तक अफगान व मुगलों में संघर्ष चलता रहता था परन्तु जहांगीर के समय में हिन्दुओं को भी सरदार के पद पर स्थान दिया गया।

अकबर के समय में राजपूतों का कछवाहा वर्ग विशेष उल्लेखनीय था। जहांगीर व शाहजहां के काल में अभिजात्य वर्ग में स्थिरता स्थापित हुई। सबसे बड़ा कारण यह था कि इन दोनों सम्राटों ने मनसबदारी व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया था। सरदारों के वेतन प्रत्येक दृष्टि से अच्छे कहे जा सकते हैं। इस वर्ग ने प्रत्येक क्षेत्र में शासक वर्ग के रहन–सहन का अनुसरण करना प्रारम्भ कर दिया था। फलस्वरूप इनका दैनिक खर्च भी बहुत अधिक होता था।

इसी अभिजात्य वर्ग में जमींदार वर्ग भी विशेष उल्लेखनीय था। इसे स्वयं की खेती की मिलिकियत के साथ–साथ गांवो से लगान वसूल करने का भी अधिकार प्राप्त था। इसे उसका ताल्लुका या जमींदारी के नाम से जाना जाता था। साधारणतया इनके द्वारा 5 से 10 प्रतिशत तक लगान कर लिया जाता था। जमींदार अपनी सशस्त्र सेना भी रखते थे। आइने–अकबरी के अनुसार, अकबर के शासनकाल के समय जमींदार वर्ग के पास 3,84,558 सवार, 42,77,057 प्यादे, 4,260 तोपें तथा1,863 हाथी थे। अतः स्वाभाविक रूप से केन्द्रीय शासन इनकी अवहेलना करने का दुस्साहस नहीं कर पाता था। परन्तु एक तथ्य उल्लेखनीय है कि सरदारों की तुलना में इनकी आय सीमित थी।

जमींदार वर्ग के अलावा धार्मिक नेताओं व विद्वानों का भी एक बड़ा वर्ग था। उन्हें इनकी सेवा के बदले राज्य के द्वारा दान में जमीन दी जाती थी। इन अनुदानों को मिल्क अथवा मद्द–ए–माश कहा जाता था।। राजस्थान में इसे शासन कहा जाता था। इस वर्ग के धार्मिक नेताओं में उलेमा को अपना कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। लेकिन जब कभी उलेमा वर्ग कुरान के नियमों से विरूद्व कार्य करते थे तब मुगल सम्राट उनके कार्यो में हस्तक्षेप करते थे।

27.4.3 साधारण वर्ग – इस वर्ग में जुलाहे, मोची, कारीगर, छोटा व्यापारी वर्ग, कसाई, भिश्ती, नाई, धोबी, बढ़ई, लोहार एवं परिवर्तित हिन्दु वर्ग आता था। यह उल्लेखनीय है कि साधारण वर्ग के नव मुसलमानों के दृष्टिकोण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आता था। जहांगीर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, कश्मीर में राजौर के मुसलमान हिन्दू थे, जिन्हें फिरोज

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तुगलक ने मुसलमान बनाया था। बंगाल एवं कश्मीर के धर्म परिवर्तित मुसलमानों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। साधारण वर्ग के सन्दर्भ में, विवेच्य है कि इस वर्ग में आपस में ऊंच–नीच का भेद–भाव अत्यधिक था। इनकी सामाजिक स्थिति दयनीय कही जा सकती है।

27.5 रहन–सहन : जनसाधारण

मुगलकाल में जनसाधारण में हिन्दु व मुसलमानों की पोशाकों में साम्यता थी। बाबर ने 'तुजुके बाबरी' में लिखा है, ''श्रमिक, किसान और साधारण लोग अधिकतर नंगे रहते है। वे केवल अपनी कमर के चारों ओर एक चिथड़ा लपेटे रहते है, जिसका एक भाग टाँगों के बीच में से निकालकर कमर में खोंस लेते थे, जिसे वह लंगोटा कहते थे।'' डॉ. अशरफ के अनुसार, ''ब्राह्मण लोग कमर के ऊपर वस्त्रहीन रहते थे, अपने शरीर के ऊपर जनेऊ डाले रहते थे। '' गिरदानो सिरिगिस (वास्को डी गामा का सहयात्री) के अनुसार, ''प्रायः सर्वसाधारण कमर में टखनों तक सूती वस्त्र धारण किए हुए हैं, परन्तु कमर से ऊपर भाग में नग्न रहते हैं।'' मौरलैण्ड के अनुसार, ''लोगों द्वारा परिधिरित विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के वर्णन में पड़ने के बजाय उनकी वस्त्रहीनता पर बल दिया जाए।'' युसूफ हुसैन इसका खण्डन करते हुए लिखते हैं, ''विदेश से आए हुए यात्रियों के वृतान्तों में भारतवासियों के लिबासों के सम्बन्ध में बहुत सामग्री उपलब्ध है, जिससे यह सिद्ध होता है कि मौरलैण्ड के विचारों में आंशिक सत्यता है।'' साधारण हिन्दु धोती एवं मुसलमान पायजामा पहनते थे। आइने अकबरी में सलवार व चूड़ीदार पायजामा का उल्लेख है। वस्त्रों के ऊपर अचकन पहनी जाती थी।

हिन्दु स्त्रियाँ साड़ी व अंगिया तथा मुसलमान स्त्रियाँ पायजामा, घाघरा, जाकेट, दुपट्टा व बुरका पहनती थीं। बारबोसा के अनुसार,''मूर्तिपूजकों की औरतें बाहों में कसी हुई और पीठ पर ऊँची चोली पहनती हैं।'8 पीटर डेला वेला के शब्दों में, '' भारत की हिन्दु महिलाएँ साधारणतया लाल रंग के अतिरिक्त अन्य किसी रंग का प्रयोग नहीं करती हैं।''

मुगल बादशाहों की वेशभूषा भव्य थी। बदायूँनी के अनुसार हुमायूँ व अकबर नक्षत्र के अनुसार वस्त्र पहनते थे। अकबर की पोशक के सम्बन्ध में मोंसरेट ने लिखा है, '' अकबर बादशाह रेशम के कपड़ों पर सोने के काम से सुसज्जित वस्त्र पहनता था। उसका लम्बा चोगा टखनों तक को ढक लेता था तथा वह मोती व सोने के जवाहरात पहनता था।'' जहाँगीर की पोशाक के सम्बन्ध में डॉ. श्रीवास्तव ने लिखा है,'' उसने अपने शारीरिक सौन्दर्य की वृद्धि के लिए नवीन सरकार की वेशभूषा और वस्त्रों की व्यवस्था की और अन्यों को उसके प्रयोग से वंचित कर दिया।'' औरंगजेब की पोशक सादी थी। लोग मोजे नहीं पहनते थे। बर्नियर के अनुसार, ''हिन्दुस्तान में गर्मी इतनी अधिक है कि कोई भी मनुष्य, यहाँ तक कि राजा भी मोजे नहीं पहनता है।'' दुआरती बारबोसा के अनुसार, ''उनके जूते रंगीन तथा बहुत आकर्षक होते हैं।'' पीटर डोला के अनुसार, ''उनके (उत्तर भारत के लोग) पाँव में केवल चप्पल होती है, जिन्हें हाथ की सहायता लिए बिना सरलता से उतारा जा सकता है।''

27.5.1. आभूषण – इस काल में स्त्री व पुरूष दोनों को आभूषणों का शौक था। आइन–ए–अकबरी में 37 प्रकार के आभूषणों का वर्णन है, जिनमें कर्णफूल, बाली, चम्पाकली, बाजूबन्द, गजरा, कंगन, गुलूबन्द, बिछुआ, लौंग आदि प्रमुख थे। हिन्दु हाथ में अँगूठी, गले में हार तथा कानों में आभूषण पहनते थे। औरंगजेब के अलावा अन्य सभी मुगल शासक आभूषण प्रेमी थे।

27.5.2. सौन्दर्य सामग्री – आइन–ए– अकबरी में विभिन्न प्रकार के इत्रों का वर्णन है। पेलसर्ट के अनुसार, ''खुशबूखाना के कर्मचारी रात–दिन विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पदार्थों के बारे में चिन्तन करते रहते थे।'' निकोलो कोंटी के अनुसार, ''. सिर को आभूषित करने के अनेक तरीके हैं, परन्तु अधिकतर एक सुनहरे जड़ाऊदार कपड़े से सिर ढंका जाता है और एक रेशमी डोरे से केशों को बाँधा जाता है।'' नाखून व होठों को रंगा जाता था तथा मेंहदी व काजल का प्रयोग होता था।

27.5.3. मनोरंजन – कुश्ती, पशु दौड़, पशु युद्ध, शिकार, संगीत, गायन, नृत्य तथा मदिरा, अफीम, भाँग आदि मादक वस्तुएँ मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। हुमायूँ अफीम तथा जहाँगीर शराब पीने का बहुत शोकीन था। उसने अपने पुत्र शहाजदा खुर्रम को शराब का जाम देते हुए उसकी प्रशंसा में निम्न शेर कहा था–''मदिरा क्राधी शत्रु एवं समझदार मित्र है थोड़ी विषकी औषधि है, पर अधिक सर्प विष है। अधिक में थोड़ी हानि नहीं है पर थोड़ी में बहुत लोभ है।''

इस काल में सम्राट् तथा अमीर भोग विलासी जीवन बिताते थे। श्री लूनिया के अनुसार, '' भोग विलास से परिपूर्ण जीवन मुगल राज दरबार और मुगल युग के सम्मान के लिए एक आवश्यक वस्तु थी।'' प्रो. एस. आर. शर्मा के शब्दों में, ''निजाम–उल–मुल्क जैसे कुछ अमीरों को छोड़कर शेष भोग विलास और पारस्परिक ईर्ष्या में डुबे हुए थे।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

27.5.4. खान–पान –: इस काल का खान–पान भी सल्तनतकाल के समान ही था। पेलसर्ट के अनुसार हिन्दु मॉंस भक्षण से दूर रहते थे। ट्रेवनियर ने मिठाई को मजदूरों क भी प्रिय भोजन बताया है। डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव का मानना है कि अकबर को मॉंसाहारी भोजन से लगाव न था। फलों तथा मादक द्रव्यों का भी खूब सेवन किया जाता था।

27.6. स्त्रियों की दशा :

प्राचीन काल में नारियों की दशा बहुत अच्छी थी, किन्तु जैसा कि ए. एस. अल्तेकर ने लिखा है, ''समय के साथ–साथ समाज में नारियों का महत्व कम होता गया।'' भारत में मुसलमानों के आगमन के साथ ही स्त्रियों की दशा में गिरावट आ रही थी तथा मुगल काल तक उनकी दशा काफी दयनीय हो चुकी थी।

27.6.1. सती प्रथा – मध्यकाल में सती प्रथा प्रबल रूप में विद्यमान थी। तातारों से अपने शील की रक्षा तथा विधवा जीवन में यंत्रणा से बचने हेतु स्त्रियाँ प्रायः सती होना स्वीकार कर लेती थीं। गर्भवती पत्नी भी अपने पति की मृत्यु के पश्चात् सन्तान होने तक जीवित रहती थी तथा फिर सती हो जाती थी। निकोली कोण्टी के अनुसार पति के साथ्ज्ञ सती न होने वाली स्त्री के पति की सम्पति स्त्री के स्थान पर किसी अन्य सम्बन्धी को दे दी जाती थी। मुगल सम्राट् इस प्रथा को नियन्त्रित करने के प्रयास में विफल रहे।

27.6.2. बहु विवाह – मुसलमानों को कुरान में चार विवाह की छूट दी गई है। मिर्जा अजीज कोका के शब्दों में ,''एक व्यक्ति को चार विवाह करने चाहिए। पर्शियन स्त्री से बातचीत करने के लिए, खुरासानी स्त्री से गृह कार्य के लिए, हिन्दु महिला से बच्चों को खिलाने के लिए तथा एक सामान्य स्त्री से फटकाने के लिए, ताकि अन्य तीनों को चेतावनी मिलती रहे।'' बहु विवाह के कारण मुगल हरम में सैकड़ों स्त्रियाँ थीं। कालान्तर में इसी कारण उत्तराधिकार के रक्त रंजित युद्ध लड़े गए। आर्थिक दृष्टि से भी यह बड़ी दुःखद था।

सामान्य हिन्दू एक विवाह करते थे किन्तु राजा व सानन्त बहु विवाह करते थे। आमेर के शासक मानसिंह के 1,500 पत्नियां थीं। पीटारो डेला वेला के अनुसार, "हिन्दू एक विवाह करते थे तथा उसके चरित्रहीन होने के अतिरिक्त उसको मृत्यु तक उसे नहीं छोड़ते थे।"

27.6.3. बाल विवाह – हिन्दू लोग मुसलमानों को बुरी निगाहों से अपनी कन्या को बचाने हेतु उसका बचपन में ही विवाह कर देते थे। मुकन्दराम के अनुसार, "जो पिता अपनी पुत्री का विवाह 9 वर्ष की आयु में कर देता था, वह भाग्यशाली और ईश्वर का कृपापात्र समझा जाता था।" राजपूतों में स्वयंवर प्रथा का प्रचलन था। दहेज प्रथा व अनमेल विवाह भी प्रचलित थे। अकबर ने इसे नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया था, किन्तु विफल रहा।

27.6.4. पर्दा प्रथा – पहले हिन्दुओं में पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। के. एस. अशरफ के अनुसार, "पर्दे का परम्परागत रूप मुस्लिम शासन से प्रारम्भ होता है।" हिन्दुओं ने अपनी स्त्रियों के शील की रक्षा हेतु इस प्रथा को अपनाया था। मुसलमान इसे बहुत कठोरता से अपनाते थे। बदायूंनी ने अकबर के एक फरमान का वर्णन करते हुए लिखा है, "यदि कोई नारी बिना पर्दे के बाजार में दिख जाए, तो उसे वेश्यालय भेज दिया जाए और वह धन्धा अपनाना पड़ेगा।

इस काल में हकीम भी रोगी महिला को स्पर्श कर स्कता था। पिटरो डोला वेला के अनुसार, "केवल वही मुस्लिम महिलाएं घर से बाहर निकलती थीं, जो चरित्रहीन अथवा निर्धन होती थी। शाही औरतें पालकी में बैठकर बाहर जाती थीं तथा उस समय किसी भी पुरुष को सड़क पर चलने की आज्ञा नही थी। पर्दा छूट जाने पर पत्नी भी छोड़ दी जाती थी। काबुल के गवर्नर अमीर खां ने अपनी पत्नी को इसलिए छोड़ दिया क्योंकि उसका पर्दा हाथी से जान बचाकर भागने के चक्कर में छूट गया था। मुगल काल में नूरजहां ही पर्दा नहीं करती थीं। वह युद्धप्रिय तथा आखेट प्रिय थीं डॉ. बेनीप्रसाद के अनुसार, "उससे पर्दा प्रथा को तोड़ दिया तथा जनसाधारण के सम्मुख प्रकट होने से किसी प्रकार का संकोच नहीं किया।" डॉ. युसुफ हुसैन के अनुसार,"निम्न वर्ग की महिलाएं भी अपने मुंह को ढककर चलती थीं।"

इस काल में कन्या का जन्म अशुभ माना जाता था। मनूची के अनुसार,"जो पत्नी बार–बार कन्या को जन्म देती थीं, उससे घृणा की जाती थी तथा कभी–कभी उसे तलाक भी दे दिया जाता था।" मुस्लिम स्त्रियों को पुनर्विवाह का अधिकार था किन्तु हिन्दु स्त्रियों को यह अधिकार प्राप्त न था। डॉ. अलोका के अनुसार,"पति भले ही पत्नी पर अत्याचार करे अथवा नैतिक स्तर से गिर जाए, परन्तु हिन्दू समाज में तलाक मान्य नहीं था।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विधवा जीवन पूर्व जन्म के पापों का परिणाम माना जाता था तथा विधवाओं की दशा अच्छी न थी। डेला–वेला के अनुसार, "विधवा पुनः विवाह नहीं करती थीं। वह अपने सिर के बाल मुंडवा देती थी तथा पूर्णतया परित्यक्ता का जीवन व्यतीत करती थी। वह अन्य व्यक्तियों एवं अपनी दृष्टि में भी तिरस्कृत प्राणियों के समान जीवन व्यतीत करती थी।" इस काल में भी मां के रूप में स्त्रियों का काफी सम्मान था।

डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव ने लिखा है, "भारत में मुसलमान स्त्रियों की स्थिति अरब स्त्रियों जैसी न थी। भारत में वे पुरुषों के अधीन थे तथा अपने बहु पत्नी रखने वाले पतियों की मनमानी सहती थीं।" डॉ. पाण्डेय के शब्दों में, "कुलीन या शाही घरानों में अनेक स्त्रियों को अवहेलना, दमन और अपमान का जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

मुस्लिम स्त्रियों का अपने पिता को सम्पत्ति पर अधिकार होता था एवं विवाह के पश्चात् अपने पति को सम्पत्ति पर अधिकार होता था। साधारणतः स्त्रियों का कार्य गृह–गृहस्थी का था किन्तु निम्न वर्ग की स्त्रियां अपने पति के कार्य में हाथ बंटाती थीं। हिन्दू समाज में देवदासी प्रथा की आड़ में वेश्यावृत्ति होती थी। वेश्याओं को समाज में घृणा की नजर से देखा जाता था। पर्दा प्रथा के बावजूद मुगल काल में अनेक विदूषी स्त्रियां हुई जिसमें गुलबदन बेगम, नूरजहां, जैबुन्निसा, मीराबाई आदि प्रमुख थीं।

इस काल में स्त्रियों ने प्रशासन में भी भाग लिया। अकबर की मां माहम अनगा, रानी दुर्गावती, नूरजहां, चांदबीबी, ताराबाई आदि महान् प्रशासक थीं। वे युद्ध काल में भी प्रवीण थी। ताराबाई के शासन की प्रशंसा करते हुए सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है, "उसकी प्रशासनिक प्रतिभा एवं चारित्रिक शक्ति ने देश को भयानक विपत्तियों से बचा लिया।" इस काल के विदेशी यात्री भी भारतीय नारियों के हंसते–हंसते पति–पुत्र–भाई को रणभूमि में भेज देने तथा मृतक पति के साथ जीवित चिता में जल मरने आदि आदर्शों से बहुत प्रभावित हुए। जहांगीर ने अपनी आत्मकथा 'तुजके जहांगीरी' में जोर प्रथा की प्रशंसा करते हुए लिखा है,"जौहर प्रसिद्धि तथा पवित्रता की वह आग है, जिसके सतीत्व को कोई भी अवैधानिक व्यक्ति छू नहीं सकता है।" इसी प्रकार ट्रेवर्नियर के अनुसार वैश्य कभी भी अपनी पत्नी के साथ विश्वासघात नहीं करता था। इस प्रकार मुगल काल में समाज में अनेक कुप्रथाएं विद्यमान होते हुए भी कुल मिलाकर स्त्रियों की दशा सन्जोषजनक थी।

27.7. दास प्रथा :

मुगलकाल में दास प्रथा का भी प्रचलन था। दास गृह–कार्य के साथ अपने स्वामी की भी रक्षा करते थे। दासी का क्रय–विक्रय होता था। तुर्किस्तान एवं असम के दास विख्यात थे। शाही हरम में हिजड़े दास के रूप में रखे जाते थे। मुसलमानों में चार तरह के दास होते थे–1. क्रीत (खरीदे गुए), 2. लब्ध (भेंट में प्राप्त), 3. युद्ध–प्राप्त (युद्ध में पकड़े गए), तथा 4. आत्म विक्रेता (स्वयं को बेचने वाले)। दासियां दो तरह की होती थीं–गृह कार्य हेतु एवं मनोरंजन हेतु। हिन्दुओं में भी दास प्रथा का प्रचलन हो रहा था।

27.8. त्यौहार :

हिन्दुओं के प्रमुख त्यौहारों में रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली, बसन्त पंचमी, शिवरात्रि, होली आदि थे। होली शूद्रों का , दीपावली वैश्यों का, दशहरा राजपूतों का एवं रक्षा बन्धन ब्राह्माणों का त्यौहार माना जाता था। इदुलजुहा, नौरोज, शब–ए–बरात आदि प्रमुख मुस्लिम त्यौहार थे। अकबर के प्रयत्नों से हिन्दू तथा मुस्लिम परस्पर एक–दूसरे के त्यौहारों में शामिल होने लगे।

27.9. भोजन :

साधारण वर्ग के लोग सामान्य भोजन करते थे। बाबर ने इस वर्ग का प्रमुख भोजन खिचड़ी बताया है। बिहार के ग्रामीण केपारी दाल खाते थे। मालवा के लोग ज्वार के आटे का प्रयोग करते थे। बंगाल तथा तटवर्ती प्रदेशों में मुख्य खाद्य–पदार्थ मछली था। उत्तर भारत का मुख्य भोजन गेंहू, मोटे अनाज की चपातियां, सब्जी व दाल थी। हिन्दु वर्ग की अपेक्षा मुस्लिम सामान्य वर्ग मांस का अधिक प्रयोग करता था। अबुल फजल के विवरण से पता चलता है कि साधारण वर्ग का मुख्य भोजन शाम को ही होता था। दिन में दाल, भुनी चीजें, आदि ही प्रयोग में की जाती थीं। ट्रेवर्नियर के विवरण से ज्ञात होता हे कि खाद्यान्नों की तुलना में तेल व घी अधिक सस्ता था। उतः साधारण वर्ग के भोजन में घी–तेल का अधिक प्रयोग होता था। नमक के महंगा होने से सामान्य वर्ग केले की छाल से निकली कड़वी वस्तु का प्रयोग करते थे। सन्तरा, खीरा, अमरूद, अंगूर, साधारण वर्ग के सेवन के मुख्य फल थे। सामान्य जनता पत्तलों में भोजन करती थी। हिन्दु स्त्रियां पति के भोजन के पश्चात् ही भोजन करती थीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उच्च वर्ग की स्थिति अच्छी थी। चपाती, चावल, विभिन्न प्रकार की तरकारियां, पूरी, दही, मक्खन, तेल, घी, खीर, पनीर, इनका मुख्य भोजन था। अमीर वर्ग की चपाती के आटे में 15 प्रतिशत घी मिला होता था, जिसे 'रागनी' कहा जाता था। राजपूत व मुसलमान मांस का प्रयोग करते थे। शर्बत, लैमन, बर्फ, गुलाब जल का भी प्रयोग अमीरों द्वारा किया जाता था। काबुल व बदख्शां के तरबूज, काबुल की चैरी, समरकन्द की नाशपाती, पर्शिया व कश्मीर के विभिन्न प्रकार के फल अमीरों के प्रयोग में आते थे।

27.10 वस्त्र :

मुगल काल में विभिन्न वर्गों के लोग विभिन्न प्रकार की पोशाकें पहनते थे। आइने–अकबरी से ज्ञात होता है कि मुगल शासक उत्तम प्रकार के वस्त्र पहनते थे। आइने–अकबरी में टक–औचिया, पेशबाज, शाह अजीदा, फर्गी चकमन, गादर, आदि ग्यारह प्रकार के कोटों का उल्लेख मिलता है। औरंगजेब का पहनावा सादा था। अमीर वर्ग दरबार में 'खिलात' धारण करते थे। सामान्यतः वे कीमती सलवार व कमीज पहनते थे। हिन्दु अमीर वर्ग धोती व कीमती शाल या चादर पहनते थे। उच्च वर्ग की स्त्रियां कश्मीरी शाल व काबा पहनती थीं। नूरजंहा ने हरे दूदमी, नूरमहली, पंचटोलिया एवं केनारी वस्त्रों के फैशन का आविष्कार किया था। अमीरों के जूते तुर्की शैली में निर्मित होते थे जो कि आगे से नुकीले होते थे तथा इनका ऊपरी भाग खुला होता था। कालीकट के ब्राह्मण काठ की खड़ाऊ प्रयोग करते थे। शाही परिवारों के जूते रत्नजडित होते थे जबकि अमीर वर्ग के जूतों में फूलों की आकृतियां बनी होती थीं। बर्नियर के विवरण से पता चलता है कि गर्मी के कारण मोजे नहीं पहने जाते थे।

सामान्य वर्ग जिनमें मजदूर, किसान, कुम्हार, आदि थे सूती लंगोट पहनते थे। राल्प फिच ने लिखा है कि बनारस के पुरूष कमर में केवल एक कपड़ा बांधते थे। स्त्रियां चोली, अंगनी तथा साड़ी पहनती थीं। उड़ीसा की गरीब स्त्रियाँ पेड़ों की पत्तियों से शरीर को ढकती थीं। मुसलमान स्त्रियां साधारण कुर्ता व पायजामा पहनतीं तथा बुर्का धारण करती थीं। सलबांके ने लाहौर एवं आगरा के मध्य बसे हुए लोगों के विषय में लिखा है कि ये प्रायः नग्न ही रहते थे। विदेशी यात्रियों के विवरणों में प्रायः भारत के साधारण वर्ग के लोगों के पास वस्त्र नहीं थे। वास्तव में , भारत की जलवायु गरम होने के कारण लोग कम कपड़ों का प्रयोग करते थे। उल्लेखनीय है कि कपास की खेती व सूती वस्त्रों का निर्माण गांवो में होता था। विदेशी यात्रियों ने सामान्यतः साधारण वर्ग के नंगे पैर रहने की बात कही है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पीछे चमड़े की मंहगाई मुख्य कारण रही होगी।

27.11. आवास एवं फर्नीचर :

गांवों का साधारण वर्ग मिट्टी के बने मकानों में निवास करता था। चारपाई तथा बांस की चटाइयां उनका फर्नीचर था। बर्तन मिट्टी के होते थे, जो कि कुम्हार द्वारा निर्मित किये जाते थे। शासक व अभिजात्य वर्ग सुन्दर आलीशान महलों में रहता था। उनके पास ठाट–बाट का फर्नीचर तथा बर्तन तांबे तथा अन्य धातुओं के होते थे।

27.12. मादक द्रव्य :

कोशल में मद्य–निषेध के बावजूद भी सामान्यतः मुस्लिम समाज में मदिरा सेवन का प्रचलन था। औरंगजेब को छोड़कर सभी मुगल शासक मदिरा का सेवन करते थे। सबसे सस्ती शराब ताड़ी थी जिसे नारियल या खजूर से बनाया जाता था। नीरा, मंडबा, खेरा नामक शराब चावल या अनन्नास से बनाई जाती थी। अच्छी शराब पर्शिया व पुर्तगाल से भारत में आती थी जिसे सामान्यतः शासक एवं अमीर वर्ग ही सेवन करता था। **1684 ई. में औरगजेब ने मद्य–विशेष के लिए बड़े प्रतिबन्ध लगाये, परन्तु वह मुगल दरबारियों एवं अमीरों को पूर्ण रूप से रोक नहीं पाया।**

अन्य मादक पदार्थों में भांग को जायफल एवं जावित्री में मिलाकर सेवन किया जाता था। सामान्यतः हिन्दुओं में भांग सेवन का प्रचलन था। अफीम का प्रचलन राजपूतों व मुसलमानों में अत्यधिक था। मुगल सम्राट हुमायूं अफीम का अत्यधिक सेवन करता था। पुर्तगालियों के आगमन के पश्चात् 1605 ई. से भारत में तम्बाकू का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था। भारतीय स्त्रियां भी तम्बाकू का सेवन करती थी।

27.13. श्रृंगार :

मुगल काल में स्त्री व पुरूष दोनों श्रृंगार प्रेमी थे। अबुल फजल ने 37 प्रकार के आभूषणों का उल्लेख किया है। शीश, नाक, कान, भुजा, अंगुली, कटि एवं पैरों में स्त्रियां विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण करती थीं। औरंगजेब को छोड़कर सभी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मुगल शासक आभूषण प्रेमी थे। आभूषण सोने, चांदी, हाथी दांत, आदि के बनाये जाते थे। गरीब वर्ग सोने, चांदी को छोड़कर अन्य धातुओं के आभूषण पहनते थे। स्त्री–पुरूष दोनों मेंहदी एवं सुगन्धित तेलों व इत्र का भी प्रयोग करते थे। आइने–अकबरी में अर्क, चमेली, मोसरी और अम्बर जैसे सूगन्धित तेलों का उल्लेख मिलता है। सम्राट अकबर ने तो शेख मंसूर की अध्यक्षता में सुगन्धित पदार्थों के निर्माण के लिए खुशबूनामा नामक विभाग की भी स्थापना की थी।

27.14. मनोरंजन :

चौगान राजपूतों व मुगल शासक दोनों का प्रिय खेल था। अकबर इस खेल का अत्यधिक प्रेमी था। शाही महिलाएं इसमें भाग लेती थीं। शासक वर्ग इस खेल को केवल देखकर ही मनोरंजन कर सकता था। मीर शरीफ एवं मीर गियासुद्दीन नामक दो अकबरकालीन खिलाड़ियों के नाम प्राप्त होते हैं। शासक वर्ग को शिकार का भी शौकीन था। शेर, चीते, हाथी एवं अन्य जंगली पशुओं का शिकार किया जाता था। अमीर व गरीब वर्ग बन्दूक एवं तीरों से चिड़ियों का शिकार करता था तथा मछलियों के शिकार का भी विवरण मिलता है। मुक्केबाजी, पशु दौड़, पशुयुद्ध, घुड़सवारी, तैराकी, शतरंज, चौपड़, ताश भी मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। इसके अलावा साधारण वर्ग अपने धार्मिक त्यौहारों से भी मनोंरजन करता था।

27.15. शिक्षा :

किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति शिक्षा के स्तर पर निर्भर करती है। यदि उचित शिक्षा की व्यवस्था जनसाधारण के लिए उपलब्ध होगी तो जनता का सुसंस्कृत होना स्वाभाविक ही है। मुगलकालीन भारत में शिक्षा विचारों से प्रभावित थीं, जिसका प्रभाव तत्कालीन समाज पर पड़ा। मुगलकाल में शिक्षा के उद्देश्यों में प्रमुख निम्नवत् थे–

(1) प्रत्येक मुसलमान को शिक्षा प्रदान करना।

(2) इस्लाम का प्रचार एवं प्रसार करना भी शिक्षा का एक उद्देश्य था। पी. एल. रावत ने लिखा है, "भारत में इस्लाम का प्रसार शिक्षा के माध्यम से किया गया। मकतबों में बच्चों को प्रारम्भ से कुरान पढ़ाया जाता था जिससे उन्हें इस्लाम के सिद्वान्तों की जानकारी प्राप्त हो सके।

(3) भौतिक सुख प्राप्त करना।

(4) राजनीतिक उद्देश्यों को प्राप्त करना।

इस्लामी शिक्षा का मूल स्थान भारत नहीं अपितु मध्य एशिया, अरब व ईरान थे, जहां काफी समय पूर्व ही मुस्लिम शिक्षा प्रणाली का विकास हो चुका था। इन दोनों के विद्यालय इस्लामी शिक्षा के गढ़ थे। इन विद्यालयों का मुख्य उद्देश्य इस्लाम का प्रचार करना व उसे सुदृढ़ बनाना था। इस विषय में डॉ. यूसुफ हुसैन का कथन उल्लेखनीय है। उनके शब्दों में, "मध्ययुग में सोचने का दृष्टिकोण मजहबी था। राजनीति दर्शन और शिक्षा मजहबी नियन्त्रण में थे और उन्हें मजहबी परिभाषाओं के अनुकूल बना लिया था। लोगों के सोचने और अभिव्यक्ति तक का दृष्टिकोण मजहबी था। अन्य इस्लामी देशों के समान भारत में भी मुगलकाल में शिक्षा का मूल उद्देश्य धार्मिक भावनाओं से अवगत कराना ही था, केवल अकबर का शासनकाल ही इससे अलग था जिसमें धार्मिक उदारता का परिचय स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

27.16 अभ्यास प्रश्नावली :

प्रश्न 1 मुगलकाल में हिन्दू समाज कितने वर्गों में विभाजित था?

अ. तीन   ब. चार

स. पाँच   द. छह

उत्तर – ....

प्रश्न 2 मुगलकाल में स्त्रियों की दशा पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर – ....

प्रश्न 3 मुगलकालीन जनता की सामाजिक स्थिति का विस्तारपूर्वक वर्णन करिये।

उत्तर – ....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ–341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

स्नातक (बी.ए.) द्वितीय वर्ष

विषय : इतिहास

प्रथम-पत्र : मध्यकालीन भारत का इतिहास

(1206 ई.–1958 ई.)

संवर्ग

संवर्ग–1	:	सल्तनत काल–I
संवर्ग–2	:	सल्तनत काल–II
संवर्ग–3	:	मुगल काल–I
संवर्ग–4	:	मुगल काल–II
संवर्ग–5	:	मुगलकालीन व्यवस्था

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेषज्ञ समिति

1. श्रीमती संतोष व्यास
2. श्रीमती स्वाति चतुर्वेदी
3. डॉ. अरुणा सोनी
4. डॉ. विनीत गोधल

लेखक

डॉ. अरुणा सोनी

कापीराइट

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 1000

प्रकाशक :

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय,

लाडनूँ–341 306 (राजस्थान)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

संवर्ग–1 : सल्तनत काल–I **1–41**

इकाई – 1 मध्यकालीन भारतीय इतिहास की जानकारी के स्रोत 1

इकाई – 2 भारत में तुर्की राज्य की स्थापना – कुतुबुद्दीन ऐबक 7

इकाई – 3 इल्तुतमिश 11

इकाई – 4 सुल्ताना रजिया 17

इकाई – 5 बलबन 22

इकाई – 6 अलाउद्दीन खिलजी 31

संवर्ग–2 : सल्तनत काल–II **42–92**

इकाई – 7 मुहम्मद बिन तुगलक 42

इकाई – 8 फीरोज–तुगलक 52

इकाई – 9 विजयनगर साम्राज्य का उत्थान एवं पतन 59

इकाई – 10 बहमनी साम्राज्य का उत्थान एवं पतन 69

इकाई – 11 सल्तनत काल की सामाजिक एवं आर्थिक अवस्था 74

इकाई – 12 सल्तनतकालीन प्रशासन 87

संवर्ग–3 : मुगल काल–I **93–174**

इकाई – 13 मुगल सम्राट बाबर 93

इकाई – 14 हुमायूं 113

इकाई – 15 शेरशाह सूरी 131

इकाई – 16 सम्राट अकबर 144

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–4 : मुगल काल–II **175–225**

इकाई – 17 मुगल दरबार में नूरजहां की भूमिका 175

इकाई – 18 शाहजहां 182

इकाई – 19 औरंगजेब 194

इकाई – 20 मुगल शासकों की धार्मिक नीति 203

इकाई – 21 शिवाजी और उसका विजय अभियान 210

इकाई – 22 मुगल साम्राज्य के पतन के कारण 220

संवर्ग–5 : मुगलकालीन व्यवस्था **226–248**

इकाई – 23 मुगलकालीन प्रशासन 226

इकाई – 24 कृषि व्यवस्था 235

इकाई – 25 मनसबदारी प्रथा 238

इकाई – 26 विदेशी व्यापार वाणिज्य 243

इकाई – 27 मुगलकाल में जनता की सामाजिक अवस्था 248

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun